ब्रह्मोपदेश

(श्री नियमसार शास्त्र पर १९७५-७६ के शब्दशः प्रवचन)

भाग १

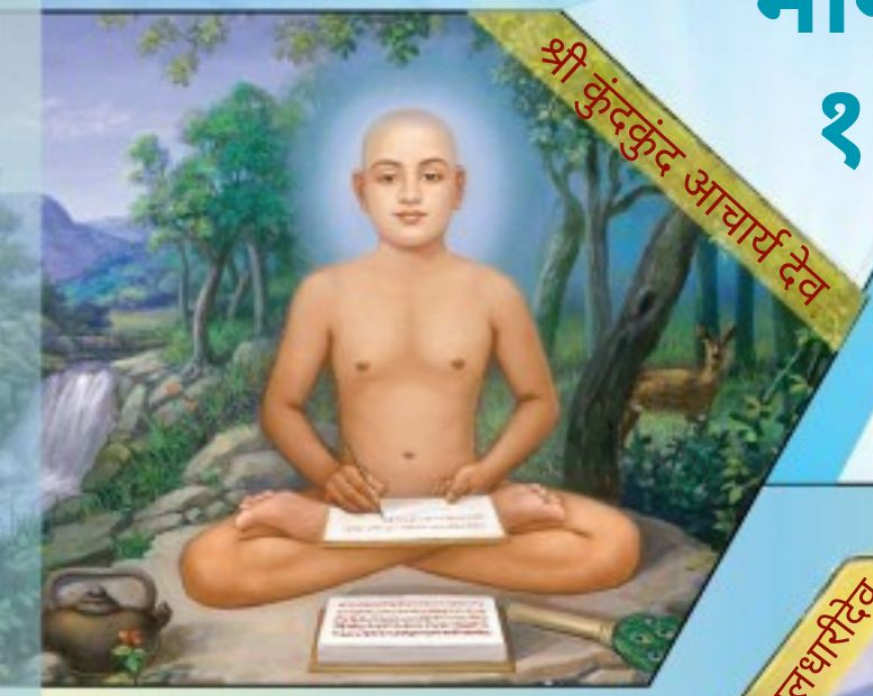

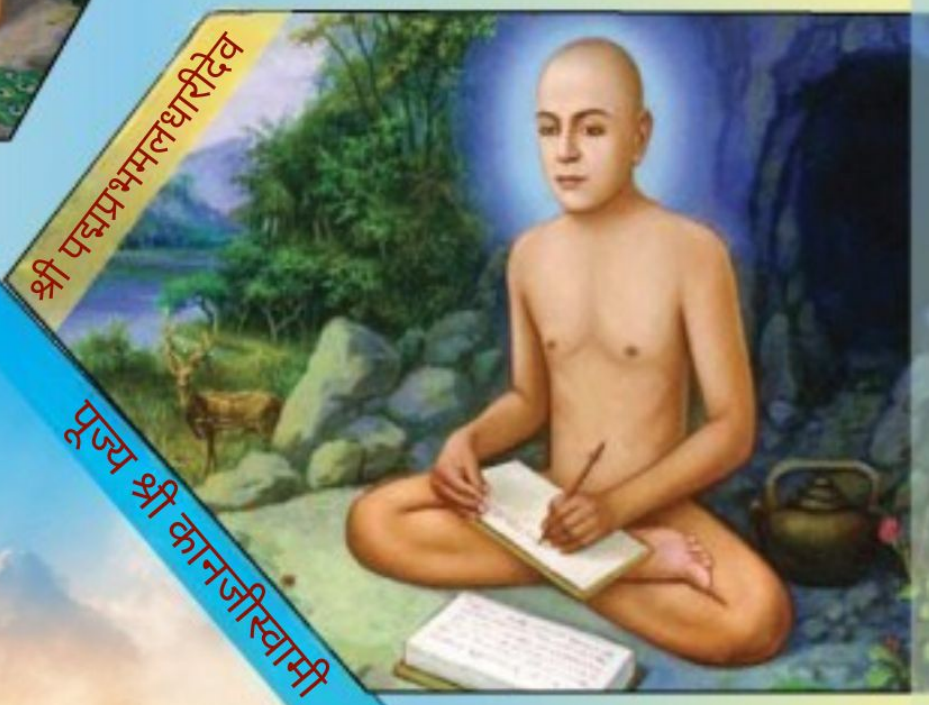

प्रकाशकः
श्री कुंदकुंद - कहान मोक्षार्थी परिवार, सोनगढ़

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

ब्रह्मोपदेश

(भाग-1)

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित
श्री नियमसार परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सन् 1975 के
शुद्धभाव अधिकार के शब्दशः प्रवचन)

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 9722833143

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2082	2552	2025

—: प्रकाशन :—

पौष कृष्ण अष्टमी,
कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव का
आचार्य पदारोहण दिवस के अवसर पर
दिनांक 12 दिसम्बर 2025

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

2. श्री प्रशम मोदी
सी-403, गुरु प्रभाव, आत्मन बंगलो के सामने, पालीताणा रोड, सोनगढ़
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 9722833143

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलं।

महावीर भगवान और गौतम गणधर के बाद जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है। ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह क्षेत्र जाकर श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों के आधार देते हैं, उससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

वे निर्मल परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के बाद पौन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की है कि जिसमें श्री समयसार, श्री प्रवचनसार, श्री नियमसार, श्री पंचास्तिकायसंग्रह, श्री अष्टपाहुड़—यह पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

श्री समयसार इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नौ तत्त्वों का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। श्री प्रवचनसार में नाम के अनुसार जिनप्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। श्री नियमसार में मुख्यरूप से शुद्धनय से जीव, अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, समाधि, भक्ति, आवश्यक, शुद्धोपयोग इत्यादि का वर्णन है। श्री पंचास्तिकायसंग्रह में काल सहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है तथा श्री अष्टपाहुड़ एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, जिसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की है।

यह नियमसार परमागम मुख्यरूप से मोक्षमार्ग के निरूपचार निरूपण का अनुपम ग्रन्थ है। 'नियम' अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो, वह अर्थात् निश्चयरत्नत्रय। 'सार' शब्द निश्चयरत्नत्रय से विपरीत ऐसे व्यवहाररत्नत्रय के परिहार के लिये जोड़ा गया है। इस प्रकार, 'नियमसार' अर्थात् शुद्धरत्नत्रय। इस शुद्धरत्नत्रय की प्राप्ति परमात्मतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। निगोद से लेकर सिद्ध तक की सर्व अवस्थाओं में—अशुभ, शुभ या शुद्ध विशेषों में—रहा हुआ जो नित्य-

निरंजन टंकोत्कीर्ण शाश्वत् एकरूप शुद्धद्रव्यसामान्य, वह परमात्मतत्त्व है, वही शुद्ध अन्तःतत्त्व, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव इत्यादि नामों से कहा जाता है। इस परमात्मतत्त्व की उपलब्धि, अनादि काल से अनन्त-अनन्त दुःख को अनुभव करते हुए जीव ने, एक क्षणमात्र भी की नहीं और इसलिए सुख प्राप्ति के लिये उसके सर्व प्रयत्न—व्यवहाररत्नत्रय तक सर्वथा व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य जीवों को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है।

इस शास्त्र में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथाओं के ऊपर तात्पर्यवृत्ति नाम की संस्कृत टीका लिखने मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। वे आचार्य श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य हैं जो विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए परम गहन आध्यात्मिक भावों को अपने अन्तरवेदन के साथ मिलान कर इस टीका में स्पष्ट रीति से खुल्ले किये हैं। इस टीका में समागत कलशरूप काव्य अतिशय मधुर और अध्यात्म मस्ती से तथा भक्तिरस से भरपूर हैं। टीकाकार मुनिराज ने गद्य तथा पद्यरूप से परमपारिणामिकभाव को तो बहुत-बहुत गाया है। पूरी टीका मानो कि परमपारिणामिकभाव का और तदाश्रित मुनिदशा का एक महाकाव्य हो, ऐसा मुमुक्ष हृदयों को मुदित करता है।

शब्दशः प्रवचन शास्त्रों को प्रकाशित करने का हमारा एक ही प्रयोजन है कि सभी जीव सर्वांगीण अभ्यास करके अपनी साधना में आगे बढ़ें।

इन प्रवचनों को सुनकर इन्हें गुजराती भाषा में शास्त्राकार देने में श्री नीलेशभाई जैन, भावनगर का आभार मानते हैं। समस्त प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्यरचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोग की एकाग्रतापूर्वक किया गया है, तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमायाचना करते हैं। समस्त मुमुक्षुजनों से निवेदन है कि अशुद्धियों की नोंध हमें प्रेषित करें, जिससे आगामी आवृत्ति में सुधार किया जा सके। यह प्रवचन www.vitragvani.com, vitragvani app तथा atmadharam.com पर उपलब्ध हैं।

श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार,
सोनगढ़

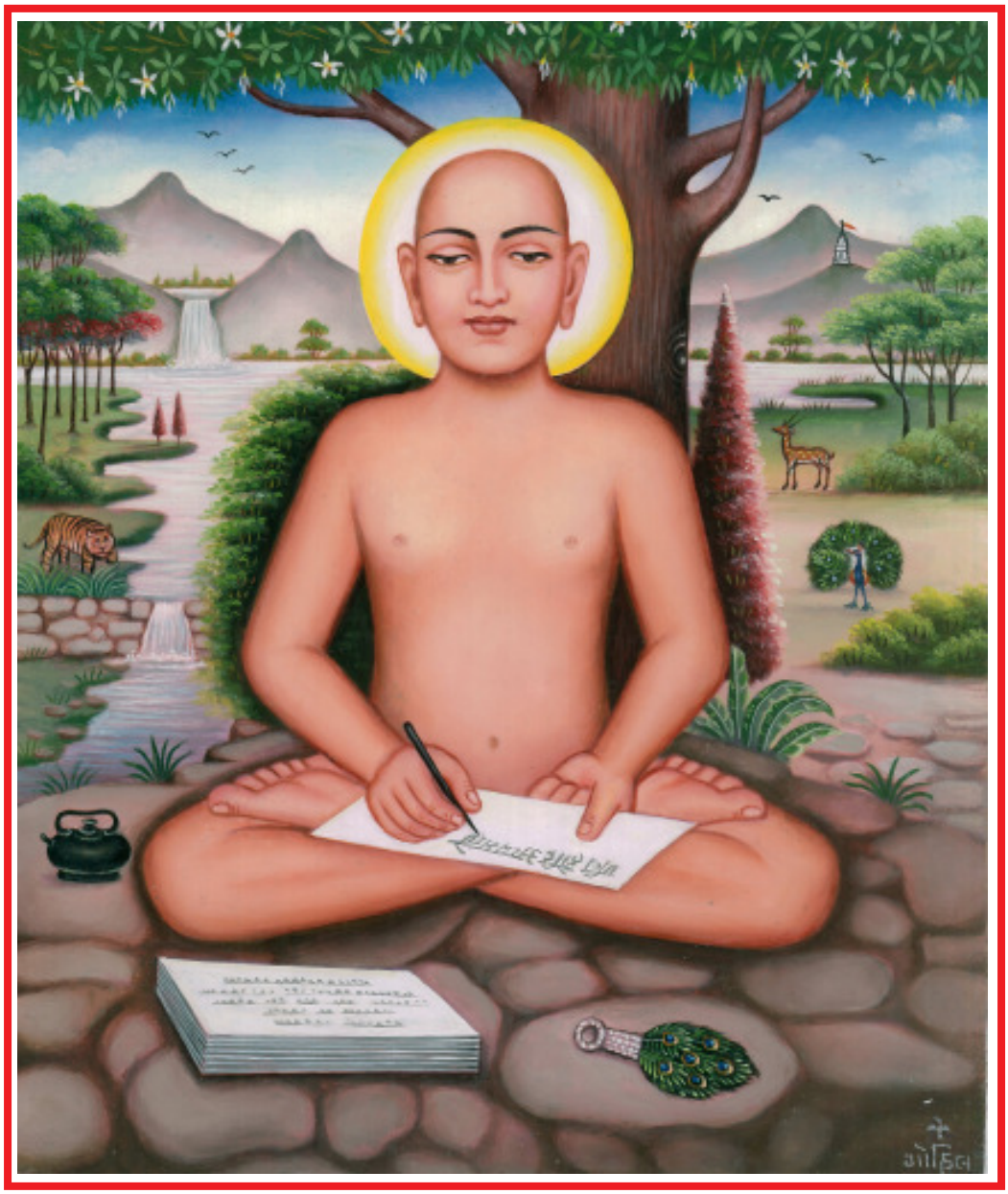

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्म युगस्त्रष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(सम्पूर्ण जीवनदर्शन, संक्षिप्त में)

ऐवा ए कलिकालमां जगतनां कंई पुण्य बाकी हतां,
जिज्ञासु हृदयो हतां तलसतां सद्वस्तुने भेटवा;
ऐवा कंईक प्रभावथी गगनथी ओ क्हान! तुं ऊतरे,
अंधारे डूबतां अखंड सत्ने तुं प्राणवंतुं करे।

वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकरदेव के पूर्व के भोगभूमि के एक भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की इनकी काललब्धि पकने पर आकाश में से दो-दो मुनिराज उतरते हैं। अन्तिम तीर्थंकरदेव के पूर्व के सिंह के भव में, सम्यक्त्वप्राप्ति की उनकी काललब्धि पकने पर, आकाश में से दो-दो मुनिराज घोर जंगल में उतरते हैं। उपादान तैयार होने पर मानो कि निमित्त को स्वयं उपस्थित होना पड़ता है-इस न्याय से, लाखों भव्य जीवों की तत्त्वजिज्ञासा-तृप्ति का काल पकने पर, सीमन्धर सभा में देशना का श्रवण-पान करके स्वर्ग जाने को सक्षम ऐसे राजकुमार का जीव, मानो कि भवीजन भाग्यवश अपना मार्ग बदलकर गगन में से यहाँ भरतभूमि में उतरा!

भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा समुपदिष्ठ तथा आचार्य शिरोमणि श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव आदि निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्तों द्वारा शास्त्र में सुरक्षित वीतरागमार्ग जब रूढ़िगत साम्प्रदायिकता की देहाश्रित बाह्यक्रिया और अध्यात्म तत्त्वज्ञान शून्य भक्तिमार्ग के अन्धकार में डूब रहा था, ऐसे इस कलिकाल में वीतरागमार्ग के अखण्ड सत् को प्रवर्तन करने के लिये भारतदेश के गुजरात राज्य में भावनगर जिला के उमराला गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा के गर्भ से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज दिनांक 21-04-1890, रविवार को प्रात: सबेरे तेजस्वी कहान सूर्य का उदय हुआ।

सात वर्ष की उम्र में पाठशाला में लौकिक शिक्षा ग्रहण करना शुरु किया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि प्रतिभा, मधुर भाषीपना, शान्तस्वभाव, गम्भीर मुखमुद्रा तथा स्वयं करने का स्वभाव होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों में तथा विद्यार्थियों में प्रिय हो गये। विद्यालय में तथा जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था परन्तु विद्यालय के लौकिक अभ्यास से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और गहरे-गहरे ऐसा लगता था कि मैं जिसकी शोध में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में मातुश्री के अवसान से पिताजी के साथ पालेज जाना हुआ। चार वर्ष पश्चात् पिताजी का स्वर्गवास होने पर सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यापार में संलग्न हुए।

व्यापार की प्रवृत्ति के समय भी वे किंचित् भी अप्रमाणिकता चला नहीं लेते थे। सत्यनिष्ठ, नीतिमत्ता, निखालिसता, और निर्दोषता से उनका व्यवहारिक जीवन सुगन्धित था; इसके साथ ही उनका आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध की ओर ही था। दुकान में भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते। वैरागीचित्तवाले कहान कुँवर रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते, तब उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते, जिसके फलस्वरूप सत्रह वर्ष की उम्र में उज्ज्वल भविष्य की सूचना करता बारह लाईन का काव्य — 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' की रचना की थी।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि के आहार-पानी तथा अथाणा (अचार) का त्याग किया था। सत्य की शोध के लिये दीक्षा लेने के भाव से बाईस वर्ष की युवावय से दुकान का परित्याग किया और गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया था। पश्चात् चौबीस वर्ष की उम्र में (विक्रम संवत् 1970) जन्मनगरी उमराला में लगभग 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय के वैरागी साधु हीराजी महाराज के समीप दीक्षा अंगीकार की थी। दीक्षा के समय हाथी पर बैठने जाते हुए धोती फटने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक गुरुवर को शंका हो जाती है कि कुछ गलत हो रहा है।

दीक्षा लेने के पश्चात् सत्य के शोधक इस महात्मा ने स्थानकवासी तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में ही पूरा किया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चाएँ चलीं—कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र तो प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व के संस्कार के बल से उन्होंने दृढ़तापूर्वक सिंह-गर्जना की कि 'जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म और पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुलटे पुरुषार्थ से नाश करता है।'

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन उद्धार का और लाखों मुमुक्षुओं के महान् पुण्योदय सूचक एक मंगलकारी पवित्र प्रसंग बना :

बत्तीस वर्ष की उम्र में विधि की किसी धन्य पल में दामनगर में दामोदर सेठ द्वारा श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित समयसार नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के कर-कमल में आया और उसका अध्ययन तथा चिन्तवन करते-करते पूर्व के संस्कार के बल से अन्तर में आनन्द और उल्लास उमड़ने से इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — 'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली

पड़ी हुई परिणति ने निज घर देखा अर्थात् आपश्री को वैशाख कृष्ण आठ के दिन सम्यग्दर्शन हुआ।

विक्रम संवत् 1982 के चातुर्मास से पूर्व राजकोट में श्री दामोदरभाई लाखाणी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को प्रदान किया। जिसे पढ़ने से स्वयं के हृदय की अनेक बातों का समर्थन इस ग्रन्थ में से प्राप्त हो जाने से वे उसके वाँचन में इतने ओतप्रोत हो जाते थे कि उस समय उन्हें खाना-पीना और सोना भी नहीं रुचता था। तत्पश्चात् अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेश कुछ ऐसी स्थिति उन्हें असह्य हो गयी; इसलिए अन्तर में बहुत मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय छोड़ने का निर्णय किया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थल की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में 1991 के फाल्गुन कृष्ण पंचमी के दिन निवास किया और महावीर जन्मकल्याणक के दिन (विक्रम संवत् 1991, चैत्र शुक्ल तेरह) दोपहर सवा बजे भगवान पार्श्वनाथ के फोटो के समक्ष सम्प्रदाय के चिह्न मुँहपत्ती का त्याग किया और घोषित किया कि — 'अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं, मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।' सिंह समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने, पैंतालीस वर्ष की उम्र में अन्तर में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

'स्टार ऑफ इण्डिया' में सवा तीन वर्ष दौरान जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान अत्यन्त छोटा पड़ने लगा; इसलिए भक्तों ने इन परम प्रतापी सत्पुरुष के लिये निवास और प्रवचन का मकान 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1994 के वैशाख कृष्ण आठ के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह 'स्वाध्यायमन्दिर' जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीर शासन की प्रभावना का केन्द्र बना रहा।

यहाँ दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे-बड़े लगभग 183 ग्रन्थों का गहराई से अभ्यास किया। उनमें से 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये; जिसमें समयसार पर तो 19 बार अध्यात्म वर्षा की थी। प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय संग्रह, अष्टपाहुड, परमात्मप्रकाश, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी अनेक बार प्रवचन किये।

विक्रम संवत् 1981 में गडढ़ा में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य शान्ताबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1985 में वढ़वाण में पन्द्रह वर्ष की उम्र में पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को पूज्य गुरुदेवश्री के प्रथम दर्शन और प्रवचन श्रवण का लाभ प्राप्त हुआ। विक्रम संवत् 1986 में वींछिया में पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन और प्रवचन श्रवण के

लिये दोनों बहिनों को जाना होने पर वहाँ प्रथम बार दोनों बहिनों का परिचय हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री ने परिवर्तन करने के पश्चात् सोनगढ़ में दोनों बहिनों ने साथ में रहना शुरु करके जीवनपर्यन्त साथ रहकर पूज्य गुरुदेवश्री की देशना द्वारा अपनी-अपनी आत्मसाधना करते रहकर शासन की अत्यन्त भक्तिपूर्वक सेवा की थी। गुरुशासन-प्रभावना में दोनों बहिनों का उल्लेखनीय विशेष योगदान रहा था।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 के फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन श्री नानालालभाई इत्यादि जसाणी भाईयों के योगदान द्वारा नवनिर्मित श्री दिगम्बर जिन मन्दिर में कहानगुरु के मंगल हस्त से श्री सीमन्धरादि भगवन्तों की पंचकल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर जिन मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही देखने को मिलते थे। ऐसे क्षेत्र में गुरुदेवश्री की पावन प्रेरणा से प्रथम जिन मन्दिर निर्मित हुआ। प्रतिदिन दोपहर प्रवचन के पश्चात् जिन मन्दिर में आधे घण्टे भक्ति में जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे। बहुत बार आपश्री अति भाववाही भक्तिपान कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धिपूर्वक का था।

विक्रम संवत् 1997 में दिगम्बर जैन समाज के तत्कालीन प्रमुख दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज, श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके सोनगढ़ पधारे; पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन सुनकर तथा तत्त्वचर्चा करके इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने गुरुदेवश्री को लक्ष्य करके कहा कि — 'तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं जाते; यहाँ कुछ ऐसा योग है-ऐसा हमें लगता है।'—अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री भविष्य में तीर्थंकर होंगे—ऐसा दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख आचार्य को लगा था।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों-मुनिवरों तथा आत्मानुभवी पण्डितवर्यों के ग्रन्थों, पण्डित श्री हिम्मतभाई जे. शाह के गुजराती में अनुवादित श्री समयसारादि परमागम और पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर प्रवचनों की पुस्तकें प्रकाशित करने का कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943) से शुरु हुआ। उस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहरा रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने हम सब पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश देश-विदेश के समस्त मुमुक्षुओं को नियमित प्राप्त होता रहे, इस हेतु से सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के मगसर (दिसम्बर 1943) महीने से 'आत्मधर्म' नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

के स्थापक आध्यप्रमुख मुरब्बी श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी के सम्पादन तले प्रारम्भ हुआ। आज भी आत्मधर्म गुजराती तथा हिन्दी भाषा में नियमितरूप से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्ध करता हुआ 'श्री सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' सितम्बर 1950 से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभूतिविभूषित इन चैतन्य विहारी महापुरुष की मंगल वाणी पढ़कर तथा सुनकर हजारों स्थानकवासी, श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैन धर्म के अनुयायी हुए। अरे... मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का सिंचन हो इस हेतु से सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वी सन् 1941) के मई महीने से गर्मी का बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षणवर्ग शुरु हुआ। बड़ों के लिये प्रौढ़ शिक्षणवर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने में प्रारम्भ किया गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री की देशना का सामर्थ्य प्रसिद्ध करता एक प्रसंग ईस्वी सन् 1946 में बना। अजमेर निवासी श्री निहालचन्द्रभाई सोगानी सोनगढ़ आये और प्रथम बार ही पूज्य गुरुदेवश्री के दर्शन का लाभ सम्प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनकर रात भर आत्म मन्थन करते-करते प्रात: काल अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव प्राप्त करके जैन जगत को प्रतीति करायी कि यदि तुम्हारा पुरुषार्थ और गुरु के प्रति अर्पणता गाढ़ हो तो इन महापुरुष की देशना इतनी प्रखर है कि इनका एक ही प्रवचन-श्रवण भव्यजीवों के भवान्त का प्रबल निमित्त बनने की सामर्थ्य रखता है।

विक्रम संवत् 2003 में निर्मित भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचनमण्डप के शिलान्यास प्रसंग पर इन्दौर के सर सेठ हुकमचन्दजी, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अत्यन्त अहोभाव से बोले थे कि 'आपके पास मोक्ष जाने का सीधा रास्ता है।'

विक्रम संवत् 2003 में पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल छत्रछाया में 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद' का तीसरा अधिवेशन पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी (बनारस) की अध्यक्षता में आयोजित किया गया था, जिसमें दिगम्बर जैन समाज के सुप्रसिद्ध बत्तीस विद्वानों ने लाभ लिया था। पूज्य गुरुदेवश्री की देशना से प्रभावित होकर उन्होंने सर्व सम्मति से एक विशाल प्रस्ताव पारित किया था जिसमें स्पष्टरूप से उल्लेख किया गया कि '....भगवान कुन्दकुन्द की वाणी समझकर महाराजश्री ने मात्र स्वयं को ही पहचान है—ऐसा नहीं परन्तु हजारों-लाखों मनुष्यों को एक जीवन उद्धार के सत्यमार्ग पर चलने का उपाय दर्शा दिया है.....'

दिगम्बर जैन समाज के मूर्धन्य पण्डितश्री कैलाशचन्द्रजी ने अपनी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री की विशेषता दर्शाते हुए लिखा कि यदि कानजीस्वामी इस युग में न हुए

होते तो हमारे लिये समयसार ग्रन्थ मात्र दर्शनीय रह जाता अर्थात् पूज्य गुरुदेवश्री के कारण समयसार जैसे ग्रन्थ का स्वयं को अभ्यास करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। फिर से उसी पत्रिका के सम्पादकीय लेख में पूज्य गुरुदेवश्री का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा कि कानजीस्वामी निमित्त को नहीं मानते, ऐसा नहीं है लेकिन वे निमित्त से कुछ नहीं होता है – ऐसा मानते हैं। इस प्रकार मूल दिगम्बर सम्प्रदाय में भी समयसार स्वाध्याय युग सृजक पूज्य गुरुदेवश्री की प्रतिभा प्रसिद्धि को प्राप्त हुई थी।

लाडनूँ निवासी श्री रतनलाल गंगवाल के पिताश्री बच्छराजजी, पूज्य गुरुदेवश्री की महिमा सुनकर सोनगढ़ आये; अत्यन्त प्रभावित होकर उन्होंने पूज्य बहिनश्री बेन की छत्रछाया में बालब्रह्मचारी बहिनों के आवास के लिये 'श्री गोगीदेवी दिगम्बर जैन श्राविका ब्रह्मचर्याश्रम' का विक्रम संवत् 2008 में निर्माण किया।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित श्री समयसारादि पाँचों परमागम संगमरमर में उत्कीर्ण करके 'श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर' का उद्घाटन विक्रम संवत् 2030 में सोनगढ़ में छब्बीस हजार भक्तों की उपस्थिति में श्री साहू शान्तिप्रसादजी के हस्त से हुआ था।

ट्रस्टी श्री नेमिचन्दजी पाटनी (आगरा) के सफल संचालन में श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त विक्रम संवत् 2013 (ईस्वी सन् 1957) तथा विक्रम संवत् 2023 (ईस्वी सन् 1967) में — इस तरह दो बार समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मंगल विहार हुआ था। इसी प्रकार विक्रम संवत् 2015 (ईस्वी सन् 1959) और विक्रम संवत् 2020 (ईस्वी सन् 1964) में — इस तरह दो बार दक्षिण और मध्य भारत में मंगल विहार हुआ था। इस मंगल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासु जीवों ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये और आपश्री की भवान्तकारी अमृतमयी वाणी सुनकर अनेक भव्यजीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। फलस्वरूप भारत भर में महती धर्म प्रभावना हुई और सोनगढ़ के इन सन्त के प्रति लोगों में श्रद्धाभक्ति का उत्साह जागृत हो उठा। यात्रा के दौरान अनेक स्थानों से लगभग 80 अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये।

पौने छह महीने की 800 मुमुक्षु यात्रियों के साथ निकली हुई विक्रम संवत् 2013 की श्री सम्मेदशिखरजी की प्रथम यात्रा के समय ईसरी आश्रम में दिगम्बर जैन समाज के अनेक प्रसिद्ध विद्वानों की उपस्थिति में क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णीजी के साथ पूज्य गुरुदेवश्री की वात्सल्यता भरी बातचीत हुई; तब वर्णीजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि 'स्वामीजी की प्रसन्न मुद्रा मुझे बहुत पसन्द आयी और मुझे ऐसा लगा कि इस आत्मा के द्वारा समाज का कल्याण होगा।' तत्पश्चात् मधुवन (शिखरजी) में अनेक दिगम्बर मुनियों, विद्वानों, वर्णीजी सहित अनेक त्यागियों

और पाँच हजार से अधिक श्रोतागण के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन श्रवण से प्रभावित होकर सैकड़ों पण्डितों के विद्यापति पण्डित बंशीधरजी (इन्दौर) ने हिम्मतपूर्वक स्पष्ट प्रसिद्ध किया कि '.....आपकी वाणी में तीर्थंकरों का और कुन्दकुन्दस्वामी का ही हृदय है।' भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन-सत्समागम से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे अपनी रूढ़िगत मान्यता छोड़कर पूज्य गुरुदेवश्री के अनुयायी बन गये।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले तथा कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों का रहस्योद्घाटन करनेवाले इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को श्री नवनीतभाई झबेरी की दीर्घ दृष्टि के कारण श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा ईस्वी सन् 1959 से नवम्बर 1980 तक टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षितरूप से उपलब्ध हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में ही भारत भर में- विशेषरूप से हिन्दी समाज में तथा नैरोबी, लन्दन, स्वीटजरलैण्ड, हांगकांग, अमेरिका, केनाड़ा आदि विदेशों में अगणित संख्या में टेप रील तथा कैसेटों से ट्रस्ट के कैसेट विभाग द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों का मुमुक्षुओं ने लाभ प्राप्त किया था। हाल में सी.डी. युग शुरु होने पर स्वर्गीय शान्तिलाल रतिलाल शाह के परिवार द्वारा यह मंगलवाणी देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है, यह ऐसा प्रसिद्ध करती है कि भरतक्षेत्र के भव्य जीवों को पंचम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

दशलक्षण पर्यूषण पर्व के दौरान भारतभर में अनेक स्थलों से पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिये प्रवचनकार भेजे जाते हैं। पर्यूषण में सर्व प्रथम बाहर गाँव-राजधानी दिल्ली में-वाँचन करने के लिये सोनगढ़ से खीमचन्दभाई सेठ गये थे। वे तथा श्री लालचन्दभाई मोदी (राजकोट) और श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' (कोटा), पूज्य गुरुदेवश्री की सूक्ष्म तत्त्व प्ररूपणा का प्रचार करनेवाले अग्रेसर वक्ताओं में थे / हैं। प्रवचनकारों को भेजने की इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में जागृति आयी थी और आज भी देश-विदेश में पर्यूषण पर्व में सैंकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतराग वाणी का डंका बजाते हैं। डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के निर्देशन में नये-नये विद्वान तैयार करने के लिये श्री पूरणचन्दजी गोदिका द्वारा आचार्यकल्प पण्डित श्री टोडरमलजी की स्मृतिरूप से जयपुर में श्री टोडरमल स्मारक भवन का ईस्वी सन् 1967 में निर्माण हुआ, जिसका उद्घाटन पूज्य गुरुदेवश्री की मंगल उपस्थिति में आपश्री

के आशीर्वाद से हुआ था। नये प्रवचनकार विद्वानों को प्रवचन पद्धति के लिये प्रशिक्षित करने के लिये प्रतिवर्ष प्रशिक्षण वर्ग जयपुर से प्रारम्भ किया गया था। उत्तर गुजरात तथा हिन्दी प्रान्त में पूज्य गुरुदेवश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में पण्डित श्री बाबूभाई फतेपुरवाले का विशेष योगदान रहा था।

भगवान श्री महावीरस्वामी के पश्चात् इस युग में जब बौद्ध सम्प्रदाय का बहुत प्रभाव था, तब समर्थ आचार्यश्री अकलंकदेव ने तत्कालीन प्रमुख बौद्ध आचार्य के साथ वाद-विवाद करके उनकी पराजय करने से जैन समाज में जय-जयकार हुआ था; इसी प्रकार अक्टूबर 1963 में खानियां (जयपुर) में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के प्रखर पण्डितों और कानजीस्वामी के अनुयायीरूप से प्रसिद्ध पण्डित श्री फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री के बीच कितने ही दिनों तक लिखित प्रश्नोत्तर द्वारा तत्त्वचर्चा होने पर, पण्डित श्री फूलचन्दजी द्वारा उन पण्डितों की रूढ़िगत मान्यताओं का शास्त्रों के आधार द्वारा पराजय होने से पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त भावविभोर होकर जैनदर्शन के सत्यमार्ग की विजय सम्बन्धी पण्डित फूलचन्दजी के लिये अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि — पण्डित फूलचन्दजी ने बहुत काम किया है, बहुत मेहनत की है। शास्त्र से आधार देकर बराबर सच्ची श्रद्धा को टिका रखा है। ऐसा यह एक पण्डित निकला! शास्त्र के पण्डितरूप से पढ़कर स्व-आश्रय और पर-आश्रय इस बोल को टिका रखा; बहुत जोरदार बात है। हजारों बोल ओहो...हो...! बहुत ज्ञान है। अभी चलता यह पन्थ-विपन्थ, उसमें यह बात बाहर रखना! बहुत हिम्मत की है। इस ऐतिहासिक प्रसंग में पूज्य गुरुदेवश्री की अत्यन्त भावविभोर प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर भक्त रोमांचित हो गये थे।

जन्म-मरण से रहित होने के सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्य विहारी पुरुष के मंगलकारी जन्मोत्सव मनाने की शुरुआत 59 वें वर्ष से हुई। 75 वीं हीरक जयन्ती के प्रसंग पर समस्त भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित 800 पृष्ठ का एक सजिल्द अभिनन्दन ग्रन्थ इन भावी तीर्थाधिनाथ को भारत सरकार के तत्कालीन मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में मुम्बई में अर्पण हुआ था। योगानुयोग थोड़े ही दिनों में वे भारत के प्रधानमन्त्री बने थे।

विक्रम संवत् 2037 के कार्तिक कृष्ण सात, दिनांक 28-11-1980, शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष देहादि का लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तर्ध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज ज्ञायक में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने भरतक्षेत्र में से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। जैसे नव पल्लवित

वटवृक्ष शुरुआत में स्वयं अपनी विशालता को समृद्ध करता हुआ विशालकाय बन जाने के बाद, उसमें से अनेक वटवृक्षों का नवसृजन करता है, इसी प्रकार सोनगढ़ के इन सन्त ने शुरुआत में स्वयंभूरूप से अध्यात्मयुग का नवसृजन किया और उनकी विशाल प्रभावना छाया में देश-विदेश में—जयपुर, देवलाली, अलीगढ़, दिल्ली, गाँधीनगर, सोनागिर, बांसवाड़ा, इन्दौर, द्रोणागिर, नागपुर, गजपंथा, कोटा इत्यादि तथा नैरोबी, लन्दन, अमेरिका इत्यादि क्षेत्रों में-स्थापित संस्थाओं द्वारा आपश्री ने प्ररूपित तत्त्वज्ञान के प्रचार द्वारा आपश्री द्वारा नवसृजित अध्यात्मयुग को युग के अन्त तक टिका रखने का भी आपके पुण्य प्रताप से बना है। इस प्रकार आपश्री वीतरागी शासन को प्राणवन्त करते गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग के एक महान और असाधारण व्यक्ति थे। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से बहुत दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से आत्मसात भी किया।

श्री वीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् इन धारावाही 45 वर्षों का समय (वीर संवत् 2061 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980।) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्ण काल था। जो कोई मुमुक्षु अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी जाते थे, उन्हें तो वहाँ चतुर्थकाल का ही अनुभव होता था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वी सन् 1980 दौरान पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के निर्देशन में तथा पूज्य शान्ताबेन के भक्ति उल्लासपूर्ण संचालन में सौराष्ट्र-गुजरात उपरान्त भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में-इस प्रकार कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मंगल प्रतिष्ठा इन धर्मयुगस्रष्टा सत्पुरुष के करकमल द्वारा हुई थी।

आपश्री की अध्यात्मदेशना के प्रभाव से श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर, श्री समवसरण मन्दिर, श्री मानस्तम्भजी, श्री महावीर कुन्दकुन्द परमागममन्दिर, श्री पंचमेरु-नन्दिश्वर जिनालय जैसे जिनायतनों के निर्माण से आज स्वर्णपुरी जैनजगत में आत्मसाधना का तीर्थधाम बन गया है और निकट भविष्य में 41 फीट की भगवान श्री बाहुबली के खड्गासन जिनबिम्ब की तथा जम्बूद्वीप के अनेक जिनबिम्बों की स्थापना होने पर पूज्य गुरुदेवश्री की साधनाभूमि स्वर्णपुरी आकर्षक अजायबीरूप से विश्व के नक्शे में स्थान प्राप्त करेगी।

इन विदेहदशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्जवल था, उतना बाह्य जीवन भी पवित्र था। पवित्रता और पुण्य का सहजयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही देखने को मिलता है। उनकी अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत सम्भाषण, करुण और सुकोमल हृदय उनके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव थे। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तन और

स्वाध्याय, यही उनका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति वे हमेशा सतर्क और सावधान थे। वे जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित, मात्र अपनी ही साधना में तत्पर रहे। भावलिंगी मुनियों के वे परम उपासक थे।

स्वयं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती साधक होने पर भी उनका जीवन-व्यवहार और परिणाम की स्थिति अत्यन्त उच्चकोटि की थी। तीर्थंकर का द्रव्य होने से जगत के जीव आत्मकल्याण को प्राप्त करें-ऐसी करुणा वर्तती होने से 91 वें वर्ष में भी गाँव-गाँव में विहार करके भव्यजीवों की तत्त्व जिज्ञासा शान्त करते थे, तथापि वे इतने निस्पृही थे कि उन्होंने कभी भी किसी को भी जिनमन्दिर बनाओ या स्वाध्यायमन्दिर बनाओ, ऐसा कहना तो दूर रहा, संकेत तक नहीं किया था।

जीवों के आत्मकल्याण की करुणा होने पर भी इतने निर्ममत्वी थे कि कभी किसी को भी पूछा नहीं था कि तुम रोज स्वाध्याय करते हो न?

कोई व्यक्ति जीवनपर्यन्त तत्त्वज्ञान न समझने से पूज्य गुरुदेवश्री का विरोध करता हो और उस व्यक्ति को अपने अज्ञान के लिये पश्चाताप होने पर पूज्य गुरुदेवश्री से क्षमा याचना करता हो, तब पूज्य गुरुदेवश्री को शर्म... शर्म... अनुभव में आती थी और कहते थे कि भूल जाओ... भूल जाओ... भगवान ने भी अपने भूतकाल में भूल करने में कुछ बाकी नहीं रखा था। तुम भगवान हो-ऐसा हम देखते हैं और तुम भगवानरूप से देखो-ऐसी तो निर्मानता थी।

तत्त्वविरोध के कारण दैनिक पत्र में और पत्रिका में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति अनुचित लेख छपें तो भक्त उनका विरोध करनेवाले हों तो आपश्री कहते है कि भाई! हमारा कोई विरोधी नहीं है। कोई हमारा विरोध नहीं करता, हम किसी को विरोधी नहीं देखते, हम तो सबको भगवानरूप से देखते हैं। चाहे जैसा लेख लिखकर विरोध करनेवाला भी यदि प्रवचन सुनने आता हो तो उसे सभा में आगे बैठने बुलाते और प्रवचन में वात्सल्यभाव से उसे सम्बोधित करते। पूरे जीवन दौरान किसी भी व्यक्ति ने कैसा भी विरोध किया हो, वह भी यदि एक बार पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-सत्समागम में आता तो वह जीवन भर उनका अनुयायी बन जाता। क्षमावाणी के दिन प्रवचन सभा में प्रसिद्धरूप से कहते कि किसी जीव को हमारे द्वारा पर्यायदृष्टि से देख लिया गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं। सब जीव भगवान हैं - ऐसी तो उनकी करुणामय क्षमा भावना थी।

जीवन में निस्परिग्रही तो ऐसे कि पैंतालीस-पैंतालीस वर्षों तक स्वाध्यायमन्दिर के एक ही कमरे में रहे कि जहाँ जिनवाणी-स्वाध्याय के लिये एक बैठक, सोने के लिये एक गद्देवाली बैंच और त्यागी को योग्य मात्र चार जोड़ी कपड़े! और स्वाध्याय के लिये सैकड़ों शास्त्रों से भरी हुई अलमारियाँ!!

देश और दुनिया में क्या हो रहा है, यह जानने का कौतुहल नहीं होने से कभी भी न्यूज पेपर तक पढ़ा नहीं था।

रसना के अलोलुपी-नि:स्वादी तो इतने कि जीवनभर कभी भी दो-तीन सब्जी के अतिरिक्त न तो कोई सब्जी चखी थी, मूँग की दाल के सिवाय न तो कोई दाल या कढ़ी चखी थी, न तो कोई चटनी, मिर्च चखी थी, न तो कोई मिठाई या फरसाण अथवा मुखवास चखा था। मानो कि कोई त्यागी-व्रती हो, वैसा उनका जीवन था।

करुणाशीलता का सागर होने पर भी, तत्त्व में इतने निर्भीक और सत्यमार्ग प्रवक्ता थे कि किसी भी लौकिक महानुभाव का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता था। एक प्रतिष्ठित श्रेष्ठी तथा एक त्यागी व्रती द्वारा उद्दिष्ठ भोजन सम्बन्धी कुछ स्वयं कहने सम्बन्धी पूज्य गुरुदेवश्री को संकेत किया जाने पर आपश्री ने बहुत स्पष्टरूप से कहा कि अपने लिये बनाया हुआ आहार—उद्दिष्ट भोजन—प्राण जाये तो भी मुनिराज नहीं लेते। देशकाल के नाम से सर्वज्ञ कथित शुद्ध आम्नाय का उल्लंघन कैसे किया जाये? विक्रम संवत् 1994 में स्वाध्यायमन्दिर के उद्घाटन प्रसंग पर भावनगर के महाराजा श्री कृष्णकुमारसिंहजी (देश के प्रथम राज्यपाल-मद्रास के) सोनगढ़ आये; उन्हें आपश्री ने प्रवचन में कहा कि थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी, बड़ा माँगे वह बड़ा भिखारी-वर्ष में पाँच हजार चाहिए हो, वह छोटा भिखारी और पाँच लाख चाहिए हो, वह बड़ा भिखारी! श्रीमद् राजचन्द्रजी को अपने धर्मगुरु माननेवाले राष्ट्रपिता गाँधीजी विक्रम संवत् 1995 में राजकोट में प्रवचन में आये। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी तत्त्व की मस्ती में कहा कि मैं दूसरे की सेवा कर सकता हूँ - ऐसा माननेवाला मूढ़ है। यह बात गाँधीजी को इतनी अधिक स्पर्श कर गयी कि कितने ही वर्षों के बाद उन्होंने किसी से पूछा कि मुझे मूढ़ कहनेवाले महाराज अभी कहाँ विचरते हैं?

गुण प्रशंसक तो इतने कि किसी ने भी शासन सम्बन्धी प्रशंसनीय कार्य किया हो - चाहे वह अपना शिष्य भले हो तो भी उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे।

- ऐसी अनेक उच्चकोटि की परिणति और अध्यात्म तत्त्वज्ञान से भरपूर उपदेश के सुसंगम के कारण प्रथम परिचय में ही श्रोता उनके प्रति भावविभोर बनकर उनके अनुयायी बन जाते थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन अनुभूति विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से, सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा, युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से समझाया था। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान का स्वपरप्रकाशकपना इत्यादि समस्त आपश्री के परम प्रताप से इस

काल में सत्यरूप से बाहर आये थे। 'सैंकड़ों शास्त्रों के हमारे मन्थन का यह सार अन्दर से आया है।' — इस 'क्रमबद्धपर्याय' के शंखनाद द्वारा आपश्री ने जैन जगत को आन्दोलित किया। जैसे श्री समयसार का स्मरण करे तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना नहीं रहता; इसी प्रकार क्रमबद्धपर्याय शब्द कान में पड़े तो कानजीस्वामी का स्मरण हुए बिना रहना असम्भव है। आज देश-विदेश में लाखों जीव मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं, यह आपश्री का ही परम प्रताप है।

करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति, सम्यग्ज्ञानविभूषित इन महात्मा की महिमा का वर्णन शब्दातीत है; मात्र अहोभाव से अनुभवगम्य है।

'तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर! तू परमात्मा है-ऐसा निर्णय कर!' — ऐसा महामन्त्र मुमुक्षुओं को देकर, भक्तों को भगवान बनने की प्रेरणा करनेवाले इन महापुरुष ने प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पन्थ जगत् में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थंकर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासनस्तम्भ श्री कहान गुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!

भवभीरु भव्यात्मा के भव का अभाव करनेवाले सत्पुरुष का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!

हे ज्ञान पोषक सुमेघ तुझे नमूँ मैं
इस दास के जीवनशिल्पी तुझे नमूँ मैं॥

- जीतूभाई नागरदास मोदी, सोनगढ़

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
०१	११-०८-१९७५	गाथा-३८	००१
०२	१२-०८-१९७५	गाथा-३८, कलश-५४	०१८
०३	१३-०८-१९७५	गाथा-३९, कलश-५४	०३५
०४	१४-०८-१९७५	गाथा-३९, कलश-५५	०५०
०५	१५-०८-१९७५	गाथा-४०	०६८
०६	१६-०८-१९७५	गाथा-४०, कलश-५६	०८६
०७	१७-०८-१९७५	गाथा-४१, कलश-५६-५७	१०४
०८	१८-०८-१९७५	गाथा-४१	१२३
०९	१९-०८-१९७५	गाथा-४१	१४१
१०	२०-०८-१९७५	गाथा-४१-४२, कलश-५८-५९	१५८
११	२१-०८-१९७५	गाथा-४२, कलश-६०	१७९
१२	२२-०८-१९७५	गाथा-४३, कलश-६०-६१	१९६
१३	२३-०८-१९७५	गाथा-४३	२१४
१४	२४-०८-१९७५	गाथा-४३	२३१
१५	२५-०८-१९७५	गाथा-४३, कलश-६२	२४८
१६	२६-०८-१९७५	कलश-६३ से ६५	२६५
१७	२७-०८-१९७५	कलश-६६ से ६८	२८४
१८	२८-०८-१९७५	गाथा-४४, कलश-६८	३०१
१९	२९-०८-१९७५	गाथा-४४	३१८
२०	३०-०८-१९७५	गाथा-४४-४५, कलश-६९	३३५

२१	३१-०८-१९७५	गाथा-४५-४६	३५४
२२	०१-०९-१९७५	गाथा-४७, कलश-७०	३७२
२३	०२-०९-१९७५	गाथा-४७-४८, कलश-७१	३८९
२४	०३-०९-१९७५	गाथा-४८-४९, कलश-७२	४०६
२५	०४-०९-१९७५	गाथा-४९-५०, कलश-७३	४२३
२६	०५-०९-१९७५	गाथा-५०	४४१
२७	०६-०९-१९७५	गाथा-५१ से ५५, कलश-७४	४५४
२८	०७-०९-१९७५	गाथा-५१ से ५५	४७५
२९	०८-०९-१९७५	गाथा-५१ से ५५, कलश-७५	४९१

ॐ

श्री परमात्मने नमः

ब्रह्मोपदेश

भाग - 1

परमपूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम पर
अध्यात्मयुग प्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
1975 के **शुद्धभाव अधिकार** पर शब्दशः प्रवचन

शुद्धभाव अधिकार

श्रावण शुक्ल ५, सोमवार, दिनांक ११-०८-१९७५
गाथा - ३८, प्रवचन - १

नियमसार का अर्थ यहाँ मोक्ष का मार्ग। नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। भूल गये वापस, हिन्दी (लेने का) है। नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जो आत्मा के आश्रय से होते हैं, वह पर्याय है, पर्याय है। उस पर्याय को यहाँ नियमसार कहा जाता है। तो अधिकार तीसरा है—शुद्धभाव अधिकार। शुद्धभाव अधिकार कहने में आता है। शुद्धभाव अधिकार कहने में आता है। इसकी व्याख्या। यह आत्मा जो भगवानस्वरूप त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द है, यह आत्मा का त्रिकाली ज्ञायकभाव परमस्वभावभाव जो है, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा गया है। पर्याय के शुभ, अशुभ, शुद्ध, वह नहीं। समझ में आया? यह सुनो तो सही। वहाँ वह कमाने में पूरी जिन्दगी बितायी, वहीं और वही पाप में और पाप में। यह सुनने को मिला नहीं। वहीं का वहीं है ऐडन या अन्यत्र गये वापस? आ गये? कहाँ? मुम्बई? ठीक। बहुत तो आ जाते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ३८

अब शुद्धभाव अधिकार कहा जाता है।

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो ॥३८॥

हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है॥३८॥

अन्वयार्थः—[जीवादिबहिस्तत्त्वं] जीवादि बाह्यतत्त्व [हेयम्] हेय हैं; [कर्म्मोपाधिसमुद्भवगुणपर्यायैः] कर्मोपाधिजनित गुणपर्यायों से [व्यतिरिक्तः] व्यतिरिक्त [आत्मा] आत्मा [आत्मनः] आत्मा को [उपादेयम्] उपादेय है।

टीकाः—यह हेय और उपादेयतत्त्व के स्वरूप का कथन है।

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है। सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि[१] है, परद्रव्य से जो पराङ्मुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है, जो परम जिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। औदयिक आदि चार भावान्तरों[२] को अगोचर होने से जो (कारणपरमात्मा) द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों रहित है तथा अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है। अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।

गाथा - ३८ पर प्रवचन

अब कहते हैं, **अब शुद्धभाव अधिकार कहा जाता है।** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य

१. शिखामणि=शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न।

२. भावान्तर=अन्य भाव। (औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक — ये चार भाव परम-पारिणामिकभाव से अन्य होने के कारण, उन्हें भावान्तर कहा है। परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है — ऐसा कारणपरमात्मा इन चार भावान्तरों को अगोचर है।)

कहते हैं। तो शुद्धभाव (अर्थात् क्या) ? जो पर्याय में शुभ, अशुभ और शुद्ध होते हैं, वह नहीं। पर्याय समझते हो ? पर्याय नाम भी सुना न हो वहाँ। परन्तु सुनो तो सही धीरे-धीरे जरा। पर्याय अर्थात् अवस्था होती है अवस्था। वस्तु है न, (उसकी) वर्तमान की अवस्था तो वह अवस्था जो पर्याय है, उस पर्याय में तीन प्रकार के भाव होते हैं — एक पापभाव, अशुभ, एक पुण्यभाव शुभ, एक शुद्धभाव धर्म। यह बात यहाँ नहीं। यह तो शुद्ध जो त्रिकाली ज्ञायकभाव है, (उसका अधिकार है)। आहाहा!

एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में ध्रुव-ध्रुव जो तत्त्व है '**उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्**' आता है न पाठ तत्त्वार्थसूत्र में, तो '**उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्**' इसमें से जो उत्पाद-व्यय है, वह दशा का-अवस्था का नाम हैऔर इसके अतिरिक्त कायम रहनेवाली चीज़ जो अन्दर है, उसे ध्रुव कहते हैं। बदलते, पलटते परिणाम को उत्पाद-व्यय कहते हैं। नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पुरानी अवस्था का व्यय होता है। वह उत्पाद-व्यय में जाता है, वह पर्याय में है और त्रिकाली जो ध्रुवभाव है, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा गया है। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्रुवपने को ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव ही शुद्ध त्रिकाली वस्तु शुद्ध शुद्ध शुद्ध कन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। आहाहा! जैसे शकरकन्द होता है न (गुजराती में) शक्करिया कहते हैं न ? यह शकरकन्द नहीं होता ? शकरकन्द कहते हैं न ? वह शकरकन्द नहीं आता ? उसकी ऊपर की लाल छाल होती है, उस छाल का विचार न करके अन्दर में जो माल पड़ा है, अकेला मीठा आनन्दकन्द है। आनन्द वहाँ (मुम्बई में) नहीं। आनन्द तो यहाँ आ गया। वहाँ मिठास भरी हुई है अकेली। शकरकन्द होता है, ब्रह्मचारीजी ! शकरकन्द नहीं होता ? उसकी जो लाल छाल है, उसे लक्ष्य में न लो तो अन्दर में अकेला मिठास का पिण्ड पड़ा है। समझ में आया ? इसी प्रकार भगवान आत्मा... यह तो शुद्धभाव अधिकार अलौकिक अधिकार है ! आहाहा!

कहते हैं कि अपनी पर्याय में जो शुद्धभाव निर्मल दशा होती है और शुभभाव, पुण्यभाव होता है और अशुभभाव पाप होता है, उन सबको यहाँ पर्याय कहकर हेय

बतलाना है। आहाहा! शुद्धभाव नाम है, उसका स्पष्टीकरण किया। शुद्धभाव पर्याय की बात नहीं यहाँ। जिसमें से शुद्धभाव प्रगट होता है, उसकी बात है। आहाहा! एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में ध्रुवस्वरूप, ध्रुव आनन्द का कन्द प्रभु, जिसमें उत्पाद-व्यय की पर्याय का भी अभाव है, आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन वह पर्याय है, परन्तु उसका विषय जो है, वह तो ध्रुव शुद्धभाव त्रिकाली विषय है उसका। आहाहा! तो कहते हैं कि यह भाव हम कहेंगे। गाथा (३८)।

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो ॥३८॥

नीचे हरिगीत।

हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है॥३८॥

यह तो मक्खन की चीज़ है। जैन सिद्धान्त का सार जो आत्मा शुद्धात्मा त्रिकाल वह कैसा है?

टीका:—यह हेय और उपादेयतत्त्व के स्वरूप का कथन है। पाठ ऐसा लिया है। पाठ में ऐसा है न? **'हेयमुवादेयम'** टीका में दूसरे प्रकार से लेंगे। क्या कहते हैं, समझ में आया? **यह, हेय...** छोड़नेयोग्य क्या और उपादेय-आदरनेयोग्य क्या, उसका कथन इसमें है। दृष्टि में से जिसे छोड़ना है, वह क्या? वह हेय है और दृष्टि का विषय जो त्रिकाल ध्रुव है, वह उपादेय है। सम्यग्दृष्टि को त्रिकाली ध्रुवस्वभाव ही उपादेय है। आहाहा! पाठ में ऐसा है न, इसलिए टीका में ऐसा शब्द लिया है। फिर उसकी टीका में दूसरा लिया। हेय है, ऐसा नहीं कहकर 'उपादेय नहीं', ऐसा कहेंगे। समझ में आया? हेय अर्थात् छोड़नेयोग्य क्या? और आदरनेयोग्य क्या? ऐसा उसमें स्वरूप का कथन है।

अब हेय की व्याख्या करते हैं। **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में...** हेय है, ऐसा न कहकर **उपादेय नहीं।** ऐसा (कहा)। **जीवादि सात तत्त्वों...** अर्थात् कि जीव की पर्याय जो है, वह जीवतत्त्व और अजीव है, वह भी पर्याय

के भाव में अजीव का ज्ञान होता है, इसलिए वह अजीव है और पुण्य-पाप के भाव जो हैं, वह आस्रवभाव है, वह उपादेय नहीं। पाठ में हेय कहा है। टीका में अध्यात्म की बात लेते हुए वह उपादेय नहीं। क्या? कि जो पर्याय में जीव का अंश है, एक समय की दशा और उसमें जो हेय पुण्य और पाप का भाव... आहाहा! वह पर्याय है, वह उपादेय नहीं। फिर उसमें जो संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय होती है, वह भी उपादेय नहीं।

मुमुक्षु : तो अब उपादेय क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपोदय क्या, अब बाद में कहेंगे। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ....

मुमुक्षु : मोक्ष उपादेय?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मोक्ष एक समय की पर्याय है। वह नाशवान है। एक समय रहती है, वह दूसरे समय नहीं रहती। समझ में आया? आहाहा! मार्ग, बापू! प्रभु! यह तो मार्ग वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर की इन्द्रों और गणधरों के बीच समवसरण में ऐसी दिव्यध्वनि आती थी। वह दिव्यध्वनि कुन्दकुन्दाचार्य सुनने गये थे। सीमन्धर भगवान के पास (गये थे) प्रभु विराजते हैं। महाविदेह में तीर्थंकररूप से, केवलज्ञानरूप से सर्वज्ञ प्रभु विराजते हैं। संवत् ४९ में भी ये ही भगवान थे, अभी भी ये ही हैं और अभी अरबों वर्षों तक ये ही रहेंगे। क्योंकि वे अरिहन्तपद में हैं। यहाँ के जो चौबीस तीर्थंकर आदि हुए, वे वर्तमान में सिद्धपद में है। पहले पद में नहीं, सिद्धपद में हैं, णमो सिद्धाणं में हैं और भगवान विराजते हैं, वे णमो अरिहंताणं पद में हैं। तो दिव्यध्वनि आती है वहाँ।

यह कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ से आठ दिन वहाँ गये थे। आहाहा! साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि सुनी और वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाये। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं कि **जीवादि सात तत्त्वों...** सात क्यों कहे? कि एक आस्रव लिया है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। आस्रव में पुण्य-पाप आ गये। उन्हें भिन्न नहीं करके सात कहे। जीव की एक समय की पर्याय वह व्यवहार जीव और अजीव की ज्ञान की पर्याय, वह भी एक समय की पर्याय और आस्रव शुभ और अशुभभाव—

दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय के भाव—दोनों भाव आस्रव हैं। तो यह आस्रव पर्याय में है। और इसके अभावरूप जब संवर-निर्जरा होती है; शुद्ध चैतन्यघन जो द्रव्यस्वभाव, उसे उपादेय करके पर्याय में संवर धर्म की पर्याय, मोक्ष के मार्ग की पर्याय, निर्जरा की पर्याय शुद्ध की। संवर में शुद्धि की उत्पत्ति, निर्जरा में शुद्धि की वृद्धि की उत्पत्ति और मोक्ष में शुद्धि की पूर्णता की उत्पत्ति। समझ में आया? आहाहा! तो कहते हैं कि यह संवर, निर्जरा और मोक्ष बहिर्तत्त्व है, यह अन्तःतत्त्व नहीं। आहाहा! पर्याय में है न? प्रगट पर्याय में है। केवलज्ञान, सिद्धदशा प्रगट पर्याय में है तो उसे यहाँ बहिर्तत्त्व कहा है। आहाहा! समझ में आया? यह तो तुम्हारी हिन्दी भाषा है तो बातें चलती हैं। बहुत हिन्दी हमको नहीं आती, परन्तु साधारण-साधारण (आती है)। आहाहा!

जीवादि सात तत्त्वों... अर्थात् उसमें संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी आ गयी। उसे यहाँ **तत्त्वों का समूह...** जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष, वह पर्याय का समूह **परद्रव्य होने के कारण...** क्योंकि वह कायम एकरूप रहनेवाली चीज़ नहीं है। केवलज्ञान भी परद्रव्य है। पर्याय (है इसलिए)। आहाहा! समझ में आया? भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर के श्रीमुख से दिव्यध्वनि जो आयी, उसमें से सुनकर आचार्य ने यह शास्त्र बनाया है। आहाहा! तो कहते हैं कि **जीवादि सात तत्त्वों...** है तो तत्त्व। आस्रव भी तत्त्व है। भाव है न? और संवर, निर्जरा और मोक्ष भी है तत्त्व, एक समय की पर्यायरूप तत्त्व है। आहाहा! है। यह **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** पाठ में है न?

'**जीवादिबहित्तच्चं**' मूल पाठ में पहला पद है। जीवादि बहिर्तत्त्व। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो बहिर्तत्त्व बाह्य ही है, वे आत्मा में हैं नहीं और वे आत्मा की चीज़ है नहीं, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि जो पर्याय में, अवस्था में, पलटती दशा में, उत्पाद-व्यय की दशा में जो सात तत्त्व का समूह अर्थात् एक समय की पर्याय, संवर, निर्जरा, मोक्ष, आस्रव और बन्ध, यह सात तत्त्व का समूह परद्रव्य है। आहाहा! संवर, निर्जरा, मोक्ष को परद्रव्य क्यों कहा? कि जैसे परद्रव्य में से अपनी नयी

पर्याय नहीं आती है, शरीर, वाणी, कर्म में से नयी पर्याय आती है ? इसी प्रकार अपनी पर्याय में से भी नयी पर्याय नहीं आती है। संवर की पर्याय में से नयी संवर की पर्याय नहीं आती। केवलज्ञान की पर्याय में से नयी केवलज्ञान की पर्याय नहीं आती। आहाहा! समझ में आया ? छह लड़के तो कहीं रह गये। बहुत दूर ? यहाँ जमीन तो ली है तुमने लड़कों के लिये, नहीं ? ऐसा सुना है। कोई कहे ३६ हजार की जमीन ली। यह मकान तो है। फिर जमीन ली लड़के के लिये। करे तब सही। करे तो यहाँ रहना पड़े न वापस उसमें। आहाहा!

प्रभु कहते हैं, एक बार सुन तो सही, प्रभु! प्रभु, प्रभु को कहते हैं। आत्मा को भगवानरूप से बुलाया है। ७२ गाथा समयसार। समयसार की ७२वीं गाथा है न! ७० और २। ७२ कहते हैं न ? उसमें कहा है कि पुण्य और पाप के भाव अशुचि हैं, मैल हैं, अचेतन हैं, दुःख है, आहाहा! फिर से। शुभ और अशुभभाव जो पर्याय में हैं, वे अशुचि हैं, मैल हैं। आहाहा! और दुःख है और शुभ-अशुभभाव, वह अचेतन है। ऐसा कहकर फिर लिया कि भगवान आत्मा... यहाँ तो बहुत बार चला है, भगवान आत्मा विज्ञानघन है। समझ में आया ? भाई! उसमें आज बहुत आया है जैन गजट में। 'नहीं, शुभभाव धर्मध्यान है, हेय नहीं। कितने ही हेय कहते हैं, वह झूठ है।' यहाँ की बात। उसे ऐसा बैठा हो तो क्या करे ?

मुमुक्षु : अपने में तो कथंचित् होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् बिल्कुल नहीं। कथंचित् का अर्थ ऐसा है कि अपनी पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। समझ में आया ? आहाहा! क्योंकि अपना आत्मा ध्रुव जो स्वरूप है और उसकी जो पर्याय है, उसकी पर्याय की सीमा में ही रहता है। वह पर्याय की सीमा छोड़कर पर में जाता है या पर को स्पर्श करता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? तो कहते हैं कि संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह पर्याय है और पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती है तो वह द्रव्य नहीं, वह परद्रव्य है। समझ में आया ? द्रव्य अर्थात् स्वचीज़ जो स्वचीज़ त्रिकाली है, वह द्रव्य नहीं। क्षणिक पर्याय है, वह परद्रव्य है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय को परद्रव्य कहा।

मुमुक्षु : क्षणिक होने के कारण से।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय है न, विनाशीक है। आहाहा! दुनिया पूरी जगत, शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत तो नाशवान है... आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा की पर्याय जो है संवर, निर्जरा और मोक्ष की, वह भी नाशवान है, कायम टिकनेवाली चीज़ वह नहीं। समझ में आया? आहाहा! एक लाईन में बहुत भरा है।

जीवादि सात... अर्थात् पुण्य, पाप को आस्रव में डाल दिया है। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध। भावबन्ध। भावबन्ध, हों! द्रव्यबन्ध की यहाँ बात नहीं। द्रव्यबन्ध तो अजीव, वह तो परचीज़ में गया। राग जो दया, दान का विकल्प उठता है, वह भावबन्ध है। भगवान अबन्धस्वरूप है। भगवान अर्थात् आत्मा को भगवान कहते हैं, हों! वापस, कोई... आहाहा! वह पर्याय शुभ-अशुभभाव, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव, भावबन्ध है। वह भावबन्ध की पर्याय उपादेय नहीं, हेय है—ऐसा कहा न! टीकाकार ने ऐसा लिया कि **वास्तव में उपादेय नहीं।** आहाहा! जिस भाव में महाव्रत का विकल्प उठे, जिस भाव में, वह भाव आदरणीय नहीं। आहाहा! जिस भाव में शुद्धि की उत्पत्ति हो और जिस भाव में शुद्धि की वृद्धि हो और जिस भाव में पर्याय में शुद्धि की पूर्णता हो, वह परद्रव्य है। आहाहा! मार्ग बापू! प्रभु! तेरा मार्ग (सूक्ष्म है)। भगवान साक्षात् भगवान स्वयं है। आहाहा!

कहते हैं,... धीरे-धीरे आती है बात। एकदम कोई वे प्रोफेसर बोल जाये, ऐसी कहीं यह बात नहीं। आहाहा! विचारने का समय भी साथ में रहे (कि) क्या कहते हैं और क्या है? आहाहा! कहते हैं कि जीव, अजीव पर्याय की बात। आस्रव पर्याय, बन्ध-भावबन्ध पर्याय। आहाहा! संवर, निर्जरा, मोक्ष, वह शुद्ध पर्याय। परन्तु वह भी यहाँ **तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण... होने के कारण...** ऐसा लिया है। **परद्रव्य होने के कारण...** आहाहा! **वास्तव में...** यथार्थ रीति से, वास्तविक रीति से वह **उपादेय नहीं।** समझ में आया? यहाँ मोक्ष का मार्ग बतलाना है नियमसार में। तो कहते हैं कि मार्ग उपादेय नहीं।

मुमुक्षु : त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव तो सब प्राणियों का एक जैसा है तो फिर मोक्ष क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न, परन्तु स्वीकार कहाँ है? है, उसका स्वीकार कहाँ है? है तो है। यह तो अभी प्रश्न हो गया था गत वर्ष में। वीरजीभाई कैसे कहलाते हैं वे? वारिया। वीरजीभाई का पुत्र है त्रिभुवनभाई, राजकोट में। वे वीरजी वकील थे। इस काठियावाड़ में दिगम्बर का अभ्यास पहले हो तो उनके पिताजी को वीरजीभाई को। काठियावाड़ में सब श्वेताम्बर है यहाँ। दिगम्बर शास्त्र का अभ्यास (उनको था)। वीरजीभाई वकील थे, ९२-९३ वर्ष में गुजर गये। उनके पुत्र ने यहाँ प्रश्न किया था कि महाराज! तुम कारणपरमात्मा कहते हो... सुनो! त्रिकाल वस्तु को कारणपरमात्मा कहते हो तो कारण हो तो कार्य आना चाहिए। समझ में आया? कारणपरमात्मा वह यहाँ आयेगा अभी। कारणपरमात्मा ध्रुव शुद्धभाव त्रिकाल और केवलज्ञानादि, वह कार्यपरमात्मा है। समझ में आया? तो यहाँ कहते हैं कि कारणपरमात्मा है तो कार्य क्यों नहीं आता? ऐसा प्रश्न किया। परन्तु भाई! कारणपरमात्मा तो है। उसका स्वीकार है अन्दर में? 'है' ऐसे स्वीकार बिना कारणपरमात्मा उसे कहाँ है? न्याय समझ में आया? आहाहा! आत्मा तो है।

यह छठवीं गाथा में कहा न? छठवीं गाथा, समयसार। यह आत्मा परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर अपने आत्मा की उपासना करे, उपासना, सेवा, आराधना, अपने आत्मा की सेवा, उपासना करे, उसे ही आत्मा शुद्ध है, ऐसा ख्याल में आया। शुद्ध है, परन्तु ख्याल में आये बिना शुद्ध किसे कहना? समझ में आया? आहाहा! यह सब अगम्यगम्य की बातें है। वहाँ तुम्हारे ऐडन-फेडन में नहीं और मुम्बई में भी नहीं वहाँ। कहो, समझ में आया? ऐसी बातें! ... कहते हैं, यह तो सब पागल है।

मुमुक्षु : यहाँ तो स्वीकार करनेवाली पर्याय को परद्रव्य कहने में आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! क्योंकि उस पर्याय में से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती और नयी पर्याय उत्पन्न होती है, भले केवलज्ञान हो, परन्तु उस केवलज्ञान की पर्याय में से दूसरी केवलज्ञान की पर्याय उसमें से उत्पन्न नहीं होती। केवलज्ञान की पर्याय एक समय रहती है, दूसरे समय दूसरा केवलज्ञान, वैसी, परन्तु वह नहीं। समझ में आया?

तो वह केवलज्ञान की पर्याय और संवर-निर्जरा की पर्याय की खान ध्रुव खान है वह तो, उसमें से आती है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, वह **परद्रव्य होने के कारण...** वापस भाषा टीका तो देखो! यह पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका की है। हैं न तीसरे? यह कुन्दकुन्दाचार्य हैं, यह अमृतचन्द्राचार्य। तीनों की है न? पद्मप्रभमलधारिदेव नग्न मुनि दिगम्बर साधु वनवास में रहते थे। मुनि तो वनवास में ही रहते थे। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि त्रिलोकनाथ परमात्मा तो ऐसा फरमाते हैं... आहाहा! उस एक समय की मोक्ष की पर्याय को परद्रव्य कहा। '**द्रवति इति द्रव्यं**' पर्याय द्रवे, उसे नयी पर्याय हो? तो त्रिकाली द्रव्य है, वह द्रवता है तो पर्याय नयी होती है। आहाहा! यह तो लॉजिक से तो न्याय समझ में आये ऐसी चीज़ है। ऐसी चीज़ नहीं कि ऐसा का ऐसा मान लेना। उसे अन्दर भाव का भासन होना चाहिए न कि इस प्रकार से है। तो कारणपरमात्मा तो है कहा। परन्तु है किसे? जिसने स्वसन्मुख होकर 'कारणपरमात्मा शुद्ध है, वह मैं हूँ' ऐसा स्वीकार करनेवाले को कार्यसम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहता। धर्मचन्दजी! आहाहा! समझ में आया? जिसे कारणपरमात्मा कहो, यह शुद्धभाव कहो, ध्रुवभाव कहो। आहाहा! यह है... यह है... ऐसा पर्याय में जब स्वीकार हुआ तो पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान का कार्य हो गया। समझ में आया? सुजानमलजी!

मुमुक्षु : गम्भीर बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गम्भीर है।

जीवादि सात तत्त्वों का समूह... समूह हुआ न? एक पर्याय नहीं, वह तो सात तत्त्व हुए संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि। वे **परद्रव्य होने के कारण...** आहाहा! क्योंकि उसमें से नयी पर्याय नहीं आती तो जैसे परद्रव्य में से नहीं आती तो पर्याय में से भी नहीं आती। इस कारण से उसे परद्रव्य कह दिया। आहाहा! समझ में आया? **वास्तव में उपादेय नहीं है।** वास्तव में मोक्ष की पर्याय केवलज्ञान की, वह भी उपादेय नहीं। वह अंगीकार, आदरणीय (करनेयोग्य) नहीं। क्योंकि केवलज्ञान की पर्याय सद्भूतव्यवहारनय का विषय है, (इसलिए) व्यवहार हुआ। आहाहा! समझ में आया? **जीवादि सात**

तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण... इस कारण से **वास्तव में उपादेय नहीं है।** पाठ में हेय कहा, टीकाकार ने उपादेय नहीं, (ऐसा कहा)। आहाहा! तब अब उपादेय कौन है धर्मी को? आहाहा! मुनि है न, तो मुनि अपनी बात करते हैं। बाकी तो सम्यग्दृष्टि की भी बात यह है। परन्तु मुनि अपनी बात करते हैं।

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,... मुनि ऐसे होते हैं। आहाहा! स्वाभाविक वैराग्यरूपी महल। महल समझते हो? उसके शिखर का शिखामणि। **शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न।** आहाहा! पूर्ण परमात्मा शुद्धभाव को उपादेय करनेवाला जीव कैसा है, ऐसा वर्णन करते हैं। मुनि से बात ली है। उन्हें तो सहज, पुण्य-पाप के विकल्प से भी जिन्हें वैराग्य वर्तता है। महाव्रत का विकल्प है, परन्तु उससे वैराग्य वर्तता है। आहाहा! सहज, स्वाभाविक **वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** आहाहा! **परद्रव्य से जो पराङ्मुख है,...** आहाहा! जो पर्याय आदि परद्रव्य से जिसकी दृष्टि पराङ्मुख है। आहाहा! यह तो ४१वाँ चातुर्मास चलता है। यह चातुर्मास ४१-४१ समझे? ४० और १। तो स्पष्टीकरण आना चाहिए या नहीं? ब्रह्मचारीजी! यह ४१वाँ चातुर्मास चलता है। ४० और १। यह परिवर्तन का। यहाँ गाँव में (परिवर्तन किया)। आहाहा! बाद में तो इसके तत्त्व की क्या चीज़ है, यह तो आना चाहिए न। क्या चीज़ है मूल चीज़?

भगवान अनन्त आनन्द का नाथ... आहाहा! वीतराग सहजानन्दस्वभाव की जो मूर्ति प्रभु ध्रुव, उसके अतिरिक्त पर्याय का भेद परद्रव्य होने से उपादेय नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी वह शुभभाव उपादेय (मनवाते हैं)। वह आज बड़ा (लेख) जैन गजट में आया है। शुभभाव धर्म है। धर्म करते-करते निश्चयधर्म होता है। व्यवहार भी धर्म है। अरे! आहाहा! क्या हुआ? जैनधर्म, वीतराग त्रिलोकनाथ....

मुमुक्षु : वाड बेल को खाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, ऐसे उपदेशक, पण्डित कहे। वाड बेल को खाये। बेल समझते हो? वाड होती है न वाड? उसमें बेल चढ़ती है। वाड खा जाये। वेलो समझते हो? बेल चढ़ती है। अन्दर प्रविष्ट हो तो खाय जाये। आहाहा!

यह कहा था न भाई एक बार, दामोदर सेठ का। स्थानकवासी साधु थे। श्रद्धा वेदान्त की थी। यह दामोदर सेठ थे गृहस्थ व्यक्ति। तब ६०-७० वर्ष पहले दस लाख रुपये। अब तो पैसे बहुत बढ़ गये। अब तो उनकी दस लाख की कुछ कीमत रही नहीं, परन्तु तब तो दस लाख ६०-७० वर्ष पहले। तो वे सेठिया थे तो बेचारे उन्हें श्रद्धा जैन की सही। दृष्टि सब विपरीत थी। परन्तु उसे वह सुधरा हुआ व्यक्ति देखकर,... घर में घोड़ा। घोड़ा बहुत। एक घोड़ा नहीं। घोड़ी, घोड़ा ऐसे अनेक पूरा घोड़ा घर भरा हुआ। बड़ा दरबार। उपाश्रय के सामने उनका मकान। हमारे वहाँ सम्प्रदाय का वह गाँव कहलाये। वहाँ चातुर्मास में बहुत रहे। तो उस दामोदर सेठ को सुधरा हुआ देखकर उसके एक मामा के घर में गये थे, जैतपुर। तो एक साधु को देखकर कहे यह सुधरा हुआ है। इसलिए उसे कहना लगा कि आत्मा तो एक ही है, वस्तु एक ही है। ऐसे... ऐसे... आहाहा! वह जाने कि यह सुधरा हुआ है न, इसलिए यह बात इसे बैठेगी। तो उसने कहा, अरे महाराज! वाड बेल को खाये। कहाँ जाना बेल को? तुम हमारे स्थानकवासी साधु नाम धराकर तुम वेदान्त को सिद्ध करते हो और जैन को उड़ा देते हो।

यहाँ कहते हैं कि भगवान! एक बार सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! जो सात तत्त्व का समूह वह पर्याय का पिण्ड, वह उपादेय नहीं। तो उपादेय क्या चीज़ है और कौन उपादेय उसे स्वीकारता है? कि **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** ऐसे जो सन्त। आहाहा! **परद्रव्य से जो पराङ्मुख है,...** आहाहा! जो धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि मुनि हो या सम्यग्दृष्टि हो, परद्रव्य से तो पराङ्मुख है। समझ में आया? उलटा है। **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** मुनि बात करते हैं न? पाँच इन्द्रियों का फैलाव नहीं। अणीन्द्रिय आत्मा का भान हो गया है। पाँच इन्द्रियों का फैलाव, उससे रहित **देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** शरीरमात्र परिग्रह होता है। मुनि को तो एक शरीरमात्र होता है। उसे वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं होता। सच्चे मुनि भावलिंगी की बात है, हों! वस्त्र छोड़कर नग्न हो जाये, इसलिए धर्मी है, ऐसा नहीं। यह तो सवेरे आया था। द्रव्यलिंग हो तो नग्नपना ही होता है, परन्तु नग्नपना धर्म का कारण है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

परद्रव्य से जो पराङ्मुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है, जो परम जिनयोगीश्वर हैं,... परमजिनयोगीश्वर। जिन्हें भगवान ध्रुवस्वरूप में परम चिद्—ज्ञान की पर्याय को जोड़ दिया है। राग से तोड़ दिया और स्वभाव में जोड़ दिया। आहाहा! समझ में आया? **परमजिनयोगीश्वर....** भाषा कितनी प्रयोग की! परम-जिन-योगी और ईश्वर। आहाहा! चौथे गुणस्थान में भी योगी तो है समकिती, परन्तु यह मुनि है, वे तो परमजिनयोगीश्वर हैं। समझ में आया? आहाहा!

स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—आहाहा! जिनकी वर्तमान बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण है कि स्वद्रव्य में जोड़ दी है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा का जहाँ बड़ा निधान पड़ा है, उसमें ज्ञान की पर्याय को जोड़ दिया है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि ने भी ज्ञान की पर्याय को त्रिकाल में ही जोड़ दिया है। परन्तु यह तो मुनि की व्याख्या (करते हुए) अपनी दशा की बात करते हैं और उपादेय क्या है, यह बतलाते हैं। **परम जिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—ऐसे आत्मा को...** ऐसे आत्मा को '**आत्मा**' **वास्तव में उपादेय है।** आहाहा! ऐसे आत्मा को निमित्त आदि उपादेय नहीं, राग, महाव्रत का विकल्प भी उपादेय नहीं, उन्हें संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय भी उपादेय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे आत्मा को 'आत्मा'... अर्थात् आत्मा को क्या कहा? पर्याय जिसने अन्तर में जोड़ दी है। पर से सहज वैराग्य हो गया है और अन्तर में जोड़ दिया है, ऐसे आत्मा को। ऐसे आत्मा को त्रिकाली आत्मा उपादेय है। समझ में आया? आहाहा! गजब ऐसा धर्म गजब भाई ऐसा (ऐसा कहते हैं)! यह करते हुए व्रत पालना, अपवास करना, तपस्या करना, मन्दिर बनाना (तो) धर्म हो जायेगा। धूल भी नहीं, सुन न!

मुमुक्षु : शास्त्र छपावें तो धर्म होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी धर्म नहीं शास्त्र छपावे तो। यह हिम्मतभाई ने बहुत शास्त्र लिखे हैं। तो धर्म है? वह तो विकल्प था। आहाहा! ऐई! रामजीभाई ने मोक्षशास्त्र आदि बहुत लिखा है संग्रह करके। शास्त्र आत्मा का होता ही नहीं। बात तो सच्ची है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सात तत्त्व की पर्याय का जो समूह, वह परद्रव्य होने के कारण आदरणीय नहीं, उपादेय नहीं। हेय कहा, तो उपादेय नहीं, ऐसा कहा। तब उपादेय कौन? धर्मी जीव को किसका आदर है? सम्यग्दृष्टि जीव को किसका आदर है? और सम्यग्दृष्टि कैसे हैं? कि राग से भिन्न हैं, देह से भिन्न हैं, सहज वैराग्य की उदासीन दशा है। आहाहा! मुनि है तो मुनि से बात की है। ऐसे आत्मा की दशा में त्रिकाली आत्मा उपादेय है। यह तो गम्भीर बात है। आहाहा! समझ में आया? रागवाला और दयावाला और निमित्तवाला, ऐसे जीव को यह उपादेय कहाँ आया? आहाहा!

मुमुक्षु : स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धिवाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आहाहा! भगवान पूर्ण शुद्ध ध्रुवभाव, जिसे यहाँ शुद्धभाव कहा, उसे यहाँ स्वद्रव्य कहा। शुद्धभाव अधिकार का पाठ चलता है, उसे यहाँ स्वद्रव्य कहा। आहाहा! परमस्वभावभाव ऐसी स्वद्रव्य वस्तु, उसमें जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है। आहाहा! प्रज्ञा—ज्ञान की छैनी से भिन्न पाड़कर द्रव्य की दृष्टि पकड़ी है। आहाहा! समझमें आया? जिसने अपनी पर्याय में पर से हटकर और पर्याय से भी हटकर। आहाहा! देखो, यह दिगम्बर सन्तों की शैली! आहाहा! अरे! ऐसी बात ऐसा शास्त्र है कहाँ! आहाहा!

कहते हैं, एक बार सुन तो सही, प्रभु! भगवानरूप से बुलाया न? ७२ गाथा में कहा। कहते हैं, जिसकी चित्तवृत्ति अर्थात् ज्ञान की परिणति वर्तमान दशा निर्मल है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय है, उस पर्याय को जिसने स्वद्रव्य में जोड़ दिया है। ऐसे **स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—**आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा! ऐसी बात, आहाहा! कैसे आत्मा को? कैसे आत्मा को स्वद्रव्य उपादेय है? आहाहा! जिसे पर से वैराग्य हो गया है और जिसकी दशा पर्याय त्रिकाल में जोड़ दी है, ऐसे आत्मा को यह उपादेय है। समझ में आया? आहाहा! केवलज्ञानी परमात्मा के दरबार में जिसे प्रविष्ट होना हो, उसकी तैयारी कितनी होनी चाहिए? चक्रवर्ती का राज हो। बैठे हों चक्रवर्ती दीवानखाना में तो मनुष्य कोई जाये, उसकी तैयारी कितनी होती है! समझ में आया? यहाँ भी यह जमींदार होते हैं न दरबार? तो उनकी रानी हो वहाँ जाये तो यह

नाई-हज्जाम जाये, दूसरे जाये तो ऐसे-वैसे सुथनी पहनी हो और खुल्ले ऐसे न जा सके। पछेड़ी बाँधे। समझ में आया? ऐसे शरीर खुल्ला हो तो पीछे का भाग जरा दिख जाये, कपड़ेसहित भले हो, तो वह अन्दर जाये तो उसे ऊपर पछेड़ी बाँधनी पड़े। पछेड़ी समझे? कपड़ा। कपड़ा पहना हुआ तो हो, परन्तु उसके ऊपर कपड़ा बाँधकर अन्दर जाना पड़े, ऐसे का ऐसा न जा सके। यहाँ है न हमारे यहाँ दरबार, लीमड़ी में है। समझ में आया? आहाहा! तो यहाँ तीन लोक के नाथ सौ इन्द्र जिनकी पूजा करे। कुत्ती के बच्चे—पिल्ले की भाँति समवसरण में इन्द्र सुने। अर्द्धलोक के स्वामी शकेन्द्र, अर्द्धलोक का स्वामी ईशान इन्द्र। दक्षिण। आहाहा! वह भगवान के निकट सुने। बाघ और सिंह जंगल में से जरर्र करते चले आवें। किसी को दुःख-कष्ट न दे। सभा में जाये। ऐसे फण मारकर सुने। सिंह केसरी, वह भी सैकड़ों सिंह जंगल में से चले आवें। ओहोहो! वह वाणी कैसी है! आहाहा! वह साधारण की हैसियत नहीं उसे पचाने की, बापू! उसे पचाने के लिये तैयारी चाहिए। समझ में आया?

एक रोटी पचाने का जठर है, मैसूर पचाने के लिये जठर दूसरा होना चाहिए। मैसूर समझे? मैसूर नहीं होता? क्या कहते हैं? मैसूरपाक। एक सेट आटा। लोट को क्या कहते हैं? आटा और चार सेर घी। चने का एक सेर आटा और चार सेर घी पिलाकर बनावे उसे मैसूर कहते हैं। तो पाचनशक्ति हुए बिना खा सके? रोटी पचे नहीं, वह मैसूर खा सके? और गेहूँ का एक सेर आटा और चार सेर घी पिलाकर बनावे, उसे शकरपारा कहते हैं। चने का एक सेर आटा, चार सेर घी पिलाये, उसे मैसूर कहते हैं और गेहूँ का एक सेर आटा और चार सेर घी पिलाकर बनावे, उसे शकरपारा कहते हैं। वह साधारण मनुष्य पचास सकेगा? बालक अभी उसकी माँ का दूध भी पचा सकता नहीं, उसे मैसूर का टुकड़ा दे? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि यह बात सुनने में भी इसकी बहुत पात्रता होनी चाहिए। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा की अमृत की वर्षा है। समझ में आया?

कहते हैं, **जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—ऐसे आत्मा को...** ऐसा। जिसकी बुद्धि में ठिकाना नहीं, उसे आत्मा उपादेय कहाँ से हो? आहाहा! जिसकी पर्याय पर से हट गयी

है और जिसकी पर्याय अपने द्रव्य की ओर झुक गयी है, ऐसे तीक्ष्ण बुद्धिवाले। आहाहा! ऐसे आत्मा को वह पर्याय की बात की। उस आत्मा को, यह पर्याय की बात है—ऐसे आत्मा को। आत्मा, यह ध्रुव। दूसरा शब्द ध्रुव में जाता है। पहला 'आत्मा को' (अर्थात्) ऐसी पर्यायवाला और दूसरा 'आत्मा', वह त्रिकाल। समझ में आया? ऐसा उपदेश कैसा! व्रत करना, पूजा करना, भक्ति करना, यात्रा (करना),.... सम्मेदशिखर 'एकबार वंदे जो कोई...' आता है या नहीं? 'नरक पशु न होय।' उसमें भला क्या हुआ? एक व्यक्ति कहता है कि उसकी यात्रा करे तो नरक-पशु नहीं होता, परन्तु वह तो एक भव में अच्छे परिणाम हों तो नरक-पशु नहीं होता। बाद में नरक में जायेगा, निगोद में जायेगा।

मुमुक्षु : यह तो भव के अभाव की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु है। वस्तु में भव और भव के भाव का अभाव है। भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव में भव का तो अभाव है, भव का कारण भाव का तो अभाव है, परन्तु जिसमें संवर-निर्जरा, मोक्ष (जिसने) भव का अभाव किया, उसका जिसमें अभाव है। समझ में आया?

ऐसे आत्मा को... ऐसा (आत्मा) अर्थात् कौन? **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है, परद्रव्य से जो पराङ्मुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित (देहमात्र जिसे परिग्रह है), जो परम जिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है**—आहाहा! टीका में अमृत बहाया है अमृत! आहाहा! श्रीमद् में आता है, 'जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त, समझाया उन पद नमूँ श्री सद्गुरु भगवंत रे गुणवंता ज्ञानी... अमृत वरस्या रे पंचम काल में।' 'जो स्वरूप समझे बिना पायो दुःख अनन्त, समझायो उन पद नमूँ श्री सद्गुरु भगवन्त।' स्वयं, हों! पहले समझे कहा था, बाद में समझाया कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : शब्द-शब्द में....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु तो एक-एक शब्द वाच्य को बतलाती है न! आहाहा! ऐसी धारा भगवान के त्रिलोकनाथ की वाणी वह वाणी इसमें आयी है। आहाहा!

ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। आहाहा! ऐसा-ऐसा कहे कि आत्मा उपादेय... आत्मा उपादेय... ऐसा नहीं। जिसे पर से वैरागय हो गया है, परद्रव्य से पराङ्मुख है, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि काम करती है। समझ में आया? आहाहा! ऐसे परम जिनयोगीश्वर, ऐसी पर्याय में दशा जिनकी है, उन्हें त्रिकाली द्रव्य उपादेय है। आहाहा! यह तो मुनि है तो मुनि से बात करते हैं, बाकी सम्यग्दृष्टि (भी) परद्रव्य से पराङ्मुख है, ज्ञान और वैराग्य शक्तिसहित है। आता है न निर्जरा में? अस्ति जो वस्तु पूर्ण है, उसका ज्ञान है और राग से हट गया है तो वैराग्य है। ज्ञान और वैराग्य शक्ति समकिती को होती ही है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी पर्याय में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि स्वद्रव्य में जोड़ दी है। आहाहा! ऐसे आत्मा को त्रिकाली जो यह शुद्धभाव, शुद्धभाव वह त्रिकाली यह आत्मा। इस शुद्धभाव को यहाँ आत्मा कहा। समझ में आया? आहाहा! उसे यह उपादेय है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ६, मंगलवार, दिनांक १२-०८-१९७५
गाथा - ३८, कलश-५४, प्रवचन - २

यह नियमसार, शुद्धभाव अधिकार। यह शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकभाव जो ध्रुव, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा गया है। पर्याय का शुद्धभाव और अशुद्धभाव; अशुद्ध के दो प्रकार शुभ-अशुभ, उनकी यहाँ बात नहीं है। जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, यह पहले कहा न! **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।** आहाहा! जीव की एक समय की पर्याय में आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ऐसे सात तत्त्व की पर्याय जो है, वह जीव अन्तरतत्त्व से वे बाह्यतत्त्व हैं। समझ में आया? सूक्ष्म भाव है। अन्तरतत्त्व, अन्तः अन्तरतत्त्व, इस अपेक्षा से पुण्य और पाप का विकल्प आस्रव; राग में रुकना, वह बन्ध और शुद्धि की उत्पत्ति होना, वह संवर; शुद्धि की वृद्धि होना, वह निर्जरा; शुद्धि की पूर्णता होना, वह मोक्ष, इन सबको बहिर्तत्त्व कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

बहिर्तत्त्व हेय है। क्यों? कि वह **परद्रव्य होने के कारण...** यह स्वद्रव्य ज्ञायक त्रिकाली नहीं। इस कारण से बहिर्तत्त्व को उपादेय कहने में नहीं आया। पाठ में हेय है, परन्तु उपादेय नहीं, ऐसा नास्ति से कहा। आहाहा! अब किसे उपादेय है? क्या उपादेय है? और किसे उपादेय है? समझ में आया? दो बातें हैं। क्या उपादेय है? और किसे उपादेय है? यह दो बातें एक साथ कहते हैं। आहाहा! कहते हैं कि जो वैराग्य के शिखर का शिखामणि पर से उदास, विकल्प से उदास। आहाहा! अन्तर में विकल्प से भी जो उदास है। आहाहा! और पदद्रव्य से पराङ्मुख है और पाँच इन्द्रिय का विस्तार, वहाँ अणीन्द्रिय ध्यान में रहता नहीं है। आहाहा!

और **परमजिनयोगीश्वर...** मुख्यरूप से मुनि लिये हैं न। **स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—** आहाहा! जिनकी स्वज्ञायकभाव परमस्वभाव के प्रति पकड़ने की

स्वद्रव्य के प्रति तीक्ष्ण बुद्धि है। आहाहा! **ऐसे आत्मा को...** ऐसे आत्मा को '**आत्मा**' **उपादेय है।** समझ में आया? आहाहा! जो विकल्पमात्र से हटकर, परद्रव्य से पराङ्मुख होकर स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि से जिसका काम करता है। आहाहा! ऐसे आत्मा को, **ऐसे आत्मा को...** उसकी परिणति ली है कि जिसमें विकल्प से रहित, परद्रव्य से पराङ्मुख, स्वद्रव्य में तीक्ष्णबुद्धि... आहाहा! प्रज्ञाछैनी कहते हैं न? ज्ञायकस्वभाव के प्रति तीक्ष्ण बुद्धि हुई पर से भिन्न करके। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे आत्मा को... ऐसी जिनके अन्तर में निर्विकल्प परिणति हुई है। आहाहा! **ऐसे आत्मा को 'आत्मा'....** वह परमस्वाभाविक वस्तु त्रिकाली। **ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** समझ में आया? यहाँ तक तो कल आया था।

औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से... आहाहा! कहते हैं कि उदयभाव दया, दान, भक्ति, व्रत आदि का विकल्प उठता है, वह उदयभाव है। उदयभाव से यह आत्मा अगम्य है। उससे गम्य हो सकता नहीं। आहाहा! यहाँ तो चारों ही भाव से अगम्य है, ऐसा कहा गया है। उदयभाव—दया, दान, व्रत का विकल्प, उससे गम्य नहीं, परन्तु उपशमभाव है, उससे गम्य नहीं। गम्य नहीं इसका अर्थ? उपशमभाव के आश्रय से गम्य नहीं होता। नहीं तो चैतन्य ज्ञायक त्रिकाली भाव तो क्षयोपशम, उपशम, क्षायिक की पर्याय से गम्य है। यहाँ जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी। यहाँ उदय से तो गम्य नहीं, परन्तु उपशमभाव, क्षयोपशम, क्षायिक से तो गम्य है। यहाँ तो इनकार करते हैं कि उनसे गम्य नहीं। इसका अर्थ कि पारिणामिकस्वभावभावरूपी आत्मा ज्ञायकभाव वह चार भाव के आश्रय से गम्य नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है तो उसके आश्रय से नहीं। उस पर्याय से तो गम्य है। अनुभव में गम्य है, वह तो पर्याय है न? वह तो क्षयोपशम, उपशम और क्षायिकदशा की पर्याय है। परन्तु उस पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं, ऐसा कहने में भावान्तर से गम्य नहीं, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? भाषा तो सादी आती है, भाव जरा भले ऊँचे हों। समझ में आया?

कहते हैं कि **औदयिक आदि चार भावान्तरों...** भावान्तर अर्थात् नीचे (फुटनोट में) लिखा है। **अन्य भाव।** किससे अन्य भाव? शुद्धभाव जो यहाँ कहा, ऐसा जो ज्ञायकभाव ध्रुव जो शुद्धभाव है, परमस्वभावभाव पारिणामिकभाव जो है, उससे ये चार भाव अन्य हैं। समझ में आया? आहाहा! **औदयिक आदि चार भावान्तरों...** भावान्तर— अन्य भाव जो ध्रुव नित्यानन्द प्रभु सहजानन्दस्वभाव की मूर्ति आत्मा जो परमपारिणामिक -स्वभावरूप ऐसे भाव से चार भाव अन्य हैं। आहाहा! समझ में आया? तो वह चार भवान्तरों को अगोचर। चार भाव से भगवान आत्मा गम्य नहीं, ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ यह कि चार भाव के आश्रय से गम्य नहीं। गम्य उपशम, क्षयोपशम से गम्य नहीं तो किस भाव से गम्य है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान में गम्य है, तो सम्यग्दर्शन क्षायिक हो, उपशम हो या क्षयोपशम हो, उससे तो गम्य है।

मुमुक्षु : उनके आश्रय से गम्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके आश्रय से गम्य नहीं।

औदयिक आदि चार भावान्तरों... ओहोहो! क्षायिकसमकित से भी गम्य नहीं, ऐसा कहने में आया है। इसका अर्थ कि क्षायिकसमकित के आश्रय से गम्य नहीं। परमस्वभावभाव के आश्रय से गम्य है। आहाहा! अरे! ऐसी बात परमात्मा की। तीन लोक का नाथ स्वयं परमात्मा है, साक्षात् भगवान की मूर्ति आत्मा है, अनन्त-अनन्त आनन्द के सागर से भरपूर प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसा आत्मा पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं। पर्याय से गम्य है, पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं। समझ में आया? चाहे तो क्षयोपशमभाव हो या क्षायिक हो या उपशम हो, उसके आश्रय से गम्य नहीं। उससे गम्य है, परन्तु उसके आश्रय से गम्य नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग तो देखो! ओहोहो!

अन्तर भगवान परमानन्द का नाथ पूर्णानन्दस्वरूप। 'जिन सो ही है आत्मा' जिन, वह आत्मा और आत्मा वह जिन। जिनेश्वर कहो या जिन कहो या आत्मा कहो, दोनों एक ही है। आहाहा! ऐसा भगवान जिनेश्वर प्रभु वीतरागमूर्ति परमस्वभावभाव ऐसे भाव से चार अन्य भाव पर्याय के भाव, उनके आश्रय से अनुभव नहीं होता, उनके

आश्रय से अनुभवगम्य नहीं होता। ब्रह्मचारीजी! आहाहा! एक बात।

दूसरी बात। ऐसे आत्मा को आत्मा ऐसा कहा न? तो जो आत्मा अन्दर स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि लगाकर, विकल्प से हटकर परिणति में आया है, उस परिणतिवाले को आत्मा उपादेय है। क्योंकि उपादेय उस समय उपादेय होता है। ऐसे धार रखे कि यह उपादेय है, वह तो विकल्प की धारणा है, वह (यथार्थ) चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिस समय में परद्रव्य से पराङ्मुख होकर, पर से हटकर, विकल्प से रहित निर्विकल्प वीतरागभाव में अन्तर में जाकर पकड़ता है, उस समय ऐसे आत्मा को उस समय उपादेय है, उस समय उपादेय है। आहाहा!

१४४ गाथा में कहा न, कर्ताकर्म (अधिकार, समयसार)। छठवीं गाथा में भी यह कहा है, यह तो कहा था न। परद्रव्य से हटकर स्व पूर्णानन्द के नाथ की सेवा की, उस समय उसे शुद्ध है, ऐसा मालूम पड़ा। एक बात! १४४ में ऐसा कहा कर्ताकर्म (अधिकार)। जिस समय में जिस काल में आत्मा श्रुतज्ञान का विकल्प जो आकुलता है, श्रुतज्ञान के नय जो पक्षपात के हैं, विकल्प जो उठता है, वह आकुलता है। वहाँ तो शुभविकल्प है। 'मैं ऐसा हूँ, ऐसा हूँ, शुद्ध हूँ, अमूढ हूँ, वेदनेयोग्य हूँ'—ऐसा जो विकल्प उठता है, वह तो शुभभाव है, परन्तु है आकुलता। वह आकुलता है। आहाहा! तो आकुलता द्वारा निराकुलता ज्ञात नहीं होती। ऐसा मार्ग भारी सूक्ष्म पड़े लोगों को। क्या हो? मार्ग यह है वहाँ। अनादि तीर्थंकर, जिनेन्द्रों ने यह मार्ग, राजमार्ग इन्द्रों के समक्ष में, गणधरों के समक्ष में कहा है। आहाहा! कहते हैं कि जब अन्दर आत्मा विकल्प से हटकर स्वरूप शुद्ध पूर्ण की प्रतीति, अनुभव करके करता है, उस समय वह आत्मा श्रद्धा योग्य हुआ, उस समय में आत्मा जाननेयोग्य हुआ। डाह्याभाई! १४४ में आता है न, भाई! १४४ (गाथा) कर्ताकर्म (अधिकार) में अन्तिम गाथा।

मुमुक्षु : क्या आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : १४४ देखो, **अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन, परमात्मारूप समयसार का जब आत्मा अनुभव करता है...** यहाँ तो गुजराती है, उसका हिन्दी। **उस समय...** उस समय, उस काल में, उस दशा में **उसी समय आत्मा सम्यक्रूप**

से दिखलायी देता है (अर्थात् श्रद्धा की जाती है)... आहाहा! **और ज्ञात होता है...** क्या कहा? यह तो बापू! अगम्यगम्य की बातें। आगम-निगम। आहाहा! लोग तो ऐसा कहे अलक-मलक की बातें। यह तो आगम-निगम की बात है। आहाहा! कहते हैं, यह पहले आया है, उसमें १४४ में। यह तो बहुत बार वाँचन हो गया है न। सत्रहबार तो सभा में वाँचन हो गया समयसार। देखो, **आकुलता उत्पन्न करनेवाली श्रुतज्ञान की बुद्धियों को भी मर्यादा में लाकर...** 'यह मैं ऐसा हूँ और मैं ऐसा अमूढ़ हूँ, प्रत्यक्ष होने के योग्य हूँ' ऐसा विकल्प जो है, वह आकुलता है। आहाहा! उस आकुलता को छोड़कर अन्तर स्वभाव के अनुभव के काल में वह आत्मा श्रद्धायोग्य हुआ, वह आत्मा उस काल में जाननेयोग्य हुआ। समझ में आया? उस काल में आत्मा उपादेय हुआ। धन्नालालजी! यह है देखो, **इसीलिए समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।** आहाहा!

यह तो अलौकिक परमात्मा साक्षात् प्रभु पूर्णानन्द का नाथ आत्मा है। जैसे जिनेश्वर है व्यक्तरूप से, वैसा आत्मा शक्तिरूप से ऐसा ही है। समझ में आया? आहाहा! जैसे जिनेश्वरदेव पर्याय में, अवस्था में व्यक्तरूप से पूर्णानन्द हैं, वैसा यह भगवान आत्मा शक्तिरूप से ऐसा ही है। उसके सामर्थ्य में इतना ही ऐसा है। ऐसा सामर्थ्यवान ईश्वर भगवान, वह विकल्प से रहित होकर, यहाँ वैराग्य लिया है, पर से वैराग्य करके स्वद्रव्य को तीक्ष्ण बुद्धि से पकड़ा, उस काल में वह आत्मा उस आत्मा को वह आत्मा उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा ही आत्मा उपादेय है, ऐसी विकल्प से धारणा करना, वह अलग चीज़ है। उसमें वह चीज़ नहीं आयी। वह तो विकल्प से निर्णय किया कि यह आत्मा त्रिकाली उपादेय है। परन्तु उपादेय है, आदरणीय है, उस ओर की दृष्टि हुए बिना आदरणीय हुआ कहाँ से? समझ में आया? आहाहा!

यह तो तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर ने (जो कहा), ऐसी कथनी इसमें आयी। आहाहा! उनको विकल्प तो था नहीं। समझ में आया? यह बात बहुत कही थी कि ऐसी ही भाषा क्यों आयी? कि पूर्व में वे भगवान तीर्थंकर अपने पूर्णानन्दस्वभाव के साधकरूप से परिणमते थे, तब ऐसा विकल्प आया कि मैं पूर्ण हो जाऊँ, मैं पूर्ण आश्रय कर लूँ। आत्मा का पूर्ण आश्रय करूँ और पूर्ण हो जाऊँ, ऐसा विकल्प आया, उसमें

कर्मबन्ध ऐसा हुआ कि उनकी वाणी में ऐसा ही कथन आता है। समझ में आया? उन्हें इच्छा कहाँ है करने की? परन्तु वह पूर्व में ऐसा विकल्प आया था कि 'मैं पूर्णानन्दस्वरूप हूँ, मैं पूर्णानन्द पर्याय में हो जाऊँ और पूर्णानन्द की प्राप्ति मैं कर लूँ...' आहाहा! ऐसा जो विकल्प, उस विकल्प में ऐसा पुण्य बँध गया कि पूर्णानन्द की प्राप्ति कैसे हो, वही वाणी उसमें से निकलती है। न्याय समझे? उन्हें इच्छा तो है नहीं। आहाहा!

यह तो हमारे तो सम्प्रदाय में बहुत बात चलती थी न। दामोदर सेठ थे। उनके साथ बहुत चलती थी। गृहस्थ व्यक्ति न, निवृत्ति बहुत। तब दस लाख रुपये। तब दस लाख। अभी तो यह करोड़ोंपति बहुत दिखते हैं अभी, परन्तु उनकी गिनती कुछ नहीं। यह २५-३० गुना भाव बदल गया है। उस समय के एक लाख और अभी के तीस लाख। उस समय के एक लाख और अभी के तीस लाख, इतने समान हैं। पैसे की कीमत घट गयी, दूसरी चीज़ की कीमत बढ़ गयी न? तो इसकी कीमत घट गयी। आहाहा! उस समय उनके साथ ऐसी चर्चा चलती थी। वे कहे कि सर्वज्ञ परमेश्वर हैं तो वे सर्वज्ञ तो जानते हैं कि दुनिया में इस समय में उसका कल्याण होगा या अकल्याण होगा। तो वह पुरुषार्थ करने का क्यों कहे? तो उससे कहा... उस समय की बात है, ८३ के वर्ष पहले।

जो तीर्थंकर थे, वे अपना स्वरूप पूर्णानन्द के अन्दर साधकरूप से परिणति से साधते थे, परन्तु अपूर्ण थे तो पूर्ण होने का विकल्प आया। विकल्प से पूर्ण नहीं होते। मोक्ष की इच्छा से मोक्ष नहीं होता, परन्तु जो विकल्प आया, उसमें तीर्थंकर प्रकृति का ऐसा पुण्य बँध गया कि उसके उदयकाल में पुरुषार्थ ... वाणी आती है उनकी। न्याय समझ में आता है? आहाहा! डाह्याभाई! आहाहा! वस्तु की ऐसी स्थिति है कि वाणी की ध्वनि—ॐ ध्वनि में ऐसा आता है। भगवान पूर्णानन्द तू है, स्वभाव-सन्मुख झुक जा। ऐसी वाणी, उस वाणी में इच्छा बिना (ऐसा आया)। केवलज्ञान में तो इच्छा है नहीं, परन्तु उस पूर्णानन्द को साधने के काल में जो विकल्प आया, उससे पुण्य बँध गया, उस पुण्य के बन्धन के काल में जब उदय आवे तो ऐसी ही वाणी निकलती है। न्याय समझ में आता है? यह लॉजिक-न्याय से समझना चाहिए न! ऐसा का ऐसा मान

ले, वह कोई चीज़ नहीं। उसका भावभासन होना चाहिए न। आहाहा! वह तो सर्वज्ञ है। तो ऐसा बोलूँ, ऐसा कहूँ, उसे उपदेश दूँ — ऐसा तो है नहीं। ॐ ध्वनि में ऐसी ध्वनि आती है। क्योंकि साधकरूप से पूर्णानन्द को साधने का विकल्प आया, तो वह पुण्यबन्ध ऐसा हो गया कि पूर्ण प्राप्ति कैसे हो, ऐसा ही उनका उपदेश आता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : भाषा .... दो प्रकार से....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी ही भाषा उनकी होती है। भाषा स्वतन्त्र स्व-परप्रकाशक है। आहाहा! स्व-परकथक शैली है उसमें। प्रकाशक आत्मा है स्व-पर का। वाणी स्व-परकथक शैली की शक्तिवाली है। उस वाणी में यह विकल्प पहले निमित्त था। आहाहा! तो उसमें ऐसा आया (कि) वह भगवान पूर्णानन्द है, उस ओर झुक जाओ और पूर्णानन्द की प्राप्ति करो। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं.... आहाहा! ऐसा आत्मा उपादेय वह दशा में है। आहाहा! जिस दशा में आत्मा से पर से पराङ्मुख होकर स्व के सन्मुख हुआ, स्व के सन्मुख होकर निर्विकल्प आनन्द का वेदन हुआ, उस काल में उस आत्मा को वह आत्मा उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसे (ऊपर-ऊपर से) माने कि मुझे उपादेय-उपादेय... आहाहा! तो वह चीज़ दृष्टि में आदरणीय तो हुई नहीं। आदर तो हुआ नहीं और आदरणीय है, ऐसा कहाँ से आया? समझ में आया? अपनी निर्मल वीतरागी पर्याय में पर से हटकर स्वभाव का सत्कार, आदर सन्मुख हुआ, तब उसे आदेय है, उपादेय है, ऐसा कहने में आया है। पण्डितजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! ऐसा मार्ग है।

वे बहुत कहते थे कि भाई! हमारे बहुत देना पड़ते हैं उनके शास्त्र में से, श्वेताम्बर शास्त्र में से। ऐसा कहा था एक बार ... ... आचारांग में एक टुकड़ा (वाक्यांश) है। आचारांग है श्वेताम्बर का। उसका पहला भाग है। हमने तो पहले सब कण्ठस्थ किया था न। छह हजार श्लोक कण्ठस्थ किये थे, छह हजार। ... सब आता था। तो उसमें एक शब्द ऐसा आया है कि भगवान ऐसा कहते हैं कि, हे जीव! ... हमारी आज्ञा

बाहर का यदि तू उद्यम करता है और हमारी आज्ञा में तू उद्यम नहीं करता, यह न हो। कहा, पुरुषार्थ आया या नहीं इसमें? यह पाँचवाँ अध्याय है। योगसार आचारांग का। कण्ठस्थ था न वह सब। उस समय एक टुकड़ा (वाक्यांश) कहा था। क्या कहते हैं यह कहा? सर्वज्ञ की यह वाणी है या किसकी है? उस समय तो ऐसा मानते थे न। आचारांग आदि। वह वाणी तो अज्ञानी की है। तो भी उसमें ऐसा आया है। श्वेताम्बर के शास्त्र भगवान के कहे हुए है नहीं। आहाहा! वह तो दृष्टि विपरीत हुई, पश्चात् शास्त्र रचे हैं। कठिन लगे भाई दूसरे को। पूरा सम्प्रदाय कल्पना से शास्त्र बनाकर सम्प्रदाय खड़ा हुआ है। समझ में आया? और यह जो शास्त्र है, वह तो अन्तर के अनुभव में से आया, ऐसी वाणी आयी, आत्मा का स्पर्श करके आयी है। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, दूसरे सम्प्रदाय को दुःख लगे। भाई! यह सत्य तो ऐसा है, भगवान! दुःख लगाने की बात नहीं। तेरे हित के लिये पंथ तो यह है। आहाहा! भाई! तुझे दुःख होगा, दूसरे रास्ते जाने से तेरी श्रद्धा में विपरीतता रहेगी, प्रभु! तू दुःखी होगा भाई! नरक और निगोद में दुःखी होगा, बापू! तेरी दया करके बात की है। आहाहा! थोड़ा दुःख भी सहन नहीं हो सकता, थोड़ा दुःख सहन हो सकता नहीं और बड़ा मिथ्यात्व का दुःख सहन करने के लिये तू खड़ा करता है। समझ में आया? आहाहा! हे माहो! भगवान ऐसा कहते हैं। उस रचना में जरा कुछ अमुक शैलीवाला था। बाकी तो मिथ्यादृष्टि था। आहाहा!

यह समयसार, प्रवचनसार! आहाहा! साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि का सार! समझ में आया? देखो न, क्या कहते हैं? आहाहा! परमपारिणामिकस्वभावभाव भगवान सहजरूप जिसे कर्म के निमित्त की भी अपेक्षा नहीं, जिसे कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं। उदयभाव में कर्म के निमित्त की अपेक्षा है। उपशम, क्षयोपशम में कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा है। तो यह अपेक्षित भाव हो गया। समझ में आया? आहाहा! यह तो जिसे अपेक्षा नहीं, ऐसा परमस्वभाव ज्ञायकभाव, परमनिरपेक्षभाव। आहाहा! अरे! यह माहात्म्य भगवान महा पिण्ड प्रभु, वह भगवान साक्षात् मूर्ति है। समझ में आया? आहाहा! अनन्त आनन्द, अनन्त वीतरागता, अनन्त स्थिरता, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, आहाहा! यह आत्मा। यह आत्मा पारिणामिकभाव के अतिरिक्त, सिवाय कहते हैं न? अलावा। **भावान्तरों को अगोचर होने से...** अगोचर

का अर्थ यह। यहाँ नीचे लिया न? **ये चार भाव परम-पारिणामिकभाव से अन्य होने के कारण, उन्हें भावान्तर कहा है।** चार को भावान्तर क्यों कहा है? कि अपना स्वभाव परमस्वभावभाव से वे चार भाव अन्य हैं, इस कारण से भावान्तर कहने में आया है। अलग है। आहाहा!

(कारणपरमात्मा) द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों रहित है... यह तीसरे पद का अर्थ किया। तीसरा पद है न? '**कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो।**' यह तो महा गम्भीर गाथा है। शुद्धभाव का अधिकार गाथा बहुत गम्भीर। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य आहाहा! साक्षात् पंचम काल के तीर्थंकर जैसा काम किया है उन्होंने और टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य ने गणधर जैसा काम किया है। आहाहा! यह पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका है। पद्मप्रभमलधारीदेव हैं न? यहाँ अमृतचन्द्राचार्य, यह कुन्दकुन्दाचार्य। कहते हैं... आहाहा! यह उपादेय कहा, वह चीज़ कैसी है? जो उपादेय काल में निर्विकल्पदशा के काल में ही उपादेय है। तो वह है कैसी अब? त्रिकाली वस्तु है कैसी? जो उपादेय दृष्टि में ज्ञान के अनुभव में आया। निर्विकल्प परिणति के काल में यह आत्मा उपादेय है, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहो, सुजानमलजी! ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

यह चार भावान्तर, परमपारिणामिकस्वभावभाव ध्रुवभाव नित्यानन्द प्रभु, वह परमपारिणामिकस्वभावभाव तो पर्याय के चार भाव, उन भावों से अन्य भाव है। आहाहा! वह द्रव्य का भाव है और ये पर्याय के भाव हैं। तो अन्य भाव से अगम्य है। इसका अर्थ कि अन्य भाव के आश्रय से ज्ञात नहीं होता। परमपारिणामिक प्रभु चार भाव के आश्रय से ज्ञात नहीं होता, उसका आश्रय करे तो ज्ञात होता है। डाह्याभाई! आहाहा! ऐसा धर्म का उपदेश! लोग इकट्ठे बहुत हों ऐसे। यह तो और सब जिज्ञासु होकर आये। उसमें तो दस-दस हजार लोग, बीस हजार इकट्ठे हों, लो! अब यह सुनना कठिन पड़े। आहाहा! बापू! मार्ग तो यह है। वस्तु की स्थिति प्राप्त करने की पद्धति तो यह है। बाकी सब बातें करे कि व्रत करो और तप करो और यह करो और भक्ति करो और देश सेवा

करो। धूल भी नहीं उसमें कुछ। कौन करे किसकी? समझ में आया? पर्याय की सेवा करने जाये तो राग होता है। अपनी (पर्याय की), हों! पर की तो कर सकता ही कहाँ है? आहाहा!

ऐसे **चार भावान्तरों को अगोचर होने से...** चार भावों के आश्रय से ज्ञात नहीं होता, ऐसा कारणपरमात्मा, ऐसा त्रिकाली ज्ञायकभाव कारणप्रभु **द्रव्यकर्म...** जड़ **भावकर्म,...** विकल्प। दया, दान, व्रतादि के विकल्प, वे भावकर्म **और नोकर्मरूप...** शरीर उन **उपाधि से जनित...** आहाहा! **विभावगुणपर्यायों रहित है,...** यह विभाव के गुणपर्यायें जो हैं, वास्तव में इन चार भावों को विभावभाव कहा गया है। एक स्वभावभाव त्रिकाल। वह **द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप उपाधि से जनित...** मनजनित संकल्प-विकल्प को आधि कहते हैं, शरीर के रोग को व्याधि कहते हैं और संयोग की दशा को उपाधि कहते हैं। आहाहा! तो भगवान आत्मा उपाधि, व्याधि और आधि तीन से रहित समाधि से गम्य है। समझ में आया? धर्मचन्दजी! अभी सूक्ष्म चीज़ है यह। आहाहा! यह तो नास्ति से पहले कहा कि ऐसे कर्म की उपाधि से उत्पन्न हुए विभावपर्याय, उनसे रहित। परन्तु है कैसा अस्ति? जो उपादेय कहा और उपादेय परिणति में आया, निर्विकल्प परिणति में यह उपादेय आया, वह कैसा है अन्दर? वह तो अनादि-अनन्त। आहाहा! अनादि-अनन्त वस्तु है। है, उसकी आदि क्या और है, उसका नाश क्या? है, उसे पर की अपेक्षा कहाँ?

ऐसा **अनादि-अनन्त अमूर्त...** मूर्तपना कहाँ है उसमें? वह तो अमूर्त है। **अतीन्द्रियस्वभाववाला...** आहाहा! वह तो अतीन्द्रियस्वभाववाला है। वह तो अलिंगग्रहण में आ गया है। इन्द्रिय से जानना आत्मा को होता नहीं। इन्द्रिय से जाने, वह आत्मा नहीं। इन्द्रिय से आत्मा को जानना होता नहीं। पहला बोल, २० में पहला बोल। दूसरा बोल यह आया, इन्द्रिय से आत्मा ज्ञात होनेयोग्य नहीं। उसे इन्द्रिय से जानना होता नहीं और वह इन्द्रिय से ज्ञात होनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं, **अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है**—परमपारिणामिकभाव सहजभाव ऐसा

जिसका स्वभाव है। **ऐसा कारणपरमात्मा,...** ऐसा कारणपरमात्मा, **वह वास्तव में 'आत्मा' है।** यह तो ऊपर कहा था न? कि ऐसे आत्मा को यह आत्मा उपादेय है। कैसा आत्मा उपादेय? यह आत्मा की व्याख्या की। पहले आत्मा की परिणति कैसी है, उस परिणति द्वारा उस आत्मा को यह आत्मा उपादेय है। यह आत्मा कैसा है? समझ में आया? आहाहा! जिसका परमपारिणामिकभाव। ऐसा क्यों कहा? कि किसी काल में उदयभाव को भी पारिणामिकभाव कहते हैं। जयधवल में राग को पारिणामिकभाव (कहा है)। पारिणामिकभाव की पर्याय है न? तो चारों ही भावों को पारिणामिकभाव कहते हैं—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, परन्तु वह परमपारिणामिक नहीं। चार पर्याय को पारिणामिकभाव कहते हैं। मिथ्यात्वभाव को पारिणामिक कहा। विपरीत मान्यता भी उसकी अवस्था है न? परमपारिणामिकभाव की अवस्था है न? आहाहा!

तो कहते हैं कि परमपारिणामिकभाव, वह पर्याय के पारिणामिकभाव से भिन्न है। आहाहा! **ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है।** कैसे आत्मा को कैसा आत्मा उपादेय है? दो की व्याख्या हुई। समझ में आया? कैसे आत्मा को कैसा आत्मा आदरणीय है? आहाहा! परद्रव्य से पराङ्मुख होकर, स्वद्रव्य में तीक्ष्णबुद्धि लगाकर अन्तर में अनुभव की दशा होती है, ऐसे आत्मा को आत्मा आदरणीय है, उपादेय है। उपादेय जो है, वह चीज़ कैसी है? यह बाद में कहा। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की यह ध्वनि है। समझ में आया? जो कुछ पामर की बात नहीं साधारण। कौन केवली? कौन अरिहन्त? आहाहा! जिनके एक समय में तीन काल-तीन लोक (ज्ञात हो गये)। जानने में आती है पर्याय। पर्याय का इतना सामर्थ्य है कि उसे देखने पर तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो जाते हैं। समझ में आया? एक समय की पर्याय और तीन काल-तीन लोक में केवली आदि हैं, उन्हें एक समय की पर्याय जानती है। अनन्त केवलियों की पर्याय को पर्याय में जानते हैं केवली। आहाहा! भाई! उस पर्याय में कितना सामर्थ्य, बापू! आहाहा! उस पर्याय का सामर्थ्य अनन्तता कितनी उसकी है! यह भगवान के मुख में से निकली हुई वाणी सन्त जगत के

समक्ष आड़तिया होकर प्रसिद्ध करते हैं। आड़तिया कहते हैं न? समझ में आया?

ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है। परमस्वभावभाव कारणपरमात्मा ध्रुव आत्मा, वह वास्तव में आत्मा; पर्यायवाला वास्तव में आत्मा नहीं। आहाहा! क्षायिकभाव का भाव भी वास्तव में आत्मा नहीं। आहाहा! वह तो उपचारिक आत्मा हुआ व्यवहारनय का। समझ में आया? क्षायिकभाव की केवलज्ञान की पर्याय, वह तो उपचारिक आत्मा हुआ, व्यवहार आत्मा हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : एक समय की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की पर्याय है और यह तो त्रिकाली। वहाँ आगरा-बागरा में ऐसा आवे, ऐसा नहीं वहाँ। ऐसा लगाये तो वहाँ कहे, यह क्या लगाया है? यहाँ तो शीतल पहर सोनगढ़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो आगरा में आगरा जैसी ही हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो फिर व्यवहार भाषा, दृष्टान्त दे, तब मुश्किल से पकड़ में आये। रहना हो दो-चार दिन उसमें कहाँ चले? आहाहा!

मुमुक्षु : .... स्वीकार करना पड़े ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वीकार तो ठीक है। वह तो कहाँ... यह तो यह वस्तु कैसी कहाँ निकले, उसका भी काल होता है क्षेत्र का। आहाहा! कहते हैं... वे तो सुनकर भागे ही एकदम, यह तो अकेली निश्चय-निश्चय की बातें करते हैं। पद्मचन्दजी! व्यवहार को तो उड़ा देते हैं। क्षायिकभाव जैसा भावकभाव, उसके आश्रय से आत्मा समझता नहीं, यह बात क्या करते हैं? उपशमसमकित में आत्मा का अनुभव होता है।

मुमुक्षु : उसके आश्रय से नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय से नहीं, बापू! ऐसा कहा। प्रभु! सुन तो सही। उसका अवलम्बन लेने से, चार पर्याय के भाव का अवलम्बन लेने से आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा है नहीं। उसका अवलम्बन लेने से, चार पर्याय के भाव का अवलम्बन लेने से आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। अरे! कहते हैं कि वह वास्तव में... कारणपरमात्मा

अनादि-अनन्त... ओहोहो! और अतीन्द्रिय स्वभाववाले शुद्ध सहजपरमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव, वह जिसका स्वभाव, ऐसा कारणआत्मा है, वह स्वभाववान। जिसका स्वभाव, ऐसा कहा न? **शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—** जिसका अर्थात्? कारणपरमात्मा का। आहाहा!

ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है। ले। अभी वास्तविक आत्मा और अवास्तविक आत्मा। आत्मा के दो भेद कर दिये। आहाहा! वास्तविक आत्मा, यथार्थरूप से आत्मा, भूतार्थरूप से आत्मा, सत्यार्थरूप से आत्मा, वह यह त्रिकाली जो कहा, यह है। समझ में आया? बापू! बहुत मार्ग यह तो (गम्भीर है)। आहाहा! चैतन्यरत्न को हीरे की धार पर चढ़ाया है यहाँ। सराण समझते हो? सराण नहीं होती? लोहे की। करते हैं न? ज्ञान की तीक्ष्ण धारा की धार पर आत्मा को चढ़ाया है। समझ में आया? **वह वास्तव में आत्मा है।** आहाहा! तो और एक वास्तविक आत्मा तथा और एक अवास्तविक आत्मा। क्षायिकभाव की पर्याय, वह अवास्तविक आत्मा। आहाहा! एक समय की पर्याय है। यह तो महाप्रभु पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञानगुण, जिस गुण में अनन्त केवलज्ञान की पर्याय की शक्ति पड़ी है... आहाहा! ऐसा जो वास्तविक आत्मा, उसे हम सत्य आत्मा, सच्चा आत्मा, वास्तविक आत्मा उसे कहते हैं। आहाहा! डाह्याभाई! 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान।' रटे जाये भक्ति में। परन्तु कौनसा आत्मा? कैसा आत्मा? कहाँ आत्मा? और किस परिणति से आत्मा उपादेय ज्ञात हो? आहाहा! यह आत्मभावना अर्थात् यह पहले कहा वह। पर से उदास होकर तीक्ष्ण दृष्टि लगा दी, ऐसी जो परिणति, वह भावना और उसमें आत्मा यह। आहाहा! अरे! बात कहाँ है, प्रभु! तेरे घर की? तेरी महिमा की क्या बात कहना? आहाहा!

ऐसा आत्मा जो है परमपारिणामिकस्वभावभाव... **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** जिन्हें संसार का अन्त निकट आ गया है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय में अल्पकाल में योग्यता हुई है जिसकी। आहाहा! ऐसे अति निकटभव्य जीवों को—जिन्हें मोक्ष निकट है—जिनके संसार का अन्त निकट आ गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश किस प्रकार का? बापू! भगवान की जाति का उपदेश है। आहाहा! भाई! तुझे तेरे स्वभाव की सामर्थ्य की दशावाला तत्त्व क्या है, उसका इसे माहात्म्य आया नहीं और

माहात्म्य सब राग का और पर्याय का माहात्म्य। आहाहा! यह तो बारदान है। बारदान समझते हो? कोथळा।

मुमुक्षु : खाली बोरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाली बोरा। माल तो यह त्रिकाली आत्मा, वह माल है।

तो कहते हैं **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! अकेले भव्य नहीं लिये, आसन्न भव्य भी नहीं, अति-आसन्न भव्यजीव। आहाहा! जिन्हें मोक्ष होने का भणकार बजा है अब अल्पकाल में। आहाहा! सिद्धपद प्राप्ति का जिन्हें अन्दर से भणकार बजा है। आहाहा! निहालभाई ने लिखा है न, अन्तिम बोल में नहीं? यह 'आखिरी मुसाफिरी है।' आहाहा! सत्यार्थ है। अन्तर के वेदन से कहते थे। लोगों को बैठना कठिन पड़े। भगवान की वाणी को विषय कहा तो भड़के, परन्तु वह तो इन्द्रिय का विषय है। भगवान हो या साक्षात् वाणी हो, वह तो इन्द्रिय का विषय है। वह अणीन्द्रिय का विषय है नहीं। आहाहा! परन्तु यह डाला तो उसकी आलोचना हो गयी। दो आलोचना ऐसी आयी। एक १०१ बोल की आयी और इस बार १११ की आयी। आने दो।

मुमुक्षु : स्पष्टता अधिक होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक स्पष्ट होगा। इसमें कुछ नहीं। यह तो अगम्यगम्य की बातें, बापू! आहाहा!

अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त... ऐसे अति-आसन्न भव्य जीव को निजपरमात्मा जो ज्ञायकभाव आत्मा कहा, जो वास्तविक आत्मा कहा, उसके **अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।** आहाहा! समझ में आया? यह ऐसी बातें हैं, बापू! अरेरे! देह स्त्री का, पुरुष का, नपुंसक का, वह तो जड़ के आकार, प्रभु! वह तू नहीं। शरीर के आकार, वह सब तो मिट्टी के पुतले के आकार हैं। यह आत्मा है? अन्दर राग उठता है, वह पुण्य-पाप के विकल्प, प्रभु! वह आत्मा है? वह तो आस्रव-अनात्मा है। आहाहा! तो जिसे अनात्मा के प्रति प्रेम है, उसे आत्मा के प्रति प्रेम नहीं लगता। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। आहाहा! यह कहा न! अति-आसन्न भव्यजीव में, यह कहा। कि जिसे पर से, राग से अथवा कर्म के फल से प्रेम उड़ गया

है। प्रेम उड़ गया है, रुचि उड़ गयी। आहाहा! चाहे तो चक्रवर्ती का राज हो, प्रेम उड़ गया है। ऐसे **अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त...** ऐसा निश्चय आत्मा जो कहा, इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी आदेय नहीं, कोई भी उपादेय नहीं। आहाहा!

★ ★ ★

कलश - ५४

(अब, ३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं —)

(मालिनी)

जयति समयसारः सर्व-तत्त्वैक-सारः,
सकल-विलय-दूरः प्रास्त-दुर्वार-मारः।
दुरित-तरु-कुठारः शुद्ध-बोधावतारः,
सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः ॥५४॥

(वीरछन्द)

सर्व तत्त्व में एक सार जो सकल क्षणिक भावों से पार।
जिसने दुर्जय काम नशा है पापवृक्ष को तीव्र कुठार॥
शुद्धबोध अवतरणरूप है सुखसागर की बाढ़ अहो।
क्लेशोदधि का यही किनारा समयसार जयवन्त रहो॥५४॥

***श्लोकार्थः*—सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है, जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है, जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है, जो शुद्धज्ञान का अवतार है, जो सुखसागर की बाढ़ है और जो क्लेशोदधि का किनारा है, वह समयसार (शुद्ध आत्मा) जयवन्त वर्तता है।॥५४॥**

कलश - ५४ पर प्रवचन

(अब, ३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं —)

(मालिनी)

जयति समयसारः सर्व-तत्त्वैक-सारः,
सकल-विलय-दूरः प्रास्त-दुर्वार-मारः।
दुरित-तरु-कुठारः शुद्ध-बोधावतारः,
सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः ॥५४॥

आहाहा! एक-एक पद में अन्त में 'र' आता है। आहाहा! मोक्षपुरी का नाथ आत्मा। मोक्षपुर का नाथ, मोक्षनगरी, मोक्षपुर, अविनाशीपुर ऐसा मोक्ष उसका वह स्वामी आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? अरे! इसे किस चीज़ में मिठास रहेगी? आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प की भी जिसे मिठास उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि 'र' आया न प्रत्येक में? '**सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः**' गाथा की टीका। **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** जीव पर्यायतत्त्व, आस्रवतत्त्व, बन्धतत्त्व, संवर-निर्जरा, मोक्षतत्त्व इन सब तत्त्वों में एक सार। '**जयति समयसारः**' '**सर्वतत्त्वैकसारः**' यह दूसरे पद की व्याख्या आयी। फिर अन्त में कहेंगे, यह जय हुआ। सर्व तत्त्व का एक सार। नौ तत्त्व, सात तत्त्व या नौ तत्त्व में एक सार भगवान पूर्णानन्द पूर्ण शुद्ध। आहाहा! **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** आहाहा! क्षायिकभाव भी नष्ट होनेवाला है, केवलज्ञान भी एक समय रहता है। आहाहा! दूसरे समय में व्यय होता है। आहाहा! क्षायिकभाव की एक समय की पर्याय एक समय ही रहती है। दूसरे समय में क्षायिकभाव की पर्याय दूसरी होती है। पहले क्षायिकभाव का व्यय होकर दूसरे समय में क्षायिकभाव की दूसरी पर्याय होती है। समझ में आया? आहाहा!

तो कहते हैं कि **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों...** है। पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सब नाश पानेयोग्य भाव है। आहाहा! देह नाशवान, यह

नाशवान, स्त्री, परिवार नाशवान। आहाहा! परमात्मप्रकाश में यहाँ तक लिया है कि जिन और जिन के मन्दिर तथा जिन की प्रतिमा हो, वे सब नाशवान हैं, काल के ईंधन में वे सब राख हो जायेंगे। परमात्मप्रकाश में लिया है। परपदार्थ है। प्रतिमा हो या मन्दिर हो, वे सब काल की अग्नि में नाश हो जायेंगे। वे कहाँ अविनाशी वस्तु हैं? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय, क्षायिकभाव की, नष्ट होनेयोग्य। ऐसे भावों से वह सार तत्त्व दूर है। नाश होने के योग्य भाव से वह तत्त्व दूर है। आहाहा!

यह प्रश्न उठा था, द्रव्य से पर्याय दूर है। तब और अपने कितने ही वाँचनकार ऐसे जगे कि बराबर कितने दूर है? कि लोक में यहाँ आत्मा और वह (पर्यय) अलोक में रहे, इतने दूर हैं। अरे भाई! किस अपेक्षा से बात? बापू! ऐसे दूर रहते हैं। यहाँ तो पर्याय का भाव है, उससे पारिणामिकभाव भिन्न है, दूर है। एक समय में वह आता नहीं। एक समय में आ जाये तो समय पलटने पर उसका भी नाश हो जाये। यह विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ७, बुधवार, दिनांक १३-०८-१९७५
कलश-५४, गाथा - ३९ प्रवचन - ३

यह नियमसार निजभावना के लिये बनाया है। दूसरे ग्रन्थ की अपेक्षा इस ग्रन्थ में यह विशेषता है। '**णियभावणाणिमित्तं**' है? १८७ अन्तिम (गाथा)। है? मेरी भावना के कारण से मैंने तो यह शास्त्र बनाया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी शास्त्र की प्रामाणिकता और महत्ता। '**मए कदं**' लो, शास्त्र बना सकते नहीं न? मैंने किया, यह निमित्त से कथन है। मेरी भावना के लिये... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य जो तीर्थंकर और पश्चात् गणधर और पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य। आता है न? 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो' वे आचार्य कहते हैं, मैंने मेरी भावना के लिये '**मए कदं णियमसारणामसुदं**' नियमसार नाम का सूत्र मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। आहाहा! लोगों के लिये नहीं, ऐसा कहा। '**णच्चा जिणोवदेसं**' जिनेश्वर का उपदेश जानकर। देखो! सीधी बात ली है। जिनेश्वरदेव वीतराग परमेश्वर का जो उपदेश, (उसे) जानकर '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पूर्वापर विरोधरहित यह शास्त्र है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी शास्त्र की प्रामाणिकता की महत्ता पहले बतायी।

अपने यहाँ श्लोक चलता है ५४-५४। **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** क्या कहते हैं? तत्त्व कहे, बहुत तत्त्व हैं। एक ही आत्मतत्त्व है, ऐसा नहीं। आहाहा! आत्मतत्त्व है, ऐसे आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्व है, अस्ति है। आहाहा! परन्तु उन **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** मोक्ष की पर्याय के तत्त्व से भी एक सार ध्रुव है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का दल चैतन्यपिण्ड, आहाहा! भगवत् पूर्णानन्दस्वरूप जो सर्व तत्त्वों में एक सार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! संवर, निर्जरातत्त्व मोक्षमार्ग और सिद्ध, वह मोक्षतत्त्व, उन सर्व तत्त्वों में सार यह है। आहाहा! द्रव्य और पर्याय, पर्याय में सात तत्त्व और वस्तु एक तत्त्व। आहाहा! उन **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** सार यही है। आहाहा! मोक्षतत्त्व भी सार नहीं, ऐसा कहते हैं। (क्योंकि) पर्याय है। आहाहा!

मुमुक्षु : मोक्ष को तो परमहित कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह सार है, परन्तु सार यह है। एक समय की पर्याय सार नहीं। समझ में आया? आहाहा!

एक लड़का अभी कहता था। भले बेचारे को कल्पना से आया होगा परन्तु। नाम नहीं देता। महाराज! मैं वहाँ मुम्बई में शास्त्र सुनता था। उसमें वह रमेश है न वीछियावाला? रमेश। यह प्रेमचन्दभाई के पुत्र का पुत्र। ऐसा कहे कि वह बोलता था उसमें से एकदम मानो मेरे आत्मा में आनन्द का समुद्र उछला, ऐसा दिखाई दिया। ऐसी एक कल्पना। ऐई! कल कहता था। मैंने सुना। परन्तु इतना उसे उसमें से आनन्द... आनन्द... आनन्द... उछलता था और कुन्दकुन्दाचार्य को देखा, ऐसा भास हुआ। यह ... है न? आहाहा!

तो कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य, यह कलश है, वह पद्मप्रभमलधारिदेव का है। **सर्व तत्त्वों...** अर्थात् एक तत्त्व नहीं, ऐसा सिद्ध किया। सर्व तत्त्व अर्थात् सात तत्त्व हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, इनमें एक सार है। आनन्ददल प्रभु ध्रुव, अन्दर आनन्द का सागर उछलता है। आहाहा! ध्रुव जो ज्ञायकभाव निजपद जिसका आनन्द और ज्ञान शरीर है। यह शरीर नहीं, यह मिट्टी धूल है। आहाहा! अमृत का कूंप—अमृत का कुआँ-कुआँ। आहाहा! 'शुद्ध चेतना सिन्धु हमारो रूप है।' आता है न। 'कहे विचक्षण पुरुष' विचक्षण का अर्थ स्वसंवेदनज्ञानी। समझ में आया? संसार के विक्षण-विचक्षण, वह सब मूर्खाई। व्यापार के चतुर-होशियार बहुत है यह सब। आहाहा! 'कहे विचक्षण पुरुष मैं सदा एक हूँ, अपने रससों भर्यो अनादि टेक हूँ' मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान से भरपूर प्रभु हूँ। यह अनादि का मैं ऐसा हूँ। आहाहा! 'मोहकर्म मम नाहीं, मोहकर्म मम नाहीं, नाहीं भ्रम कूंप है, शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है।' आहाहा! यह धूल और मिट्टी पर है। अरे! अन्दर पुण्य और पाप के विकल्प से भी पर, अरे! संवर, निर्जरा और मोक्ष के तत्त्व से भी सार एक ही तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अनादि से एक समय की पर्याय की प्रगटता में इसकी अनादि से क्रीड़ा है। पर्याय एक समय की है, उसमें इसकी क्रीड़ा। परन्तु एक समय की पर्याय जिसमें से

उत्पन्न होती है—खड़ी होती है, वह चीज़ क्या है? समझ में आया? आहाहा! 'शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है।' यह रूप नहीं, मोक्ष की पर्याय यह रूप नहीं। आहाहा! सार एक तत्त्व यह। आहाहा! संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय एक समय की पर्यायरूप तत्त्व है और यह तो त्रिकाली तत्त्व आनन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! परमात्मास्वरूप से विराजमान भगवान स्वयं आत्मा है, वह सार है। आहाहा! इस हिसाब से तो मोक्ष और संवर, निर्जरा भी सार नहीं, ऐसा कहा। वह तो एक समय की पर्याय है। मैं तो त्रिकाली दल हूँ। दल समझते हो? दल के लड्डू होते हैं, लड्डू दल के। हमारे होते हैं यहाँ काठियावाड़ में। तुम्हारे वहाँ भी होते होंगे। अभी आये थे वहाँ दल के लड्डू लड़कों को देने के लिये। दल अर्थात् कसवाला तत्त्व पूरा। मैं तो आनन्द और ज्ञान आदि अनन्त गुण के दल का लड्डू हूँ। आहाहा! एक बात। कहो, एक सार यह। पर्याय भी सार नहीं। मोक्षमार्ग की पर्याय भी सार नहीं और मोक्ष भी सार नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि पाठ में ऐसा लिया है न? बहिर्तत्त्व जीवादि हैं, वे हेय हैं, उपादेय नहीं। आहाहा! यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने (कहा है कि) मैंने मेरी भावना के लिये यह नियमसार शास्त्र कहा है। जिनेश्वर त्रिलोकनाथ के उपदेश को बराबर जानकर और पूर्वापर आगे-पीछे का विरोधरहित निर्दोष वस्तु मैंने ऐसी बनायी है। समझ में आया?

सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,... आहाहा! **सर्व तत्त्वों में जो...** ऐसा तो 'जो' विशेषण लगाया है, परन्तु **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** समझ में आया? आहाहा! और **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** एक सार जो चैतन्यघन ज्ञानरस, आनन्दरस, वीतरागी रसस्वरूप भगवान आत्मा, उससे केवलज्ञान की पर्याय, क्षायिकसमकित की पर्याय, संवर-निर्जरा की पर्याय, वह नाश होनेयोग्य है। एक समय रहती है, दूसरे समय में नाश होती है। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह शरीर और मिट्टी-धूल नाशवान है, यह तो दूसरी चीज़ रह गयी। आहाहा! परन्तु अन्तर में त्रिकाल नित्यानन्द ध्रुव ज्ञायक भगवान एक सार के समक्ष केवलज्ञान अनन्त आनन्द चतुष्टय प्रगट हुए हैं, वे भी एक समय होकर दूसरे समय में नाश होते हैं। समझ में आया? आहाहा! **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य...** अर्थात् पर्याय। आहाहा! भगवान सर्वज्ञ को अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए, वे भी नाशवान हैं। क्योंकि एक समय की अवस्था है, दो समय टिक

नहीं सकती। आहाहा! 'मैं तो त्रिकाल टिकनेवाली चीज़ हूँ' ऐसा पर्याय कहती है, पर्याय ऐसा जानती है। जाने तो पर्याय है या नहीं? आहाहा! क्रीड़ा तो पर्याय की है।

मुमुक्षु : दोपहर में तो ऐसा कहते थे कि क्रीड़ा तो सब ध्रुव की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव तो रमे कहाँ? ध्रुव में कहाँ परिणमन है? परिणमन तो पर्याय में है। यह तो आयेगा परसों। कल रिकॉर्डिंग चलेगी सवेरे। २०वाँ बोल है, वह आयेगा परसों। अलौकिक बोल है। आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर उनका—जिन का उपदेश जानकर '**णच्चा**' मैं यह पूर्वापरविरोधरहित शास्त्र बनाया है, कहते हैं। समझ में आया? पंच महाव्रत का विकल्प है, यह कहते हैं कि मैंने पूर्वापरविरोधरहित शास्त्र बनाया है। आहाहा!

तो कहते हैं कि **समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से...** देखो, भाव कहा। पहले कहा था सर्व तत्त्व। सर्व तत्त्व तो मोक्ष भी तत्त्व, संवर-निर्जरातत्त्व, आस्रवतत्त्व, बन्धतत्त्व। एक बात। अब **नष्ट होनेयोग्य भावों से...** उसे तत्त्व जो कहा था पर्याय का, उसे यहाँ भाव कहा। त्रिकाली भाव की अपेक्षा से पर्याय को भी भाव कहा। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव के मुख से निकली हुई वाणी, उसका यहाँ संग्रह किया है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, **समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से...** लो! यह केवलज्ञानरूपी भाव, क्षायिकसमकितरूपी पर्याय भाव, इनसे वह दूर है। ऐसा पर्याय जानती है कि वह तत्त्व तो पर्याय से दूर है। आहाहा! पर्याय में वह तत्त्व आता ही नहीं। समझ में आया?

दूसरे प्रकार से कहें तो जैसे शरीर का अभाव आत्मा में है तो जिसका अभाव है, उसका कर्ता नहीं हो सकता। कर्म का अभाव आत्मा में है तो अभाव है, उसका कर्ता आत्मा नहीं हो सकता। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प राग है, वह स्वभाव में नहीं तो उसका कर्ता नहीं हो सकता। आहाहा! अरे! ऐसी बात भी सुनने को किसी समय मिले। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय से—भाव से वह दूर है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय का द्रव्यस्वभाव में अभाव है, तो जिसमें अभाव है, उसका वह कर्ता कैसे होगा? समझ में आया? उसमें भाव हो

तो कर्ता हो। उसमें अभाव है। आहाहा! समझ में आया? **समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से (यह भाव) दूर है,...** पर्याय का क्षेत्र और पर्याय का भाव, उससे वह तत्त्व दूर है।

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया? अच्छा! सेठ स्पष्ट कराते हैं। यह सवेरे आता है न थोड़ा। आहाहा!

जो पर्याय एक समय की है, उस समय की पर्याय का अस्तित्व कोई क्षेत्र है या नहीं? या क्षेत्र बिना उत्पन्न हुई है? उसका अवगाहन करने की चीज़ वह क्षेत्र है। असंख्य प्रदेश में से जितने क्षेत्र में से पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय का क्षेत्र है। आहाहा! तो कहते हैं कि वह पर्याय और पर्याय के क्षेत्र से मेरा क्षेत्र और मेरा भाव तो दूर है। आहाहा! सेठ! ऐसा वहाँ सागर में नहीं। वहाँ पैसे हों पैसे। सागर में सेठ की बहुत बड़ी छाप है। दोनों भाईयों की बहुत छाप है। मैंने तो इस बार देखा अधिक, हों! उस बार गये थे मंजिल ऊपर न, बहुत ख्याल नहीं। बहुत छाप है सेठिया की। व्याख्यान में १५-१५ हजार लोग सागर में। पहले नम्बर में भोपाल था। यह तो वहाँ तो उस मन्दिर का था न। दूसरे नम्बर में वहाँ। १५ हजार लोग, हों, शान्ति से सुने। वह एक विरोध है न पण्डित पन्नालाल। वह भी इस समय बैठते थे। पाट के पास बैठकर सुनते थे। भाई! बापू! विरोध करने की चीज़ नहीं, नाथ! तुझे तेरी खबर नहीं। यह कोई पण्डिताई की चीज़ नहीं। आहाहा!

यह तो भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा स्वयं पूर्णानन्द का नाथ जो साररूप, वही तत्त्व है। आहाहा! शीशम का लकड़ा होता है न? लकड़ी शीशम नहीं शीशम? शीशम का सार कहते हैं। सुना है? बीच में। शीशम का सार अन्दर चिकनाईवाली वह लकड़ी अन्दर भिन्न चीज़ है। वह शीशम समझते हो? तो शीशम की लकड़ी हो, उसमें ऊपर-ऊपर का भाग है, वह दूसरा है, अन्दर कसवाला भाग दूसरा है। शीशम देखा है? शीशम समझे? लकड़ी। शीशम की लकड़ी नहीं होती? अन्दर कस, वह चीज़ अत्यन्त भिन्न है। शीशम की लकड़ी का सार निकालकर किसी समय उसमें छत्री रखने, तलवार रखने वह रखने के लिये निकालते हैं, लकड़ी में से अन्दर कस निकालते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा, एक समय की पर्याय जो नाश होनेयोग्य है... आहाहा! उससे प्रभु अन्दर भिन्न है। तो भिन्न है, वह भिन्न का क्या करे? आहाहा! यह भगवान आत्मा मोक्ष को भी करे नहीं, संवर-निर्जरा को भी करे नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसमें है नहीं और उस पर्याय से नाश होनेयोग्य पर्याय से, उत्पाद-व्यय से वस्तु जो भिन्न है, वह भिन्न है, उसमें पर्याय तो नहीं। पर्याय नहीं तो वह पर्याय उसमें नहीं तो उसका क्या करे यह? न्याय समझ में आता है? आहाहा! आहाहा!

मुमुक्षु : यह अच्छा धर्म निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन निकाले? है ऐसा यहाँ तो कहते हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे धर्म नहीं, वे छिलके-कूचा है।

यहाँ तो धर्म की पर्याय भी नाश होनेयोग्य गिनकर (ऐसा कहते हैं कि) सार तत्त्व तो ध्रुव है। आहाहा! और उस पर्याय से सार तत्त्व दूर है। सार वह है और पर्याय से दूर है। डाह्याभाई! ऐसा तो सुनना भी (मुश्किल है)। आहाहा! धन्य भाग्य, धन्य काल हो तो ऐसी बात सुनने को मिले! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! क्या कहे? लक्ष्य ऐसा गया कि भगवान से दूर हो गये अभी। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि पर्याय से भगवान दूर है। ऐसा चैतन्य ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, वह संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्यायरूप भाव, भाव है न? कहीं चीज़ का अभाव है? आहाहा! ऐसे भावों से भगवान अन्दर ध्रुव जो सम्यग्दर्शन का विषय... आहाहा! भिन्न है, दूर है। आहाहा! जहाँ पर्याय भी पहुँच नहीं सकती, तथापि पर्याय में उसका निर्णय आता है। आहाहा! क्या कलश! पद्मप्रभमलधारिदेव, आहाहा! गजब काम किये हैं। वे आचार्य नहीं थे, वे तो मुनि थे। अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य तो आचार्य थे, ये तो मुनि हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपूर्व बात है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य के बाद में। अमृतचन्द्राचार्य पहले हुए। पद्मप्रभमलधारिदेव बाद में हुए। अमृतचन्द्राचार्य का आधार दिया है इनकी टीका में। पद्मप्रभमलधारिदेव ने आधार दिया है। पश्चात् पद्मप्रभमलधारिदेव (हुए)। वे भी कहते थे कि इस शास्त्र की टीका करनेवाले हम कौन? गणधरों से टीका

हुई है। ऐसा पहला शब्द है शुरआत में सुना? आहाहा! देखो, पाँचवाँ श्लोक है, देखो! पृष्ठ है ३। **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित...** आहाहा! यह टीका तो गणधरों से रचित है। मैं कहाँ करता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये...** गणधर के पश्चात् भी मुनियों ने इस टीका को व्यक्त किया है। आहाहा! परम्परा से प्रगट है टीका। इस **परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन?** आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि हम तो मन्दबुद्धि हैं, इसकी टीका हम कैसे करें? टीका तो चली आयी है। आहाहा! गणधर से टीका चली आयी है। तो उस परम्परा से... है न? दो बोल है न। **श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये...** ऐसा होने पर भी **अभी हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से...** देखो, सार। हमारे मन में ऐसा विकल्प बारम्बार आया करता है। आहाहा! कि शास्त्र की टीका हो, शास्त्र की टीका हो, ऐसा विकल्प आया करता है। समझ में आया? आहाहा! है? **अभी...** इस समय **हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से...** इसके सार की पुष्टि करने में हमारी रुचि है। **पुनः-पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है।** विकल्प बारम्बार प्रेरित करता है कि इसकी कोई पुष्टि बनाऊँ, इसकी पुष्टि बनाऊँ, यह टीका बनाऊँ, ऐसा। आहाहा! **(उस रुचि से प्रेरित होने के कारण 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की यह टीका रची जा रही है।)** आहाहा! समझ में आया?

यह दूर है। ओहोहो! केवलज्ञान की पर्याय से भी ज्ञायकभाव ध्रुवतत्त्व दूर है। दूर तो उसी प्रदेश में है। असंख्य प्रदेश में ही ध्रुव है। उसके अन्तिम प्रदेश में वह पर्याय है, परन्तु उस पर्याय से यह वस्तु दूर है। आहाहा! दूर का अर्थ कोई ऐसे क्षेत्र आगे है, ऐसा नहीं, परन्तु पर्याय के क्षेत्र से और एक समय की पर्याय के भाव से वस्तु है, वह वस्तु उसमें नहीं। वह पर्याय वस्तु में नहीं। आहाहा!

अब कहते हैं, **जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** अर्थात् वह वस्तु का स्वभाव ऐसा है कि काम की वासना का जिसमें अभाव है। ऐसे तो नष्ट किया है, (ऐसा कहा है)। नष्ट किया है, तो था और नष्ट किया है? क्या समझे? क्या कहा? **जिसने...**

अर्थात् ध्रुव तत्त्व ने, सार तत्त्व जो ज्ञायकभाव नित्यानन्द प्रभु, उसने **दुर्वार काम को...** पर में विषय में सुख की बुद्धि ऐसे कामभोग **नष्ट किया है,...** आहाहा! अर्थात् वह वृत्ति उसमें है ही नहीं। इसलिए उसका आश्रय करता है, उसकी काम-भोग की वृत्ति नाश हो जाती है। समझ में आया? शास्त्र में ऐसा आता है कि कोई विकल्प आर्त-रौद्रध्यान का आ जाये तो उस समय ध्यान करना, ऐसा शास्त्र में आता है। अन्तर आनन्द का ध्यान करना तो वह नाश हो जाये। क्या कहा? ऐसा शुभ-अशुभ विकल्प आवे तो उसे न लम्बाकर उसे नाश करने के लिये आत्मा का ध्यान करना। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान का ध्यान करने से वह वृत्ति नाश हो जायेगी। आहाहा! समझ में आया? विषय की वासना खटक-खटक होती है बहुत, तो भी उस भगवान आत्मा का ध्यान करने से वह उत्पन्न ही नहीं होती, नाश हो जायेगी। तो वह वस्तु काम को नष्ट करनेवाली है, ऐसा कहने में आता है। नाश होता है तो पर्याय में। समझ में आया? आहाहा! **जिसने दुर्वार काम को...** आहाहा! विषय के प्रेम का भाव दुर्वार, टाला न जा सके—ऐसा दुर्वार, वारा जा सके ऐसी चीज़, वह भी उसे तो आहाहा! **नष्ट किया है,...** उसमें वह भाव भी नहीं और उस भाव का ध्यान करने से यह भाव रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिसने... अर्थात् ध्रुवस्वभाव ने। **दुर्वार काम को...** आहाहा! काम की वासना दुर्वार। आहाहा! जिस वारा नहीं जा सके, ऐसे काम को भी जिसने **नष्ट किया है,...** आहाहा! अर्थात् कि उसमें है नहीं, अर्थात् उसका ध्यान करने से यह कामवासना रहती नहीं। समझ में आया? यह तो अमृत का सागर! सन्तों की... आहाहा! यह तो सन्तों की वाणी है। आहाहा! यह कहीं सन्त वेश लिया और अकेला द्रव्यलिंगी (हो गया), ऐसी नहीं। यह तो मोक्षमार्ग में रमते थे, उनकी यह भाषा है। आहाहा! ओहोहो! कहते हैं, **जिसने...** अर्थात् ध्रुव तत्त्व, सार तत्त्व ने जो नाशवान भाव से भिन्नतत्त्व है, उसने **दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** अर्थात् उसमें है ही नहीं और है नहीं तो उसका ध्यान करने से वासना का नाश हो जाता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : दुर्वार अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : वारा नहीं जा सके। दुर्वार—रोका नहीं जा सके, ऐसी चीज़, काम की वासना। आहाहा!

क्षायिक समकिती को भी विकल्प आता है। चक्रवर्ती (के) छियानवें हजार (स्त्रियाँ हैं)। तीर्थंकर, लो! शान्तिनाथ, अरनाथ क्षायिकसमकिती थे। छियानवें हजार स्त्रिरूों के वृन्द में विवाह किया और वासना थी। आसक्ति की वासना थी। तथापि कहते हैं कि वह वासना जिसमें है ही नहीं और है नहीं तो उसका ध्यान करने से वासना का नाश हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कहकर क्या कहते हैं? कि भाई! यह विषय की वासना है न तो उसे ... करो, इन्द्रिय दमन करो तो वासना घट जायेगी। ऐसे नहीं घटेगी। जिसमें है नहीं, उसका ध्यान करने से नाश हो जायेगी। आहाहा!

बहुत वर्ष की बात है न। कही थी एक बार। हम भावनगर आये थे दुकान से, पालेज में दुकान है न। तो आये थे। लगभग (संवत्) १९६६ का वर्ष होगा। दुकान से (आये थे)। दीक्षा तो ७० में हुई। ६६ में यहाँ भावनगर आये थे। तो भावनगर में ऐसा बड़ा एक वैरागी नाटक था। तो हम जाते थे। ऐसे बहुत वैरागी नाटक देखे हैं हमने छोटी उम्र में। एक ध्रुव का नाटक था। अपने यहाँ ध्रुव, भाई! एक राजकुमार ध्रुव था। दरबार! वह ध्रुव नहीं आता? ध्रुव और प्रहलाद। ऐई! प्रहलादजी! लो, यहाँ बैठे हैं। वह नाटक देखने गये थे हम। पैसे की छूट थी तो बहुत ऐसे देखे हैं। तो ऊपर से इन्द्राणी उतरी पर्दा फाड़कर। हरा पर्दा और जंगल। छोटा बालक... लकड़ी होती है न उसकी, लकड़ी के साथ बालक बैठा था। इन्द्राणी ऊपर से लकड़े के ऊपर पैर और डोरी से ऐसे दोनों ओर उतरी और ऐसी चेष्टा करने लगी। आहाहा! अरे ध्रुव! नजर तो कर हम कौन हैं! हमारा शरीर तो देख सुन्दर, केले के गर्भ जैसा हमारा शरीर, हमारा मुख चन्द्रमा जैसा। बहुत बोली। यहाँ तो मुझे उस ध्रुव के साथ में लेना है, हों! वह ध्रुव था। वह ध्रुव राजा का पुत्र था, दरबार! ध्रुव-ध्रुव। उसकी माँ मर गयी और उसके पिता ने दूसरा विवाह किया था और यह राजकुमार था। दीक्षित हो गया। अन्यमति की बात है। यह इन्द्राणी ने जब बहुत कहा तब (ध्रुव ने) कहा, माता! यदि मुझे दूसरा भव करना पड़ेगा तो तुझे माता करूँगा, बाकी दूसरी बात है नहीं। समझ में आया? वह ध्रुव कहता है।

ऐसा ध्रुव यह है। यह ध्रुव। समझ में आया? जिसका लक्ष्य करने से, जिसे ध्येय बनाने से विषय की वासना उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव तो राजकुमार थे। यह ध्रुव यह (आत्मा) है। आहाहा!

दुर्वार काम को... विषय की वासना की मिठास दुर्वार है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु आनन्द के नाथ को याद करने से वह दुर्वार वृत्ति रहती नहीं। आहाहा! ऐसा तेरा भगवान अन्दर विराजता है। समझ में आया? आहाहा! यह तो बापू! ऐसी बात है। **जिसने...** अर्थात् ध्रुवतत्त्व ने **दुर्वार...** वारा नहीं जा सके मिठास भोग की, विषय की, इन्द्राणियों के सुन्दर शरीर केले जैसे दिखाई दे और उसकी वृत्ति उठे, वह दुर्वार है, परन्तु ध्रुव का लक्ष्य करने से दुर्वार वृत्ति की उत्पत्ति नहीं होती। आहाहा! उस ध्रुव में यह है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह तो अन्तर के आनन्द की मिठास में विषय की वासना उत्पन्न नहीं होती। यह तो भाई! सब अन्तर की बात है, परमसत्य ऐसी बात है। ओहोहो!

जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,... है? कुठार है। **पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,...** अर्थात् पाप के भाव उसमें है ही नहीं, परन्तु पाप के भाव जो हैं, वे आनन्द के नाथ का ध्यान करने से वे पाप के भाव नाश पाते हैं। आहाहा! **पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,...** कुठार समझते हो? कुहाडो कहते हैं न? कुठार। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द, उसका लक्ष्य करने से पाप का नाश हो जाता है। पाप का नाश करने में भगवान ध्रुव है, वह कुहाडो-कुठार है। आहाहा! वह तो शास्त्र सामने हो, तब इसका अर्थ होता है न! दूसरे में खींचकर लावे तो जरा... यहाँ तो उसमें है। आहाहा! **पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,...** आहाहा! कुहाड़ा है। जिसका लक्ष्य करने से। आहाहा! इसमें पाप तो है ही नहीं, परन्तु पाप के परिणाम हुए तो जिसमें है नहीं, उसका ध्यान करने से पाप का नाश करने में कुहाडा—कुठार समान है। आनन्द का नाथ जिसने शरण में लिया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा कहते हैं न 'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं' वह कोई शरण-फरण नहीं, व्यवहार की बात है। ऐसी बातें हैं, बापू यह तो। आहाहा! तीन लोक का नाथ चिदानन्द

प्रभु सहजानन्द के स्वभाव से सहजरूप से विराजमान हैं, ऐसा ध्रुवतत्त्व, सार में सारतत्त्व, पापरूपी वृक्ष को छेदने में कुठार है। ओहोहो! यह दो तो नास्ति से कहा।

जो शुद्धज्ञान का अवतार है,... जो शुद्ध ज्ञान का पिण्ड है। जैसे जन्म लेते हैं न मनुष्य? तो यह तो शुद्ध ज्ञान का ही जन्म है उसका, त्रिकाल शुद्ध ज्ञान का ही यह तो अवतार है। आहाहा! ऐसी बातें, इसलिए फिर वे लोग ऐसा कहते हैं न, अकेला निश्चय-निश्चय... परन्तु निश्चय, वही सत्य है। यथार्थ का नाम निश्चय। कल आया था नहीं? यथार्थ का नाम निश्चय और उपचार का नाम व्यवहार। भूतार्थ का नाम निश्चय और उपचार का नाम व्यवहार। समझ में आया? सत्यार्थ का नाम निश्चय और असत्यार्थ का नाम उपचार। आहाहा! **शुद्धज्ञान का अवतार है,...** जैसे बालक का जन्म होता है, वैसे शुद्ध ज्ञानस्वरूपी ही भगवान है। अकेला शुद्ध ज्ञानस्वरूपी पिण्ड प्रभु है। समझ में आया?

जो सुखसागर की बाढ़ है... है? सुखसागर का पूर आता है उसमें। समुद्र में बाढ़ आती है न समुद्र में। बाढ़ कहते हैं? क्या कहते हैं? ज्वार-ज्वार आता है न। हमारे यहाँ (गुजराती में) भरती-ओट कहते हैं। समुद्र में जब वेळ आती है, उसे ज्वार कहते हैं और वापस हटे उसे ओट कहते हैं। यह तुम्हारी भाषा ऐसी। आहाहा! भगवान ज्ञानानन्द का स्वरूप प्रभु, वह तो सुखसागर का पूर है। अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ ज्वार आता है पर्याय में, ऐसी वह चीज़ है। बाढ़ क्या कहते हैं तुम्हारे? बाढ़ कहते हैं। आहाहा! हाँ, ज्वार-भाटा कहते हैं। **सुखसागर की बाढ़ है...** कौन? जो सार तत्त्व जो ज्ञायकभाव ध्रुवतत्त्व है वह। आहाहा! वह सुखसागर की बाढ़ ही पड़ी है, ऐसा कहते हैं। और उसकी दृष्टि करने से पर्याय में सुखसागर की बाढ़ आती है। समझ में आया? ऐसा उपदेश अब। भाई! व्रत ले, यह त्याग करे, मुनि हो जाये, वस्त्र बदले... यह सब बाहर की क्रिया का कर्ता आत्मा को माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

यहाँ तो संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय, अपने निजतत्त्व की महिमा से उसे अधिक महिमा दे देवे, वह भी नहीं यहाँ तो। आहाहा! छांटे आते हैं। बरसात तो यह है। आहाहा! हम तो भाई सवेरे पाट में बैठे हों न, 'प्रभु! तुझे कहना हो वह कहना अब।

मैं तो बैठा हूँ पाट पर साधारण।' ऐसा कहा था। ऐई! 'क्योंकि पर्याय द्रव्य में नहीं, यह अधिकार चलेगा। मैं तो तेरी पेढी में बैठा हूँ, प्रभु! तुझे कहना हो वह कहना, नाथ!' आहाहा! **सुखसागर की बाढ़ है...** अब यह तो अस्ति से कहा।

परन्तु **जो क्लेशोदधि का किनारा है,...** आहाह! क्लेशरूपी समुद्र का तो किनारा है, अन्त है वहाँ। आहाहा! क्लेशरूपी दुःख, दुःखरूपी जो उदधि, दुःखरूपी समुद्र। आहाहा! उसका तो किनारा है वहाँ। समझ में आया? **क्लेशोदधि का किनारा है, वह समयसार...** अर्थात् कि यह शुद्धभाव अर्थात् कि ध्रुवभाव **जयवन्त वर्तता है।** टीका करनेवाले अपनी पर्याय में कहते हैं कि यह भाव जयवन्त वर्तता है। आहाहा! दृष्टि वहाँ लगायी है तो यहाँ कहते हैं कि वह भाव जयवन्त वर्तता है। यह हमारे ख्याल में आ गया है। समझ में आया? यह तो दिगम्बर सन्तों की टीका और कथनी है। वे नागा बादशाह से आघा है। ऐसी चीज़ कहीं मिले, ऐसा नहीं। दुनिया को जँचे, न जँचे, कुछ नहीं। चीज़ तो यह है। आहाहा! समझ में आया? आक्षेप करे तो करो, वस्तु तो यह है। आहाहा!

क्लेशोदधि का किनारा है, वह समयसार... वह द्रव्य, ध्रुव **जयवन्त वर्तता है।** ऐसा कहकर अपनी पर्याय में जयवन्त वर्तता है, ऐसा हमको भास हुआ है, हमको भान हो गया है। आहाहा! समझ में आया? हमारी पर्याय में पर्यायवान का भान हो गया है। आहाहा! वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! ध्रुव भगवान, पर्याय में ज्ञान आया, वह पर्याय में पूरी चीज़ है, वह चीज़ आयी नहीं, परन्तु वह क्या चीज़ है, उसका ज्ञान आया और उसे ज्ञेय बनाकर पर्याय में ज्ञान आया तो ऐसा कहते हैं कि यह तो जयवन्त वर्तता है। हमारा भगवान आत्मा ध्रुव तो जयवन्त वर्तता है। आहाहा! वर्तमान दृष्टि में लिया, इस अपेक्षा से कहा है। समझ में आया? **(शुद्ध आत्मा)...** शुद्ध अर्थात् पर्याय की बात यह नहीं। त्रिकाल की बात है। त्रिकाल आत्मा जयवन्त वर्तो।

मुमुक्षु : मोक्षमार्ग की पर्याय नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय ऐसा जानती है कि यह त्रिकाल जयवन्त वर्तता है, ऐसे साक्षी देती है। समझ में आया? हमारे ध्येय में, ख्याल में वह चीज़ आ गयी है। आहाहा! पर्याय वर्तमान है, उसने ध्रुव को पकड़ लिया है। ध्रुव को ज्ञेय बनाकर ज्ञान हो

गया है। हमारी पर्याय के ज्ञान में वह ज्ञेय है, वह दिखता है, वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! शैली तो देखो! एक कलश में कितना भरा है! जैसे कलश अमृत से भरा हुआ हो, वैसे यह कलश है वह, आहाहा! आनन्द की धारा से भरा हुआ है।

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ऐसा कहते हैं कि यह सारतत्त्व जो है, वह जयवन्त वर्तता है। हमारी पर्याय में उसे हमने देखा है। हमारी पर्याय में उसका ज्ञान हो गया है। हमारी पर्याय उसमें प्रविष्ट नहीं और पर्याय हमारी उसमें है नहीं, तथापि हमारी पर्याय में ध्रुव दिखाई दिया, वह जयवन्त वर्तता है, ऐसा का ऐसा जयवन्त वर्तता है। आहाहा! लो! यह मांगलिक किया। पहला कलश है न यह? आहाहा! पावर चढ़ जाये ऐसा है। मीणा समझे? पावर।

जयवन्त... यह समयसार... ध्रुव को समयसार कहा, पर्याय को नहीं। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु जयवन्त वर्तता है। आहाहा! ऐसा... ऐसा... ऐसे वर्तता ही है। ऐसा पर्याय में भान हो गया है। पर्याय ऐसा पुकारती है कि यह जयवन्त वर्तता है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन की पर्याय में, ज्ञान की पर्याय में वह चीज़ आ गयी, पकड़ ली है। सम्यग्दर्शन ने पूरे आत्मा को पचा लिया है। आहाहा! तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन में... है तो पर्याय। पर्याय है तो नहीं उसमें। समझ में आया? परन्तु पर्याय उस ओर झुक गयी है, वह जयवन्त वर्तती है। नित्य वस्तु जयवन्त वर्तती है। समझ में आया? अपनी पर्याय की साक्षी से कहते हैं। आहाहा! कहो, डाह्याभाई! ऐसा कभी सुना नहीं होगा वहाँ जज में। आहाहा!

अब ३९ (गाथा)। यह ३८ गाथा हुई एक और उसका कलश हुआ।

★ ★ ★

गाथा - ३९

णो खलु सहावठाणा णो माणवमाणभावठाणा वा।
णो हरिसभावठाणा णो जीवस्साहरिस्सठाणा वा॥३९॥

मानापमान, स्वभाव के नहिं स्थान होते जीव के।
होते न हर्षस्थान भी, नहिं स्थान और अहर्ष के॥३९॥

अन्वयार्थः—[जीवस्य] जीव को [खलु] वास्तव में [न स्वभावस्थानानि] स्वभावस्थान (-विभावस्वभाव के स्थान) नहीं हैं, [न मानापमानभावस्थानानि वा] मानापमानभाव के स्थान नहीं हैं, [न हर्षभावस्थानानि] हर्षभाव के स्थान नहीं हैं [वा] या [न अहर्षस्थानानि] अहर्ष के स्थान नहीं हैं।

टीकाः—यह, निर्विकल्पतत्त्व के स्वरूप का कथन है।

त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को वास्तव में विभावस्वभावस्थान (विभावरूप स्वभाव के स्थान) नहीं हैं; (शुद्ध जीवास्तिकाय को) प्रशस्त या अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं; (शुद्ध जीवास्तिकाय को) शुभपरिणति का अभाव होने से शुभकर्म नहीं है, शुभकर्म का अभाव होने से संसारसुख नहीं है, संसारसुख का अभाव होने से हर्षस्थान नहीं हैं; और (शुद्ध जीवास्तिकाय को) अशुभपरिणति का अभाव होने से अशुभकर्म नहीं है, अशुभकर्म का अभाव होने से दुःख नहीं है, दुःख का अभाव होने से अहर्षस्थान नहीं है।

गाथा - ३९ पर प्रवचन

णो खलु सहावठाणा णो माणवमाणभावठाणा वा।
णो हरिसभावठाणा णो जीवस्साहरिस्सठाणा वा॥३९॥

मानापमान, स्वभाव के नहिं स्थान होते जीव के।
होते न हर्षस्थान भी, नहिं स्थान और अहर्ष के॥३९॥

देखो, स्वभाव कहा इसमें। पाठ में है न स्वभाव। विभाव को स्वभाव कहा है। कोई कहता है न कि कर्म के निमित्त बिना भाव हो तो वह स्वभाव हो जाये। इसलिए निमित्त से होता है तो विभाव है, ऐसा नहीं। निमित्त के स्वभाव का लक्ष्य छोड़कर अपने में जो रागादि का अभाव हुआ, उसे यहाँ स्वभाव कहते हैं। विभाव को स्वभाव कहते हैं। आहाहा! त्रिकाली स्वभाव तो है ही। क्योंकि '**स्वस्य भवनं स्वभावः**' अपनी पर्याय में '**स्वस्य**' भवन पर्याय में हुआ है न? तो इस अपेक्षा से उस विभाव को भी स्वभाव कहा है। आहाहा!

मानापमान, स्वभाव के नहिं स्थान होते जीव के।
होते न हर्षस्थान भी, नहिं स्थान और अहर्ष के॥३९॥

टीकाः—यह, निर्विकल्पतत्त्व के स्वरूप का कथन है। यह तो शुद्धभाव कहो या निर्विकल्प तत्त्व कहो। दूसरी भाषा में बात करते हैं। आहाहा! यह पुनरुक्ति भावना में नहीं लगती है। तो कहते हैं कि मेरी भावना के लिये मैंने यह बनाया है। आहाहा! दूसरे में तो ऐसा कहा प्रवचनसार आदि, पंचास्तिकाय में कि मेरी प्रवचन भक्ति से मैंने बनाया है, ऐसा कहा। पंचास्तिकाय, प्रवचनसार। समयसार में तो ऐसा कहा कि आत्मा को तत्त्व और अर्थ से जानकर अर्थ में स्थिर होना। ऐसा है वहाँ अन्तिम गाथा में। यहाँ तो कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है, प्रभु! तू सुन। आहाहा! कहते हैं **यह, निर्विकल्पतत्त्व के स्वरूप का कथन है।** त्रिकाल भगवान जो निर्विकल्प अभेदस्वरूप जिसे एक साररूप कहा, जिसे शुद्धभाव कहा, उस शुद्धभाव का अधिकार यहाँ विस्तार से है। समझ में आया? **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को...** भाषा देखो! ऐसे शुद्ध जीव अस्तिकाय—जीवास्तिकाय। जीवास्तिकाय अर्थात् असंख्य प्रदेश है। शुद्ध जीव अस्ति काय। शुद्ध जीव है समूह। आहाहा! गुण का समूह तो है, परन्तु असंख्य प्रदेश का समूह है, ऐसा सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : काय लगाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : काय लगाया है। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ८, गुरुवार, दिनांक १४-०८-१९७५
गाथा - ३९, कलश-५५ प्रवचन - ४

यह नियमसार। नियम का अर्थ यहाँ मोक्ष का मार्ग है। नियम का अर्थ मोक्ष के मार्गरूपी पर्याय, उसका सार। उसका अधिकार है। व्यवहाररत्नत्रय से रहित निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे यहाँ मोक्षमार्ग अथवा नियमसार कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? तो ३९ गाथा। **यह, निर्विकल्पतत्त्व के स्वरूप का कथन है।** पाठ है शुद्धभाव। यह अधिकार शुद्धभाव का चलता है। शुद्धभाव कहो या निर्विकल्पतत्त्व कहो। यह शुद्धभाव पर्याय का शुद्धभाव, नियमसार जो मोक्ष का मार्ग, वह शुद्धभाव है, वह यह नहीं। निश्चयमोक्षमार्ग, वह शुद्ध उपयोगरूप है। शुभ और अशुभरागरहित स्वचैतन्य के अवलम्बन से-आश्रय से उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन, सच्चा दर्शन निर्विकल्प, सम्यग्ज्ञान, स्वसंवेदन ज्ञान और स्वरूप में रमणतारूप चारित्र, आनन्द की दशा, वह शुद्ध पर्याय है, वह शुद्ध उपयोग है। उसकी यह बात नहीं। यह तो त्रिकाली शुद्धभाव का अधिकार चलता है। समझ में आया? आहाहा!

तो कहते हैं कि **यह, निर्विकल्पतत्त्व के स्वरूप का कथन है।** पाठ है शुद्धभाव, उसे यहाँ निर्विकल्प कहा। निर्विकल्प का अर्थ, जिसमें संसार का शुभ-अशुभविकल्प जिसमें है नहीं। आहाहा! और निर्विकल्प अर्थात् अभेद है। आहाहा! चैतन्य जीवास्तिकाय ध्रुव जो जीवास्तिकाय नित्यानन्द प्रभु, वह निर्विकल्प अभेद है। आहाहा! समझ में आया? कल पूछते थे न कि दिगम्बर धर्म वह क्या है? तो विकल्प जो है, उससे रहित आत्मा का—वस्तु का स्वरूप, वह दिगम्बर धर्म है। समझ में आया? आहाहा! **यह, निर्विकल्पतत्त्व के स्वरूप का कथन है।** यह पहले आ गया है अपने। जिस तत्त्व में यहाँ **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है,...** विशेष स्पष्ट किया है। **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है,...** जिसमें कर्म के निमित्त की अपेक्षा भी नहीं और निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं, उसे त्रिकाल निरुपाधितत्त्व कहते हैं। नित्यानन्द सहजात्म शुद्ध

अखण्ड परमस्वभावभाव का पिण्ड, उसे यहाँ त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसा कहा गया है। वस्तु में कभी उपाधि है ही नहीं। वस्तु में कर्म के निमित्त का सम्बन्ध ही नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वस्तु अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञायकभाव, यह निर्विकल्पभाव, त्रिकाल निरुपाधिभाव। उसकी अन्दर दृष्टि किये बिना सम्यग्दर्शन कभी नहीं होता। धर्म की शुरुआत, निर्विकल्पतत्त्व कहो, त्रिकाल निरुपाधिस्वरूप कहो या शुद्धभाव कहो, उसके आश्रय से ही, त्रिकाली ज्ञायकभाव के आश्रय से ही, उसके अवलम्बन से ही सम्यग्दर्शन होता है। सत्यदर्शन, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन। वह निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, यह निर्विकल्पतत्त्व। समझ में आया? आहाहा! निर्विकल्पतत्त्व के आश्रय से निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! यह कहते हैं।

त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है,... यह तो पहले आ गया न अपने कलश में कि नाशवन्त भाव से वस्तु दूर है। भगवान आत्मा जिसे आत्मा कहते हैं ध्रुव, वह नाशवान अर्थात् केवलज्ञान की पर्याय नाशवान है, संवर-निर्जरा की पर्याय नाशवान है, वह नाशवान पर्याय से दूर रहनेवाला है, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! पर्याय में तो उत्पाद-व्यय होता है न? भले संवर उत्पन्न हो, अरे! केवलज्ञान उत्पन्न हो, परन्तु उत्पन्न हुआ एक समय में, दूसरे समय में उसका व्यय होता है। केवलज्ञान की (पर्याय) दूसरे समय में तो व्यय होती है। तो उस केवलज्ञान को भी नाशवान कहा जाता है। आहाहा! तो उससे जो दूर रहता है अन्दर। नाशवान पर्याय से दूर है, अर्थात् कि नाशवान पर्याय उसमें है नहीं। आहाहा!

सम्यग्दर्शन की पर्याय निर्विकल्प शुद्धभाव के अवलम्बन से होता है, सम्यग्दर्शन की पर्याय। ऐसा होने पर भी, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय ध्रुव में नहीं है। समझ में आया? और वास्तव में तो जो ध्रुव नित्य स्वभाव जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उस सम्यग्दर्शन की पर्याय का भी कर्ता नहीं। समझ में आया? उसे यहाँ निर्विकल्पतत्त्व कहते हैं, निरुपाधितत्त्व कहते हैं। आहाहा! जगत को भारी कठिन पड़े। मार्ग तो यह है।

अनादि-अनन्त तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि में यह आया है। यहाँ तो अभी व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति करते-करते सम्यग्दर्शन होता है। महामिथ्यात्व शल्य है। ऐई! पद्मचन्दजी! और यह पैसेवाले कुछ पैसा खर्च करे तो उसमें से धर्म होता है।

मुमुक्षु : सोनगढ़ में नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ में नहीं होता। आहाहा! यह झूठा कहे। आहाहा! तीन लोक का नाथ चैतन्यबिम्ब प्रभु, महासत् आत्मा का सत्त्व, अकेला सत्त्व आनन्द का दल, ज्ञायक का दल, सहजज्ञानस्वरूप त्रिकाल। आहाहा! जिसे पहले कह गये हैं, स्वरूपप्रत्यक्ष। पर्याय की बात नहीं। यह स्वरूप जो है, वह ज्ञान में प्रत्यक्ष है। वह चीज़ ऐसी है। पर्याय में प्रत्यक्ष वह नहीं, वह तो केवलज्ञानप्रत्यक्ष, सकलप्रत्यक्ष हुआ। यह तो स्वरूपप्रत्यक्ष, इसके ज्ञानस्वभाव में स्वरूपप्रत्यक्ष, वही इसका स्वभाव है। समझ में आया? यह तो मात्र यहाँ ही अधिकार है इसमें। इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं है नहीं। समयसार में भी ऐसा अधिकार नहीं। यह पर्याय अधिकार है न, मोक्षमार्ग का। मोक्षमार्ग पर्याय है, तो पर्याय का अधिकार है। तो वहाँ आगे द्रव्य है, वह स्वरूपप्रत्यक्ष द्रव्य है। उसके ज्ञान में वह स्वरूपप्रत्यक्ष ही वस्तु त्रिकाल है। आहाहा! उस तत्त्व में त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है। उपाधिमात्र पर्याय की भी उपाधि उसमें नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वरूपप्रत्यक्ष....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु का स्वरूप ज्ञानस्वरूप ध्रुव। ज्ञानस्वरूप जो है वह स्वरूप्रत्यक्ष है। क्योंकि सकल-विमल प्रत्यक्ष पर्याय में जो आता है, वह तो पर्याय है। केवलज्ञान, वह तो पर्याय है, परन्तु वस्तु में स्वरूपप्रत्यक्ष न हो तो केवलज्ञान की प्रत्यक्ष पर्याय कहाँ से आयेगी? समझ में आया? आहाहा! स्वरूपप्रत्यक्ष ही है। पहले आ गया है। पृष्ठ है। पृष्ठ २ और ९। यह पृष्ठ ही यह आया फिराते हुए। २९। नीचे, एकदम नीचे। स्वरूपप्रत्यक्ष है? एकदम नीचे, एकदम नीचे। और अन्दर में देखना हो तो दूसरे पेरेग्राफ की पहली लाईन। दूसरे पेरेग्राफ में।

यहाँ (ऊपर कहे हुए ज्ञान में) सहजज्ञान, शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूपप्रत्यक्ष है। है? गुजराती है? गुजराती में दूसरा पेरेग्राफ। ज्ञान के

पाँच भेद लिये—मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल और अज्ञान के तीन। परन्तु इन सर्व ज्ञान में... कौनसा ज्ञान? सहजज्ञान जो त्रिकाली ज्ञान है। आहाहा! जो कारणज्ञान है, जो कारणपरमात्मा में ज्ञानस्वभाव कारण जो है, उसे यहाँ स्वरूपप्रत्यक्ष कहा गया है। आहाहा! देखो, है? **सहजज्ञान,...** वह सहजज्ञान त्रिकाल। **शुद्ध अन्त:तत्त्वस्वरूप...** शुद्ध अन्त:तत्त्वस्वरूप यह, पर्याय नहीं। **परमतत्त्व में व्यापक होने से,...** यह ज्ञान पूरे ध्रुव में व्यापक होने से। अनन्त गुण में ज्ञान ध्रुव पूरे तत्त्व में व्यापक है ध्रुवरूप से। आहाहा! अमरचन्दभाई! ऐसी बातें भारी, भाई! है? वह **परमतत्त्व में व्यापक होने से स्वरूपप्रत्यक्ष है।** नीचे। स्वरूपप्रत्यक्ष अर्थात् स्वरूप से प्रत्यक्ष। अन्तर स्वरूप से प्रत्यक्ष चैतन्यबिम्ब ही ऐसा पड़ा है। स्वरूप अपेक्षा से प्रत्यक्ष, स्वभाव से प्रत्यक्ष। ध्रुव, हों! समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष कहा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रत्यक्ष, यह प्रत्यक्ष ही है अन्दर पर्याय बिना की चीज़। आहाहा! यह नियमसार की व्याख्या कितने ही शब्द एकदम नये। समयसार में भी ऐसी बात आयी नहीं। शुद्धकारणपर्याय, स्वरूपप्रत्यक्ष, कारणपरमाणु, कार्यपरमाणु। आहाहा! इसमें विशेष लिया है। आहाहा!

कहते हैं, अरे भगवान! सुन तो सही एक बार! आहाहा! तेरी चीज़ ऐसी जो है ध्रुव नित्यानन्द, सहजानन्द स्वभाव तेरी चीज़, उसमें स्वरूपप्रत्यक्ष का ज्ञान पड़ा है। वह स्वरूपप्रत्यक्ष ही ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया? कहा न बाद में अन्त में, स्वभाव से प्रत्यक्ष। स्वभावरूप प्रत्यक्ष बस अन्दर। पर्याय नहीं। उसमें लिया है, देखो न, **(यहाँ ऊपर कहे हुए ज्ञानों में) सहजज्ञान, शुद्ध अन्त:तत्त्वस्वरूप परमतत्त्व में व्यापक होने से, स्वरूप प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान सकलप्रत्यक्ष है।** दूसरे पेरेग्राफ में। यह तो सकलप्रत्यक्ष पर्याय है। यह स्वरूपप्रत्यक्ष ध्रुव है, आहाहा! द्रव्य है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि यह **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है,...** आहाहा! **ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को...** शुद्ध जीव को, ऐसा न लेकर **शुद्ध जीवास्तिकाय को...** क्योंकि यह सर्वज्ञ में जीवास्तिकाय है, दूसरे में है नहीं। क्योंकि जीव है, वह असंख्य

प्रदेशी है। वह असंख्य प्रदेश उसकी काय है। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र है नहीं। आहाहा! उसमें भी यह दिगम्बर सनातन धर्म में यह बात है, बाकी अन्यत्र कहीं है नहीं। समझ में आया? आहाहा! **शुद्ध जीवास्तिकाय को...** भाषा ऐसी है। शुद्ध-जीव-है-काय। असंख्यप्रदेशी शुद्ध जीवास्तिकाय। आहाहा! **वास्तव में विभावस्वभावस्थान नहीं...** वस्तु जो है ध्रुव चिदानन्द सहजानन्द की मूर्ति उसमें, भाषा स्वभाव ली है, परन्तु विभावस्वभाव कहा, विकल्प आदि विभाव है, उन चार भाव की अभी बात नहीं, वह वाद में आयेंगे, चार भाव वे विभाव स्वभाव कहेंगे, परन्तु यहाँ तो राग-द्वेष आदि पुण्य-पाप के भाव को स्वभावस्थान कहा है। पर्याय में है न? और वे विभावस्थान हैं। वे विभावस्थान स्वभाव में है नहीं आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध जीवास्तिकाय को वास्तव में विभावस्वभावस्थान (विभावरूप स्वभाव के स्थान (प्रकार) नहीं हैं;... आहाहा! गजब बात, भाई! दूसरे प्रकार से कहें तो स्वभाव में संसार के स्थान का भाव है ही नहीं। संसार सब विभावभाव है न? वह स्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! यहाँ तो अभी देव-गुरु-शास्त्र को मानो और यह मानो, यह मानो (तो सम्यग्दर्शन है)। आहाहा! वह तो इसमें भी आया है, भाई! शास्त्र से सुज्ञान होता है, शास्त्र आप्त से उत्पन्न हुआ है। है न अन्दर? पहले में है कहीं, नहीं? कितने में है वह? शास्त्र नहीं? पृष्ठ १६ आया। बाद में कहा।

इष्ट फल की सिद्धि का उपाय सुबोध है.... है? **इष्ट फल की सिद्धि का उपाय सुबोध (सम्यग्ज्ञान) है (अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है)...** पर्याय। **सुबोध सुशास्त्र से होता है,...** देखो, यहाँ इनकार करेंगे कि शास्त्र से उत्पन्न नहीं होता और शास्त्र का ज्ञान हुआ, उससे भी सम्यग्ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। व्यवहार से कहा न? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बतलाया है। आहाहा! एक ओर कहते हैं कि भगवान की वाणी से ज्ञान नहीं होता, दिव्यध्वनि से ज्ञान नहीं होता। क्योंकि दिव्यध्वनि परवस्तु है और परवस्तु को सुनने से विकल्प उठता है। ओहोहो! वाणी परद्रव्य है। '**परदव्वादो दुग्गइ**' परद्रव्य से तो दुर्गति उत्पन्न होती है, विकल्प। प्रकाशचन्दजी! यह बात। यहाँ

लिखा है न। दूसरे में भी कहीं लिखा है। आगम की भाषा है कहीं। पीऊँ ऐसा। अंजुली-अंजुली कर्णरूपी अंजुली से पीऊँ, ऐसा है। लो, यही आया। आठवीं गाथा है। आठवीं-आठवीं। आठवीं गाथा है न? २०वाँ पृष्ठ।

यह परमागम के स्वरूप का कथन है। उन (पूर्वोक्त) परमेश्वर के मुख कमल में से निकली हुई चतुर वचनरचना का विस्तार—कि जो 'पूर्वापर दोषरहित' है... है भाई? **और उन भगवान को राग का अभाव होने से पापसूत्र की भाँति हिंसादि पापक्रियाशून्य होने से 'शुद्ध' है वह—परमागम कहा गया है। उस परमागम ने—कि जो (परमागम) भव्यों को कर्णरूपी अँजुलि पुट से पीनेयोग्य अमृत है,....**

मुमुक्षु : यह भावश्रुत की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से बात है। द्रव्यश्रुत सुना है। वह तो आगम सुना है। उसका वह आगम सुनने से वह कानरूपी... यह पानी पीते हैं न लोग? ऐसे पानी पीवे, ऐसे कानरूपी अँजुली पुट से पानी पीना। भगवान की (वाणीरूप) पानी पीना, यह निमित्त से कथन है। आहाहा! है देखो न अन्दर। **भव्यों को कर्णरूपी अंजुलि पुट...** खोबो-खोबो समझते हो? यह कानरूपी अंजुलि। आहाहा! **कर्णरूप अंजुलि पुट से...** उसमें गुजराती में भाई है। अंजुलि का अर्थ किया है भाई ने, खोबो। गुजराती है? उसमें खोबो किया है। देखो, खोबो है न? खोबो लिया है। यह कानरूपी अंजुलि से अमृत पीना, यह व्यवहार से कथन है। यह निमित्त का ज्ञान कराया। आहाहा! समझ में आया?

एक ओर ऐसा कहे कि भगवान का सम्यग्ज्ञान ध्रुव चैतन्य के अवलम्बन से होता है। सुनने से सम्यग्ज्ञान नहीं होता। निश्चय यथार्थ परमनिश्चय की बात चलती हो तो यह चले। निमित्त क्या है, यह बतलाना हो तो यह चले। आहाहा! समझ में आया? ऐसे तो भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया है और ग्यारह अंग का ज्ञान भी हुआ, वह कोई ज्ञान नहीं। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय तो ध्रुवस्वरूप भगवानस्वरूप प्रत्यक्ष पड़ा है, उसके अन्दर में आश्रय और अवलम्बन लेने से जो पर्याय होती है, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र का ज्ञान है, वह भी स्वभाव में नहीं और शास्त्र के ज्ञान से स्वभाव का ज्ञान होता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा। अभी कहा न ? सुबोध। आया न यह ? **इष्ट फल की सिद्धि...** इष्ट अर्थात् मुक्ति, इस फल की सिद्धि **इष्ट फल की सिद्धि का उपाय सुबोध है...** सम्यग्ज्ञान से मुक्ति उत्पन्न होती है। मुक्ति का सुबोध सुशास्त्र से होता है। वह सम्यग्ज्ञान सुशास्त्र से होता है। यहाँ कहते हैं कि ज्ञान की पर्याय सम्यक् स्वसंवेदन ध्रुव के आश्रय से होता है। अमरचन्दजी! ऐसी बात, बापू!

मुमुक्षु : दोनों में कौन सी बात सच्ची ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। निश्चय से यह है और व्यवहावर से वह है। है अन्दर, देखो।

सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है;... भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी दिव्यध्वनि आती है आप्त से सुशास्त्र निकलते हैं। आहाहा! है ? **इसलिए उसके प्रसाद के कारण आप्त पुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य है (अर्थात् मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल...)** निमित्त से कथन है। आहाहा! **(सर्वज्ञदेव ज्ञानियों द्वारा पूजनीय है)...** आहाहा! निश्चय में तो स्वस्वभाव ही पूजनीय है। समझ में आया ? त्रिकाल आनन्द का नाथ चिद्घन वस्तु, वह पूज्य है। व्यवहार में पर्याय पूज्य है अथवा भगवान को भी पूज्य कहा जाता है। यहाँ अपने चलता है। ३९, ३९ (गाथा) है न ?

शुद्ध जीवास्तिकाय को वास्तव में विभावस्वभावस्थान नहीं... आहाहा! सुनने का विकल्प जो होता है, वह विकल्प स्वभाव में है ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा! **(शुद्ध जीवास्तिकाय को) प्रशस्त या अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से...** भाषा देखो! भगवान चिदानन्द दल प्रभु शुद्ध जीवास्तिकाय नित्यानन्द प्रभु परमस्वभावभाव, वह प्रशस्त-अप्रशस्त मोह (से रहित है)। मोह को दो शब्द लागू किये हैं। प्रशस्त भी मोह है और अप्रशस्त मोह है। ऐसे प्रशस्त राग है और अप्रशस्त राग है, ऐसे प्रशस्त द्वेष है और अप्रशस्त द्वेष है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : विभाव-स्वभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो है। विभावस्वभाव—विकारी स्वभाव। विकारीभाव लेना। देखो! यह '**स्वस्य भवनं**' है न ? पर्याय में होता है। न ? '**स्वस्य भवनं स्वभावः**' समझ

में आया? आहाहा!

स्व पर्याय में होता है, इसलिए स्वभाव कहा जाता है। दूसरी भाषा में कहें तो पारिणामिक सहजभाव जो ध्रुव है, इस अपेक्षा से तो राग को पारिणामिकभाव कहा है, जयधवल में। समझ में आया? परमपारिणामिक भगवान आत्मा, इस अपेक्षा से उदय, राग, मिथ्यात्व आदि है, वह परमपारिणामिक नहीं, पारिणामिक है, ऐसा कहा है; परन्तु वह विभावभाव त्रिकाल में नहीं। आहाहा! गजब बात, बापू! प्रशस्त-अप्रशस्त मोह नहीं। आहाहा! राग भी नहीं, विषय नहीं।

मान-अपमान के हेतुभूत... लो! **मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं;...** लो, यह यहाँ लिये, मान-अपमान के साथ। उसमें तो इतना ही कहा कि ज्ञायकस्वभाव शुद्ध जीवास्ति में विभाव का अभाव है। बस। अब यहाँ दूसरा बोल लिया कि **(शुद्ध जीवास्तिकाय को) प्रशस्त या अप्रशस्त समस्त मोह...** भगवान की वाणी सुनने में भी प्रशस्त मोह।

मुमुक्षु : मोह को प्रशस्त कहा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोह है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मिथ्यात्व मोह की यहाँ बात नहीं। वह मोह है। समझ में आया? परसन्मुख की सावधानी हुई न वहाँ? इस अपेक्षा से मोह कहते हैं। मोह है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : मोह और द्वेष दोनों को प्रशस्त कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ दोनों को प्रशस्त कह दिया है। पंचास्तिकाय में द्वेष को प्रशस्त में नहीं लिया। प्रशस्त में नहीं लिया, द्वेष को प्रशस्त में नहीं लिया। यहाँ लिया है। वहाँ राग को प्रशस्त-अप्रशस्त कहकर द्वेष को अप्रशस्त कहा है पंचास्तिकाय में। यहाँ दोनों को प्रशस्त-अप्रशस्त कह दिया है। आहाहा! समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ परमात्मा...

मुमुक्षु : मोह....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोह। मिथ्यात्व की यहाँ बात नहीं। वह मोह एक मिथ्यात्व का मोह है, वह अप्रशस्त है। वह परसन्मुख के राग की सावधानी, ऐसा मोह है। वह भी एक प्रशस्त राग है और अप्रशस्त स्त्री, कुटुम्ब आदि के लक्ष्य में जाता है तो अप्रशस्त राग है। आहाहा! दूसरी जगह मोह अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो दूसरी चीज़ से लेना है। आहाहा! आगे स्पष्टीकरण आयेगा। ज्ञानी को भी मोह होता है। मोह शब्द से राग। चारित्रमोह है न। आहाहा!

शुद्ध जीवास्तिकाय को... एक बोल हो गया कि विभाव-स्वभाव नहीं। दूसरा बोल यह। **प्रशस्त या अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं;...** आहाहा! मान और अपमान के उदयभाव स्वभाव में है नहीं। निर्लेप वस्तु सहजानन्दस्वरूप पूर्ण परमस्वभाव से अनन्त आनन्द का दल, अनन्त ज्ञान का पिण्ड, ऐसी ध्रुव चीज़ है उसमें मान, अपमान कर्मोदय के स्थान है ही नहीं। आहाहा! वहाँ से शुरु किया। देखो, पहले विभाव से शुरु किया, फिर मान-अपमान। अब हर्ष, यहाँ से लेना है। हर्ष और अहर्ष।

(शुद्ध जीवास्तिकाय को) शुभपरिणति का अभाव होने से... भगवान आत्मा में शुभ दया, दान, व्रत के परिणाम का अभाव होने से। आहाहा! शुभ परिणति शुभ (उसका) वस्तु में अभाव है, वस्तु में वह है नहीं। आहाहा! गजब! **शुभपरिणति का अभाव होने से शुभकर्म नहीं है,...** शुभ परिणति का अभाव होने से शुभकर्म ही नहीं उसे। आहाहा! और **शुभकर्म का अभाव होने से संसारसुख नहीं है,...** शुभकर्म का अभाव होने से आत्मा में संसारी सुख है ही नहीं। आहाहा! कहो, सेठ! यह तुम्हारे सब पैसेवाले सुखी हैं, कहते हैं, वह सुख अन्दर में नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! पद्मचन्दजी! यह पोपटभाई कहते हैं। सुख हो तो यहाँ हम क्यों आवें? ऐसा नहीं कहते? मुम्बई से यहाँ क्यों आयें, वहाँ सुख हो तो। क्यों? पोपटभाई!

मुमुक्षु : मुम्बई में सुख नहीं और सोनगढ़ में है, ऐसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में है। सोनगढ़ में है नहीं और सोनगढ़.... आहाहा!

सोनगढ़ अर्थात् सुवर्ण स्वभाव आत्मा का। सोने को जंग लगती नहीं। काट कहते हैं न? काट (जंग)। उसी प्रकार सुवर्ण स्वभाव भगवान आत्मा में जंग-बंग है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? काय-काय कहते हैं न? जंग। जंग-जंग। सुवर्णपुरी को जंग है ही नहीं। ऐसा सुवर्णपुरी भगवान आत्मा में जंग-फंग है नहीं। आहाहा!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य... है न मद्रास से ८० मील इस ओर वन्देवास। उसका नाम पोन्नूरहिल है। पोन्नूरहिल अर्थात् सोना की टेकरी। उसका नाम ही ऐसा है, पोन्नूरहिल— सोना की टेकरी। वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ध्यान में रहते थे। वहाँ से भगवान के पास गये थे। पोन्नूरहिल। मद्रास से ८० मील इस ओर एक वन्देवास नाम का गाँव है। लगभग दस हजार की आबादी होगी। हम दो बार गये थे। वहाँ पाँच मील दूर है, वह पोन्नूरहिल। वहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ध्यान में रहते थे न। वहाँ आगे। अहो! त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का भरतक्षेत्र में हमको विरह। यहाँ के तीर्थंकर तो नहीं, परन्तु साक्षात् विराजते हैं तीर्थंकर परमात्मा, उनका हमको विरह पड़ा। ऐसा अन्दर विकल्प आया। वन्दन किया। वहाँ भगवान के मुख में से निकला, सत्धर्म वृद्धि होओ। आहाहा! यह क्या है? यहाँ कोई है नहीं और ऐसे शब्द कहाँ से आये?

मुमुक्षु : भगवान के मुख में से तो दिव्यध्वनि निकलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिव्यध्वनि में ऐसा आया। लोगों को ख्याल ऐसा आया कि यह सत्धर्म वृद्धि होओ, ऐसा आया है। दिव्यध्वनि में ऐसा आया। सुननेवाले को ऐसा लगे कि सत्धर्म वृद्धि होओ यह स्वयं आया। वहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य आकार उपस्थित हुए। यह है कौन? नग्नदिगम्बर, कमण्डल। जय महाराज! बैठ गये नीचे। वह तो पाँच सौ धनुष का देह और यह चार हाथ के टिड्डी जैसे (लगे)। चक्रवर्ती राजा बैठे थे, उन्होंने उठा लिया, महाराज! यह कौन टिड्डी जैसा मनुष्य है?' आहाहा! भगवान की वाणी में आया, यह भरतक्षेत्र के धुरन्धर आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य हैं। आहाहा! धर्म की जहोजलाली (प्रभावना) करनेवाले ये हैं। आहाहा! समझ में आया?

शुभपरिणति का अभाव होने से... संसारसुख जीव में है ही नहीं। आत्मा के आनन्द का सुख है। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा तो है। आहाहा! अतीन्द्रिय

सहजानन्द वीतराग आनन्द का यह पिण्ड प्रभु है। उसमें संसार की कल्पना और पैसेवाले सुखी हैं और राजा सुखी है। कहो, पद्मचन्दजी! हम पैसेवाले सुखी हैं, दो-पाँच लाख पैदा होते हों तो हम सुखी हैं। धूल भी नहीं। अभी देखो न सब होता है न मुम्बई में। खलबलाहट-खलबलाहट हो गया है। धावा पड़ता है अन्दर। कुछ न कुछ... कुछ न कुछ... आहाहा! ... बेचारे आ सके नहीं बेचार, बाबूभाई! उनके लिये गये थे वहाँ उनके। आनेवाले थे कोई कहता था भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि संसारी सुख भगवान आत्मा में है ही नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड वह तो आत्मा है। आहाहा! नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति प्रभु है। **संसारसुख का अभाव होने से हर्षस्थान नहीं हैं;...** देखो, संसारसुख नहीं। हर्ष आना, हर्ष आना। यह हर्ष आता है या नहीं? पाँच-पच्चीस लाख पैदा हो जाये, ऐसे पुत्र ६० वर्ष में जन्मे।

मुमुक्षु : आप विराजते हों तो कीमत बढ़ जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम हर्ष आ जाये, लो! यह अभी हुआ था या नहीं? वे वापस पकड़ाये हैं, कहते हैं। हम गये थे न क्या कहलाता है वह? बैंगलोर। १६ दिन। तो दो करोड़ रुपये उसके पास है। भभूतमल मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर है। यहाँ का प्रेम। ८ लाख खर्च किये और ४ लाख स्थानकवासी जुगराजजी और ८ लाख श्वेताम्बर भभूतमल (ने खर्च किये)। बारह लाख का मन्दिर हुआ है। हम १६ दिन रहे न? तो वहाँ आगे हम रहे, वहाँ उसे ४० लाख बढ़ गये। क्योंकि दो करोड़ की स्टील थी। वे ऐसी की ऐसी पड़ी रही और भाव बढ़ गया तो चालीस लाख बढ़ गये।

मुमुक्षु : आपकी १६ दिन की कृपा का फल था?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा लोग ऐसा कहते हैं। आठ लाख खर्च किये और यह महाराज का योग हुआ तो ४० लाख हो गये। यह तो पूर्व के पुण्य के कारण से। अभी पकड़ में आये। सरकार ने पकड़ा है। बड़ा व्यापार है। दो करोड़ की तो स्टील है उनके घर में। दो करोड़ का आसामी। सब स्टील में लगा दिया। स्टील समझते हो? लोहे का। बहुत उत्साही, बहुत उत्साही व्यक्ति। श्वेताम्बर में उसे जाति से बाहर किया है उसके गाँव में से। तुम वहाँ माननेवाले सोनगढ़ दिगम्बर धर्म (मानते हो), जाति बाहर। जाति

बाहर। लाओ। कितने पैसे खर्च किये हैं वहाँ? चालीस हजार देकर जाति में ले लिया। दरकार बिना का व्यक्ति है। हम तो यह माननेवाले हैं। आहाहा! दिगम्बर प्रतिमा, दिगम्बर मन्दिर, इसके अतिरिक्त हम मानते नहीं। आहाहा!

संसारसुख का अभाव होने से हर्षस्थान नहीं हैं; और (शुद्ध जीवास्तिकाय को) अशुभपरिणति का अभाव होने से... भगवान आत्मा में आर्तध्यान है नहीं। आहाहा! चिन्ता की जाल उत्पन्न होती है, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! इस कारण से **अशुभकर्म नहीं है,...** अशुभ परिणति हो तो अशुभ कर्म बँधे। **अशुभकर्म का अभाव होने से दुःख नहीं है, दुःख का अभाव होने से अहर्षस्थान नहीं है।** शोक आत्मा में नहीं। ऐसे प्रतिकूलता आ जाये, वह शोक आत्मा में है नहीं। दो बातें कीं। एक तो यह कि आत्मा में है नहीं और जो हर्ष-शोक, मान, अपमान के विकल्प आदि उठते हैं, तो स्वभाव का आश्रय करने से उनका नाश होता है। समझ में आया? वस्तु में है नहीं— मान, अपमान, शुभ, अशुभभाव, सुख, दुःख। और (पर्याय में) है तो स्वभाव का आश्रय करने से उनका नाश होता है। दूसरा कोई उपाय नहीं। आहाहा! श्लोक-५५ है न?

★ ★ ★

कलश - ५५

(अब, ३९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-)

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रीत्यप्रीतिविमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख-
निर्भेदोदितशर्मनिर्मितवियद्बिम्बाकृतावात्मनि।
चैतन्यामृत-पूर-पूर्ण-वपुषे प्रेक्षावतां गोचरे,
बुद्धिं किं न करोषि वाञ्छसि सुखं त्वं सन्सृतेर्दुःकृतेः ॥५५॥

(वीरछन्द)

प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद अन्तर्मुखी प्रगट सुखरूप।
नभमंडलवत् अकृत, चैतन्यामृत से भरपूर स्वरूप॥
अहो विचारक पुरुष गम्य जो उसमें रुचि क्यों नहीं करे ?
पापरूप सांसारिक सुख की अभिलाषा क्यों मूढ़ करे॥५५॥

टीका:—जो प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है; जो सर्वथा अन्तर्मुख और प्रगट प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ, नभमण्डल समान अकृति[१] है; चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है; जो विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है—ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता और दुष्कृतरूप संसार के सुख की वांछा क्यों करता है।॥५५॥

कलश - ५५ पर प्रवचन

प्रीत्यप्रीतिविमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख-
निर्भेदोदितशर्मनिर्मितवियद्बिम्बाकृतावात्मनि।
चैतन्यामृत-पूर-पूर्ण-वपुषे प्रेक्षावतां गोचरे,
बुद्धिं किं न करोषि वाञ्छसि सुखं त्वं सन्सृतेर्दुःकृतेः॥५५॥

आहाहा! **जो प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है;...** भगवान आत्मा में प्रीति-अप्रीति रहित, वह तो शाश्वतपद है, प्रभु। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रीति-अप्रीति....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वत पद है, ऐसा कहते हैं। शाश्वत पद में प्रीति-अप्रतीति है ही नहीं। आहाहा!

प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है;... यह आत्मा को अभी, हों! सिद्ध होगा तब नहीं। अभी शाश्वत पद भगवान आत्मा का है यहाँ, उसमें प्रीति-अप्रीति है नहीं। आहाहा! मार्ग भारी सूक्ष्म, भाई! आहाहा! सर्वथा अन्तर्मुख। कैसा है भगवान आत्मा ध्रुव?

---

१. अकृत=किसी से नहीं किया गया। (जिस प्रकार आकाश को किसी ने बनाया नहीं है, उसी प्रकार आत्मा को किसी ने नही बनाया है; आत्मा अन्तर्मुख प्रकट अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है, स्वयंसिद्ध शाश्वत है।)

सर्वथा अन्तर्मुख। अन्तर्मुख अन्तरात्मा तो पड़ा है, कहते हैं। आहाहा! अन्तर्मुख होने से अन्तरात्मा का पता लगता है।

मुमुक्षु : जैन धर्म में तो 'सर्वथा' होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा होता है, ऐसा यहाँ कहा। द्रव्य नित्य सर्वथा नित्य है। पर्याय सर्वथा अनित्य है। द्रव्य कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य, ऐसा होगा? समझ में आया? वहाँ तो एक अपेक्षा से ऐसा लिया है परमात्मप्रकाश में कि केवली को इन्द्रिय का सुख नहीं। इन्द्रिय का ज्ञान नहीं तो वह ज्ञान नहीं। ऐसा लिया। एक लिया है। परन्तु यहाँ तो द्रव्य कहो, वस्तु कहो, वह सर्वथा नित्य है। पर्याय सर्वथा अनित्य है। आहाहा! समझ में आया? दूसरी भाषा में कहें तो द्रव्य में पर्याय सर्वथा नहीं है। ऐई! आहाहा! यह तो ऐसी बात है, भाई! ओहोहो! कथंचित् द्रव्य में नहीं और कथंचित् है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : किसी अपेक्षा से है....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में नहीं, पर्याय में है पर्याय। यह निहालभाई ने लिखा है कहीं। आलिंगन करते नहीं, व्यवहार से करते हैं। ऐसा शब्द आ गया है। व्यवहार शब्द रखा है जरा। लोग भड़के न इसलिए। यहाँ तो सर्वथा भगवान आत्मा में पर्याय का अभाव है। कथंचित् अभाव है और कथंचित् सद्भाव वस्तु में हों। पर्याय में पर्याय है। आहाहा! सर्वथा अन्तर्मुख, भगवान आत्मा सर्वथा अन्तर्मुख। कुछ बाह्य में है और कुछ अन्तर में है, ऐसा नहीं। आहाहा!

बहिरात्मा कहते हैं। वह क्यों? कि जो आत्मा के त्रिकाली स्वभाव में विकल्प रागादि, पुण्यादि, पापादि हैं नहीं। परन्तु है नहीं, उसे अपना माने, वह बहिरात्मा है। जो चीज़ बहिर है, अन्तर में नहीं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा में है नहीं, ऐसे विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध उन्हें अपना माने, वह तो बहिर्आत्मा है। बहिर् में चीज़ है, उसे अपनी मानी तो बहिर्आत्मा मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसे शरीर को अपना मानना। यह पुत्र मेरा है, होशियार है, दो हजार की आमदनी करता है। इसको तो आठ हजार की आमदनी है रामजीभाई के पुत्र को। दूसरे

साधारण व्यक्ति को दो हजार का वेतन या ऐसा हो बहुतों को। आठ हजार में कितने आते होंगे, यह अपने को कुछ खबर नहीं। यह सरकार कुछ रोकती है। क्या कहलाता है? इनकम टैक्स और ऐसा सब कुछ डालते होंगे। आहाहा! परन्तु हमारा पुत्र! अरे, मूढ़! कहाँ से तेरा आया? बहिरात्मा है। हमारे पैसे, हम लक्ष्मीवन्त हैं, हम श्रीमन्त हैं। गर्भ से हम श्रीमन्त हैं। श्रीमन्त के घर में हमारा अवतार हुआ है। मूढ़ है! दरबार! ऐसी बातें हैं यह। जो चीज़ अन्दर में नहीं, बाह्य में है, उसे अपनी मानना, वह तो मूढ़ है, बहिरात्मा है। आहाहा! हमारी स्त्री, हमारा मकान, क्या दरबार तुम्हारे कहलातें हैं वे? जमींदार। जमींदार कहलाये न? हमारा जमींदार।

मुमुक्षु : ग्रास का अर्थ ही होता है, कोळियो। बड़ा अर्थ नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : जमींदार हैं, जमींदार हैं हम। एक लाख रुपये की आमदनी है। अब तो बनिया को दो-दो लाख की, पाँच-पाँच लाख की आमदनी अभी है। जमींदार को बाँधी हुई बात होती है, जितना आनेवाला हो उतना आवे। यह बनिया तो दो-दो लाख, पाँच-पाँच लाख पैदा करे महीने में। ऐसा है अभी। अफ्रीका में कितने ही करोड़ोंपति। यह महाजन लोग है न, ... बहुत करोड़ोंपति, बहुत करोड़ोंपति हो गये। यह तो पूर्व के पुण्य के कारण से। परन्तु यह आत्मा करोड़ का पति माने, वह मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

जो सर्वथा अन्तर्मुख और प्रगट प्रकाशमान... आहाहा! भगवान आत्मा प्रगट प्रकाशमान। पर्याय की अपेक्षा से उसे अव्यक्त कहते हैं, परन्तु वस्तु की अपेक्षा से प्रगट प्रकाशमान है, ऐसा कहते हैं। ४९ (गाथा के अव्यक्त के) बोल में आया न छह बोल। समयसार, ४९ (गाथा)। षट द्रव्य ज्ञेय हैं, व्यक्त हैं, उनसे भगवान आत्मा भिन्न है, इसलिए अव्यक्त है। छह बोल आये हैं। छह द्रव्य वे ज्ञेय हैं। व्यक्त हैं—बाहर हैं, उनसे भगवान अन्दर में अव्यक्त भिन्न पड़ा है। उसे अव्यक्त कहा। आहाहा! और कषायसमूह भावकभाव, रागादि कषायसमूह का भावकभाव व्यक्त है। उससे भगवान भिन्न अव्यक्त है। आहाहा! यह यहाँ नहीं लेना है। प्रगट। किस अपेक्षा से कहते हैं, यह जानना चाहिए न। आहाहा! वहाँ तो ऐसा लिया है। चैतन्य सामान्य में चैतन्य की विशेष व्यक्तियाँ

अन्तर्मुख हैं, अन्तर्लीन हैं, इसलिए उसे अव्यक्त कहते हैं। क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं, इसलिए अव्यक्त कहते हैं। पर्याय जितना ही नहीं, इसलिए वह अव्यक्त है। और व्यक्त तथा अव्यक्त एकसाथ ज्ञात हों, तथापि व्यक्त को द्रव्य स्पर्शता नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा! यह पाँचवाँ बोल है। छठवाँ बोल दूसरा है। बाह्य-अभ्यन्तर अनुभव में आने पर भी व्यक्त के प्रति परम उदासीन उद्योतमान है, यह छठवाँ बोल सूक्ष्म है। छह बोल हैं अव्यक्त के। वे यहाँ नहीं लेना। वह तो पर्याय की अपेक्षा से और ज्ञेय की अपेक्षा से अव्यक्त कहा है। यह तो अपनी चीज़ की अपेक्षा से व्यक्त है। आहाहा!

प्रगट प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ,... कैसा है भगवान आत्मा? आनन्द से बना हुआ है। बना हुआ अर्थात् नया बनता है? आनन्द पड़ा ही है। आहाहा! वह आता है न पंचास्तिकाय (में) नहीं? त्रिलोक रचना। कुछ समझ में आये नहीं फिर रोवे न, दूसरा क्या करे? यहाँ की बात बराबर न बैठे इसलिए ऐं...ऐं... ऊँची है, नीची है, फलानी कहे, ऐसा वह लड़का है, रोता है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा, ओहोहो! **प्रगट प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ,...** अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल भरपूर प्रभु आत्मा है। एक समय की आनन्द की पर्याय भी जहाँ गिनती में नहीं। केवली को अनन्त आनन्द और अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए हैं। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, वह तो एक समय की पर्याय यहाँ गिनती में नहीं। आहाहा! ऐसे अनन्त आनन्द-सुख से भरपूर प्रभु है। फिर कहेंगे यहाँ कहेंगे।

जो नभमण्डल समान अकृत है... आकाश वस्तु आकाश है, वह किसी की की हुई नहीं है। अकृत आकाश है। नीचे (फुटनोट में) है। 'किसी से नहीं किया गया। जिस प्रकार आकाश को किसी ने बनाया नहीं है, उसी प्रकार आत्मा को किसी ने बनाया नहीं।' आहाहा! है सत् प्रभु, कौन बनावे उसे? नहीं है, उसे कौन बनावे और है, उसे कौन बनावे? समझ में आया? आत्मा अन्तर्मुख प्रगट अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है, अन्तर्मुख स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। आहाहा!

पर्यायबुद्धिवाले को यह द्रव्यबुद्धि का द्रव्यपना बैठता ही नहीं। पर्यायबुद्धि है, जिसकी पर्याय में क्रीड़ा है, उसे पर्याय के पीछे पूरा आनन्द से भरपूर समुद्र है, (वह)

पर्यायबुद्धि की आड में दिखता नहीं। आहाहा! महासमुद्र हो। एक बड़ा पर्वत हो, लो न! एक तिनका आड़े आ जाये तो पर्वत नहीं दिखता। इसी प्रकार समुद्र है। एक चार हाथ कपड़ा लगा दिया हो तो कपड़ा आँखों से दिखाई दे, वह वस्तु (समुद्र) नहीं दिखाई दे। उसी प्रकार एक समय की पर्याय की रुचि में भगवान त्रिलोकनाथ आनन्द का सागर इसे दिखाई नहीं देता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

नभमण्डल समान आकृतिवाला है... किसी ने किया हुआ नहीं। **अन्तर्मुख प्रकट अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है, स्वयंसिद्ध शाश्वत है।** वस्तु सत्... सत्... सत्... स्वयंसिद्ध शाश्वत् पदार्थ है। आहाहा! **चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ...** चैतन्य के अमृत के पूर से भरपूर। आहाहा! चैतन्य के अमृत का पूर आत्मा है। आहाहा! नदी में बहुत पानी आवे न तो उसे घोड़ापूर कहते हैं। सुना है? दरबार! हमारे तो वहाँ उमराला में नदी है न! बड़ी नदी। २० कोस से पानी। यहाँ बरसात का छांटा भी न हो और ऐसे पानी आवे तो एक माथोडा (मनुष्य सिर तक डूब जाये) तक पानी चला आवे। एकदम इकट्ठा हो न चारों ओर का। गाँवों का, नहरों का। हम लड़के खेलते हों तो ऊपर से पुकार करे। निकल जाओ, पानी का घोड़ापूर आता है। इतना दल हो एकदम आवे। पानी इकट्ठा हो गया हो। कोई कहे कि अब होना होगा वह होगा। क्या होगा? भावनगर इकट्ठा जायेगा समुद्र में। वह पानी भावनगर जाता है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि वह अमृत का पूर बहता है अन्दर में, भाई! वह तुझे खबर नहीं, बापू! समझ में आया? चैतन्य अमृत, ऐसा लिया न? आहाहा!

चैतन्यामृत के पूर से... अमृत के पूर से **भरा हुआ जिसका स्वरूप है;...** आहाहा! अरे! कहाँ देखे? यहाँ द्रव्यदृष्टि करानी है, सम्यग्दर्शन बतलाना है। आहाहा! सब बात छोड़कर पहली यह चीज़ आयी है, उसकी दृष्टि कर। इसके बिना धर्म की शुरुआत कभी नहीं होती। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान कर, पूजा, भक्ति लाख कर, उसमें से आत्मा प्रगट नहीं होता। वह चीज़ कहाँ आत्मा में है? वह तो सब विकल्प है। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र तो तो यही कहना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह शास्त्र पुकार करता है। हमको देखता है, इसके बदले

तू तुझे देख न अन्दर! तू कहाँ अधूरा और अपूर्ण है? पूर्णानन्द चैतन्यामृत से भरपूर है न, नाथ! आहाहा! अन्यत्र कहाँ तेरी सुख की जिज्ञासा जाती है? स्त्री में सुख है, पैसे में सुख है, अधिकारी होते हैं न पाँच-दस हजार के बड़े सुखी हैं। धूल भी सुखी नहीं सुन न! भिखारी है। अपनी बादशाही अन्दर में पड़ी है, उसमें तो जाता नहीं। उसकी सम्हाल करता नहीं और वहाँ बैठता नहीं। आहाहा! इस पर्याय में बैठकर अनादि-अनन्त भगवान शाश्वतपद को तो तू उड़ा देता है और है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्णय खोटा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निर्णय गलत है।

विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है... आहाहा! पहले कहा था कि चार भाव से अगम्य है। ३८ में। कहा था? **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से...** यह तो उनके आश्रय से नहीं होता, इतना कहना है। परन्तु यहाँ वापस कहा, विचारवन्त सम्यग्दृष्टि चतुर पुरुषों को गोचर है। आहाहा! उसे पण्डित कहते हैं। सम्यग्दृष्टि पण्डित चतुर है। आहाहा! जिसने परीक्षा करके आत्मा का स्वीकार कर लिया। ३८ (गाथा) में अगोचर कहा। यहाँ कहते हैं कि गम्य है। वह तो चार भाव के आश्रय से आत्मा अनुभव में नहीं आता। पारिणामिकभाव के आश्रय से अनुभव में आता है, यह बतलाने के लिये चार भाव से अगोचर कहा है।

यहाँ **विचारवन्त चतुर पुरुषों को...** आहाहा! उसे चतुर कहते हैं, उसे विचारवन्त कहते हैं कि जो आत्मा को गम्य (करता है)। आहाहा! 'लाख बात की बात सब छोड़कर निश्चय अर आणो। छोड़ी जगत द्वंद्व फंद निज आतम ध्याओ' यह बात है। **ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता...** मुनिराज कहते हैं, अरे भाई! ऐसा भगवान पड़ा है और तू उसके सामने क्यों नहीं देखता? बड़ा पुरुष आवे और सामने न देखे, (उसी प्रकार) महापुरुष अन्दर पड़ा है, उसे क्यों नहीं देखता? **और दुष्कृतरूप संसार के सुख की वांछा क्यों करता है।** संसार की वांछा इच्छादि क्यों करता है कि यह हो तो ठीक, स्वर्ग हो तो ठीक? भगवान यहाँ पड़ा है न। उसकी रुचि क्यों नहीं करता? रुचि कराने की बात की है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४०

णो ठिदिबंधट्ठाणा पयडिट्ठाणा पदेसठाणा वा।
णो अणुभागट्ठाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा॥४०॥

नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थान नहिं।
नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं॥४०॥

अन्वयार्थ : [जीवस्य] जीव को [न स्थितिबन्धस्थानानि] स्थितिबन्धस्थान नहीं हैं, [प्रकृतिस्थानानि] प्रकृतिस्थान नहीं हैं, [प्रदेशस्थानानि वा] प्रदेशस्थान नहीं हैं, [न अनुभागस्थानानि] अनुभागस्थान नहीं हैं [वा] अथवा [न उदयस्थानानि] उदयस्थान नहीं हैं।

टीका : यहाँ (इस गाथा में) प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध के स्थानों का तथा उदय के स्थानों का समूह जीव को नहीं है—ऐसा कहा है।

सदा निरुपराग[१] जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन (निर्दोष) निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं। ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों में के उस-उस कर्म के योग्य ऐसा जो पुद्गलद्रव्य का स्व -आकार, वह प्रकृतिबन्ध है; उसके स्थान (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं हैं। अशुद्ध अन्तःतत्त्व के (अशुद्ध आत्मा के) और कर्मपुद्गल के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश वह प्रदेशबन्ध है; इस बन्ध के स्थान भी (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं है। शुभाशुभकर्म की निर्जरा के समय सुख-दुःखरूप फल देने की शक्तिवाला वह अनुभागबन्ध है; इसके स्थानों का भी अवकाश (निरंजन निज परमात्मतत्त्व में) नहीं है और द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के उदय के स्थानों का भी अवकाश (निरंजन निज परमात्मतत्त्व में) नहीं है।

१. निरुपराग=उपरागरहित। (उपराग=किसी पदार्थ में, अन्य उपाधि की समीपता के निमित्त से होनेवालो उपाधि के अनुरूप विकारीभाव; औपाधिकभाव; विकार; मलिनता।)

इस प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ११वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी,
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्,
जगदपगत-मोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥

(वीरछन्द)

जिसमें बद्धस्पृष्ट आदि सब भाव सदा ऊपर तिरते।
फिर भी वे चैतन्यरूप में कभी प्रतिष्ठित नहिं होते॥
अहो जगतजन! मोह रहित होकर निज का अनुभवन करो।
सर्व ओर से सदा प्रकाशित सम्यक् एक स्वभाव लखो॥

***श्लोकार्थ :*— जगत को मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान ऐसे उस सम्यक् स्वभाव का ही अनुभवन करना चाहिए कि जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।**

श्रावण शुक्ल ९, शुक्रवार, दिनांक १५-०८-१९७५
गाथा - ४०, प्रवचन - ५

नियमसार। मोक्ष का मार्ग जो पर्याय है निश्चय से वह मोक्ष का मार्ग किसके आश्रय से उत्पन्न होता है? यह अधिकार चलता है। समझ में आया? शुद्धभाव है न शुद्ध? तो शुद्धभाव का अर्थ त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह शुद्ध है। पर्याय के शुद्ध की यहाँ बात नहीं। निश्चयमोक्षमार्ग है, वह एक ही मार्ग है, परन्तु वह निश्चयमोक्षमार्ग है, वह पर्यायरूप है। वह पर्यायरूप मार्ग किसके अवलम्बन से और किसके आश्रय से होता है, यह बात चलती है। यह शुद्धभाव। गाथा।

णो ठिदिबंधट्ठाणा पयडिट्ठाणा पदेसठाणा वा।
णो अणुभागट्ठाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा ॥४०॥

नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थान नहिं।
नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं ॥४०॥

यह गुजराती है। हिन्दी नहीं?

नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थान नहिं।
नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं ॥४०॥

देखो, किस शैली से बात करते हैं? **टीका : यहाँ प्रकृतिबन्ध,...** व्यवहार भी बतलाते हैं। आत्मा पर्याय में अशुद्धरूप से परिणमता है, तब उसमें निमित्तरूप से जो कर्म बँधते हैं, उनकी बात करते हैं। अशुद्ध अन्तःतत्त्व। यह शुद्धभाव है, इससे (विपरीत) अशुद्ध अन्तःतत्त्व पर्याय का। अशुद्ध अन्तःतत्त्वरूप पर्याय उसे प्रकृति, बन्ध आदि निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, वह वस्तु में नहीं, ऐसा बतलाना है। समझ में आया? वह भी व्यवहार है, जैसा सर्वज्ञ ने देखा वैसा। ऐसी चीज़ अन्यत्र नहीं। कहते हैं कि अपनी पर्याय में जब मलिनता होती है तो उस मलिनता का निमित्त और प्रकृति आदि बन्ध का उपादान कारण उससे है। तो वह निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध अशुद्ध पर्याय के साथ कर्म का है। समझ में आया? त्रिकाली शुद्धभाव के साथ वह सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! वस्तु सूक्ष्म है थोड़ी। यह कहा, देखो!

यहाँ (इस गाथा में) प्रकृतिबन्ध,... इसका स्पष्टीकरण करेंगे। **स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध के स्थानों का तथा उदय के स्थानों का समूह जीव को नहीं है...** जीव को नहीं। जड़ को है? आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञायक ध्रुव सुख का सागर। कहो, सेठ! सागर आया। सागर से आये हैं। ... आये न। कल कहते थे। ... आहाहा! भगवान आत्मा तो सुख का अतीन्द्रिय आनन्द का रसरूप सागर है। उसका सहज परम आनन्दस्वरूप, उसका भाव है, उसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। उस शुद्धभाव में... यहाँ देखो, **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है...** भगवान आत्मा का स्वरूप कैसा है? निरूपराग—मलिनतारहित उसका स्वरूप है। क्या कहना है? मलिनता की पर्याय

(और) उस कर्मप्रकृति को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। समझ में आया? वस्तु में मलिनता है नहीं। पर्यायदृष्टि को छुड़ाने के लिये द्रव्यस्वभाव की दृष्टि कराते हैं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात भगवान यह तो।

कहते हैं, **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है...** नीचे (फुटनोट में) है। **उपरागरहित। उपराग=किसी पदार्थ में, अन्य उपाधि की समीपता के...** कर्म के निमित्त की समीपता **निमित्त से होनेवालो उपाधि के अनुरूप...** मलिनता के अनुरूप समूहरूप **विकारीभाव; औपाधिकभाव; विकार; मलिनता।** उसे उपराग कहते हैं। आहाहा! **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है...** शुद्धभाव, शुद्ध चैतन्य आत्मस्वभाव वह त्रिकाल निरूपराग है। उसमें राग का सम्बन्ध त्रिकाल स्वभाव में नहीं। उसकी दृष्टि, कर्म के निमित्त से पर्याय अशुद्ध है, उस अशुद्धता के निमित्त से प्रकृति-स्थिति कर्म के रजकण में स्वयं से पड़ती है, परन्तु उन दोनों का स्वभाव आत्मा में नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा, जहाँ दृष्टि देनी है और जो सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा है, वह तो निरुपराग स्वभाव है। डाह्याभाई! ऐसा कठिन समझना!

गोम्मटसार में आता है कि कर्म के कारण से ऐसा... ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है और दर्शनावरणीय से (दर्शन रुकता है)। अलिंगग्रहण में आ गया है। बहुत विस्तार से आया है। सुना? अलिंगग्रहण में कर्म का सम्बन्ध ... आत्मा को है। कितना बोल है? ११वाँ बोल। बाहर की इन्द्रिय के विषय का भोक्ता आत्मा नहीं। ११वाँ ऐसा आया था कि भगवान आत्मा को... कर्म के सम्बन्धरहित भगवान आत्मा है। समझ में आया? वस्तु तो कर्म के सम्बन्धरहित ही है। पर्याय में कर्म के निमित्त के लक्ष्य से मलिनता जो उत्पन्न होती है, वह मलिनता त्रिकाल में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? कर्म का सम्बन्ध है। उसका अर्थ ऐसा आया कि जिसमें छह ज्ञानावरणीय कारण से ज्ञानावरणीय बँधते हैं, छह बोल से। छह बोल से ज्ञानावरणीय बँधता है। समझ में आया? तत्त्वार्थसूत्र में आता है। ... अन्तराय ... छह बोल है। वास्तव में यह छह भाव है, उनसे आत्मा भिन्न है। निरूपराग कहा न? वे छह भाव है, वे दोष हैं, मलिनता है। आहाहा! तो मलिनता का भाव और वह निमित्त पाकर कर्म की प्रकृति अपने कारण से परिणमती है, उन दोनों

का आत्मा में अभाव है। गजब भाई! कर्मग्रन्थ में ऐसा आवे कि आत्मा... ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है, दर्शनावरणीय से (दर्शन रुकता है)। आत्मा **निरुपराग जिसका स्वरूप है...** मलिनता जो छह प्रकार कहे, जिनसे ज्ञानावरणीय बँधता है, छह प्रकार से दर्शनावरणीय बँधता है। ....

मुमुक्षु : परसों....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, परसों नहीं, बहुत दिन हो गये। ११ बोल हैं! ... पहली शुरुआत की थी, उसमें से लिये थे। ... नहीं? नहीं थे।

सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है... इसका अर्थ कि जो कर्म के निमित्त के संग से अपनी पर्याय में जो मलिन छह दोष से ज्ञानावरणीय बँधता है, वे छह बोल हैं, वे द्रव्यस्वभाव में नहीं। और वे द्रव्यस्वभाव में नहीं, वे छह बोल कर्म के बन्ध मं निमित्त होते हैं। समझ में आया? तो ज्ञानी को 'वह उपराग है ही नहीं अन्दर में' ऐसी जब दृष्टि होती है, तब उपराग उसे नहीं, ऐसी दृष्टि हुई तो उपराग थोड़ा तो है, इसलिए ज्ञानावरणीय तो बँधता है। चौथे, पाँचवें, छठवें में आदि है या नहीं? दसवें तक छह कर्म बँधते हैं। दसवें गुणस्थान तक राग है न। क्या कहते हैं? सुनो अब।

जिन छह प्रकार से ज्ञानावरणीय बँधता है, वे उसके मलिनभाव हैं। और उस मलिनता का निमित्त और कर्म स्वयं से उत्पन्न हुआ ज्ञानावरणीय, इस राग की अपेक्षा रखे बिना, इस दोष की अपेक्षा रखे बिना, कर्म की पर्याय बँधती है, वह दोष की अपेक्षा रखे बिना, इतना दोनों का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है तो यहाँ कहते हैं कि **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन (निर्दोष)...** निर्दोष भगवान आत्मा। आहाहा! **निज परमात्मतत्त्व को...** निज परमात्मतत्त्व को। जब दृष्टि हुई कि 'मेरा तत्त्व ही निर्दोष है, मलिनता रहित है।' — ऐसी जब दृष्टि होती है तो दृष्टि के विषय में वह है नहीं। समझ में आया? ज्ञानी को भी पर्याय में कर्म तो बँधते हैं। कर्म बँधते हैं तो कारण भी है, परन्तु वह ज्ञान में ज्ञेय हो गया है। समझ में आया? निरुपराग।

गोम्मटसार में ऐसा कहते हैं कि छह प्रकार से आत्मा ज्ञानावरणीय बाँधता है, छह प्रकार से दर्शनावरणीय बाँधता है, ... साता वेदनीय बाँधता है। वह भाव तो मलिन

है। तो मलिनता ... उसके कारण से बँधते हैं। परन्तु यहाँ कहते हैं कि उस आत्मा में वह मलिनता है ही नहीं। छह प्रकार की मलिनता जो है... आहाहा! समझ में आया? वह सदा भगवान निरुपराग, उपरागरहित है। ऐसी जिसे दृष्टि हुई, आत्मा तो ऐसा है, परन्तु जिसकी दृष्टि ऐसी हुई कि 'मैं निरुपराग भगवान आत्मा हूँ।'—ऐसी दृष्टिवन्त को ज्ञानावरणीय तो बँधता है। चौथे, पाँचवें, छठवें में बँधता है या नहीं? तो कहते हैं कि वह जो छह प्रकार हुए, वे पर्याय में जो हुए, उनका निरुपराग स्वभाव स्वरूप भगवान आत्मा का, उसकी जिसे दृष्टि हुई, वह छह बोल का ज्ञाता हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! भाई! थोड़ी सूक्ष्म बात है। ... चला था। बहुत सरस। एक घण्टे। वह यहाँ बात आयी है।

भगवान आत्मा को कर्म का असम्बन्ध है। यह उपयोग की व्याख्या है, द्रव्य की नहीं। वह तो द्रव्य में है ... द्रव्य का उपयोग ऐसा है। द्रव्य का उपयोग उसे कहते हैं, शुद्ध उपयोग। उस शुद्ध उपयोग के साथ कर्म का सम्बन्ध नहीं है। उपयोग के साथ कर्म का निमित्त सम्बन्ध नहीं। आहाहा! सूक्ष्म तो है। अर्थात् जिसे आत्मा निरुपराग स्वरूप है, ऐसी दृष्टि हुई और ऐसा उपयोग जो शुद्ध हुआ तो उसके उपयोग में जरा छह प्रकार बँधे ऐसा भाव तो है। ज्ञानावरणीय बँधता है या नहीं चौथे में? पाँचवें में बँधता है? यहाँ तो इनकार करते हैं कि उपयोग में है ही नहीं। आत्मद्रव्य में तो है नहीं, तो उसका उपयोग शुद्ध है, उसमें कर्म का सम्बन्ध रखे, वह भाव उसमें है ही नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान आत्मा निरुपरागस्वरूप निर्दोष है, ऐसा जिसे उपयोग में आया तो वह शुद्ध उपयोग है। वह शुद्ध उपयोग है, वह अपने आत्मा के परिणाम हैं। और उसके साथ जो ज्ञानावरणीय छह प्रकार से बँधता है, वह आत्मा के परिणाम नहीं। आस्रव है न, आस्रव के परिणाम हैं न। आस्रवतत्त्व जीव में है नहीं। वह तो जीव में नहीं, परन्तु उसके उपयोग में भी नहीं। वहाँ ऐसा लिया है। उपयोग में ज्ञेय का अवलम्बन नहीं, ऐसा आत्मा का ज्ञान है। उपयोग बाहर से आता नहीं, ऐसा अपना ज्ञान है। आहाहा!

उपयोग कर्मबन्ध का कारण नहीं। ....समझ में आया? अर्थात् दो बातें की हैं

कि वस्तु है निर्दोषस्वरूप भगवान आत्मा, तो उसे तो कर्म का सम्बन्ध है ही नहीं। मलिनता ही नहीं उसमें। ऐसी जिसे दृष्टि हुई उपयोग, द्रव्यदृष्टि हुई द्रव्य की कि यह स्वभाव ज्ञानानन्द, सहजानन्दस्वरूप है तो उसके उपयोग में भी कर्म के सम्बन्ध का निमित्तपना उसमें है नहीं। ११वाँ ... कर्मबन्ध का कारण... उपयोग से कर्मबन्ध होता ही नहीं। तो वह उपयोग आत्मा का, शुद्ध उपयोग वह आत्मा का गिनने में आया। और उस समय जो (कर्म) बँधते हैं, वह व्यवहारनय का विषय हो गया, जाननेयोग्य है, ऐसा रहा। समझ में आया? अमरचन्दभाई! आहाहा! उस समय बहुत चला था, बहुत एक घण्टे। आठों ही कर्म। छह प्रकार... ... यह छह बोल बोले थे। निह्नव दोष... तत्त्वार्थसूत्र में है। ... जिसे बन्धन...

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा निरुपराग स्वभाव है। है? **निरुपराग जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन (निर्दोष) निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं।** इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ निर्दोष परमात्मस्वरूप की जिसे दृष्टि हुई, अनुभव हुआ तो उसके उपयोग में यह छह दोष है ही नहीं। उपयोग अशुद्ध है, वह ज्ञान का ज्ञेय हो गया। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह तो ... आठ कर्म, उसके कारण ऐसा होता है। है अवश्य वह, व्यवहार का विषय है सही, परन्तु वस्तु की दृष्टि जिसे हुई तो वस्तु निरुपराग है, निर्दोष है। तो जिसकी दृष्टि हुई, वह भी निर्दोष है। आहाहा! तो निर्दोष पर्याय में मलिनता के परिणाम का अभाव है। आहाहा! जैसे द्रव्य में सदोष का अभाव है, उसी प्रकार वैसी दृष्टि करनेवाले के उपयोग में भी छह प्रकार का दोष है, वह उपयोग में भी नहीं। आहाहा! तब शास्त्र में लिखा है न कि चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में अरे! छठवें में गणधर को सात-आठ कर्म बँधते हैं। सात बँधते हैं। सात कर्म बँधते हैं न? उसमें तो आया नहीं।

मुमुक्षु : वह मात्र पर्याय का कथन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय में है, परन्तु उपयोगरूपी पर्याय जो स्वभाव के साथ जोड़ दी, उसमें है नहीं। अब है, इसलिए ज्ञान का ज्ञेय हो गया, व्यवहारनय

का। अपना नहीं, ज्ञान का ज्ञेय हो गया परज्ञेयरूप से। कठिन बात है। कर्म का बड़ी गड़बड़ है अभी। आठ कर्म के कारण से भटकता है, ऐसा और वैसा। सुन तो सही! आहाहा!

तो कहते हैं कि जितने छह बोल हैं तो सही चौथे गुणस्थान में, मुनि को छठवें में है। तब ज्ञानावरणीय बँधता है न निमित्तरूप से? वह यहाँ कहते हैं कि सदा निरुप प्रभु आत्मा निरुपराग ऐसी आत्मचीज़ और ऐसी चीज़ को माननेवाला उपयोग, उसमें कर्मबन्धन के जो छह प्रकार हैं, वे उपयोग में नहीं। द्रव्य में तो है नहीं, उपयोग में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म है। तब एक घण्टे चला था। ऐसे छह प्रकार से दर्शनावरणीय। तो यहाँ तो कहा कि आत्मा तो निरुपराग है, दोषरहित है और दोषरहित जिसके लक्ष्य में, उपयोग में आया, वह उपयोग छह दोषरहित है। तथापि वहाँ कर्म बँधते हैं, ऐसी तो चीज़ है। उसके छह प्रकार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, असातावेदनीय के परिणाम है न ... असाता बँधती है, साता... अनुकूलता आदि... भाव तो है। सदा निरुपराग भगवान आत्मा ऐसा जहाँ उपयोग में बोध हुआ तो छह कारण के छह बोल जो हैं, उसे तो ज्ञान का ज्ञेय हो गया। समझ में आया? अस्ति सिद्ध की। क्योंकि वस्तु में है नहीं, उपयोग जिसमें हुआ शुद्ध चैतन्य का, उसमें है नहीं। तो अब बन्ध तो कहा है शास्त्र में लिखा है कि चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें में बँधता है। भले कर्म बँधता है, उसके कारण से परमाणु की पर्याय, परन्तु उसमें मलिन परिणाम निमित्त तो है न। देखो, यह तुम्हारा आया इसमें? ... भाई को उन साधु के साथ... रामविजय, उनके भगत थे। श्वेताम्बर है न। .... साथ में चर्चा करनी है रामविजय ने कहा। भाई! हम चर्चा करेंगे परन्तु पहले ऐसा निश्चित करो कि कर्म से विकार होता है। यह कहे, कर्म से विकार होता है, यह हमारे मान्य नहीं। अपनी पर्याय में मलिनता का भाव तो अपने कारण से होता है, कर्म तो निमित्तमात्र है। समझ में आया? अशुद्ध उपादान की पर्याय में विकार आदि भाव बन्ध का कारण तो स्वयं के कारण से है। परन्तु वह शुद्ध उपादान की पर्याय... आहाहा!

सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन (निर्दोष)... अंजन नहीं अंजन

(निर्दोष) निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के... अर्थात् द्रव्यकर्म, जघन्य (मध्यम, या उत्कृष्ट स्थिति बन्ध पड़ता है), उसका निमित्त कारण जो मलिन पर्याय है, वह आत्मा में नहीं और ज्ञानी के उपयोग में भी नहीं। आहाहा! बड़ी कर्म की गड़बड़ है न। कर्म से होता है... कर्म से होता है। भाई! कर्म परद्रव्य है। 'कर्म बेचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' आता है? भक्ति में आता है, पूजा में आता है। 'अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' अकेली अग्नि को घण नहीं पड़ते, परन्तु अग्नि जब लोहे का संग करती है, लोहे में जाती है, तब घण पड़ते हैं। उसी प्रकार आत्मा निमित्त का संग करके विकार करता है तो घण पड़ते हैं। आहाहा! यहाँ तो दूसरी चीज़ लेनी है।

मुमुक्षु : (स्वभाव में) नहीं तो ज्ञानी को भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बात लेनी है। आहाहा! ज्ञानी को, धर्मात्मा को निरुपराग ऐसे निरंजन निर्दोष निज परमात्मतत्त्व, उसे **वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं।** जो कर्म में जघन्य, मध्यम आदि स्थिति पड़ती है, उसका जो निमित्तकारण मलिन पर्याय है, वह आत्मा के उपयोग में नहीं। आहाहा! ऐसी बात। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वभाव में तो नहीं, परन्तु स्वभावदृष्टिवन्त को भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं। जो वस्तु है, वह वस्तु तो अबन्ध और शुद्ध ध्रुव, परन्तु उसका उपयोग हुआ, वह अबन्धपरिणाम है। अबद्धस्वभाव के आश्रय से परिणाम होता है तो अबद्ध होता है। अबद्ध कहो या मोक्षमार्ग की पर्याय कहो। आहाहा! उस अबद्धपरिणाम से, अबद्धस्वभाव से और अबद्धपरिणाम से कर्म के बन्ध में निमित्त हो, ऐसा तो है नहीं उसमें। आहाहा! समझ में आया? तो कहते हैं कि भगवान निरुपराग सदा निरंजन परमात्मतत्त्व चैतन्यचमत्कार ऐसी उस चीज़ में वास्तविक कर्म की जघन्य स्थिति, मध्यम, उत्कृष्ट जो कर्म में पड़ती है, उसमें जो निमित्त होता है अशुद्ध मलिन परिणाम, वे दोनों उसमें है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

श्वेताम्बर में तो कर्म की ही माँडी है पहले से। कर्म से होता है, कर्म से होता है।

यह दिगम्बर में भी यह माँडी है अभी। चर्चा होती है न। विकारी पर्याय जो होती है आत्मा में... यह ६२ गाथा है पंचास्तिकाय में। १८ वर्ष पहले (संवत्) २०१३ के वर्ष। वहाँ ईसरी में बहुत चर्चा हुई थी वर्णीजी के साथ। कमरे में। ... भगवानदास... पहली ... २०१३ के वर्ष। पैसे लिखाओ....

कहते हैं कि भाई! कि वस्तु जो है, वह निरुपराग दोषरहित है। वापस स्पष्टीकरण किया न? कि वह निरंजन... निरंजन है। अंजन अर्थात् मैल नहीं। आहाहा! **निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** मैलरहित निज परमात्मतत्त्व में **वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं।** तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसका जो उपयोग हुआ दृष्टि का, शुद्ध चैतन्य का उपयोग जो हुआ शुद्ध, उसमें भी कर्मबन्ध का निमित्त कारणभाव है नहीं। है, वह ज्ञान का ज्ञेय हो गया। चौदह प्रकार हैं। कर्म में निमित्त पड़ता है वह स्वभाव, तो दोनों व्यवहार हो गया और दोनों व्यवहारनय का विषय हो गया। आहाहा! समझ में आया? बहुत गड़बड़, अभी तो बहुत गड़बड़।

वहाँ तो ऐसा कहा है ६२ गाथा में, पंचास्तिकाय। अस्तिकाय सिद्ध करना है न? पंचास्तिकाय। अस्तिकाय सिद्ध करना है तो उसकी पर्याय में विकार है, वह उसमें है, उसके अस्तिकाय में है। तो पर्याय में मिथ्यात्व हो, राग हो, अनन्तानुबन्धी कषाय के परिणाम, उन परिणाम के कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान वह पर्याय है। विकारी पर्याय का कर्ता विकारी पर्याय, विकारी पर्याय का कार्य विकारी पर्याय, विकारी पर्याय का कारण विकारी पर्याय, विकारी पर्याय का अपादान विकारी पर्याय, विकार से हुई है, द्रव्य-गुण से नहीं, निमित्त से नहीं। आहाहा! सुजानमलजी! यह विकारी पर्याय एक समय में षट्कारकरूप से सत् है न? है न? है उसका हेतु... होता नहीं। सत् अहेतुक होता है, सत् को हेतु होता नहीं। तो उस पर्याय में षट्कारक परिणमन है, वह द्रव्य-गुण से नहीं और दूसरे कारक हैं कर्मादि के, उनसे नहीं। ऐसा पाठ है ६२ गाथा में। परकारक से नहीं। इतना सिद्ध किया है पंचास्तिकाय में। उसके अस्तित्व में है।

यहाँ कहना है कि उसके द्रव्यस्वभाव में नहीं। समझ में आया? द्रव्यस्वभाव में तो है नहीं, परन्तु द्रव्यस्वभाव का जिसे उपयोग, दृष्टि हुई, ऐसे उपयोग में भी वह छह

प्रकार का परिणमन उसके उपयोग के परिणाम में भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐई! पद्मचन्दजी! रुपये कमावे न एकदम, इसलिए मानो चतुर हो गये होशियार... बुद्धि के बारदान पैसे पाँच-पाँच लाख पैदा करते दिखते हैं। बारदान समझे? खाली बोरा। पाँच-पाँच लाख पैदा करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसा पैदा करने में बहुत बुद्धि लगानी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यही कहते हैं मूर्खता है तो भी पैदा करता है। क्योंकि पैसे का आना, वह तो उसके कारण से आते हैं। वह राग किया, इसलिए आते हैं—ऐसा भी नहीं। स्वतन्त्र जड़ की पर्याय है। आहाहा! 'मैंने कमाया और मैंने ध्यान रखा, इसलिए कमाया' यह सब भ्रम है, मिथ्यात्व भ्रम है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य को ऐसी वस्तु कहनी है। भगवान! तेरी चीज़ जो निरंजन परमात्मतत्त्व है, (वह) परमात्मतत्त्व अंजन अर्थात् मैलरहित है। उसमें यह कर्मप्रकृति की स्थिति जड़ की उत्कृष्ट है नहीं। इसका अर्थ? कि जो भाव कर्म की स्थिति में निमित्त पड़ता है, वह भाव भी तेरे उपयोग में नहीं। समझ में आया? ऐसी चीज़ है। इन छह कारणों में भी दर्शनमोहनीय बँधता है। वह तो अज्ञानी को बँधता है। जिसे द्रव्यस्वभाव उपयोग में आया, उसकी पर्याय में दर्शनमोह की मलिनता नहीं। दर्शनमोह की मलिनता नहीं, उपयोग में नहीं। तो दर्शनमोह बँधे, ऐसा निमित्त भी उसमें है नहीं, परन्तु जो चारित्रमोह बँधता है अभी छठवें, चौथे, पाँचवें में, वह तो बँधता है उसके कारण से। परमाणु की पर्याय स्वयं से कर्मरूप होती है। राग है तो होती है, ऐसा भी नहीं। जैसे अपने विकार में परचतुष्टय की आवश्यकता नहीं, परकारक की अपेक्षा नहीं, उसी प्रकार परमाणु में कर्मरूप से परिणमन होने में राग और दोष की अपेक्षा नहीं। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म आवे भाई यह तो, ... यह है। आहाहा!

मुमुक्षु : राग होता है तो कर्म के कारण से न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, स्वयं से। कहा न। स्वयं से है, परन्तु जो द्रव्य-वस्तु की दृष्टि हुई वह दोष उसके उपयोग में भी नहीं। अशुद्ध उपयोग है थोड़ा, वह ज्ञान का ज्ञेय हो जाता है। व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है, ऐसा आता है न १२वीं गाथा। ११वीं

गाथा है। भूतार्थ, सत्यार्थ का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा ११वीं गाथा में आया। १२वीं में आया कि व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है। उसे अशुद्धता तो है थोड़ी। अशुद्धता है। शुद्धता कम है तो ऐसा जानना, उसका नाम व्यवहार है। जाना हुआ प्रयोजनवान है, आदरणीय नहीं। समझ में आया? गजब बातें, भाई! यह तो जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ, आहाहा! जिन्हें एक समय में और तीन काल-तीन लोक... तीन काल समा जाये एक समय में। आहाहा! समन्तभद्राचार्य ने कहा न? समन्तभद्राचार्य। प्रभु! तुम सर्वज्ञ हो उसका कौन सा लक्षण हमको समझ में आया? यह अनन्त द्रव्य में एक समय में उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक समय में होता है। अभी कोई कहता था कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव। उत्पाद-व्यय-ध्रुव? ऐसा कहता था। एक श्वेताम्बर के साथ बात हुई थी। उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक समय में? अपने में से कोई कहता था।

मुमुक्षु : हरिभाई डॉक्टर कहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हरिभाई डॉक्टर। हाँ, हरिभाई डॉक्टर, साळंगपुर। वे कहते थे कि श्वेताम्बर साधु के साथ चर्चा हुई तो कहे, एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन? लो! इतनी भी खबर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! तुम्हारा सर्वज्ञपना कैसा है, यह निर्णय किया कि समय एक और तीन चीज़, उत्पाद-व्यय-ध्रुव। उसका आपको ज्ञान हो गया। समय एक और तीन का ज्ञान, ऐसे अनन्त द्रव्यों के तीन का (ज्ञान हुआ), यही आपका सर्वज्ञपना है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि निरुपराग सदा त्रिकाल जिसका स्वरूप है, ऐसे निरंजन— अंजन नहीं, निर्दोष निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं। तो इसका अर्थ यह हुआ कि निरंजन निराकार प्रभु शुद्ध चैतन्यघन, जिसके सम्यग्दर्शन में, ज्ञान में आ गया, उसे भी बन्ध का स्थान और निमित्तपना उसके है नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश, ... धर्म का उपदेश है। कुछ व्रत पालना, अपवास करना, प्रौषध करना, (ऐसा कहे तो समझ में आये भी सही)। अरे! भाई! सुन तो सही, बापू! तेरी चीज़ क्या है? आहाहा!

भगवान निरंजन निराकार शुद्ध आनन्दघन ऐसा दृष्टि में जब आवे, तब सम्यग्दर्शन होता है। तो सम्यग्दर्शन में शुद्ध उपयोग होता है पहले और शुद्ध उपयोग में मलिनता की पर्याय का अभाव है। समझ में आया? जिस कारण से साता बँधती है। साता बँधती है। असाता-असाता बँधती है। छठवें गुणस्थान तक असाता बँधती है। सातवें से फिर साता बँधती है। पश्चात् असाता नहीं। तो छठवें गुणस्थान में गणधर हों, उन्हें भी असाता तो बँधती है। आहाहा! तो कहते हैं कि जो परिणाम निमित्त पड़ते हैं साता-असाता में... आहाहा! वे परिणाम द्रव्य में है नहीं। उसके निमित्त से नैमित्तिक कर्म की स्थिति पड़ी, वह भी द्रव्य में नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! यह तो तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव ने कहे हुए पदार्थ की स्थिति। एक तो नहीं ऐसा बतलाया; दूसरा, वह पर्याय में है। ऐसी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश (बन्ध) सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं हैं। समझ में आया? एक-एक व्यवहार है, वस्तु में नहीं। यह उपयोग में नहीं, ऐसा सिद्ध कर दिया। नीचे भी वीतराग ने देखा हुआ व्यवहार है, वह व्यवहार लिया है। आहाहा!

साता-असाता, ऐसे मोहनीय, चारित्र। ऐसे आयुष्य। आयुष्य जिस भाव से बँधे, वह भाव मलिन है। चाहे तो स्वर्ग का आयुष्य बँधे मुनि को, छठवें गुणस्थान में सर्वार्थसिद्धि का, वह भाव मलिन है। वह मलिनभाव कर्म की स्थिति में निमित्त पड़ता है। वह भाव द्रव्य में है नहीं। द्रव्य में है नहीं तो द्रव्य को जाननेवाले उपयोगी धर्मात्मा को भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात बहुत कठिन पड़ती है, भाई! जगत को वीतरागमार्ग, उसके भाव का भासन होना, वह मार्ग अन्यत्र कहीं है नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त, वह भी दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। ऐई! दिगम्बर धर्म, वह जैनधर्म है। आहाहा! डाह्याभाई! जिस भाव से आयुष्य बँधे और स्थिति, रस पड़े, उसमें निमित्त पड़े परिणाम, तो कहते हैं कि वह जघन्य, मध्यम जो स्थिति पड़ती है, वह वस्तु में नहीं। आहाहा! उस वस्तु का स्वीकार करनेवाले के परिणाम में भी वह है नहीं। बाकी तो हैं। बन्ध तो पड़ता है। ज्ञेय है। समझ में आया?

श्रीमद् को एक ने प्रश्न किया श्रीकृष्ण का। श्रीमद् राजचन्द्र को। श्रीकृष्ण कहाँ

हैं ? उसमें आता है न, फलाना... ऐसा प्रश्न किया। जवाब दिया कि आत्मा में हैं। जहाँ हैं, वहाँ आत्मा में हैं। आहाहा! वे राग में हैं नहीं, गति में हैं नहीं। आहाहा! धर्मात्मा तो अपने द्रव्य-गुण-पर्याय शुद्ध है, उसमें है। राग अशुद्ध और ... उसमें है ही नहीं। वह तो व्यवहार हुआ। आहाहा! समझ में आया ? भाई! मार्ग तो देखो न ... बहुत प्रयत्न चाहिए और बहुत पहलुओं से शल्य निकालने से वह प्राप्त होता है। कहीं भी एक शल्य रहेगी तो वस्तु समझ में नहीं आयेगी। मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र देखो। आहाहा!

कहते हैं, चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें में तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे वह भाव कैसा है ? मलिन है। तो कहते हैं कि वह पर्याय की मलिनता और उसके निमित्त से जो कर्म की स्थिति पड़ती है, वह आत्मद्रव्य में है नहीं। आहाहा! और द्रव्य में है नहीं तो द्रव्य की दृष्टिवन्त को है नहीं। यह १००वीं गाथा में है न ? १०० गाथा, समयसार। तो वहाँ कहते हैं कि योग का कम्पन और राग का कर्ता जो जीव होता है, उसे नये बन्ध में उसका निमित्त है। योग का कम्पन और राग का कर्ता जो होता है, वह नये बन्ध में उसका निमित्त है, परन्तु ज्ञानी योग और राग का कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया ? तो उसे कर्म के सम्बन्ध में निमित्तपना है नहीं। आहाहा! योग और कम्पन का कर्ता जो होता है, वह पर में निमित्तकर्ता कहा जाता है। क्या कहा ?

यहाँ जो कहते हैं निरूपराग भगवान। तो जिसके उपयोग में यह आया तो वह योग और राग का कर्ता तो है नहीं, वह तो जाननेवाला है। समझ में आया ? नया बन्ध पड़ता है या नयी उपादान की चीज़ होती है, उसमें ज्ञानी का निमित्तकर्तापना है ही नहीं। कैसी शैली! आहाहा! निमित्तकर्ता किसे कहते हैं ? पर की क्रिया तो पर से होती है। उसमें तो आत्मा कर्ता नहीं। परन्तु उसका निमित्तकर्ता किसे कहते हैं ? कि जो कोई योग और राग का कर्ता होता है कि जो द्रव्य में है नहीं। आहाहा! निरूपराग कहा न ? वस्तु में है नहीं। उसके कम्पन और राग का कर्ता होता है, वह पर की क्रिया के काल में निमित्तकर्ता कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा!

ज्ञानी, पर की क्रियाकाल में निमित्तकर्ता तो नहीं, परन्तु ज्ञानी निरूपराग सदा प्रभु आत्मा है, ऐसा भान हुआ... ओहोहो! उसमें वह राग और उपादान की क्रिया जो होती

है, वह ज्ञान में निमित्त पड़ती है। समझ में आया? यह ऐसे निमित्त नहीं। पर की क्रिया में निमित्तकर्ता ज्ञानी नहीं। कर्ता का अर्थ वह कर सकता नहीं, परन्तु निमित्तकर्ता भी नहीं। जो राग और योग का कम्पन जो वस्तु में है नहीं, उसका जो कर्ता होता है, वह पर के कार्यकाल में उसे निमित्तकर्ता कहा जाता है। परन्तु धर्मी... आहाहा! गजब बात! वीतराग का मार्ग चारों ओर से देखो तो एक सत्य खड़ा होता है। ओहोहो! चारों ओर से शोधो तो मार्ग की शैली ऐसी ही आती है।

यहाँ तो कहा कि द्रव्य वह निमित्तकर्ता नहीं। कार्य तो क्या उसके उपादान से होता है। ... उसके कारण से, परन्तु उसका निमित्तकर्ता किसे कहते हैं? कि जो आत्मा के स्वभाव में है नहीं, ऐसे योग—कम्पन और राग का कर्ता जो होता है, तो उसे उस काल में निमित्तकर्ता कहा जाता है। ज्ञानी को वह राग और जो पर की चीज़ उपादान की पर्याय हुई, वह ज्ञान में निमित्त पड़ी है। अपना ज्ञान उपादान से उत्पन्न हुआ, उसमें वह निमित्त कही जाती है। आहाहा! कहाँ का कहाँ गया। ऐसी बात है। भगवान ने तो... साध लिया। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

नाम गोत्र। नाम, तीर्थंकरगोत्र। मुनि को जिसे भाव से आहारकशरीर बँधता है, आहारक बँधता है न? तो वह पर्याय मलिन है। बन्ध का कारण तो मलिन होता है न? आहाहा! वह मलिन पर्याय और जो आहारकशरीर का बन्ध स्थिति आदि से (बँधा), वह आत्मा में है नहीं। आत्मा में है नहीं परन्तु आत्मा अखण्ड निरंजन निराकार परमात्मतत्त्व है, उसका उपयोग में जहाँ स्वीकार हुआ... आहाहा! समझ में आया? वह तीर्थंकरगोत्र का भाव भी ज्ञान का ज्ञेय हो गया।

दूसरे प्रकार से कहें तो उस समय में जो ज्ञान उत्पन्न हुआ स्व-परप्रकाशक, उसमें राग है, वह ज्ञान में निमित्त पड़ा। राग में स्वयं निमित्त है, ऐसा नहीं। आहाहा! ज्ञान में निमित्त। वह ज्ञान उपादान स्वयं से हुआ। राग में जो क्रिया हुई, वह यहाँ निमित्त पड़ी है। आहाहा! धन्य मार्ग वीतराग का! किसी पहलू से... है। आहाहा! नाम, गोत्र, अन्तराय। लो न! अन्तराय बँधता है या नहीं? तो बँधता है जड़, उसमें निमित्त ज्ञान पड़ता है? इतना अन्तराय बाँधे, उसमें राग है या नहीं? परन्तु वह राग बँधता है,

उसकी जो स्थिति, रस पड़ता है, उसमें यह राग निमित्त है। परन्तु उस राग का कर्ता नहीं और मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा जिसे उपयोग हुआ, तो जो भाव कर्मबन्धन में निमित्त पड़ता है, वह भाव भी अपना नहीं, वह तो ज्ञान का ज्ञेय हो गया। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा है, भगवान! ऐसी देशना भी सुनना कठिन। आहाहा!

गोत्र बँधता है, अन्तराय बँधता है। आहाहा! दसवें गुणस्थान तक छह कर्म तो बँधते हैं। आयुष्य और मोह नहीं। दसवें गुणस्थान में आयुष्य और मोह नहीं। राग है, वह मोह है परन्तु राग, राग बँधता नहीं। आस्रव का अंश अपने बन्ध में निमित्त नहीं पड़ता। राग का अंश। तो कहते हैं कि वह राग जो है बन्ध की पर्याय, छह कर्म तो अपने उपादान से बँधते हैं, परन्तु वह राग पर्याय निमित्त पड़ती है। समझ में आया? वह यहाँ ज्ञाता का ज्ञेय हो गया है, कहते हैं। आहाहा! क्योंकि आत्मा तो ज्ञायकस्वभाव चिदानन्द परमात्मत्त्व है। आहाहा! तो कहते हैं कि उसमें उदय आदि के स्थान है नहीं। आहाहा! वे द्रव्य में है नहीं तो द्रव्य का उपयोग करनेवाले में भी नहीं। समझ में आया? जैसे द्रव्य पर में निमित्तकर्ता नहीं, उसी प्रकार द्रव्य के उपयोगवाला भी पर में निमित्तकर्ता नहीं। समझ में आया? आहाहा! कहाँ बात गयी! अन्दर चला आता है... यह कुछ विचारा नहीं था मैंने। यह कुछ मिलाया नहीं मैंने।

मुमुक्षु : हमारा सौभाग्य है!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा!

क्या परमात्मा की पद्धति! पूर्वापर विरोधरहित निश्चय-व्यवहार का ज्ञान। ओहोहो! गजब शैली प्रभु तेरी! आहाहा! सत्य का स्वरूप ऐसा है। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध। स्थिति तो कषाय से पड़ती है न? द्रव्यसंग्रह में आता है कि स्थिति और रस कषाय से पड़ता है। निमित्त। उसके कारण से पड़ता है तो उसमें निमित्त कषाय है। प्रकृति आने में कारण योग है। प्रकृति और प्रदेश। आता है उसके कारण से, परन्तु निमित्त योग का है और उसमें स्थिति, रस (अनुभाग) पड़ता है, वह स्वयं के कारण से, परन्तु उसमें निमित्त कषाय है। द्रव्यसंग्रह में आता है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि जो योग और कषाय जैसे स्थिति, रस में पड़ता है, प्रकृति प्रदेश में निमित्त पड़ता है... समझ

में आया ? यह वस्तु आत्मा में है नहीं। आहाहा! आत्मा में तो है नहीं, परन्तु आत्मा को जाननेवाले के उपयोग में भी नहीं, उपयोग में है नहीं। आहाहा! कहाँ का कहाँ ले गये।

निरंजन (निर्दोष) निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं। ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों में के उस-उस कर्म के योग्य ऐसा जो पुद्गलद्रव्य का स्व-आकार,... प्रकृतिबन्ध को स्व-आकार कहा है। आहाहा! वह प्रकृति जो पड़ती है, वह पुद्गल का स्वभाव है। यहाँ आकार कहा। उसमें निमित्त पड़ता है, वह विकार। विकार है तो प्रकृति बन्ध पड़ा, ऐसा नहीं। प्रकृति तो उसके कारण से वैसा आकार आया प्रकृति में, परन्तु उसमें निमित्त पड़ा राग। समझ में आया ? तो कहते हैं कि वह प्रकृति कर्म की स्वभाव आत्मा में नहीं। आहाहा! गजब ... आहाहा! समझ में आया ? कहाँ ले गये बात!

कहते हैं कि **ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों में के उस-उस कर्म के योग्य ऐसा जो पुद्गलद्रव्य का स्व-आकार,...** प्रकृति का। स्वभाव को आकार कहा है। प्रकृति स्वभाव है न। प्रदेश संख्या है परमाणु की। यह स्वभाव है तो वहाँ उसका आकार कहा। **वह प्रकृतिबन्ध है; उसके स्थान (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं हैं।** आहाहा! इसलिए कहा था स्पष्ट करने के लिये। पहले ऊपर लिया न ? **निरंजन निज परमात्मा...** यह प्रकृति का आकार कर्म का जो स्वभाव पड़ता है, वह आत्मा में है नहीं। निरंजन निज परमात्मतत्त्व को नहीं अर्थात् परमात्मतत्त्व का जिसे उपयोग हुआ, दृष्टि हुई, उसके उपयोग में भी कर्म की प्रकृति पड़ती है, उसमें निमित्त पड़ना, वह भाव उसमें नहीं। समझ में आया ? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध व्यवहार निकाल डाला ज्ञानी को। आहाहा! दो बोल हुए।

अब प्रदेशबन्ध। भाषा देखो, **अशुद्ध अन्तःतत्त्व के...** ऐसा लिया है न ? वस्तु तो शुद्ध है त्रिकाल, अब पर्याय में अशुद्धता जो है, उसे अशुद्ध अन्तःतत्त्व कहा गया है। समझ में आया ? उस **अशुद्ध अन्तःतत्त्व के और कर्मपुद्गल के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश, वह प्रदेशबन्ध है;...** मलिनता की पर्याय और प्रदेश, दो का सम्बन्ध होता है, उसे यहाँ प्रदेशबन्ध कहते हैं, वह आत्मा में नहीं। वह प्रदेशबन्ध है, वह आत्मा में नहीं।

आहाहा! प्रदेशबन्ध मं योग निमित्त है। स्थिति, रस में कषाय (निमित्त) है। यहाँ तो कहते हैं कि योगपना जिसका स्वामी नहीं, जिसे आत्मज्ञान हुआ, वह आत्मा का स्वामी है। उसका योग ज्ञान का ज्ञेय हो गया। तो योग के निमित्त से जो प्रकृति पड़ती है, वे दोनों ज्ञान में ज्ञेय हो गये। आहाहा! प्रदेशबन्ध। आहाहा!

इस बन्ध के स्थान भी (निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं है। आहाहा! योग से प्रकृति, प्रदेश (बन्ध) पड़ता है। वह योग ही आत्मा का उपयोग नहीं, ऐसा कहते हैं। तो उसकी पर्याय में है तो वह ज्ञान का ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १०, शनिवार, दिनांक १६-०८-१९७५
गाथा - ४०, कलश-५६, प्रवचन - ६

शुद्धभाव अधिकार। शुद्धभाव का अर्थ क्या? त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध ध्रुव जो चैतन्य, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा गया है। त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु ध्रुव नित्यानन्द ... स्वभाव, अभेद स्वभाव को यहाँ शुद्धभाव कहा गया है। ऐसे शुद्धभाव में... सम्यग्दृष्टि को दृष्टि कहाँ करना, ऐसा कहते हैं। धर्मी जीव को दृष्टि शुद्धभाव पर देना। उस शुद्धभाव में क्या नहीं? यह बात कहते हैं। है तो शुद्धभाव है। ज्ञायक आनन्दस्वरूप प्रभु सहज आनन्द का सागर भरपूर लबालब भरा है। उस चीज़ में क्या नहीं है? तो यहाँ कहते हैं। व्यवहार भी बताते हैं और व्यवहार उसमें नहीं, ऐसा भी बताते हैं। जैनदर्शन का व्यवहार क्या है, वह भी बताते हैं और वह व्यवहार वस्तु में है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, यहाँ आया अपने। **अशुद्ध अन्तःतत्त्व के (अशुद्ध आत्मा के)...** आया? इस ओर ८१ पृष्ठ पर है। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा तो शुद्ध ध्रुव नित्यानन्द है। उसकी पर्याय में अशुद्धता जो है, पर्याय में वह अशुद्ध अन्तःतत्त्व, उस अशुद्ध अन्तःतत्त्व के। भाषा देखो, शुद्ध अन्तःतत्त्व है, वह तो परमशुद्ध अन्तःतत्त्व है। परन्तु अशुद्ध अन्तःतत्त्व अर्थात् पर्याय में मिथ्यात्व, राग-द्वेष के परिणाम जो मलिन हैं, उन्हें अशुद्ध अन्तःतत्त्व कहते हैं। पर्याय में। आहाहा!

अशुद्ध अन्तःतत्त्व के और कर्मपुद्गल के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश, वह प्रदेशबन्ध है;... समझ में आया? सूक्ष्म भाव है। पर्याय में मलिनता है, वह निमित्त और नया कर्म जो बँधता है, प्रदेश (बन्ध), वह नैमित्तिक, यह दो जो है, वह वस्तु के स्वभाव में नहीं है। आहाहा! यह व्यवहार है, वह आत्मा में नहीं। पर्याय में है। व्यवहार सिद्ध किया। कर्म की प्रकृति के परमाणु और अशुद्ध राग दोनों का प्रवेश गिनने में आया है। परमाणु के प्रदेश हैं न? तो आत्मा के अशुद्ध पर्याय के साथ उनका निमित्त सम्बन्ध है तो उसके

अन्दर प्रवेश कहा गया है। प्रदेश रजकण का प्रवेश अशुद्ध अन्त:तत्त्व की पर्याय के निमित्त से वहाँ प्रवेश गिनने में आया है। आहाहा!

ऐसे होने पर भी **इस बन्ध के स्थान भी...** ये बन्ध के जो स्थान हैं, प्रदेश ठाणा, वे **(निरंजन निज परमात्मतत्त्व को) नहीं है।** आहाहा! व्यवहार कहा, राग-द्वेष की मलिन पर्याय और परमाणु जगत के कर्म के, दोनों का सम्बन्ध होकर परमाणु का प्रवेश हुआ, ऐसा कहा गया है, तथापि वह चीज़ शुद्ध परमात्मतत्त्व जो शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु, परमार्थ आत्मा जो है, उसमें वह है नहीं। समझ में आया? धर्मी की दृष्टि वहाँ परमात्मतत्त्व के ऊपर ले जानी है। प्रकाशचन्दजी! ऐसी बात बहुत, भाई! आहाहा! वह अशुद्धता पर्याय में होने पर भी, उसे अशुद्ध अन्त:तत्त्व कहा। देखो, अन्त:तत्त्व कहा। त्रिकाली शुद्ध है अन्त:तत्त्व, वह मूल अन्त:तत्त्व है, परन्तु पर्याय में मलिनता है तो उसे अशुद्ध अन्त:तत्त्व कहा। उसमें इस कारण से कर्म के प्रदेश-रजकण आते हैं, वह प्रवेश हुआ, परन्तु वह बात परमतत्त्व की दृष्टि करने से... आहाहा! सम्यग्दृष्टि दृष्टि जो परमात्मा के ऊपर करता है, उसमें वह चीज़ है नहीं।

मुमुक्षु : अत्यन्त अभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : अत्यन्त अभाव। आहाहा! ओहोहो! उसका नाम परमात्मतत्त्व और उसका नाम सम्यग्दर्शन! आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा, वहाँ ऐसा कहा कि निरंजन निज परमात्मा, ऊपर लिया था न? ऊपर लिया था। **निरुपराग जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** पहली लाईन में लिया था। वह यहाँ कोष्ठक डालकर स्पष्ट किया। निरंजन—जिसे मलिनता की पर्याय नहीं। वह कर्म के निमित्त का सम्बन्ध अशुद्ध पर्याय के साथ निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है, ज्ञायक द्रव्य के साथ नहीं। समझ में आया? यह ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध, वह भी पर्याय के साथ है, ज्ञायक में तो वह सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है न!

यह तो नियमसार है। मोक्षमार्ग कैसे उत्पन्न होता है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग, वह कैसे उत्पन्न होता है? कि वह अन्त:तत्त्व अर्थात् मलिन पर्याय, वह

व्यवहार हुआ और उसके साथ कर्म के प्रदेश का आना, उसे परवस्तु कहा। तो अन्तर परमात्मतत्त्व में दृष्टि करने से वह चीज़ उसमें है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! ज्ञायकभाव। यहाँ यह कहा, निरंजन निज परमात्मतत्त्व। वह अंजन अर्थात् जो अशुद्ध पर्याय है, वह स्वरूप में नहीं। निरंजन—अंजन नहीं। आहाहा! कितनी धीरज! वह पर्याय होने पर भी, उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, पर्याय में अशुद्धता होने पर भी, उसे नहीं गिनकर... आहाहा! दृष्टि परमात्मत्त्व निरंजन निराकार भगवान आत्मा का स्वभाव, वहाँ दृष्टि लगाना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। मोक्षमार्ग की पर्याय चलती है न। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में निमित्त का सहारा नहीं और निमित्त सम्बन्ध में अशुद्ध पर्याय हुई, उसका सहारा नहीं और गुण-गुणी के भेद का भी सहारा नहीं। त्रिकाली गुणी का सहारा है। सम्यग्दर्शन में त्रिकाली ध्रुव आत्मा समीप होता है। पर्याय वहाँ जाती है तो समीप होता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! पद्मचन्दजी! थोड़ी बात ऐसी है। आहाहा!

व्यवहार बतलाया कि है, अन्त:तत्त्व में मलिनता है। आहाहा! परपदार्थ बहिर्तत्त्व है, तो मलिन पर्याय अन्त:तत्त्व है और मलिनपर्याय बहिर्तत्त्व है तो शुद्ध परमात्मा ध्रुव आत्मा अखण्डानन्द, वह अन्त:तत्त्व है। ऐसी बात है। समझ में आया? यह तो भाई! सर्वज्ञ का पंथ है। त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव (ने) सौ इन्द्रों के बीच में और गणधर के बीच में ऐसा कहा था। वह बात यहाँ रची है। कहते हैं कि वह बन्ध ऐसे स्थान नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप प्रभु... यह श्लोक लेंगे। ऐसा अबन्धस्वभाव, द्रव्यस्वभाव, पदार्थस्वभाव, तत्त्वस्वभाव, ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, अबन्धभाव, उसमें अशुद्धता की पर्याय और कर्म का प्रवेश दोनों उसमें है ही नहीं। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? उसमें है नहीं, ऐसी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन और उसमें वह है नहीं, ऐसा ज्ञान करना, वह सम्यग्ज्ञान और उसमें है नहीं और अकेला स्वभाव है, उसमें स्थिरता करना, वह चारित्र है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

मुमुक्षु : .... विकल्प है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; विकल्प नहीं, वहाँ से दृष्टि उठानी है। कहा था न पहले, है नहीं ऐसा विकल्प नहीं। यहाँ है उसमें से दृष्टि उठानी। दृष्टि उठाकर परमात्मतत्त्व

में करना। आहाहा! ऐसे तो 'मैं अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ' यह तो विकल्प है। १४२ गाथा, १४२। व्याख्यान में एक बार १४३ कह दी गयी थी। है १४२। २० बोल (कलश) हैं न? समयसार में? कि आत्मा नित्य है, ऐसा एक विकल्प; आत्मा अमूढ़ है, ऐसा एक विकल्प और आत्मा मूढ़ है, ऐसा एक विकल्प, दोनों आत्मा में नहीं। आहाहा! बहुत मार्ग भाई अन्दर... सम्यग्दर्शन का विषय पर निमित्त भी नहीं और राग होता है दया, दान, व्रत आदि का शुभभाव, वह भी नहीं और उसका ज्ञान हुआ एक समय की पर्याय में, वह भी विषय नहीं और आत्मा गुणी है और उसमें गुण है, ऐसा भेद भी समकित का विषय नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह दो बोल हुए। प्रकृतिस्थान, प्रदेशस्थान। दो हुए। अब अनुभागस्थान रहा। तीसरा बोल।

शुभाशुभकर्म की निर्जरा के समय... शुभाशुभकर्म के टलने-नाश होने के काल में **सुख-दुःखरूप फल देने की शक्तिवाला वह अनुभागबन्ध है;...** पहले प्रकृति ली, फिर प्रदेश लिये, पश्चात् अनुभाग लिया। **इसके स्थानों का भी अवकाश (निरंजन निज परमात्मतत्त्व में) नहीं है...** आहाहा! कर्म का अनुभाग और यहाँ अपनी पर्याय में अनुभाग फल आता है विकारी दशा, वे दोनों आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! सेठ! थोड़ी सूक्ष्म बात है। नियमसार। आज आये। सुने तो सही अब। ४० वर्ष हुए यहाँ। आहाहा!

नियमसार। नियम जो त्रिकाली ज्ञानचेतना का स्वभावरूप भाव, पारिणामिक त्रिकालभाव, वह नियम है, ध्रुवनियम है। आहाहा! और उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होना, वह व्यवहारनियम है। यह निश्चयनियम। त्रिकाली वस्तु निश्चयनियम। यह आया है पहले। पहले शुरुआत में आया है। है? दूसरो पैराग्राफ टीका का। टीका का दूसरा पैराग्राफ (गाथा ३)। **जो सहज परमपारिणामिकभाव से स्थित, स्वभाव-अनन्तचतुष्टयात्मक, शुद्धज्ञान-चेतनापरिणाम, वह नियम (कारणनियम) है।** आया? टीका। पारिणामिकभाव, वह परिणाम। परिणाम, वह पर्याय का नहीं। यह स्पष्टीकरण नीचे किया है। यहाँ तो शुद्ध ज्ञानचेतनापरिणाम त्रिकाली। आहाहा! है? तीसरी गाथा की टीका का दूसरा पैराग्राफ।

मुमुक्षु : यहाँ अनन्त चतुष्टयात्मक अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनन्त चतुष्टय त्रिकाली। अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द ऐसी शुद्ध चेतना त्रिकाली। ये पर्याय के अनन्त चतुष्टय नहीं।

मुमुक्षु : यहाँ तो कारण लेना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण लेना है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **सहज परमपारिणामिकभाव...** स्वभावभाव। पारिणामिक शब्द से पर्याय नहीं। उसमें **स्थित, स्वभाव-अनन्तचतुष्टयात्मक शुद्धज्ञान-चेतनापरिणाम, वह नियम है।** आहाहा! और कार्यनियम? **निश्चय से (निश्चित) जो करनेयोग्य—प्रयोजनस्वरूप—हो, वह अर्थात् ज्ञान-दर्शन-चारित्र।** यह कार्यनियम। आहाहा! नियम के दो प्रकार। शुद्ध ज्ञानचेतना ज्ञायकभाव। परिणमन नहीं। अकेला शुद्ध ज्ञानचेतना ध्रुव जो अनन्त चतुष्टयस्वरूप, वह नियम कारणनियम। तो त्रिकाली वस्तु कारणनियम। समझ में आया? भाषा तो सादी है। और उसके आश्रय से व्यवहार की दृष्टि छोड़कर त्रिकाली ज्ञायकभाव जो ध्रुव परमपारिणामिक शुद्ध ज्ञानचेतना है, उसकी दृष्टि करने से जो सम्यग्दर्शनादि उत्पन्न हुए, वे कार्यनियम हैं। पर्याय में कार्य होता है न? द्रव्य में कहीं कार्य होता है? द्रव्य तो कारणरूप है। आहाहा!

कहा था न एक बार, यह प्रश्न हुआ था कि कारणपरमात्मा और कारणनियम है, तब तो कार्य होना चाहिए। कारण है तो कार्य होना चाहिए। यह प्रश्न हुआ था। वीरजीभाई के पुत्र ने किया था, राजकोटवाले। कारणपरमात्मा कहो और कार्य न हो, कारण हो और कार्य न हो, ऐसा कैसे हो? भाई! परन्तु कारणपरमात्मा, वह कारणनियम स्वीकार करे, उसे है या न स्वीकार करे उसे है? वह स्वीकार करता है, उसे त्रिकाली है। तो स्वीकार करनेवाला त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध है, ऐसा स्वीकार किया तो सम्यग्दर्शन का कार्य हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म मार्ग ऐसा। आहाहा!

जिनवरदेव त्रिलोकनाथ ने अनुभव किया और फिर विकल्प बिना वाणी में बात आयी है। आहाहा! है न? देखो, आया न नियम? और उसे '**णियमेण य जं कज्जं**' (कहा)। तीसरी गाथा है न? '**णियमेण य जं कज्जं**' नियम से करनेयोग्य हो तो निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नियम से करनेयोग्य कर्तव्य वह है। नियम से-निश्चय से

करनेयोग्य हो तो स्वभाव त्रिकाली शुद्धज्ञान चेतनाबिम्ब प्रभु पड़ा है, उसका सम्यग्दर्शन, उसका सम्यग्ज्ञान, वह नियम से करनेयोग्य वह है। है ? तीसरी गाथा। तीसरी गाथा है। **'णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं।'** आहाहा! पहले ज्ञान लिया है इसमें, हों! दर्शन, ज्ञान नहीं लिया। क्योंकि जानने में आता है तो प्रतीति होती है, ऐसा लिया। समझ में आया? त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द, ओहोहो! परमात्मस्वरूप से विराजमान, वह तो कारणनियम, वह कारणपरमात्मा, परन्तु उसके सन्मुख होकर स्वीकार हुआ, सन्मुख हुआ, वही स्वीकार है। अस्ति का स्वीकार हुआ तो सन्मुख हुआ। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! यह सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : करनेयोग्य में कर्तृत्वबुद्धि नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, करनेयोग्य कर्तृत्वबुद्धि नहीं। कर्ता है, वह शुद्धपर्याय का। शुद्धपर्याय का कर्ता है, अशुद्ध का नहीं। समझ में आया? यह तो प्रश्न पूछा था न किसी ने कि जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सात पर्यायें हैं। यह पहले आ गया है, पहली गाथा में। और सातों ही पर्याय नाशवान हैं। उसमें अविनाशी तो भगवान ध्रुव वह अविनाशी है। पहले आ गया है। ३८ गाथा। है न? **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** श्लोकार्थ कलश का। है? श्लोकार्थ ५४ का। ५४वाँ कलश। **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** जीवपर्याय, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष — इन सर्व तत्त्वों में एक सार ध्रुव है। तो इस अपेक्षा से सात सार नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,... ध्रुव त्रिकाली परमस्वभावभाव जो सार है, **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** वह केवलज्ञान की पर्याय, क्षायिक की पर्याय, संवर-निर्जरा की पर्याय से वह भगवान दूर है। पर्याय से द्रव्य दूर है। पर्याय द्रव्य में प्रविष्ट नहीं होती और द्रव्य पर्याय में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? **जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** यह तो ठीक। **शुद्धज्ञान का अवतार है, जो सुखसागर की बाढ़ है...** त्रिकाल की बात है यहाँ, हों! सात तत्त्व हैं, वे नाशवान हैं। वह केवलज्ञान की पर्याय भी एक समय में उत्पन्न होती है, दूसरे समय में नाश होती है। आहाहा!

केवलज्ञान की पर्याय, वह उत्पाद-व्ययवाली है, गुण नहीं। एक समय में केवलज्ञान उत्पन्न हो, वह दूसरे समय में उसका व्यय होता है और दूसरी पर्याय वैसी, परन्तु दूसरी, दूसरी वैसी परन्तु दूसरी। केवलज्ञान दूसरे समय में दूसरा। समझ में आया? वहाँ बड़ी गड़बड़ हुई। कहाँ? मथुरा-मथुरा। समझ में आया? मथुरा में यह बात चली न, पण्डित बैठे थे, उन्हें गड़बड़ हो गयी। केवलज्ञान नाशवान है, ऐसा कहा। केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद नाश होता है कभी? परन्तु वह एक समय का उत्पाद है, दूसरे समय में व्यय होता ही है। पर्याय है न। वह कहाँ गुण है? आहाहा! गुण तो त्रिकाली है। उत्पाद-व्ययवाली पर्याय, वह केवलज्ञान की है, क्षायिकभाव की।

मुमुक्षु : ज्ञानगुण लिखा न उसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुण का अर्थ? अवगुण जो था, उसका अभाव हुआ तो गुण कह दिया; है तो पर्याय। आहाहा! यह भी प्रश्न आया था पहले। एक क्षुल्लक थे न, उन्हें... थे। तो यहाँ हमने सम्यग्दर्शन की पर्याय ली थी तो (उन्होंने कहा), यह पर्याय नहीं, यह तो गुण है। तुम कैसे कहते हो पर्याय-पर्याय? जीव में आठ गुण प्रगट होते हैं, ऐसा आया। अरे! गुण प्रगट नहीं होते, भाई! वे आठ गुण पर्याय है। गुण तो त्रिकाल रहते हैं, वे उत्पन्न नहीं होते और व्यय भी नहीं होते। आहाहा! बहुत खलबलाहट किया था। एक बार हम गये थे वहाँ है न! किसका मन्दिर? भूलेश्वर मन्दिर। दर्शन करने गये तो अन्दर थे। जायें न कुछ बोले तो। परन्तु बोला नहीं तो नहीं बोले। भूलेश्वर मन्दिर है न वहाँ मुम्बई। वहाँ अन्दर बैठे थे। मैंने कहा, यह समकित की पर्याय की व्याख्या करते हैं। समकित वह गुण है। गुण नहीं। केवलज्ञान गुण नहीं तो समकित की पर्याय गुण कहाँ से आयी? अरे! कुछ खबर भी नहीं द्रव्य क्या, गुण क्या, पर्याय क्या? पर्याय है। समन्तभद्र हैं वे?

मुमुक्षु : बाहुबली हैं न समन्तभद्र में, वे कहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें खबर नहीं। सुना नहीं न उन्होंने। वे गुण आवे न शास्त्र में।

मुमुक्षु : लिखा है ऐसा ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं, सिद्ध भी पर्याय है, मोक्ष पर्याय है। गुण

कभी उत्पन्न होते हैं? वे तो त्रिकाली हैं। द्रव्य त्रिकाली, वैसे गुण त्रिकाली। '**उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्**' तो वह ध्रुव त्रिकाली और उत्पाद-व्यय, वह तो वर्तमान पर्याय जितनी चीज़ है। चाहे तो सिद्ध हो या केवली हो। आहाहा! लोगों को द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान नहीं, और ऐसा का ऐसा चलाया, धर्म हो गया, ऐसा करो, धर्म होगा। धूल भी धर्म नहीं, सुन तो सही।

मुमुक्षु : जो भी उत्पन्न हो, वह पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उत्पन्न हो, वह पर्याय। और उत्पन्न हो, वह दूसरे समय में व्यय होगी ही। समझ में आया? आहाहा! क्षायिकसमकित भी पर्याय है और एक समय की पर्याय दूसरे समय में क्षायिकसमकित की पर्याय रहती नहीं। आहाहा! क्षायिकसमकित रूप से भले सदृश्य रहे, ऐसी की ऐसी, परन्तु दूसरी होती है। समझ में आया? आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वे अनुभाग के स्थान आत्मा में है ही नहीं। **इसके स्थानों का भी अवकाश (निरंजन निज परमात्मतत्त्व में) नहीं है और...** अब चौथा बोल। **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के उदय के स्थानों का भी अवकाश (निरंजन निज परमात्मतत्त्व में) नहीं है।** यह चलती ४० (गाथा)। वह विकारी परिणाम तीर्थंकरगोत्र जो बाँधे, वह भाव, वह आत्मतत्त्व में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? परमसत्य वस्तु ही ऐसी है। और द्रव्यकर्म तो नहीं है, यह तो ठीक, परन्तु भावकर्म का जो उदय होता है, विकारी उदयभाव लिया न। उदयठाणा, वे उदय के स्थान अनेक प्रकार के लेंगे, वे निरंजन निज परमात्मतत्त्व को नहीं। आहाहा! ऐसा प्रभु वीतरागमूर्ति ध्रुव। दृष्टि है पर्याय। पर्यायदृष्टि द्रव्य-सन्मुख होती है तो सम्यग्दर्शन होता है। वह सम्यग्दर्शन पर्याय है। समझ में आया? पर्याय द्रव्य के सन्मुख होती है तो सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! इसका अर्थ कि जो अस्ति तत्त्व ध्रुव है, उसके सन्मुख पर्याय होती है, तो उसका आश्रय ले, ऐसा शब्द है मूल पाठ में।

११वीं गाथा में तो ऐसा कहा है न समयसार में। '**ववहारोऽभूदत्थो**' समस्त पर्याय अभूतार्थ है। गौण करके अभूतार्थ कहा है, हों! अभाव करके नहीं। '**ववहारोऽभूदत्थो**

भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।' भूतार्थ को शुद्धनय कहते हैं। नय तो विषयी है और उसका विषय, भी यहाँ तो अभेद लेना है अध्यात्म में तो। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' सत्यार्थ त्रिकाल स्वरूप, वही शुद्धनय। दूसरे पद में लिया। और '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' महासिद्धान्त है। ११वीं गाथा जैनदर्शन का प्राण है, वस्तुदर्शन का प्राण है। '**भूदत्थमस्सिदो**' परमसत्य सत्यार्थ प्रभु, भूतार्थ प्रभु, यथार्थ वस्तु का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' आहाहा! समझ में आया? यह बात यहाँ विस्तार से कहते हैं।

भूतार्थ सत्यार्थ भगवान त्रिकाल, इस अपेक्षा से तो पर्याय को असत्यार्थ कहा गया है। समझ में आया? जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य को अद्रव्य कहा गया है। दूसरे द्रव्य की अपेक्षा से स्वद्रव्य हो, परन्तु इस द्रव्य की अपेक्षा से वह अद्रव्य है, इस क्षेत्र की अपेक्षा से वह अक्षेत्र है, इस पर्याय के काल की अपेक्षा से अकाल है और इस भाव की अपेक्षा से अभाव है। समझ में आया? आहाहा! उसकी अपेक्षा से अस्ति है। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से अस्ति है, परन्तु मेरी अपेक्षा से तो अभाव है। आहाहा! इस प्रकार, परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपने से असत्य है, अद्रव्य है, ऐसे अन्तर में लेने से स्वद्रव्य की अपेक्षा से पर्याय असत्यार्थ है। असत्यार्थ का अर्थ? त्रिकाल नहीं रहनेवाली चीज़। एक समय की पर्याय है तो वहाँ अभूतार्थ कही। अभूतार्थ असत्यार्थ... अभाव करके असत्यार्थ नहीं कहा। प्रयोजन सिद्ध करने के लिये गौण करके असत्यार्थ कहा है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा सब समझे नहीं और लोगों को धर्म हो जायेगा। धूल भी धर्म नहीं। उसके लिये हैरान-हैरान (होगा)। यह मन्दिर बनाकर धर्म हो जायेगा। धूल भी नहीं, सुन तो सही। बनावे कौन? वह तो जड़ की पर्याय है। तेरा भाव हो तो जरा शुभ होता है। तो शुभभाव से क्या सम्यग्दर्शन होता है? शुभभाव तो आत्मा में है नहीं। होवे उससे लाभ होगा, न हो उससे लाभ होगा? शुभभाव तो आत्मा में है नहीं, तो है नहीं, उससे लाभ कैसे होगा? आहाहा! एसा मार्ग है, भाई!

इस प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने... आधार। **(श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ११वें श्लोक द्वारा)...** १४वीं गाथा। १४वीं गाथा है

न अबद्धस्पृष्ट, उसका यह श्लोक है। १४वीं गाथा है न।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥१४॥

इसका यह श्लोक है।

(मालिनी)

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी,
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्,
जगदपगत-मोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥

'**स्फुटमुपरि तरन्तो**' प्रतिष्ठा पाते नहीं। आहाहा!

श्लोकार्थ :- जगत... हे जगत के जीवों! जगत का अर्थ जगत के जीवों। हे काठियावाड़ी! अर्थात् काठियावाड़ के जीवों। पाठ तो जगत है। जगत तो छह जड़-अजड़ का समूह, वह जगत है। जड़ को कहना है यहाँ? हे जगत के जीवों! आहाहा! **मोहरहित होकर...** पर्यायबुद्धि छोड़कर, पर्यायबुद्धि मोह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! **सर्व ओर से प्रकाशमान ऐसे उस सम्यक् स्वभाव का ही अनुभवन करना चाहिए...** सम्यक् स्वभाव जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, त्रिकाली अनाकुल आनन्द सहजस्वभाव का अनुभव करना चाहिए। आहाहा! और ध्रुव का अनुभव होता नहीं न? यह तो २०वीं गाथा में आया न, २० में। अलख। वेदन तो पर्याय में होता है, त्रिकाल का नहीं। वह त्रिकाल की ओर झुका तो त्रिकाल का वेदन, ऐसा कहा गया है। त्रिकाल की ओर झुकता नहीं था तो परपरिणाम का वेदन था, ऐसा कहा गया है। त्रिकाल की ओर झुकने से है तो वेदन पर्याय का। सम्यक् स्वभाव का ही अनुभव करना चाहिए, ऐसा है न? सम्यक् स्वभाव त्रिकाली का अनुभव करना चाहिए, इसका अर्थ त्रिकाली-सन्मुख होकर पर्याय में आनन्द का अनुभव करना चाहिए। आहाहा!

सम्यक् स्वभाव त्रिकाली सत् स्वभाव जो ध्रुव है, जो परिणमता नहीं, जो बदलता नहीं, ऐसा त्रिकाली सत् स्वभाव है... है... है... है... उसका अनुभव। **सम्यक्**

स्वभाव का ही... ऐसा शब्द पड़ा है। अनुभव करो। यह अनुभव, वह पर्याय है। बात यह कि सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो। उस ओर जाता है तो सम्यक् स्वभाव का अनुभव हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव तो ज्ञान की पर्याय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द की पर्याय है, ज्ञान की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय, सब पर्याय है। अनुभव में मुख्य आनन्द है। सब गुणों की पर्याय है, परन्तु अनुभव में मुख्य प्रधानता आनन्द की है। उसमें लिया है दीपचन्दजी ने, अनुभवप्रकाश में। अनुभवप्रकाश में लिया है कि अनुभव में आनन्द की मुख्यता-प्रधानता है। दीपचन्दजी ने। लोग दीपचन्दजी के ... बहुत ... अनुभवप्रकाश। अनुभव का अर्थ किया उसमें लिया है।

मुमुक्षु : पंचाध्यायी में ज्ञान की पर्याय ली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ज्ञान की पर्याय दूसरी। वह अपेक्षा दूसरी है। उसमें ज्ञानार्णव में भी लिया है। ज्ञानार्णव में भी ध्यान की पर्याय को ज्ञान की पर्याय गिना है। वह एक दूसरी बात है। ज्ञान की पर्याय का अर्थ ज्ञानस्वरूप जो त्रिकाल है, उसमें एकाग्र होता है तो ज्ञान की पर्याय है, है तो श्रद्धा की, आनन्द की, परन्तु उस गुण की पर्याय को यहाँ ज्ञान की पर्याय कहा। ध्यान है, वह तो चारित्र की पर्याय निश्चय से है। उस ज्ञान में स्थिरता, वह ज्ञानपर्याय कहो या चारित्रपर्याय कहो। है वह खबर है। ज्ञानार्णव में लिया है। ध्यान को ज्ञानपर्याय कहा है। खबर है।

यहाँ कहते हैं, हे जगत के जीवों! आहाहा! भगवान वस्तु पड़ी है तेरे पास। तेरी चीज़ ही तेरे पास है, तू ही ऐसा है। आहाहा! प्रत्यक्ष वस्तु पड़ी है न, प्रभु! आहाहा! तेरी नजर वहाँ नहीं जाती। पर्याय के ऊपर नजर से पर्याय में तेरा लक्ष्य है तो त्रिकाली वस्तु के स्वभाव ऊपर तेरी नजर अस्ति की नहीं जाती। आहाहा! समझ में आया?

सर्व ओर से प्रकाशमान ऐसे... देखा! चारों ओर से अकेली प्रकाश की मूर्ति वह तो आत्मा है। **ऐसे उस सम्यक् स्वभाव का ही अनुभवन करना चाहिए...** आहाहा! सार तो यह है। जो पहले कहा न कि '**णियमेण य जं कज्जं**' तीसरी गाथा में। नियम से करनेयोग्य हो तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र। वह यह अनुभव। आहाहा! वाद-विवाद से तो

कुछ पार नहीं पड़ता, भाई! ऐसी चीज़ है। अन्तर का स्वभाव त्रिकाली अस्ति, उसका अनुभव करो। न्यालभाई में तो ऐसा भी आता है, द्रव्यदृष्टिप्रकाश। दिया न तुमको? उसमें ऐसा है कि ज्ञायकभाव का अनुभव और परिणाम का अनुभव, परिणामी का अनुभव और परिणाम का अनुभव, वह दो होते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा क्यों कहा? कि वह परिणाम, जो त्रिकाली है, उस ओर झुका तो परिणामी का अनुभव कहने में आता है और जो परिणाम परसन्मुख ढलते हैं, उनका अनुभव वह परिणाम का अनुभव। परिणामी का अनुभव और परिणाम का अनुभव, दोनों एक साथ होते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है थोड़ी। है इसमें। ऐई! चेतनजी! द्रव्यदृष्टिप्रकाश। कितने बोल में है? हमारे... कहाँ गये? ... कितने बोल में है? खबर नहीं, भाई! हमको तो भाव याद होता है, नम्बर नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ३३ पत्र में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली अस्तित्वमयी स्व, उसके आश्रित परिणमित आंशिक शुद्ध वृत्ति और देवादिक के प्रति आंशिक बाह्य वृत्ति, इन तीनों अंश का एक ही समय में धर्मी को अनुभव होता है,... त्रिकाली का, वर्तमान परिणाम उस ओर झुके, उसका और परसन्मुख के झुकाववाले, उनका। यह तो है तो वेदन परिणाम का। परन्तु जो परिणाम स्वसन्मुख हुए, वे त्रिकाली के हुए, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? किसने कहा यह? सुजानमलजी! शान्तिभाई ठीक। दूसरे बहुत जगह है। देखा!

त्रिकाली अस्तित्वमयी स्व,... एक। **उसके आश्रित परिणमित आंशिक शुद्ध वृत्ति और देवादिक के प्रति आंशिक बाह्य वृत्ति, इन तीनों अंश का एक ही समय में धर्मी को अनुभव होता है, जिसमें मुख्य-गौण का प्रश्न नहीं।** कभी ऐसा कहा जाता है कि भगवान पूर्णानन्दस्वरूप के अनुभव में मुख्यरूप से तो आत्मा का अनुभव है, ऐसा कहने में आता है और रागादि का अनुभव गौणरूप से अनुभव, ऐसा कहा जाता है। दृष्टि और दृष्टि के स्वभाव की मुख्यता की अपेक्षा से। ज्ञानी को शुद्ध का ही मुख्यरूप से वेदन है, अशुद्ध का वेदन है, वह गौणरूप से। यह दृष्टि और दृष्टि के स्वभाव की अपेक्षा से, परन्तु ज्ञान की अपेक्षा से मुख्य-गौण नहीं। शुद्ध की परिणति का वेदन और अशुद्ध

का वेदन एक साथ है। समझ में आया? आहाहा! यह सेठिया को वहाँ कड़क लगा न। दीपचन्दजी सेठिया को। 'नहीं, अशुद्धता दुःख हो, परन्तु दुःख का वेदन ज्ञानी को नहीं होता।' वस्तु की खबर नहीं। दुःख है और वेदन नहीं, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? आत्मा के आनन्द के सुख का भी वेदन है और साथ में दुःख का वेदन (भी) एक साथ है ज्ञान की अपेक्षा से। ज्ञान की अपेक्षा से मुख्य-गौण नहीं। पण्डितजी! सूक्ष्म बात है, भाई!

मुमुक्षु : राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है न। राग है, उतना दुःख है। आहाहा! आकुलता है, उतना दुःख है। और यदि आकुलता न हो तो पूर्ण आनन्द का वेदन होना चाहिए। मिथ्यादृष्टि को पूर्ण आकुलता का वेदन है, केवली को पूर्ण अनाकुल की शान्ति आनन्द-सुख का वेदन है, साधक को आनन्द और दुःख दोनों का वेदन है। दोनों धारा। कर्मधारा-ज्ञानधारा आती है न? ज्ञानधारा और कर्मधारा। भाई! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। रूपचन्दजी! ऐसी चीज़ है। दूसरे में आता है। ... आता है।

जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,... आहाहा! **ऊपर तैरते होने पर भी,...** क्या कहते हैं? कि राग के सम्बन्धरूपी बन्ध, जो ज्ञायकभाव के ऊपर तैरता है, अन्दर नहीं जाता। जैसे पानी में ऊपर तेल होता है, तेल... तेल, वह अन्दर प्रविष्ट नहीं होता। उसी प्रकार ज्ञायकभाव परमस्वभावभाव, ध्रुवभाव में ऊपर राग का बन्ध, राग का स्पर्श, अबद्धस्पृष्ट, अनन्य—अन्य-अन्य पर्याय है, वह भी पर्याय में है, अन्दर में प्रवेश नहीं करती। नारकी, मनुष्यादि गति। अनन्य, नियत। पर्याय में हानि-वृद्धि होती है, वह भी ऊपर-ऊपर है, अन्दर में नहीं। और विशेष है गुण-गुणी के भेद का विशेषपना, वह अन्दर में नहीं। अन्दर सामान्य है। और असंयुक्त। राग और विकल्प से संयुक्त नहीं, वह अन्दर में। पर्याय में होने पर भी अन्दर में नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तेल का दृष्टान्त तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तेल का ही दृष्टान्त दिया है। दिया है उसमें। ऊपर-

ऊपर है, अन्दर में नहीं जाता, इस अपेक्षा से। ऊपर-ऊपर है, अन्दर नहीं जाता। समझ में आया? है-है। एकदम तेल का दृष्टान्त लागू पड़ता है। पानी के दल में तेल का अन्दर जाना नहीं होता। अन्दर नहीं जाता। १४वीं गाथा है। अबद्धस्पृष्ट का ही यह दृष्टान्त है। आहाहा!

यहाँ तो इतना लिया, **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** और अर्थ में तो वहाँ ऐसा लिया है भाई! समयसार, अनित्यभाव अन्दर में प्रवेश नहीं करते। ऐसा शब्द लिया है। **जगत के प्राणियों! इस सम्यक् स्वभाव का अनुभव करो कि जहाँ यह बद्धस्पृष्टादिभाव स्पष्टतया उस स्वभाव के ऊपर तरते हैं, तथापि वे (उसमें) प्रतिष्ठा नहीं पाते,...** अन्दर में उन्हें आधार नहीं मिलता। **क्योंकि द्रव्यस्वभाव तो नित्य है, एकरूप है और यह भाव अनित्य हैं, अनेकरूप हैं; पर्यायें द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करती...** पण्डित जयचन्द्रजी (लिखते) हैं। आहाहा! समझ में आया? ऊपर रहते हैं। आहाहा! पर्याय द्रव्य में प्रवेश नहीं करती। संसार का उदय द्रव्य में प्रवेश नहीं करता। वह तो पाँचों ही बोल है। पाँचों बोल पर्याय में है, अन्दर में नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा! उत्पाद-व्यय की पर्याय है, वह ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। ले! एक ओर ऐसा कहना कि पर्याय का व्यय होता है तो पर्याय जाती कहाँ है? अन्दर में जाती है, ऐसा कहना है। सर्वार्थसिद्धि में ऐसा आता है। पर्याय उत्पन्न होती है, व्यय होती है। व्यय होती है तो गयी कहाँ? कहीं अद्धर चली गयी? अन्दर में गयी।

मुमुक्षु : वह पर्याय शक्तिरूप हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्तिरूप हो जाती है। यहाँ पर्याय में उदयभाव था, क्षयोपशमभाव था, उस पर्याय का व्यय होकर अन्दर गयी तो पारिणामिकभाव हो गया। शक्तिरूप है तो पारिणामिक हो गयी। भाई! समझ में आया? मार्ग बापू! बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! राग का उदय है, उसका व्यय हुआ, व्यय हुआ तो व्यय भी सत् है या नहीं? उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों सत् हैं। तो सत् गया कहाँ? 'बुडुक' ऐसा पाठ है। पानी की तरंग पानी में 'बुडुक' है। समयसार नाटक में है। पानी की तरंग उठती है न? कहाँ जाती है? कि

अन्दर ... जाती है। आहाहा! कठिन बातें, बापू! ऐई! पद्मचन्दजी!

यहाँ कहते हैं, **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।** उन्हें अन्दर प्रवेश करने का आधार नहीं मिलता। आहाहा! समझ में आया? जैसे एक द्रव्य में दूसरा द्रव्य ऊपर ऊपर लोटता है। बहिरलुटंती। आगे कलश आता है समयसार में। बहिरलुटंती—वह अन्दर में प्रवेश नहीं होते। इसी प्रकार पर्याय व्यवहार बाहर में लोटती है, अन्दर में प्रवेश नहीं करती। आहाहा! ऐसा सब समझना इसे... भाई! सत्य तो ऐसा है, भाई! और सत्य सत्यरूप से जैसा है, वैसा समझ में नहीं आये तो सत् जवाब नहीं देगा। आहाहा! सत् जवाब नहीं देगा, इसका अर्थ सत्य प्रगट नहीं होगा। आहाहा!

कहते हैं कि जिसमें अर्थात् सम्यक् स्वभाव त्रिकाल में **यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव...** यह अस्तित्व कहा। राग है, अनन्य है, विशेष है, है तो सही। 'यह है' ऐसा है तो सही। परन्तु स्पष्ट ऊपर तैरते होने पर भी। अस्तित्व तो कहा। है तो सही, नहीं, ऐसी नास्ति, ऐसा नहीं। उसमें ऐसा है। पर्याय पर्याय में है न? अस्ति है या नास्ति है? त्रिकाल में नहीं। पण्डितजी! ऐसा भाव बहुत (सूक्ष्म)।

सम्यग्दर्शन का विषय, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी ध्रुव में प्रविष्ट नहीं होती। तथापि... छतां को क्या कहते हैं? तथापि सम्यग्दर्शन की पर्याय में पूर्ण वस्तु है, उसकी श्रद्धा हो जाती है और ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान की पर्याय ध्रुव में प्रविष्ट नहीं होती, तथापि ज्ञान की पर्याय में ध्रुव का जितना सामर्थ्य है, उसका ज्ञान हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

फिर से। यह पर्याय जो है श्रद्धा की या ज्ञान की, तो श्रद्धा की पर्याय ने पूरा पाचन कर लिया है कि 'परम आनन्द का नाथ मैं हूँ' ऐसा पाचन हो गया, परन्तु उस श्रद्धा का विषय जो है, वह पर्याय में आया नहीं। तथापि वह विषय है, उसका सामर्थ्य तो पर्याय में, श्रद्धा में आ गया है। आहाहा! वस्तु आयी नहीं। वस्तु तो भिन्न (रह जाती है)। पर्याय पर्याय में है, द्रव्य द्रव्य में है। ओहोहो! समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय में ध्रुव जो ज्ञायक है, उसका ज्ञान उसमें आ गया, तथापि ज्ञान अर्थात् उस समय

की सामर्थ्य कितनी है, वह ज्ञान आ गया है, परन्तु वह चीज़ यहाँ आयी नहीं। आहाहा! कठिन बातें, भाई! ऐसी बात है। आहाहा!

इसलिए कहा है न शास्त्र में (कि) अग्नि के मुख्य तीन गुण कहे गये हैं—पाचक, प्रकाशक, दाहक। मुख्य। उसी प्रकार भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (तीन मुख्य गुण है)। सम्यग्दर्शन, वह पाचक है, पूरी वस्तु को पचा लेता है और सम्यग्ज्ञान प्रकाशक है—द्रव्य और पर्याय दोनों का ज्ञान करता है और सम्यक्चारित्र दाहक है, स्वरूप में स्थिरता राग का नाश कर देती है। आहाहा! ऐई! ऐसी वस्तु है, भाई!

यह कहते हैं, भाव बद्धस्पृष्ट आदि है। **जिसमें यह बद्धस्पृष्ट...** आया। राग का सम्बन्ध, अन्य-अन्य पर्याय, विशेष दशा है, है। **यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव...** भाव है। **ऊपर तैरते होने पर भी,...** आहाहा! **ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में...** पर्याय को द्रव्य का आधार नहीं मिलता। **वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।** अन्दर स्थिति (पाते नहीं)—जा सकते नहीं। आहाहा! यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त (कहीं है नहीं)। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा... आहाहा! यह तो जिनेन्द्रदेव सर्वज्ञ परमात्मा के अतिरिक्त यह व्याख्या कहीं हो नहीं सकती। आहाहा! उनके अनुयायी हों, वे समझ सकते हैं। लघुनन्दन कहा न! कहा न, 'जिनेश्वर के लघुनन्दन...' आया न यह? 'चेतन रूप अनूप अमूरत... स्वार्थ के साचे, परमार्थ के साचे, साचे... साचे... साचे... काऊके विरोधि नाही पर्यायबुद्धि नांही, आतम (गवेषी, न गृहस्थ है न यति) है।' है? आहाहा! यह लघुनन्दन है। 'जगमांही जिनेश्वर के लघुनंदन।' यह भेदज्ञान में आया। 'भेदविज्ञान जगयो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिमी चंदन, केली करे शिवमारग में जगमांही जिनेश्वर के लघुनंदन।' आहाहा! पुत्र हैं, केवली के पुत्र हैं और केवली का उत्तराधिकार लेने की सामर्थ्य आ गयी है उनमें। आहाहा! दूज उगी है तो पूर्णिमा होगी ही होगी! दूज उगती है न दूज? दूज उगती है तो पूर्णिमा होगी ही होगी! पूनम का अर्थ पूर्णिमा है, पूर्ण-पूर्ण। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन की दूज उगी, केवलज्ञान होगा ही होगा। आहाहा! मतिज्ञान बुलाता है, ऐसा पाठ है जयधवल में। मतिज्ञान बुलाता है कि चलो केवलज्ञान

चले आओ। ऐसा पाठ है। मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। बुलावे का अर्थ? चले आओ। अब अल्पकाल में मुझे केवलज्ञान हो जायेगा, ऐसी मतिज्ञान पुकार करता है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।** आहाहा!

★ ★ ★

कलश - ५६

और (४०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं)—

(अनुष्टुप्)

नित्यशुद्धचिदानन्दसम्पदामाकरं परम्।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम्॥५६॥

(वीरछन्द)

नित्य शुद्ध जो चिदानन्दमय सम्पत्ति की खान महान।
जो अत्यंत अपद विपदा को उसका अनुभव करूँ सुजान॥५६॥

श्लोकार्थः—जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है तथा जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है (अर्थात्, जहाँ विपदा बिलकुल नहीं है) ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।॥५६॥

कलश - ५६ पर प्रवचन

और (४०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं)—

नित्यशुद्धचिदानन्दसम्पदामाकरं परम्।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम्॥५६॥

श्लोकार्थः-जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है... भगवान

ध्रुव क्या चीज़ है परमस्वभाव? **नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी...** ज्ञानानन्दरूपी **सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** यह सम्पदा उसके पास है, यह धूल की नहीं। ऐई! पोपटभाई! यह धूल की तुम्हारी सम्पदा की यहाँ बात नहीं। यह मैंने पूछा था ... को मकान कब करोगे? कहा, अभी नहीं करायेंगे। बहुत दखल है न सरकार की। अभी आया था न। कहा, ३६ हजार की जमीन ली है। ... में तीन के लिये। तीनों नम्बर से। धन्धा करते हैं और तीनों यहाँ रहते हैं। परन्तु अभी वह दखल है न, इसलिए अभी नहीं करेंगे। यहाँ तो भगवान नित्यानन्द चिदानन्दरूपी सम्पदा की खान है। आहाहा! समझ में आया?

तथा जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है... देखो, विपदा का स्थान नहीं और सम्पदा का भण्डार है। आहाहा! **(अर्थात्, जहाँ विपदा बिलकुल नहीं है) ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** मुनिराज कहते हैं, ऐसे पद को मैं अनुभव करता हूँ। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ११, रविवार, दिनांक १७-०८-१९७५
गाथा - ४१, कलश-५६-५७, प्रवचन - ७

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार, ४०वीं गाथा का कलश ५६वाँ। गाथा में ऐसा कहा कि भगवान आत्मा में... भगवान आया अन्त में, सवेरे। आत्मा भगवान ही है। उसमें प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग तथा उदय के प्रकार—भेद उसमें है ही नहीं। उसे यहाँ आत्मा, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। लेना है तो द्रव्यस्वभाव, परन्तु यहाँ भाव से लिया है। वस्तु का शुद्धभाव चिदानन्द सहजानन्दस्वरूप में प्रकृति के, स्थिति के प्रकार, प्रकृति के प्रकार, प्रदेश के प्रकार और अनुभाग-रस देने की शक्ति के प्रकार और उदयभाव उसमें है नहीं। आहाहा! तो है क्या? यह ५६ कलश में कहेंगे।

श्लोकार्थः-जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है... आहाहा! भगवान आत्मा नित्य-शुद्ध, वह तो त्रिकाल पवित्रता और शुद्ध चिदानन्दरूपी, चिदानन्द अर्थात् ज्ञानानन्दरूपी उसकी सम्पदा। ज्ञानानन्दरूपी सम्पदाओं की भगवान आत्मा उत्कृष्ट खान है। खान-खान निधान। आहाहा! खान कहते हैं न? अनन्त आनन्द निकालो... निकालो... निकालो... तो भी कम न हो, ऐसी खान है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव को भोगना, वह दुःखरूप है, जहररूप है। पर को तो भोग सकता नहीं। यह बात तो सवेरे आ गयी थी न? पर का शरीर, वाणी, पर को तो भोगता नहीं, पर का कर्ता है नहीं। आहाहा! भगवान तो पर से निष्क्रिय प्रभु आत्मा है और पर से तो निर्भोग है। आहाहा! अपने चिदानन्द की सम्पदा है। यह वस्तु करने की है। धर्मी को धर्म करना हो तो कैसे होता है? कि धर्मी ऐसा जो आत्मा शुद्ध नित्य चिदानन्दरूपी सम्पदा, यह सम्पदा। कहो, पोपटभाई! तुम्हारी धूल की सम्पदा को यहाँ गिना नहीं।

मुमुक्षु : गृहस्थ .... मुनि के लिये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यहाँ आत्मा के लिये है। आत्मा ऐसा है। गृहस्थ का भी ऐसा है और मुनि का भी ऐसा है। आहाहा! कहो, मलूकचन्दभाई!

चिदानन्द... चार शब्द प्रयोग किये हैं। एक तो नित्य, शुद्ध, ज्ञानानन्दरूपी सम्पदा है। आहाहा! जिसका स्वभाव ज्ञान, उसकी हद—परिमितता क्या? उसकी मर्यादा क्या? जिसका ज्ञान नित्य शुद्ध और जिसका नित्य शुद्ध आनन्द, उसकी मर्यादा क्या? अमर्यादित ज्ञान और आनन्दस्वभाव उसका है। आहाहा! क्षेत्र भले छोटा हो, उसके साथ कुछ काम नहीं। देखो, शक्कर का क्या कहलाता है? सैकरीन। शक्कर की डली इतनी होती है और सैकरीन इतना परन्तु मिठास बहुत। क्षेत्र बड़ा हो तो मिठास अधिक, ऐसा कुछ नहीं। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा इस जड़-मिट्टी से भिन्न, कर्म के उदय से हुए भाव, उनसे भिन्न... आहाहा! और अपने ज्ञानानन्दस्वभाव की सम्पदा से अभिन्न। आहाहा! करने का तो यह है। समझ में आया? फिर जानपना थोड़ा हो, बहुत हो, उसके साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा!

जो नित्य प्रभु कायम रहनेवाली चीज़ त्रिकाल और शुद्ध। त्रिकाल की अपेक्षा से शुद्ध, हों! पर्याय की अपेक्षा से शुद्ध की यहाँ बात नहीं। त्रिकाल शुद्ध और त्रिकाल चिदानन्द ज्ञानानन्दरूपी चोसला (बर्फी) पड़ा है अन्दर। आहाहा! ज्ञानानन्दरूपी जिसका स्वभाव। चोसला को क्या कहलाता है? समझ में आया? मैसूर बनाते हैं न, बर्फी काटते हैं। मैसूर, मोहनथाल। टुकड़ा करते हैं न। टुकड़ा काटते हैं या नहीं? बर्फी, मोहनथाल। (उसे) हमारे यहाँ चोसला कहते हैं। एक बर्फी काटो, कहे। आहाहा! यह भगवान आत्मा **नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** आहाहा! **तथा जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** अस्ति-नास्ति की। शुभाशुभभाव, वह विपदा है। परचीज़ विपदा नहीं, परचीज़ तो ज्ञेय है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का विकल्प और हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-वासना, वे सब भाव विपदा हैं। वह (आत्मा) सम्पदा है तो ये विपदा हैं। आहाहा! **जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

चार अभाव है न, भाई! प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्यभाव, अत्यन्ताभाव, उनसे यह दूसरा अभाव है। यह अध्यात्म का कहा न? **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** आहाहा! विपदा का उसमें अभाव है। विकार का स्वभाव में अभाव है। वह

अत्यन्त अभाव लिया है यहाँ। वे चार जो अभाव हैं, वे यहाँ नहीं। वह तो एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अत्यन्त अभाव। यह तो अध्यात्म का अभाव। समझ में आया? वे चार अभाव आते हैं या नहीं? पण्डितजी ने कल प्रश्न किया था। वर्तमान पर्याय का पूर्व में अभाव, वर्तमान पर्याय का भविष्य में अभाव, अन्योन्य द्रव्य में अत्यन्त अभाव द्रव्य में और जड़ की पर्याय में और पर की पर्याय में अन्योन्य अभाव। क्योंकि वह पर्याय उसमें और यह पर्याय भविष्य में आयेगी। अन्योन्य अभाव। यह दूसरा अभाव। आहाहा! यह अत्यन्त अभाव।

भगवान चिदानन्दमूर्ति प्रभु, जिसके स्वाद में आनन्द आता है। आहाहा! वह संसारी सुख की जो वेदना शुभ-अशुभभाव की, वह वेदना विपदा का अपद है। अकेला (अपद) ऐसा नहीं लिया। **अत्यन्तरूप से अपद है...** आहाहा! जैसे एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अत्यन्त अभाव है, उसी प्रकार यहाँ स्वद्रव्य में विपदा का अत्यन्त अभाव है। समझ में आया? यह समझकर यह करना है और यह मार्ग है। फिर बारह अंग पढ़े या ग्यारह अंग पढ़े या पाँच समिति-गुप्ति जितना ज्ञान हो। आहाहा! समझ में आया? **(अर्थात्, जहाँ विपदा बिलकुल नहीं है)...** आहाहा! यह बन्ध का अधिकार है न? प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग और उदय यह भाव बिल्कुल आत्मा में नहीं। आहाहा! व्यवहार बतलाया। विकार और कर्म का सम्बन्ध, वह व्यवहार है, परन्तु वस्तु में वह है नहीं। यह जैनदर्शन की शैली जो केवलज्ञानी ने देखा है, ऐसा व्यवहार इस प्रकार का है। प्रकृति है, स्थिति है, प्रदेश है, अनुभाग है, उदय है। वह अन्दर में नहीं। ऐसी स्थिति बतलाते हैं। समझ में आया? जैनदर्शन में व्यवहार किसे कहते हैं, यह भी बतलाया है और उस निश्चय स्वभाव में व्यवहार है नहीं, यह भी बतलाया है। पण्डितजी! आहाहा!

ऐसे इसी पद का मैं... आहाहा! मुनिराज अपनी बात करते हैं। समझ में आया? **ऐसे इसी पद का...** जो नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की खान और विपदाओं का अभाव। आहाहा! ऐसे पद को **मैं अनुभव करता हूँ।** आहाहा! देखो, यह पद्मप्रभमलधारिदेव, यह फोटो है न तीसरा, इनकी टीका है। ये भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हैं, ये अमृतचन्द्राचार्य, ये पद्मप्रभमलधारिदेव। यह टीका चलती है वह। आहाहा!

देखने के समय में क्रिया होती है, वह तो जड़ की है। विकल्प उठा, वह वेदन मेरा नहीं, उसका तो मुझमें अत्यन्त अभाव है। आहाहा! समझ में आया? मैं तो चिदानन्द नित्य शुद्ध सम्पदा लक्ष्मी से भरपूर प्रभु हूँ। आहाहा! मेरी लक्ष्मी अखूट है। यह तुम्हारी लक्ष्मी तो घट जायेगी। कहो, मलूकचन्दभाई! इनके एक पुत्र के पास पाँच करोड़ हैं और एक के पास चार करोड़। (कुल) नौ करोड़ हैं।

मुमुक्षु : मलूकचन्दभाई का कितना भाग?

पूज्य गुरुदेवश्री : इनके पास कहाँ थे इनके? यह तो उनके कमाये हुए पैसे हैं। अलग होने के बाद कमाये हैं। मलूकचन्दभाई का उनमें कुछ हक नहीं, उनके पिता का कि उसमें खर्चा, कुछ नहीं। बाकी के बाद में कमाये होंगे। बात सच्ची। आहाहा! इकट्ठे रहे, रोटियाँ खाये। आहाहा! यह चीज़ भी आत्मा की है नहीं तो प्रश्न कहाँ? आहाहा! उसे प्रयोग कर सकता नहीं और रख सकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मैं इस प्रमाण—इस प्रकार से इसी पद का नित्यानन्द प्रभु... आहाहा! जो मेरी सम्पदा की खान मैं हूँ। आहाहा! उसका मैं अनुभव करता हूँ। आहाहा! उस समय तो विकल्प है न। टीका करते समय विकल्प है। भले हो, परन्तु मैं तो विकल्परहित मेरी वस्तु है, उसमें मैं हूँ। समझ में आया? **मैं अनुभव करता हूँ।** आहाहा! वेदान्त में तो फिर मैं और अनुभव, दो कहाँ से आये? द्वैत हो जाता है। ऐसा नहीं, यहाँ द्वैत है। मैं वस्तु का पर्याय में अनुभव करता हूँ। दो है, द्वैत है। वेदानत ऐसा कहता हैं कि मैं और अनुभव करूँ, ऐसा कहाँ से लाये? ऐसा है कहाँ? वह तो है, वह है। ऐसी चीज़ नहीं। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि मैं मेरी चीज़ को अनुभव करता हूँ। आहाहा! मैं ज्ञायक और आनन्द का भण्डार... आहाहा! अखूट खजाना। कहो, दरबार! यह अखूट खजाना यह आत्मा है, बाहर में धूल में है नहीं वहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दरबार। दस बारह। दस आवे और बारह खर्च हो, वे सब दस-बार कहलाते हैं। २५ हजार की उपज हो तो खर्च ३० हजार का हो, ४० हजार का। बकबास बड़ा हो। आहाहा! उसे दस-बार कहते हैं, भाई! दरबार को दस-बार

कहते हैं लोग। दस अर्थात् दस आवे और बारह खर्च करे। इतने सब...

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु ऐसे अनन्त आनन्द की खान है, जितना अनुभव करे, उसमें से निकला ही करे... निकला ही करे। आहाहा! जैसे पानी का पूर जैसे बहता है अन्दर से। आहाहा! उसी प्रकार भगवान चिदानन्द की खान अनुभव में, पर्याय में आता है तो दूसरे समय में, तीसरे समय में दूसरा अनुभव आता ही है उसमें से। अनन्त आनन्द का अनुभव करो तो भी दूसरे समय में अनन्त आनन्द दूसरा आता है। ऐसी अनन्त की खान है वह। आहाहा! चिमनभाई! यह तुम्हारा पैसा-फैसा और यह क्या कहलाये तुम्हारा? कारखाना, फैक्ट्री। कम हो जाये फैक्ट्री वहाँ। स्टील का कारखाना है उसे कांप में। स्टील-स्टील है न। कहो, सेठ! इनको बीड़ी का कारखाना है। क्या कहा?

मुमुक्षु : यहाँ तो आनन्द का कारखाना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान! यहाँ तो यह चीज़ है, प्रभु! मुनिराज जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं कि सर्वज्ञ परमात्मा तेरी वस्तु ऐसी कहते थे। मैं भी ऐसा हूँ, तू भी ऐसा है, और भगवान भी ऐसे थे। आहाहा! सब बात छोड़कर प्रभु, वह विकल्प जो है राग, दया, दान, व्रत, भक्ति का, वह भी दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया? आयेगा बाद में। मैं तो अनुभव मेरे ज्ञान और आनन्द का (करता हूँ)। आहाहा! यह ५६ (कलश) हुआ। ५७ (कलश)।

★ ★ ★

कलश - ५७

(वसन्ततिलका)

यः सर्व-कर्म-विष-भूरुह-सम्भवानि,
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुङ्क्तेऽधुना सहज-चिन्मय-मात्म-तत्त्वं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति सन्शयः कः ॥५७॥

(वीरछन्द)

निज से भिन्न तथा कर्मों के विषवृक्षों के फल को त्याग।
सहज चिदातम का भोक्ता जो, क्या संदेह लहे निर्वाण॥५७॥

श्लोकार्थः—(अशुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर जो जीव, इसी समय सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है, वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है—इसमें क्या संशय है ?।।५७।।

कलश - ५७ पर प्रवचन

यः सर्व-कर्म-विष-भूरुह-सम्भवानि,
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुङ्क्तेऽधुना सहज-चिन्मय-मात्म-तत्त्वं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति सन्शयः कः॥५७॥

श्लोकार्थः-(अशुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से... आहाहा! तीर्थंकरप्रकृति है, वह भी जहर का वृक्ष है। प्रकृति है न जड़ ? १४८ प्रकृतियाँ हैं, उनमें तीर्थंकरप्रकृति है। आहारक प्रकृति है, यशकीर्ति है। आहाहा! वह सब प्रकृतियाँ (जहर का वृक्ष है)। मेरी चीज़ अमृत का वृक्ष है। मैं अमृत का झाड़—वृक्ष हूँ और प्रकृति जहर का वृक्ष है। समझ में आया ? प्रकृति का फल आता है, वह भाव जहर है, परन्तु वह प्रकृति जहर है। जहर उसमें से... आता है न ? यह आया न ? समयसार में आया है अन्त में। अन्त में आयी है १४८ प्रकृतियाँ। आठों ही कर्म जहर के वृक्ष। क्योंकि उनका उदय होता है तो राग ही होता है। आहाहा! वह जहर का अनुभव है, वह जहर का वृक्ष है। उसमें से अनुभव आता है राग—शुभाशुभभाव, वह जहर का फल है। आहाहा! यह व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं न ? यह शुभराग, वह जहर कर फल है।

मुमुक्षु : मोक्ष अधिकार में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न। धन्नालालजी! आहाहा!

(अशुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से... नामकर्म में तीर्थंकरप्रकृति हो, अपयश हो, यशकीर्ति हो, उच्चगोत्र हो या नीच गोत्र हो, वे **सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले,...** भाषा देखो, **निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को...** देखो! कर्म के निमित्त का लक्ष्य करने से वहाँ शुभ-अशुभभाव फल उत्पन्न होता है। जहर के फल हैं वे। आहाहा! दुनिया नहीं कहती? अच्छा पुण्य का फल आवे तो कहते हैं कि अभी उसका समय है, उसका काल है। कहते हैं न ऐसा? लोगों में कहते हैं। दसको है। यह तो उनकी भाषा में कुछ होगा हिन्दी में। पुण्य का फल बहुत मिलता है। दो, पाँच, दस, करोड़ रुपये हों, पुत्र अच्छा हो, स्त्री अच्छी हो, पुत्री का अच्छी जगह विवाह किया हो और पुत्र को अच्छे घर से लड़की आयी हो तो लोग कहे अभी उसका समय है, पुण्य का समय है इनका। जहर का, विष्टा का समय है।

यहाँ तो जहर कहा, फिर विष्टा का कहाँ प्रश्न है? विष्टा तो अभी कुत्ता खा सकता है, सूकर खा सकता है। विष्टा खा सकता है। जहर मार डालता है। पुण्य, वह विष्टा है—ऐसा कहा, वहाँ लोग भड़क गये। चिल्लाहट (मचा गये)। पुण्य विष्टा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव विष्टा, जहर है, अधर्म है। सुन तो सही। कड़क लगे। उसमें लिया है भाई आत्मावलोकन में। मिश्रधर्म, मिश्रधर्म लिया है। धर्म-अधर्म दो है। श्रावक को धर्म और अधर्म दोनों हैं। मिश्रधर्म है न? मुनि को धर्म है, अज्ञानी को अकेला अधर्म है और साधक को धर्म-अधर्म दोनों हैं। मिश्र है न। जितनी निर्मलता प्रगट हुई है, उतना धर्म है; जितनी मलिनता है, उतना अधर्म है। यह शुभभाव, वह अधर्म है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **निजरूप से विलक्षण...** भगवान आनन्द का नाथ प्रभु उसके रूप से विलक्षण। आहाहा! **ऐसे फलों को छोड़कर...** यशकीर्ति, तीर्थंकर (प्रकृति का) लाभ का भाव, शुभभाव, वह जहर का फल है। आहाहा! सन्तों को जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हुए डर नहीं। जगत में दो भाग पड़ जायेंगे, यह मानेंगे, नहीं मानेंगे। अनादि से है। सुनो! मार्ग यह है। समझ में आया? पसन्द आये, न आये, उसके साथ हमारे कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, अरे! १४८ प्रकृति जो

जड़ की पड़ी है, उनके फलरूप जो भाव है, वह जहर का फल छोड़कर। आहाहा! भाषा तो देखो!

जो जीव, इसी समय... भाषा है देखो, '**अधुना**' आहाहा! वर्तमानकाल में उसे छोड़कर, वर्तमान में आत्मा का अनुभव करता है। आहाहा! **जो जीव, इसी समय सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को...** पाठ है न अन्दर? '**सहजचिन्मयमात्मतत्त्वं**' आत्मा कैसा है? कि वह तो ज्ञानमय है, जाननस्वभावमय है। यह ज्ञान की प्रधानता से कथन किया। चिन्मय है, ज्ञानमय है, जाननस्वभावमय आत्मा है। आहाहा! है तो अनन्त गुण, परन्तु अनन्त गुण में प्रधान गुण ज्ञान असाधारण है। क्योंकि दूसरा गुण अपनी सत्ता रखता है, परन्तु उस सत्ता का ज्ञान उसे नहीं। श्रद्धा, आनन्द वह सत्ता रखता है, परन्तु मैं श्रद्धा हूँ या आनन्द हूँ, उसका (उसे) ज्ञान नहीं। ज्ञान में अपना (ज्ञान होता है कि) मैं ज्ञान हूँ, उसे भी मैं जानता हूँ। ज्ञान ज्ञान को जानता है, ज्ञान श्रद्धा को जानता है, ज्ञान आनन्द को जानता है।

मुमुक्षु : बाकी गुण चेतन हैं या अचेतन?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक न्याय से अचेतन है, ऐसा लिया है। सप्तभंगी है सप्तभंगी, स्याद्वाद। उपयोग, वह जीव है और अनुपयोग, वह जीव नहीं। ऐसी सप्तभंगी चली है स्याद्वाद में। इस अपेक्षा से, हों! समझ में आया? आहाहा! इसकी सप्तभंगी चली है कि ज्ञान अस्ति है, गुण तो है परन्तु सत्ता अस्ति अपने से है, ऐसा गुण है या नहीं? कि ऐसी सप्तभंगी चलाओ। लिया है चिद्विलास में। सप्तभंगी ली है। ज्ञान अपने से अस्ति है, सत्तागुण के कारण से नहीं। आहाहा! ज्ञान अपने से प्रमेयत्व है, प्रमेयगुण के कारण से नहीं। आहाहा! ज्ञान अपने से वस्तुत्व है, सामान्य-विशेष स्वभाव वस्तु अपने से है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे एक गुण में अनन्त गुण लिये हैं। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, वह अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है। आहाहा!

सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है,... ज्ञानमय यह आत्मा, ज्ञानमय यह आत्मा, उसे जो भोगता है। आहाहा! **वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है—** उसे अल्प काल में पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होगी। आहाहा! पंचम काल में मुक्ति नहीं न?

ऐसा क्यों लिखते हैं मुनि ? सुन तो सही। जितना अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुआ, वह आत्मा तो मुक्तस्वरूप ही है, अबद्धस्वरूप है, परन्तु पर्याय में उतना मुक्त हो गया। समझ में आया ? भगवान आत्मा अबद्धस्वरूप है। अबद्धस्वरूप नास्ति से कहा। ऐसे मुक्तस्वरूप है, वस्तु तो मुक्तस्वरूप ही है। वस्तु के साथ बन्ध का सम्बन्ध ही नहीं। वह तो अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव है। तो अबद्ध कहो या मुक्त हो। मुक्तस्वरूपी मोक्ष मुक्तस्वरूप त्रिकाल है। आहाहा! ऐसे मुक्तस्वरूप का अनुभव किया तो पर्याय में भी उतनी मुक्ति हो गयी। मुक्त का अनुभव करने से पर्याय में उतनी मुक्तता मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी से रहित, मोक्ष की पर्याय की पूर्णता तब होगी, परन्तु मोक्ष की व्यक्त पर्याय यहाँ से हुई। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

'प्रभु का मार्ग हे शूरों का, कायर का नहीं काम वहाँ।' यह हींजड़े जैसे पावैया का वहाँ काम नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? शुभभाव से धर्म होता है, पुण्य से धर्म होता है, यह (माननेवाले) सब हींजड़े-पावैया हैं। पण्डितजी! यहाँ तो बात ऐसी है। आहाहा! जो अपना वीर्य आनन्द आदि ज्ञान की रचना करे, वह पुरुष है, परन्तु जो वीर्य राग की शुभ, दया, दान की रचना करे, वह वीर्य नहीं, वह नपुंसकता है। आहाहा! नपुंसक को प्रजा नहीं होती, उसी प्रकार शुभभाव की दशा में यह धर्म की पर्याय नहीं होती। आहाहा! मार्ग तो वीतराग का ऐसा है, भाई! इसे लक्ष्य में आया नहीं, सुनने को मिला नहीं। सुने बिना लक्ष्य में कहाँ से आवे! आहाहा! लक्ष्य में आये बिना रुचि कहाँ से हो! और रुचि हुए बिना परिणमन कहाँ से हो ? आहाहा! ओहोहो! अनन्त काल में मनुष्यपना मिला, वह क्षण-क्षण में काल चला जाता है, मृत्यु के समीप जाता है। ऐसे समय जाता है, यह जानता है कि मैं बड़ा होता हूँ-मोटा होता हूँ। भगवान कहते हैं, यह मृत्यु का समय लाया है, उस समय के नजदीक जाता है। आहाहा! ऐसे काल में आज ही कर ले, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह प्रवचनसार में आया न, भाई! पीछे नहीं ? दो गाथा। 'आज' ऐसा शब्द आया है। प्रवचनसार की अन्तिम दो गाथा-कलश है। आज ही कर ले। आहाहा! वायदा करे वह बकवास। बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... बाद में क्या करेगा ? बाद में बाद में रहेगा। बाद का पछतावा रहेगा बाद में। आहाहा!

कहते हैं कि **वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है—इसमें क्या संशय है ?** सन्देह क्या है ? आहाहा ! देखो ने, पंचम काल के मुनि की आवाज ! आहाहा ! भगवान आत्मा अन्तर में अनन्त ज्ञान है। विश्वास कहाँ है ? उसे विश्वास कहाँ है ? 'मैं ऐसा हूँ' ऐसा विश्वास कहाँ है ? आहाहा ! और यह विश्वास में आना, वह तो अलौकिक पाचनशक्ति है। आहाहा ! अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, अनन्त प्रभुता-ईश्वरता—ऐसी अनन्त-अनन्त अपरिमित शक्ति का सागर प्रभु। विश्वास कहाँ है ? आहाहा ! 'यह मैं हूँ' ऐसा विश्वास कहाँ है ? आहाहा ! पर्याय जितना मैं नहीं, निमित्त में तो मैं हूँ नही, एक समय की पर्याय में मैं नहीं। आहाहा ! चिदानन्द दल प्रभु अमृत का सागर नाथ ! उसका अनुभव करनेवाला अल्पकाल में मुक्ति को प्राप्त करता है। यह मोक्ष का मार्ग और यह मोक्ष उसका फल। कोई कहे कि व्यवहार मोक्ष का मार्ग है। यह है नहीं। यह एक चिदानन्द का अनुभव करना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ? आहाहा ! लोगों को कठिन पड़े न, इसलिए बेचावरे भाग पाड़ डालते हैं कि नहीं, यह सोनगढ़ की श्रद्धा। अरे ! सोनगढ़ की है या आत्मा की बात है यह तो ? आहाहा ! पुण्य से, व्यवहार से धर्म नहीं होता, पर का कुछ कर सकता नहीं और अपनी चीज़ अल्परूप नहीं, पर्याय पर्याय में नहीं ऐसा। आहाहा !

मुमुक्षु : बात चलती नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ की कहाँ, यह तो भगवान की बात है। लोग ऐसा कहते हैं। ऐसा न करो, प्रभु ! तुझे ऐसा शोभा नहीं देता, तू ऐसा है नहीं। आहाहा ! तेरी चीज़ ही चिदानन्दस्वरूप प्रभु की खान प्रभु है न तू। उस अल्पज्ञ पर्याय में तू नहीं आता, तो राग से तुझे लाभ हो, ऐसी चीज़ कहाँ है ? आहाहा ! समझ में आया ? भगवान ! ऐसा निषेध करना तुझे नहीं होता। राग से होता है, व्यवहार से होता है, निश्चय से होता है, यह झूठ है — ऐसा कहते हैं। अरे ! प्रभु ! ऐसा न कर। आहाहा ! प्रभु ! तुझे कलंक लगता है। आहाहा !

पूर्णानन्द का नाथ जिसके अनुभव में आनन्द का स्वाद आता है... आहाहा ! उसे विषय का सुख जहर जैसा दिखता है। इन्द्र की इन्द्राणी, करोड़ों इन्द्राणियाँ और जिनका

शरीर अन्न बिना निभता है। यहाँ तो अन्न एक दिन न खाये तो जीर्ण हो जाये। (देव को) हजारों वर्ष में इच्छा होती है। कण्ठ में से अमृत (झरता है)। ऐसे इन्द्र। आहाहा! समझ में आया? उसका जो सुख समकिती अपने आनन्द के स्वभाव के समक्ष उस सुख को काले नाग जैसा जहर देखता है। काला नाग देखे ऐसे फण मारता, ऐसा देखे तो (भय लगे), उसी प्रकार ज्ञानी को... आहाहा! निज आनन्द के अनुभव के समक्ष शुभभाव और अशुभभाव जहर जैसे दिखते हैं। ऐसी चीज़ है। आहाहा! यह सुन्दर शरीर और सुन्दर भाषा और सुन्दर अवयव, वह तो मिट्टी-जड़ का पुतला है। आहाहा! वह तो जड़ की रचना है, भाई! आहाहा! व्यन्तरी-व्यन्तरी का जैसा घर होता है न? भूतड़ी। यह भूत जड़ के घर हैं यह तो। आहाहा! यह भूत है। आहाहा!

पहले जब पालेज गये न, पालेज। यहाँ (संवत्) १९५९ के वर्ष में, यहाँ उमराला से। उमराला ११ मील है न। वहाँ से पालेज गये तो, १३ वर्ष की छोटी उम्र थी। आसोज महीना का दिन था। पहले-पहले गये तब की बात है। (संवत्) १९५९। तो हम दुकान में सो रहे थे। पालेज पहली बार गये, कभी देखा नहीं था। पीछे जीन है। अब तो समाप्त हो गया। जीन था वहाँ महिलायें रात्रि में राग लेती थीं। रासडा समझे? गीत गाती थीं और राग लेती थीं। बहुत महिलायें, जीन की महिलायें। हम तो बालक थे छोटी उम्र। कहा, यह क्या है? तो हम बालक, छोटी उम्र, इसलिए वहाँ नहीं जाने देने के लिये क्या कहा वह? चुड़ैल। यह चुड़ैल के गीत हैं। शरीर १३ वर्ष की उम्र थी। रूपवान सुन्दर शरीर था। १३ वर्ष की बात है, यह तो (अभी) ८७ हुए। तो नहीं जाने देने के लिये ऐसा कहा। ५९ के वर्ष। मनसुख। वह दुकान थी न जो पहली। वह चुड़ैल है। चुड़ैल है तो वहाँ नहीं जाना। फिर तो खबर पड़ी कि यह रात्रि में नहीं जाने देने के लिये ऐसा कहा। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि प्रभु! वह सारा चुड़ैल का घर है। समझ में आया? यह निजघर को छोड़कर चुड़ैल के घर में जाना नहीं, प्रभु! आहा! चुड़ैल ने बनाया हुआ यह घर है। आहाहा!

कहते हैं कि मैं तो मेरे स्वभाव के अनुभव में स्वाद लेता हूँ। आहाहा! मेरी मुक्ति तो अल्प काल में होगी, संशय क्या है? भव का अभाव केवली को पूछना है? पंचम

काल में तो केवली है नहीं। तो किसे पूछकर यह निर्णय किया? समझ में आया? आहाहा! श्रीमद् राजचन्द्र समकित पाये, अनुभव हुआ। तो एक बार ऐसा कह दिया थोड़ा 'शेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे; जिससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।' झबेरी थे, लाखों का व्यापार था, आत्म-अनुभवी थे। परन्तु ऐसा देखते हैं कि अरे! थोड़ा राग है, तो अभी एकाध भव करना पड़ेगा, ऐसा लगता है। 'अशेष कर्म का भोग है' अर्थात् राग 'भोगना अवशेष रे, जिससे एक देह धारकर...' देह मनुष्य की बात लेनी है। अभी तो स्वर्ग में गये हैं। 'इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।' हमारे स्वदेश में एक देह धारकर अन्दर में चला जाऊँगा। गृहस्थाश्रम में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार था। उनके घर में थे, यहाँ कहाँ थे? आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इसमें क्या संशय है? आहाहा! क्या नियमसार! क्या कलश! ओहो! गजब बात है!! ४० (गाथा) हुई। ४१ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ४१

णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा व।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा॥४१॥

नहिं स्थान क्षायिकभाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं।
नहिं स्थान उपशमभाव के, होते उदय के स्थान नहिं॥४१॥

अन्वयार्थः—[न क्षायिकभावस्थानानि] जीव को क्षायिकभाव के स्थान नहीं हैं, [न क्षयोपशमस्वभावस्थानानि वा] क्षयोपशमस्वभाव के स्थान नहीं हैं, [औदयिकभावस्थानानि] औदयिकभाव के स्थान नहीं हैं [वा] अथवा [न उपशमस्वभावस्थानानि] उपशमस्वभाव के स्थान नहीं हैं।

टीकाः—चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।

कर्मों के क्षय से[१] जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है। कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव हो, वह क्षायोपशमिकभाव है। कर्मों के उदय से जो भाव हो, वह औदयिकभाव है। कर्मों के उपशम से जो भाव हो, वह औपशमिकभाव है। सकल कर्मोपाधि से विमुक्त, ऐसा परिणाम से जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है।

इन पाँच भावों में, औपशमिकभाव के दो भेद हैं, क्षायिकभाव के नौ भेद हैं, क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद हैं, औदयिकभाव के इक्कीस भेद हैं, पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं।

अब, औपशमिकभाव के दो भेद इस प्रकार हैं—उपशमसम्यक्त्व, और उपशमचारित्र।

क्षायिकभाव के नौ भेद इस प्रकार हैं—क्षायिकसम्यक्त्व, यथाख्यातचारित्र, केवलज्ञान, और केवलदर्शन तथा अन्तरायकर्म के क्षयजनित दान, लाभ, भोग, उपभोग, और वीर्य।

क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान—ऐसे ज्ञान चार; कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और विभंगज्ञान, ऐसे भेदों के कारण अज्ञान तीन; चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन, ऐसे भेदों के कारण दर्शन तीन; काललब्धि, करणलब्धि, उपदेशलब्धि, उपशमलब्धि और प्रायोग्यतालब्धि, ऐसे भेदों के कारण लब्धि पाँच; वेदकसम्यक्त्व; वेदकचारित्र और संयमासंयमपरिणति।

औदयिकभाव के इक्कीस भेद इस प्रकार हैं—नारकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति, ऐसे भेदों के कारण गति चार; क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय, ऐसे भेदों के कारण कषाय चार; स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसकलिंग, ऐसे भेदों के कारण लिंग तीन; सामान्यसंग्रहनय की अपेक्षा से मिथ्यादर्शन एक, अज्ञान एक और असंयमता एक, असिद्धत्व एक; शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या, पीतलेश्या, कापोतलेश्या, नीललेश्या और कृष्णलेश्या, ऐसे भेदों के कारण लेश्या छह।

१. कर्मों के क्षय से=कर्मों के क्षय में; कर्मक्षय के सद्भाव में। (व्यवहार से कर्मक्षय की अपेक्षा, जीव के जिस भाव में आये, वह क्षायिकभाव है।)

पारिणामिकभाव के तीन भेद इस प्रकार हैं—जीवत्वपारिणामिक, भव्यत्व -पारिणामिक और अभव्यत्वपारिणामिक। यह जीवत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है; भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है; अभव्यत्वपारिणामिकभाव, अभव्यों को ही होता है।

इस प्रकार पाँच भावों का कथन किया।

पाँच भावों में क्षायिकभाव, कार्यसमयसारस्वरूप है। वह (क्षायिकभाव) त्रिलोक में प्रक्षोभ[१] के हेतुभूत तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को (तथा उपलक्षण से सामान्य केवली को) अथवा सिद्धभगवान को होता है। औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव, संसारियों को ही होते हैं; मुक्त जीवों को नहीं।

पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं। त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव (पारिणामिकभाव की) भावना से पंचम गति में मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं, (भविष्य काल में) जायेंगे और (भूतकाल में) जाते थे।

गाथा - ४१ पर प्रवचन

णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा व।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा॥४१॥

आहाहा! उदयठाणा पहले आया था, परन्तु यह तो पाँच के साथ इकट्ठा डाला है।

नहिं स्थान क्षायिकभाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं।
नहिं स्थान उपशमभाव के, होते उदय के स्थान नहिं॥४१॥

आहाहा! **टीका:—चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।** क्षायिकभाव केवलज्ञान की पर्याय, उपशमभाव समकित-चारित्र की पर्याय, क्षयोपशमभाव चार ज्ञान का उघाड़ (आदि), उदयभाव गति आदि।

१. प्रक्षोभ=खलबली। तीर्थंकर के जन्मकल्याणकादि प्रसंगों पर तीन लोक में आनन्दमय खलबली होती है।

ये चार भाव मुझमें नहीं। कहो, व्यवहाररत्नत्रय तो उदयभाव है, वह तो मुझमें नहीं, परन्तु क्षायिकभाव की पर्याय भी मुझमें नहीं। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाये न। जिसमें जो नहीं, उसका वह कर्ता नहीं हो सकता। सूक्ष्म बात है थोड़ी। जैसे आत्मा में शरीर का अभाव है तो शरीर का कर्ता हो सकता नहीं। अभाव है, उसमें क्या करे? वाणी का आत्मा में अभाव है। आहाहा! क्या करे? राग का प्रभु में अभाव (है तो) राग का क्या करे? क्षायिकभाव की पर्याय का अभाव। क्षायिकभाव की पर्याय द्रव्य कैसे करे? आहाहा! धन्नालालजी!

चार विभावस्वभाव कहा, देखा! क्षायिकभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, उदयभाव—चारों को विभावस्वभाव कहा। विभाव अर्थात् विशेषभाव। सामान्य जो त्रिकाली है, इस अपेक्षा से चार को विभावस्वभाव कहा। आहाहा! उन **विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के...** जो भगवान आत्मा सहजानन्दस्वरूप आनन्द का दल, ज्ञान का पिण्ड, शान्ति का सागर, आहाहा! ईश्वर-प्रभुता की शक्ति का भण्डार, ऐसी अनन्त शक्तियों का सागर, उसमें यह चार भाव नहीं। आहाहा! स्त्री-पुत्र उसमें नहीं, देश-परिवार उसमें नहीं, राग उसमें नहीं, क्षयोपशमभाव उसमें नहीं, उपशमभाव उसमें नहीं। अन्त में कहते हैं, क्षायिकभाव भी उसमें नहीं, वह तो पर्याय है। आहाहा! **चार विभावस्वभावों के...** भाषा ली है वापस, हों! विभावस्वभाव, ऐसा। यह पंचम भाव स्वभावस्वभाव, आहाहा! शुद्धस्वभाव। ये चार विभावस्वभाव। आहाहा! ऐसी उपदेश शैली दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : किसी ने सुनाया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : था कहाँ? ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है। पर्याय में है, द्रव्य में नहीं।

मुमुक्षु : किसकी पर्याय? किस गुण की पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव की पर्याय है। वह भाव पर्याय है। ज्ञान की पर्याय क्षायिक, दर्शन की पर्याय क्षायिक, आनन्द की पर्याय क्षायिक, वीर्य की (क्षायिक)

पर्याय, वह भाव। वह पर्याय के भाव हैं, वह भाव पर्याय के हैं, आत्मा के नहीं, द्रव्य के नहीं। आहाहा! वह पर्याय द्रव्य में नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! प्रभु! तू तो द्रव्यस्वभाव है न! तू तो नित्यस्वभावी, परमस्वभावी, उत्कृष्ट द्रव्यस्वभावी ही तेरी चीज़ है न, प्रभु! आहाहा! जहाँ दृष्टि देनी है, उसमें तो यह चार पर्याय भी है नहीं। समझ में आया? दृष्टि है, वह पर्याय है और वह पर्याय उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकरूप पर्याय है, तथापि वह पर्याय द्रव्य में नहीं। जिसका लक्ष्य करना है, उसमें वह नहीं। आहाहा! गजब बात है!

क्या कहते हैं? जो नियमसार मोक्ष की पर्याय और मोक्ष का मार्ग। मोक्ष का मार्ग है। उपशम, क्षयोपशम भाव है और फल है, वह क्षायिकभाव है। क्या कहा समझ में आया? यह नियमसार जो है, वह मोक्ष का मार्ग है। यह मोक्ष के मार्ग की व्याख्या है, परन्तु वह मोक्ष का मार्ग, वह पर्यायरूप है। उपशम, क्षयोपशम या क्षायिक कोई है। समकित क्षायिक होता है न? तो वह पर्याय नियमसार जो पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं। आहाहा! और उसका फल क्षायिकभाव, मार्ग का फल और मार्ग, दोनों द्रव्य में नहीं। आहाहा! भाई! मार्ग तो ऐसा है। वह पूर्णानन्द की खान में दृष्टि देने के लिये पर्याय की दृष्टि छुड़ाने के लिये बात की है। आहाहा!

मुमुक्षु : क्षायिकभाव.... मोक्षमार्ग और मोक्ष...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिकसमकित मोक्षमार्ग है। ज्ञान क्षयोपशम, शान्ति का क्षयोपशम, वह मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : क्षायिकभाव?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्षायिक समकित की अपेक्षा से कहा। वह पूर्ण क्षायिकभाव है। यह समकित का क्षायिकभाव तो चौथे से शुरु होता है, परन्तु पूर्ण नहीं। उसके साथ ज्ञान का क्षयोपशमभाव है, चारित्र का क्षयोपशमभाव है, उसके साथ। तो वह भाव आत्मा में नहीं। आहाहा! और पूर्ण फलरूप से क्षायिक सिद्धपद की पर्याय केवलज्ञानादि की... आहाहा! वह पर्याय है न! (लोग) गुण-गुण करते हैं न! गुण नहीं, केवलज्ञान गुण नहीं, पर्याय है, एक समय की दशा है। त्रिकाल नित्यानन्द प्रभु में एक समय की

क्षायिकपर्याय का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? जहाँ दृष्टि करनी है, उस चीज़ में दृष्टि की पर्याय भी नहीं।

मुमुक्षु : आत्मा का संवेदन पर्याय में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय (में) हो तो भी वह पर्याय द्रव्य में नहीं। क्योंकि एक समय की पर्याय यदि द्रव्य में हो तो पर्याय पलटने से पूरा द्रव्य भी पलट जायेगा, द्रव्य का भी नाश हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? यह ३२०वीं गाथा में आया है। ध्यान जो मोक्ष का मार्ग, वह विनश्वर है। तो ध्यान आत्मा से भिन्न चीज़ है, द्रव्य से भिन्न चीज़ है। आहाहा! क्योंकि यदि दो चीज़ें अभिन्न हों तो ध्यान का नाश होने पर साथ में द्रव्य का नाश हो जायेगा। न्याय से वस्तु समझना चाहिए न। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव की दिव्यध्वनि में आया, ऐसा पदार्थ का स्वरूप है। समझ में आया? आहाहा! समवसरण में अनन्त बार गया, सुना, परन्तु अन्तर चीज़ क्या है, उसके ऊपर दृष्टि नहीं दी। बाहर में प्रसन्न हो गया। बस, समवसरण देखा, भगवान को देखा, समवसरण में वाणी सुनी। वाणी सुनी, वह तो विकल्प है, परलक्ष्यी ज्ञान है। भगवान, वाणी आदि तो पर है, वे तो इन्द्रिय है। अणीन्द्रिय आत्मा से वे तो भिन्न इन्द्रिय है। आहाहा! जैसे यह जड़ इन्द्रिय है, वैसे भावेन्द्रिय है खण्ड-खण्ड एक (एक) विषय को देखनेवाली और उस इन्द्रिय का विषय है भगवान, वाणी आदि—इन तीनों को इन्द्रिय कहा गया है। ३१ गाथा। समयसार की ३१वीं गाथा।

'**जो इंदिये जिणित्ता**' इन्द्रियों को जीतकर। इसमें तीन प्रकार लिये हैं, उन तीनों को जीतकर, तीनों का लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! भगवान की वाणी है, उसका भी लक्ष्य छोड़कर और तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हैं, वे इन्द्रिय है। इन्द्रिय का विषय इन्द्रिय है। आहाहा! उसका लक्ष्य छोड़कर अणीन्द्रिय ऐसा तेरा भगवान पूर्णानन्द है। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' जो पर्याय से भी अधिक—भिन्न, इन्द्रियों से भिन्न अर्थात् कि वाणी से भिन्न वह भगवान से भिन्न और कान से भिन्न और इन्द्रिय जो खण्ड-खण्ड एक-एक विषय को जाननेवाली, उनसे भी भिन्न। '**णाणसहावाधियं**' त्रिकाली ज्ञानस्वभाव अधिक अर्थात् पर्याय से, पर से पृथक् है। आहाहा! पर्याय से क्षयोपशम

इन्द्रिय है न भाव? उससे वस्तु भिन्न है। आहाहा! क्षयोपशमभाव से भी वह वस्तु भिन्न है। यहाँ तो क्षायिकभाव से भी वस्तु भिन्न कहनी है। आहाहा! लोगों को समयसार... एक व्यक्ति कहता था कि तुम तो बहुत महिमा करते थे समयसार की, पन्द्रह दिन में वाँच लिया। बहुत सरस। आहाहा! पढ़ डाला। अरे! बापू! ऐसी चीज़ है। आहाहा! समयसार भगवान का कहा हुआ, केवली की वाणी है, सन्तों ने वाणी में ऐसा कहा है। आहाहा!

कहते हैं वह **चार विभावस्वभावों के...** भाषा तो देखो, विशेषभाव। वह सामान्य नहीं। ऐसा कहा कि वस्तु सामान्य-विशेष... सामान्य-विशेष होकर वस्तु है। वह तो प्रमाण का विषय लिया। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अकेला जो सामान्य है, उसमें यह विशेष चार भाव है नहीं। आहाहा! प्रमाणज्ञान भी; यह चार भाव वस्तु में नहीं; ऐसा निश्चय किया, वह निश्चयदृष्टि रखकर पर्याय का ज्ञान करता है तो प्रमाणज्ञान, परन्तु उस चीज़ को ऐसे रखकर पर्याय को मिलाता है। उसका निषेध करके प्रमाण (ज्ञान) पर्याय को मिलाता है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

फिर से। प्रमाणज्ञान में, पहले द्रव्य में चार भाव नहीं, ऐसा निश्चय का ज्ञान हुआ, पश्चात् 'पर्याय जो है, वह मुझमें है' ऐसा ज्ञान करता है तो प्रमाणज्ञान हुआ, परन्तु उस निश्चय का निषेध करके प्रमाण का ज्ञान करता है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात! अरे! जैनदर्शन तो जैनदर्शन है! आहाहा! रत्न की खान है, चैतन्यरत्न की खान! आहाहा! यह कोई सम्प्रदाय नहीं, समझ में आया? वस्तु का स्वभाव है। 'जिन सो ही है आत्मा अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिन वचन का मर्म।' आहाहा! स्त्री का शरीर, पुरुष का शरीर, उस शरीर को न देख। वह आत्मा में नहीं। कर्म को न देख, कर्म आत्मा में नहीं। राग को न देख, आत्मा में नहीं। इन चार भावों को न देख, चार भाव आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अब लेते हैं। **कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है।** नीचे स्पष्टीकरण किया है। **कर्मों के क्षय से=कर्मों के क्षय में; कर्मक्षय के सद्भाव में।** कर्मक्षय की अस्ति में। कर्म तो उसके कारण से नाश पाते हैं, परन्तु **कर्मक्षय के सद्भाव में। (व्यवहार से कर्मक्षय की अपेक्षा जीव के जिस भाव में आये, वह क्षायिकभाव है।)**

व्यवहार से कर्मक्षय की अपेक्षा जीव के जिस भाव में (अर्थात्) क्षायिकभाव में (आवे)। कर्म के क्षय की अपेक्षा क्षायिकभाव में आयी। आहाहा! उस जीव के जिस भाव में आवे, वह क्षायिकभाव। वह क्षायिकभाव आत्मा में नहीं, आहाहा! द्रव्यस्वभाव में नहीं। इसको कोई वाँचे या स्थानकवासी यह वाँचे '**णो खइयभावठाणा**' आहाहा! यह क्या कहते हैं? क्षायिकभाव तो सिद्ध में भी है। अरे! सुन तो सही, भाई! पर्याय में, पर्याय में द्रव्य कहाँ आया? द्रव्य तो द्रव्य में रहा। आहाहा! दोनों भिन्न धर्म हैं। पर्यायधर्म, द्रव्यस्वभावधर्म। धर्म अर्थात्? टिकनेवाली वस्तु। आहाहा!

कर्मों के क्षय से जो भाव हो,... अपेक्षा कर्म की **वह क्षायिकभाव है। कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव हो, वह क्षायोपशमिकभाव है।** इसका स्पष्टीकरण करेंगे। **कर्मों के उदय से जो भाव हो, वह औदयिकभाव है।** रागादि। **कर्मों के उपशम से जो भाव हो, वह औपशमिकभाव है। सकल कर्मोपाधि से विमुक्त, ऐसा...** आहाहा! सकल कर्म की उपाधि, वह उपाधि निमित्त है। **ऐसा परिणाम से जो भाव हो,...** परिणाम शब्द से सहज स्वभावभाव। परिणाम अर्थात् पर्याय नहीं यहाँ। '**परिणामी भवः परिणामः**' सहज भाव से है, वह परिणाम। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म के क्षय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, क्षय में इतनी अपेक्षा। कर्म के क्षय से जो भाव यहाँ हुआ...

मुमुक्षु : समकित में वह क्षय में होनेवाला भाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्षय, उसका अर्थ यह। क्षय वहाँ होता है, उसकी अपेक्षा से जो भाव हुआ, वह क्षायिक। नीचे स्पष्टीकरण किया है।

मुमुक्षु : .... कर्म के उदय में होनेवाला भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय में होनेवाला भाव है राग और क्षय में होनेवाला भाव क्षायिक। ऐसा ही है। वह भाव ऐसा ही है। कर्म के क्षय की जिसमें अपेक्षा है। इसलिए स्पष्टीकरण किया। कर्म के क्षय की जिसमें अपेक्षा है, ऐसा क्षायिकभाव। कर्म के उदय की जिसमें अपेक्षा, उसका नाम रागभाव। वह आत्मा में नहीं। विशेष स्पष्टीकरण आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १२, सोमवार, दिनांक १८-०८-१९७५
गाथा - ४१, प्रवचन - ८

यह नियमसार-मोक्षमार्ग की पर्याय का अधिकार, उसमें यह शुद्धभाव (अधिकार चलता है)। जिसके आश्रय से, जिसके अभिमुख (होने से) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय उत्पन्न होती है, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। समझ में आया? तो यह शुद्धभाव **चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा...** आहाहा! चार पर्यायों में जो चार भाव हैं—क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम और उदय, वह त्रिकाल परमस्वभाव वस्तु ध्रुव शुद्धभाव, द्रव्यस्वभाव में वे हैं नहीं। जिसमें वे नहीं, वहाँ दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! कठिन बात! समझ में आया? सम्यग्दर्शन की पर्याय या मोक्षमार्ग की पर्याय जिसमें नहीं। चार भाव नहीं तो वह नहीं। आहाहा! तो वह वस्तु जो ध्रुव चैतन्य आनन्ददल सहजात्मस्वरूप... श्रीमद् में यह वाक्य है। शिष्यों को दे तो वे कहते, सहजात्मस्वरूप। सहज वस्तु का स्वरूप जो सहजपरमस्वभाव उसमें ये चार भाव नहीं। आहाहा! इन भाव के अभाव द्वारा **पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।**

पहले कहा कि **कर्मों के क्षय से...** जो पर्याय में क्षायिकभाव होता है, उसमें कर्म के क्षय के निमित्त की अपेक्षा है। इतना लेना। नीचे स्पष्टीकरण किया है। **कर्मों के क्षय से=कर्मों के क्षय में; कर्मक्षय के सद्भाव में। (व्यवहार से कर्मक्षय की अपेक्षा, जीव के जिस भाव में आये, वह क्षायिकभाव है।)** आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन, वह क्षायिकभाव है। जिसमें केवलज्ञानावरणीय के क्षय के निमित्त की अपेक्षा है, इतनी बात। समझ में आया? वह क्षय आत्मा नहीं करता। क्षय के कर्म की पर्यायरूप जो दशा है, वह जब अकर्मरूप हो जाती है, तब क्षय किया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसा जो क्षायिकभाव।

कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव। जिसमें कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा निमित्त से रहती है, ऐसे भाव को क्षयोपशम पर्याय कहते हैं। कर्म के उदय से जो भाव हो... समझ

में आया ? **कर्मों के उदय से...** निमित्त की अपेक्षा। भाव तो अपने में अपने से होता है परन्तु जिसमें कर्म के उदय की निमित्त की अपेक्षा है, उस भाव को उदयभाव कहते हैं और उपशम से जो भाव हो, **कर्मों के उपशम से जो भाव हो, वह औपशमिकभाव है।** आहाहा! **सकल कर्मोपाधि से विमुक्त,...** इन चारों ही पर्यायों से विमुख, विमुक्त। आहाहा! **परिणाम से जो भाव हो,...** परिणाम शब्द से यह पर्याय नहीं। सहजस्वभावरूप वस्तु जो है, उस परिणाम से जो भाव (हो)... पाठ में ऐसा है देखो, है ? '**सकलकर्मोपाधि-विनिर्मुक्त परिणामे भवः पारिणामिकभावः।**' परिणाम शब्द से सहजभाव, परिणाम शब्द से पर्याय नहीं। आहाहा! सहज सहजात्मस्वरूप परिणाम अर्थात् सहजभाव से जो भाव है, जिसमें निमित्त की अपेक्षा नहीं। निमित्त की अस्ति की अपेक्षा नहीं और निमित्त के अभाव की भी जिसमें अपेक्षा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परिणाम ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम अर्थात् परिणामिकस्वभाव। परिणाम (अर्थात्) पर्याय नहीं। समझ में आया ? '**परिणामे भवः**' अर्थात् सहजरूप से होनेवाला, वह पारिणामिक, ऐसा। जिसमें कर्म की अस्ति की अपेक्षा, वह उदय और उपशम, क्षयोपशम; क्षायिक में कर्म के निमित्त की अभाव की अपेक्षा, वह इसमें नहीं। आहाहा! परमस्वभाव पिण्ड परमात्म दरबार पूर्णानन्द का नाथ जिसमें परिणाम से सहज भाव से जो भाव है, उसे पारिणामिक कहते हैं। उसमें यह चार भाव नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

मोक्षमार्ग का अधिकार है न। नियमसार है न। तो कहते हैं कि नियमसार दो प्रकार के—एक त्रिकाल शुद्ध चैतन्यस्वरूप पारिणामिकस्वभाव, वह नियमसार, वह ध्रुव। यह पहले आ गया है। त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, वह नियमसार। परिणामे भवः पारिणामिकस्वभाव वह नियमसार। वह ध्रुव। और उसके आश्रय से उत्पन्न हो, पर्याय में वह नियमसार पर्याय। क्यों ? पहले कह गये हैं कि सर्व शास्त्र की पद्धति दो नय से कही गयी है। पहले आया न ? पहले।

'**वाचंयमींद्रो का (-जिनदेवों का) मुखकमल जिसका...** दूसरा पृष्ठ है। दूसरा कलश। जिनदेवों। यह वाचंयमींद्र कहने में आता है। क्या ? मुनियों में भी प्रधान।

आहाहा! मुनि तो मौन होते हैं। उनमें भी भगवान मौन हैं। आहाहा! ऐसे जिनवरदेव का **मुखकमल जिनका वाहन है...** अपेक्षा से कथन है। वाणी मुखकमल से नहीं निकलती। वाणी तो भगवान के पूरे शरीर में से निकलती है। परन्तु लोग ऐसा समझते हैं, इसलिए इस अपेक्षा से कथन किया है। वरना वाणी भगवान को तो ॐ ध्वनि सर्वांश प्रदेश से ॐ ऐसी ध्वनि उठती है। समझ में आया? वह कहीं मुखकमल से नहीं निकलती, परन्तु ऐसा कहने में आया। लोग ऐसा समझते हैं कि वाणी तो मुखकमल से आती है। यह पंचास्तिकाय में ऐसा लिया है। मुखकमल से निकली। परन्तु शब्द में-पाठ में ऐसा है। देखो!

कहते हैं कि **मुखकमल जिसका वाहन है।** वाणी। **और दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की जिनकी पद्धति है।** है? आहाहा! **दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की जिनकी पद्धति है।** यह द्रव्यार्थिकनय से कहे और पर्यायार्थिकनय से (कहे), दो से कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? द्रव्यार्थिकनय से कहे, तब दृष्टि का विषय परमस्वभावभाव, उसमें ये भाव नहीं, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? परन्तु पर्यायनय से कहे तो उसकी पर्याय में चार भाव हैं, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? एक ही नय का विषय ग्रहण करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहा है। दो नय का विषय ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! इसका क्या अर्थ? कि द्रव्यार्थिकनय है, दृष्टि का विषय द्रव्यार्थिकनय है। दृष्टि के विषय का कथन द्रव्यार्थिकनय से है, द्रव्य त्रिकाल उससे है और पर्याय का विषय उसकी पर्याय में राग है, भाव है, उसका विषय करनेवाले पर्यायनय से कथन है। पर्यायनय से कथन है, उसे है ही नहीं—ऐसा मानना... समझ में आया? तो एक नय का कथन उड़ जाता है और त्रिकाली एक ही वस्तु है, पर्याय है ही नहीं तो भी नय उड़ जाता है। आहाहा! पर्याय व्यवहारनय का विषय है, वह चार भाव का विषय पर्यायनय से है। द्रव्यार्थिकनय से उसमें वे चार नय (भाव) नहीं है। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा में पाँच भाव में चार भाव है नहीं पंचम भाव में। अब **इन पाँच भावों में,...** स्पष्टीकरण करते हैं। **औपशमिकभाव के दो भेद हैं,**

क्षायिकभाव के नौ भेद हैं, क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद हैं, औदयिकभाव के इक्कीस भेद हैं, पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं। अब, औपशमिकभाव के दो भेद इस प्रकार हैं—उपशमसम्यक्त्व, और उपशमचारित्र। आत्मा की पर्याय में कर्म के उपशमरूप निमित्त की अपेक्षा से अपने में उपशम होता है। एक पर्याय है। प्रथम सम्यग्दर्शन उपशम ही होता है। इसलिए उपशमसम्यग्दर्शन लिया है। समझ में आया? पाठ में तो ऐसा लिया है, क्षायिक, क्षयोपशम, उदय और उपशम, ऐसा अन्त में लिया है। यहाँ पहले ले लिया है। क्योंकि उपशमभाव समकित पहले उपशमभाव से ही होता है। आहाहा! शुरुआत वहाँ से होती है।

अखण्ड आनन्द प्रभु जिसमें अकेला अनन्त आनन्द, ज्ञानस्वभाव से परिपूर्ण लबालब भरपूर है, जिसमें परिणमन भी नहीं। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का दल। हमारे काठियावाड़ में एक दल के लड्डू होते हैं। तुम्हारे नहीं होते हों या दूसरे नाम से कहते होंगे। लड्डू-लड्डू होते हैं। दल के लड्डू कहते हैं। उन लड्डुओं का नाम ही दल के लड्डू हैं। तिल नहीं... नहीं... तुम्हारा काम नहीं। दल-दल। दल है न ऐसे पिण्ड। कसवाले दल के लड्डू कहते हैं उन्हें। तुम्हारी भाषा होगी कुछ। अभी दल के लड्डू आये थे थोड़े। लड़कों को दिये थे, विद्यार्थियों को। कोई लाये थे, नहीं? महिलायें। दल के लड्डू थे। कसदार तत्त्व। ऐसा दल है आत्मा। आहाहा!

मुमुक्षु : लड्डुओं से बहुत आनन्द होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द होता है, परन्तु उन लड्डुओं में नहीं, इस लड्डू में। आहाहा! यह दल का लड्डू भगवान परमानन्द का नाथ, जिसके अभिमुख होने से आनन्द ही आता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो या आनन्द कहो। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु ऐसी चीज़ पर अभिमुख होने से, पर्याय को उस ओर झुकने से... आहाहा! परसन्मुख से हटकर... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पर्याय में स्वाद आता है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह बात है, भाई! धर्म कोई साधारण चीज़ नहीं। धर्म होने से आनन्द आवे, उसका नाम धर्म। धर्म उसे कहते हैं कि धर्मी जो

भगवान आत्मा अनन्त आनन्द का पिण्ड प्रभु, उस ओर ढलने से, पर्याय को उस ओर झुकाने से अतीन्द्रिय आनन्द में से आनन्द झरता है, उस आनन्द का स्वाद आवे, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। समझ में आया?

यह कहा था न पहले, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न पाँचवीं गाथा में? मैं मेरे निजवैभव से कहूँगा। पाँचवीं गाथा, समयसार। मेरे निजवैभव से कहूँगा। मेरा निजवैभव कौन सा? कि निरन्तर झरता सुन्दर स्वाद में आता हुआ प्रचुर स्वसंवेदन जो मुझे हुआ है और जिसमें आनन्द की मोहरछाप पड़ी है। मोहरछाप समझते हो? ट्रेडमार्क। आहाहा! हमारे चारित्रधर्म में निजवैभव में, जिसके वैभव में अतीन्द्रिय आनन्द की ट्रेडमार्क—मोहरछाप है। यह पोस्ट में नहीं करते? सील लगाते हैं। सील नहीं लगाते, छाप लगाते हैं वे। पत्र के ऊपर छाप लगाते हैं। उसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! हमारे स्वरूप की परिणति में आनन्द की मोहरछाप है। आहाहा! यह मेरा वैभव है। संसार के दु:ख का भाव, वह हमारा वैभव नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह पैसा-बैसा का बात नहीं। पैसा मेरा है, ऐसी ममता, लक्ष्मी मेरी है, शरीर मेरा है—ऐसी ममता वह दु:खरूप वैभव है, वह वैभव निज का नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आनन्द की मोहरछाप हमारे वैभव में पड़ी है। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ को जब अभिमुख होकर सम्हाला... आहाहा! तो अनन्त काल में आनन्द का स्वाद नहीं आया था, वैसा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, आहाहा! इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। धर्म हो और आनन्द न आवे, वह धर्म नहीं।

मुमुक्षु : मिश्री खाये और मिठास न आवे, ऐसा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मिश्री मिठासस्वरूप ही है; उसी प्रकार भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। बापू! कठिन बात! जगत को यह बात... आहाहा! धर्म उसे कहते हैं कि धर्मी ऐसा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, उस ओर झुकने से पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का आना, सम्यग्दर्शन हो तो वह अतीन्द्रिय आनन्द है, स्वसंवेदन ज्ञान है तो वह आनन्द है और चारित्र है तो वह आनन्द है। आहाहा! चारित्र दु:खदायी कहते हैं न लोग? वह छहढाला में आता है न? त्याग-वैराग्य को... चारित्र? कष्टदायक,

बापू! आहाहा! मोम के दाँत से लोहे के चने चबाना! मोम—मीण-मीण। उसके दाँत से लोहे के चने चबाना, बापू! चारित्र तो महा कष्टदायक। तू चारित्र को समझता नहीं। आहाहा!

चारित्र में तो आनन्द आता है। अतीन्द्रिय आनन्द आना, वह चारित्र है। तू कष्टदायक माने तो तुझे चारित्र की खबर नहीं। आहाहा! चारित्र—चरना; चरना अर्थात् रमना; रमना अर्थात् आनन्द का भोजन करना। आहाहा! जैसे पशु जंगल में चरने जाते हैं, तो वहाँ घास चरते हैं या ढेले को? धूल को चरते हैं? उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें रमणता होती है तो आनन्द का चरना है वहाँ तो। अतीन्द्रिय आनन्द का नित्यभोजी भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? धन्नलालजी! ऐसा धर्म गजब, भाई! कितने ही कहे सोनगढ़वालों ने नया निकाला, ऐसा कहते हैं। यह क्या कहते हैं? अनादि का मार्ग है। तुझे खबर नहीं, इसलिए कहीं दूसरा मार्ग हो जाये? आहाहा!

कहते हैं कि औपशमिकभाव के दो भेद हैं, वे इसमें है ही नहीं। उपशमसमकित और उपशमचारित्र। जिसमें आनन्द की दशा उत्पन्न होती है। जैसे कि पानी में मैल है, वह नीचे बैठ जाता है और ऊपर पानी आ जाता है, इसी प्रकार यहाँ मैल बैठ गया है। मैल का अभाव हुआ नहीं। मैल नीचे बैठ गया है। जैसे नितरता पानी है, वैसा उपशम शान्तरस, आनन्दरस। वह समकित आनन्दरस, वह चारित्र। आहाहा! परन्तु वह पर्याय द्रव्य में नहीं, ऐसा बताना है यहाँ तो। समझ में आया? वह पर्याय द्रव्य में नहीं। पर्याय का अस्तित्व पर्याय में है। पर्याय का अस्तित्व / हयाती / मौजूदगी द्रव्य में नहीं। आहाहा! ऐसे आनन्द की पर्याय उपशमसमकित, उपशमचारित्र वस्तु में नहीं। आहाहा! पर्याय में है। उपशमसमकित और चारित्र दोनों।

अब क्षायिकभाव के नौ भेद। **क्षायिकसम्यक्त्व,...** आहाहा! चौथे गुणस्थान से क्षायिकसमकित होता है तो केवलज्ञान में भी क्षायिकसमकित रहता है। आहाहा! श्रेणिक राजा चौथे गुणस्थान में क्षायिकसमकित। वह क्षायिकसमकित केवलज्ञान हुआ तो वहाँ रहा। आहाहा! वह क्षायिकसमकित वहाँ गिनने में आया। साथ में लेना है न?

वरना चौथे से क्षायिकसमकित (होता है)। आहाहा! (श्रेणिक राजा का) सिर फोड़कर मरण हुआ। क्षायिकसमकित को कोई दिक्कत नहीं। पूर्णानन्द के नाथ की जो प्रतीति क्षायिकभाव से उत्पन्न हुई, उसमें (सिर फोड़कर) मरण हुआ (तो) क्षायिक समकित में जरा भी दोष नहीं। आहाहा! वह चारित्रदोष था। समझ में आया? और एक राग के कण को भी अपना माने तो वह मिथ्यात्व का दोष है। समझ में आया? यहाँ तो अन्तर आनन्द के नाथ का क्षायिकसमकित प्रगट हुआ। आहाहा! जो क्षायिक केवलज्ञान लेगा। तो वह क्षायिक पर्याय भी आत्मा में नहीं। आहाहा! पर्याय में पर्याय है, त्रिकाल में नहीं। आहाहा! वह सब प्रजा पिता परमात्मा में नहीं। वह सब पर्याय प्रजा है।

मुमुक्षु : पर्याय त्रिकाल में से तो आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे भले। आती है, ऐसा कहना, वह भी भेदनय से है। वह तो कैसे (उसमें से) आती है (कहा)? कहीं अद्धर से नहीं आती, इतनी अपेक्षा। बाकी तो पर्याय भी स्वतन्त्र है। पर्याय जो आयी... द्रव्य तो एकसरीखा है। पर्याय विषमता एक थोड़ी उपशमसमकित, और क्षायिक ऐसे भेद क्यों पड़े? वह तो पर्याय की स्वतन्त्रता है। द्रव्य है, वह तो एकरूप है। अभेद में से यदि आवे तो अभेद में तो जैसी चीज़ है, वैसी चीज़ पर्याय में आनी चाहिए। इसमें कम, अधिक आवे, उसमें भंग नहीं पड़ना चाहिए। समझ में आया? आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात है। एकरूप पर्याय आनी चाहिए। यह तो एकरूप नहीं। भले केवलज्ञान फिर एकरूप आता है, परन्तु यह पहले से सिद्ध करना चाहिए। आहाहा!

द्रव्यस्वभाव, शुद्धस्वभाव परमपारिणामिक का सागर पड़ा है। उसमें से पर्याय आती है तो एकसरीखी नहीं आती। इस अपेक्षा से पर्याय को स्वतन्त्र कहा गया है। परिणति ऐसा जानती है कि मैं तुझमें से आयी, ऐसी मैं नहीं, मैं तो स्वतन्त्र हूँ। परिणति ऐसा जानती है कि मैं भी सत् हूँ। '**उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्**' तो उत्पाद सम्यग्दर्शन का हुआ, वह भी सत् है। तो सत् को किसी हेतु की आवश्यकता नहीं। तीनों सत् किसी के कारण से (कोई नहीं)। आहाहा! अपने कारण से है। समझ में आया? क्षायिकसमकित पर्याय में ध्रुव की अपेक्षा नहीं, व्यय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व का क्षय हुआ

तो क्षायिकसमकित हुआ। वह व्यय की अपेक्षा उत्पाद को नहीं। आहाहा!

एक ओर कहना कि उत्पाद क्षायिक जो हुआ, उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं। सत् है न? आयी उसमें से है। आहाहा! द्रव्यानुयोग तत्त्व बहुत सूक्ष्म, बहुत गहन! उत्पाद उत्पाद की अपेक्षा से है। केवलज्ञान हुआ, वह केवलज्ञान की पर्याय अपने उत्पाद से है। कर्म के क्षय से तो नहीं, परन्तु पूर्व की चार ज्ञान की पर्याय का व्यय हुआ, उसकी अपेक्षा से केवलज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी कर्म की विपरीतता घुस गयी है अन्दर। कर्म मन्द पड़े तो आत्मा को लाभ हो, कर्म हटे तो आत्मा को लाभ हो। यह रतनचन्दजी बहुत लिखते हैं। रतनचन्दजी मुख्तार। कर्म की बात आवे तो वहाँ विपरीतता घुसावे। यहाँ तो कहते हैं कि अपनी पर्याय होने में कर्म के निमित्त की तो अपेक्षा नहीं। आहाहा! वह तो पारिणामिकभाव की समझाने की अपेक्षा से कर्मक्षय जिसमें निमित्त है, उसे क्षायिक, ऐसा समझाया। क्योंकि वह भाव सहज नहीं, इतना बतलाना है। वह पर्यायरूप भाव है, परन्तु वह पर्यायरूपभाव स्वयं से हुआ है। आहाहा! द्रव्य में नहीं, द्रव्य से नहीं। यह बात। समझ में आया?

क्षायिकसम्यक्त्व, यथाख्यातचारित्र,... यथा-ख्यात, यथा-प्रसिद्ध। जैसी स्वरूप की पर्याय में रमणता पूर्ण होनी चाहिए, वैसी प्रसिद्धि जहाँ हुई, वह यथाख्यातचारित्र। यथा-ख्यात-प्रसिद्ध। जैसा स्वरूप है, वैसी परिणति, रमणता यथाख्यातचारित्र हुआ, वह क्षायिकभाव है। वह क्षायिकभाव अपने में नहीं—द्रव्य में नहीं। और क्षायिकभाव की उत्पत्ति ध्रुव की अपेक्षा रखे बिना उत्पन्न होती है। यह जैनदर्शन! वस्तुदर्शन कहो या जैनदर्शन कहो। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं, वस्तु का स्वभाव है। ऐसा जाना, वैसा कहा। समझ में आया?

यथाख्यातचारित्र, केवलज्ञान... आहाहा! केवलज्ञान की उत्पत्ति की पर्याय में अपेक्षा ली थी कि जिसमें कर्म के नाश की निमित्त की अपेक्षा (जिस) भाव में आवे, उसे क्षायिक कहते हैं, परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वह क्षायिक की पर्याय जो उत्पन्न हुई, उसमें पूर्व के व्यय की अपेक्षा भी जिसमें नहीं, तो कर्म के निमित्त की तो अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु की स्थिति। यह केवलज्ञान भी आत्मा में नहीं। एक समय

की पर्याय है। क्षायिकभाव की एक समय की पर्याय है। पर्याय का काल ही एक समय का है। दूसरे समय में दूसरी होती है। ऐसी हो, परन्तु दूसरी होती है। पर्याय का काल एक समय है और भगवान का काल त्रिकाल ध्रुव है। आहाहा!

और कलश में तो यहाँ तक लिया है कि त्रिकाल वस्तु है, वह स्वकाल है। एक समय की पर्याय प्रगट हुई, वह परकाल है। पण्डितजी! यह कलशटीका में आया है। कलशटीका (कलश २५२)। स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव में परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, (परभाव) चार बोल पाड़े हैं। तो कहते हैं कि स्वद्रव्य अखण्डानन्द प्रभु, उसमें भेद करना, वही परद्रव्य है। क्षेत्र अखण्ड प्रभु। उसमें यह प्रदेश और यह त्रिकाल और यह एक प्रदेश, ऐसा भेद डालना, वह परक्षेत्र है। पर की अपेक्षा नहीं, यहाँ अपनी अपेक्षा है। समझ में आया? है न उसमें? स्वद्रव्य निर्विकल्पमात्र वस्तु, स्वक्षेत्र आधारमात्र वस्तु के प्रदेश, स्वकाल वस्तुमात्र की मूलदशा त्रिकाल, स्वभाव अर्थात् वस्तु की मूल की स्वशक्ति। परद्रव्य अर्थात् सविकल्प भेदकल्पना। भेदकल्पना का गुण और गुणी, वह परद्रव्य। भेद किया न? अभेद है, उसमें यह गुणी और यह गुण, ऐसा भेद करना, वह परद्रव्य।

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में लेंगे। अभी तो यहाँ क्षेत्र लिया। परक्षेत्र अर्थात् वस्तु का आधार प्रदेश निर्विकल्पवस्तुमात्र से कहा था। प्रदेश सविकल्प भेद। यह प्रदेश असंख्य है और यह प्रदेश यह है, ऐसा भेद डालना, वह परक्षेत्र है। आहाहा! परकाल-द्रव्य की मूल की निर्विकल्पदशा। दशा अर्थात् पर्याय नहीं, मूल वस्तु। त्रिकाल अवस्थित ऐसा स्वकाल। है? परकाल द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना, वह परकाल। एक समय की अवस्था का भेद करके जानना, वह परकाल है। आहाहा! समझ में आया? वह परकाल स्वकाल में नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। यह क्षायिक केवलज्ञान की पर्याय वह है तो स्वयं से। समझ में आया? पर की अपेक्षा से नहीं, व्यय की अपेक्षा से नहीं, परन्तु है पर्याय का उत्पाद, वह द्रव्य से नहीं। आहाहा! वह द्रव्य में नहीं। पर्याय द्रव्य में नहीं और द्रव्य से नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग, बापू! वस्तु का

स्वरूप ऐसा ही है। तत्त्वज्ञान वस्तु ऐसी सूक्ष्म है कि वह पकड़ में आये तो आनन्द आये बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय द्रव्य से नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, द्रव्य में नहीं और पर्याय है, तो उसे कोई हेतु नहीं। सत् है न वह? सत् तो अहेतुक (होता है)।

मुमुक्षु : द्रव्य में से आवे, परन्तु द्रव्य पर्याय का कारण नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण नहीं। आवे भले, परन्तु वास्तव में कारण नहीं। आहाहा! यह कहा न पहले कि द्रव्य में से एक सरीखी पर्याय आनी चाहिए, यदि द्रव्य से हो तो। तो द्रव्य में से शक्ति में जो है, वही बाहर आती है। परन्तु यह अंश है, वह अंश आया तो भेद हो गया। भेद हुआ, वह द्रव्य के सामान्य में से नहीं आया, भेद में से आया। जरा सूक्ष्म बात है। समझ में आया? सामान्य जो त्रिकाल एकरूप है, उसमें तो एक सरीखी पर्याय आनी चाहिए और शक्ति में तो अनन्त पर्यायें हैं शक्तिरूप से—गुणरूप से और वही पर्याय... वह तो केवलज्ञानी के ज्ञान में है कि यह अंश यह आया, परन्तु यह भेदरूप कथन से आया, ऐसा कहा। सर्व में एक... भेद करना कि यह अंश व्यक्तरूप आया। (वह) व्यवहार हो गया। आहाहा!

कहते हैं कि केवलज्ञान क्षायिकभाव भी आत्मा में नहीं। परमपारिणामिक भगवान आत्मा, आहाहा! जहाँ अनन्त आनन्द से अनन्त केवलज्ञान से विराजमान भगवान, आहाहा! जहाँ अनन्त गुण का समुद्र पड़ा है, उस समुद्र में से केवलज्ञान की पर्याय आयी तो कहते हैं कि वह पर्याय द्रव्य में नहीं। आहाहा! द्रव्य तो पंचम पारिणामिकभावरूप है। आहाहा! ऐसी बात! अब यहाँ तो कहे कि दया, दान, व्रत, करो तो धर्म होगा। अरे भाई!

मुमुक्षु : दूसरी पुस्तक में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी पुस्तक में लिखा, वह व्यवहारनय से कथन है।

मुमुक्षु : शास्त्र में दो प्रकार का कथन है। प्रमाण से द्रव्य का कथन अलग और निश्चय से द्रव्य-पर्याय अलग...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर का अन्दर अभेद है। पर की अपेक्षा नहीं। अपना और अपना द्रव्य जो त्रिकाल, उसमें भेद करना, वह परद्रव्य; अपना और अपना क्षेत्र त्रिकाल असंख्य प्रदेश एकरूप, उसमें भेद करना कि यह प्रदेश, वह परक्षेत्र। त्रिकाल अपना स्वरूप जो एकरूप त्रिकाल, अवस्था अर्थात् अवस्थ—निश्चय-स्थ रहना त्रिकाल, वह स्वकाल है। एक समय की पर्याय, वह परकाल है। आहाहा! अपने में और अपने में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का भेद है। भाई! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा! यह द्रव्य की लीला है। वे ईश्वर की लीला कहते हैं न? ईश्वर की लीला। वह लीला उसकी नहीं। यह ईश्वर भगवान। समझ में आया? परम ऐश्वर्य प्रभु आत्मा की लीला। केवलज्ञान जैसी पर्याय प्रगटे तो भी कहते हैं कि द्रव्य की अपेक्षा उसे नहीं है और द्रव्य में नहीं। आहाहा! द्रव्य में नहीं। धर्मी की दृष्टि द्रव्य के ऊपर जाती है। द्रव्य के ऊपर जाती है तो द्रव्य में दृष्टि पसरती है। पसरती का अर्थ? अन्दर ऐसे पसरती है। ऐसे जो राग में पसरती थी, वह ऐसे पसरती है, पसरती है, परन्तु वह पर्याय द्रव्य में घुस जाती है, ऐसा नहीं। पसरती है, ऐसा कहा न? पसरती अर्थात् द्रव्य में फैल जाती है, परन्तु द्रव्य में घुस जाती है, ऐसा है? वह पर्याय व्याप्य हुई और व्यापक आत्मा कहा गया। आहाहा! समझ में आया? यह अधिकार ऐसा है।

शुद्धभाव का अधिकार है। शुद्धभाव त्रिकाल को शुद्धभाव कहते हैं। पर्याय में शुद्धभाव हुआ, वह भी परभाव है। राग परभाव, निमित्त परभाव। आहाहा! जहाँ त्रिकाली वस्तु का सत् का सत्त्व पूरा, सत् का पूरा सत्त्व, आहाहा! उस सत्त्व की अपेक्षा से एक समय की केवलज्ञान की पर्याय को परकाल में, परभाव में गिनने में आया है। आहाहा! यह ५० (गाथा) में कहा है। इसमें ५०वीं गाथा है न। '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' ५०-५०। यह कितनी है? लो, उस प्रवचन के अधिकार में प्रवचन का आधार देते थे। निकला सहज और यहाँ इसका आधार। है? '**पुव्वुत्तसयलभावा**' यह क्षायिकपर्याय, क्षयोपशमपर्याय आदि '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं**' है? मूल श्लोक। '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' आहाहा! समझ में आया?

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

अन्त:तत्त्व परमपारिणामिक भगवान, वही आदेय है—आदरणीय है। बाकी यह चार भाव परद्रव्य कहे। निर्मल पर्याय को परद्रव्य कहा। क्यों? कि जैसे नयी पर्याय परद्रव्य में से नहीं आती, उसी प्रकार पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती, इस अपेक्षा से पर्याय को परद्रव्य कहा गया है। आहाहा! तीन बोल हैं। पाठ में हैं, देखो! **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं, वे पहले व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं** टीका। वह केवलज्ञानादि पर्याय निर्मल आदि परस्वभाव है। आहाहा! गजब है न! **और इसीलिए परद्रव्य हैं।** आहाहा! समझ में आया? **वे हेय हैं।** पहले कहा। वे हेय है। **किस कारण से?** तीन बोल लिये टीका में। वे हेय हैं, किस कारण से? इस ओर। क्यों हेय है? कि परस्वभाव है। क्यों? **इसलिए ही परद्रव्य है।** आहाहा! चार भाव, वे हेय हैं। क्योंकि वे परद्रव्य हैं। आहाहा! परद्रव्य कहने से पहले परस्वभाव, ऐसा कहा। परस्वभाव है, इसलिए परद्रव्य है। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ चैतन्य द्रव्यस्वभाव... आहाहा! उसमें दृष्टि पसरने पर वह पर्याय भी पर है, ऐसा कहने में आया है, आहाहा! स्व की अपेक्षा से। पर की अपेक्षा से स्व है। राग भी पर की अपेक्षा से स्व है, निर्मल पर्याय की अपेक्षा से पर है। अब निर्मल पर्याय अपनी अपेक्षा से स्व है, परन्तु त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से पर है। आहाहा! समझ में आया?

वास्तव में सहजज्ञान-सहजदर्शन... है न? **पारिणामिकभावलक्षण कारणसमयसार है।** त्रिकाल भगवान कारणसमयसार। जरा थोड़ी सूक्ष्म बात है इसमें। ऐसा कहा कि जो **सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र-सहजपरमवीतरागसुखात्मक शुद्ध-अन्त:तत्त्वस्वरूप...** शुद्ध अन्त:तत्त्वस्वरूप। परन्तु वापस उसका आधार। तत्त्व अर्थात् भाव। तत्त्वार्थ है न? अर्थ द्रव्य, गुण और पर्याय। तत्त्व अर्थात् उसका भाव। तत्त्वार्थ। तो यह कहते हैं कि सहज ज्ञानादि वह तत्त्व है, भाव है। आहाहा! उस **स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण...** एकरूप त्रिकाली भाव, वह उसका आधार। दृष्टि में आधार-आधेय का भेद नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहा, केवलज्ञान, केवलदर्शन... आहाहा! क्षायिकभाव की पर्याय, वह द्रव्य—परमस्वभाव में नहीं। उसकी पर्याय में पर्याय है। पर्याय पर्याय में हैं; पर्याय द्रव्य में नहीं। ओहोहो! वरना पर्याय का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होगा। समझ में आया? यह तो उसमें भी आया है न, क्या कहलाता है? वह न्याय का ग्रन्थ, आप्तमीमांसा। आप्तमीमांसा है न? उसमें धर्मी-धर्म भिन्न गिनने में आये हैं। धर्मी और धर्म, दोनों भिन्न हैं। स्वत: निरपेक्ष भिन्न हैं। आप्तमीमांसा में लिया है। धर्मी त्रिकाली वस्तु और उसका पर्यायधर्म, दोनों भिन्न हैं। निश्चय से दो भिन्न हैं, वरना दोपना अपने से भिन्न न हो तो स्वत:सिद्धपना प्रगट नहीं होता, स्वत:सिद्ध साबित नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? स्वत:सिद्ध दो न हो तो दो सिद्ध नहीं होते। अपने से धर्म है और धर्मी धर्मी से है। किसी से कोई नहीं। आहाहा! यह झगड़ा अभी दुनिया बाहर में। यह व्यवहार से होता है और निमित्त से उपादान में होता है, इसका झगड़ा। पाँच बोल के झगड़े हैं न, पण्डितजी! निमित्त से उपादान में होता है, एक बात। व्यवहार से निश्चय होता है, दो बात। क्रमबद्ध होता है, यह तीसरी बात। पाँच बोल हुए। 'क्रमबद्ध नहीं।' अरे भगवान! सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! निमित्त, निमित्त में है, निमित्त से उपादान में होता ही नहीं। व्यवहार व्यवहार से है, व्यवहार से निश्चय होता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो निर्मल पर्याय द्रव्य से होती नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। तो फिर राग से और व्यवहार से निश्चयपर्याय उत्पन्न हो, ऐसा वस्तु में है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आगे-पीछे तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे-पीछे होती नहीं, क्रमबद्ध होता है। जिस समय में जो उसका जन्मक्षण-उत्पत्तिक्षण है प्रत्येक द्रव्य की पर्याय का... १०२ गाथा में आ गया है प्रवचनसार में। जन्मक्षण। जन्म अर्थात् उत्पत्ति का काल। आहाहा! छहों द्रव्यों में उस समय की उत्पत्ति के काल में वह पर्याय हुई है, आगे-पीछे नहीं। दूसरे समय में वही जन्मक्षण, तीसरे समय में वही जन्मक्षण क्रमबद्ध है। समझ में आया? परन्तु उस क्रमबद्ध का निर्णय किसे होता है? कि जिसके ऊपर क्रमबद्ध होती है, ऐसे ज्ञायक का निर्णय करे तो क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

क्रमबद्ध तो पर्याय में है और पर्याय का निर्णय पर्याय के आश्रय से नहीं होता; द्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा! त्रिकाली भूतार्थस्वरूप भगवान आत्मा, यथार्थस्वरूप, भूतार्थस्वरूप, सत्यार्थस्वरूप, सत्यार्थस्वरूप के आश्रय से (होता है)। आया न ११वीं गाथा में? आश्रय शब्द प्रयोग किया है। ११वीं गाथा। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की वाणी... आहाहा!

अन्तरायकर्म के क्षयजनित दान,... यह भी पर्याय में है, आत्मा में-द्रव्य में नहीं। आहाहा! क्षायिकदान, हों! दूसरे को देना-लेना, वह नहीं। अपनी पर्याय में सम्प्रदानगुण के कारण से... आत्मा में सम्प्रदान नाम का एक गुण है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—ऐसे छह गुण हैं। तो सम्प्रदान की पर्याय में अपने से दान पर्याय उत्पन्न होती है। लेनेवाला भी स्वयं और देनेवाला भी स्वयं। आहाहा! तथापि ऐसी क्षायिक की पर्याय त्रिकाल में नहीं। त्रिकाली सम्प्रदानगुण की वह पर्याय है दान। सम्प्रदान की है न? तो वह पर्याय दान उत्पन्न हुआ अन्दर, परन्तु वह दानपर्याय द्रव्य में नहीं। आहाहा! द्रव्य में तो पूरा सम्प्रदान गुण पड़ा है। प्रत्येक गुण में सम्प्रदान निमित्त होता है तो प्रत्येक गुण में सम्प्रदान लागू पड़ता है। आहाहा! प्रत्येक गुण में। समझ में आया? आहाहा! गम्भीर-गम्भीर भगवान का तत्त्व। ओहोहो! केवलज्ञान का पेट। उससे भी द्रव्य का पेट तो बड़ा है। आहाहा! अनन्तगुणा।

केवलज्ञान में तो अनन्त सिद्ध, केवलज्ञानी ज्ञात होते हैं। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त सिद्ध का केवलज्ञान ज्ञात होता है। ऐसी पर्याय से भी त्रिकाल जो वस्तु है, उसका अनन्तगुणा माहात्म्य है। ऐसी एक समय की पर्याय उसमें पड़ी है, ऐसी तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त पर्यायें पड़ी हैं अन्दर में गुणरूप से। आहाहा! उस गुण का पिण्ड जो आत्मा है, वह परमस्वभावभाव है।

मुमुक्षु : पर्याय गुण में पड़ी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय गुण में पड़ी है, परन्तु वह गुण में पड़ी है, वह शक्तिरूप से, उसे ज्ञानी जानता है। ऐसे तो गुण है, परमपारिणामिकभाव से है। केवलज्ञानपर्याय क्षायिकभाव से है और गुण है, वह पारिणामिकभाव से है। समझ में आया? परन्तु वह

शक्तिरूप से कहने में आता है, तो वह परमपारिणामिकभावरूप से है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! यह अधिकार ही सूक्ष्म है।

दान, लाभ... स्वरूप का लाभ हुआ न पर्याय में? अनन्त-अनन्त ज्ञानादि का लाभ हुआ, वह क्षायिक लाभ हुआ। अपनी पर्याय में अपना लाभ, हों! यह बनिया लिखते हैं लाभ सवाया, वह यहाँ नहीं। लाभ सवाया लिखते हैं न दिवाली के दिन दरवाजे के ऊपर। लाभ सवाया। धूल में भी नहीं लाभ सवाया। आहाहा! आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और अनन्त गुण की पर्याय का लाभ हुआ। आहाहा! क्षायिकभाव से लाभ हुआ। आहाहा! वह लाभभाव, क्षायिकभाव पारिणामिकभाव में नहीं। आहाहा! पर्यायदृष्टि उड़ाने को। समझ में आया?

निहालभाई ने तो कहा न एक बार, ऐसा कहा निहालभाई ने, द्रव्यदृष्टिप्रकाश में। पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ? ले! जानती है पर्याय, जानती है पर्याय कि पर्याय मेरा ध्यान करे और पर्याय ऐसा कहती है कि मैं ध्रुव हूँ। पर्याय ऐसा जानती है कि मैं ध्रुव हूँ। तो कहते हैं कि पर्याय ध्यान करे। तू पर्याय उसमें झुकती है। ध्रुव किसका ध्यान करे? ऐसा पर्याय जानती है। ध्रुव में कहाँ जानना है? आहाहा! समझ में आया?

भोग,... अपने अनन्तगुण की पर्याय का अनुभव—भोग। क्षायिकभाव से भोग उत्पन्न हुआ है। अतीन्द्रिय आनन्द आदि का भोग क्षायिकभाव से प्रगट हुआ है। आहाहा! वह भोग की पर्याय क्षायिक है, स्वरूप में नहीं। स्वरूप तो पारिणामिकभाव से है। पर्यायबुद्धि उड़ाई और द्रव्यबुद्धि कराने की यह बात है। समझ में आया? परम भगवान का स्वीकार करने में पर्याय का स्वीकार उड़ा दे। होता है स्वीकार पर्याय से, परन्तु पर्याय के स्वीकार से द्रव्य का स्वीकार नहीं होता। समझ में आया? अपनी पर्याय द्रव्य को स्वीकारती है। तो कहते हैं कि वह पर्याय ऐसा कहती है कि मैं तो ध्रुव हूँ। मैं पंचम पारिणामिकभाव हूँ और मुझमें पर्याय है नहीं। स्वयं कहते हैं कि ध्रुव में यह पर्याय नहीं। जानने की पर्याय तो ऐसा जानती है न? कि यह दान, लाभ, भोग मैं नहीं। ध्रुव जानता है? समझ में आया?

मुमुक्षु : तन्मय हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तन्मय अर्थात् पर्याय सन्मुख हो जाती है, उसका नाम तन्मय कहा जाता है। तन्मय का अर्थ द्रव्य के साथ एकमेक नहीं हो जाती। पर्याय पर्याय में रहकर स्वसन्मुख हुई है, अभिमुख हुई है, स्वसन्मुख हुई है, आश्रय लिया, ऐसे बहुत शब्द हैं।

मुमुक्षु : सर्वस्व ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वस्व यही मैं हूँ। आहाहा! मैं तो ध्रुव परमस्वभावभावमय; मैं पर्याय नहीं। वह पर्याय ऐसा जानती है कि मैं उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा व्याख्यान सूक्ष्म पड़े, परन्तु मार्ग दूसरा कोई है नहीं। आहाहा!

उपभोग... भोग एकबार भोगनेयोग्य है पर्याय। उपभोग बारम्बार भोगने में आवे वह पर्याय गुण की। वह भी अन्तर में, द्रव्य में नहीं। पर्याय में हो, द्रव्य में नहीं। आहाहा! और **वीर्य।** अनन्त वीर्य जो प्रगट हुआ है। अनन्त गुण की पर्याय की रचना करने में जो वीर्य प्रगट हुआ है। वीर्य का कार्य यह है, स्वरूप की रचना करना। अनन्त गुण की निर्मल पर्याय की रचना, वह वीर्य। ऐसा अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है पर्याय। तो वह पर्याय क्षायिकभाव से वीर्य है, वह पारिणामिक की नहीं।

मुमुक्षु : उपभोग अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक बार पर्याय भोगने में आवे, वह भोग और बारम्बार, वही पर्याय भोगने में आवे, पर्याय वह नहीं, परन्तु बारम्बार दूसरे गुण की पर्याय भोगता है न, उसे उपभोग कहते हैं। एकबार भोगने में आवे, वह भोग और बारम्बार वह पर्याय भोगने में आये, उसका नाम उपभोग। यह आता है सातवें अध्याय में। सातवाँ व्रत आता है न? सातवाँ व्रत है न बारह व्रत में। खबर है न। वह पर्याय ऐसी की ऐसी पर्याय बारम्बार भोगे, उसका नाम उपभोग।

मुमुक्षु : पर्याय बारम्बार भोगे....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य को तो भोगती नहीं, पर्याय को भोगती है। परन्तु उस

पर्याय को वही पर्याय बारम्बार भोगती है, उसी जाति की, इसका नाम उपभोग। नयी-नयी पर्याय भोगती है। उपभोग। बारम्बार भोगने में आवे वह उपभोग। है तो एक समय की पर्याय का भोग, दूसरे समय का भोग दूसरा, परन्तु उसी पर्याय की एक गुण की पर्याय दूसरे समय में भोगने में आयी तो उसे उपभोग कहा जाता है। बाकी है तो वह भोग। वह भोग-उपभोग आता है सातवें व्रत में, बाहर के, हों! स्त्री आदि को भोगता है, उसे उपभोग कहा जाता है और अनाज आदि खाये, उसे भोग कहा जाता है। वह अनाज बारम्बार खाया नहीं जाता।

मुमुक्षु : एक ही वस्तु को बारम्बार भोगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बारम्बार भोगे, उस पर्याय को बारम्बार भोगे, वह (उपभोग)।

मुमुक्षु : वह पर्याय तो समाप्त हो गयी....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह समाप्त हो गयी, परन्तु बारम्बार उस जाति की पर्याय है न! उस जाति की है न वह।

देखो, आत्मा में एक भाव नाम का गुण है। सुनो! भाव नाम का एक गुण है। ४७ शक्तियों में आया है। तो उस भावगुण का कार्य क्या? वर्तमान में कोई भी पर्याय होती है, वह भावगुण का कार्य है। भावगुण का कार्य क्या? कि वर्तमान में कोई भी पर्याय होगी ही होगी। वर्तमान में जो होगी ही होगी, वह भावगुण का कार्य है। और अभावगुण का कार्य अभावगुण है उसमें एक। उसका कार्य क्या? कि वर्तमान पर्याय में दूसरी भविष्य की पर्याय नहीं, वह अभावभाव है। उस अभाव का भाव होगा। भविष्य की पर्याय नहीं, वह पर्याय यहाँ होगी। सूक्ष्म है। ४७ शक्तियों में आया है। बहुत अधिक लेखन आ गया है। चार बोल हैं। भाव, अभाव, भावअभाव, अभावभाव, भावभाव, अभावअभाव। छह बोल हैं। छह बोल का विस्तार किया है। ज्ञेय-ज्ञायकस्वभाव में आ गया है। यहाँ तो बहुत समय से चलता है। ४० वर्ष हो गये। ४० वर्ष और ४ महीने। आहाहा! उसके ऊपर एक-एक व्याख्यान चले, तब विस्तार आवे।

यहाँ तो कहते हैं कि जो वर्तमान पर्याय है, उसमें दूसरी पर्याय का अभाव है। फिर दूसरे समय में पहले समय में जो अभाव था, वह दूसरे समय में भाव हो गया।

अभाव का भाव हो गया और जो भाव था, उसका अभाव हो गया और भावभाव वही पर्याय भाव... भाव... भाव... ऐसी की ऐसी होगी, वह भावभाव। और अभाव। कर्म के अभाव के कारण से नहीं। अपने में ही अभावअभाव नाम का गुण है कि अभावअभावरूप से ही उसका परिणमन होता है। आहाहा! उसमें छह शक्तियाँ हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो गम्भीर तत्त्व है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर केवली परमात्मा (द्वारा निरूपित है)। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं है ही नहीं। वास्तव में तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी में भी यह बात है नहीं। आहाहा! ४७ शक्ति, ४७ नय का वर्णन ही वहाँ नहीं, भाई! श्वेताम्बर में कहीं नहीं मिलता। कहाँ से हो? बापू! आहाहा! इसलिए यहाँ भोग, उपभोग और वीर्य, वह क्षायिकवीर्य भी पारिणामिकभाव में नहीं। यह सब बात... यह दूसरी बात है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १३, मंगलवार, दिनांक १९-०८-१९७५
गाथा - ४१, प्रवचन - ९

४१वीं गाथा, नियमसार, शुद्धभाव अधिकार। शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसे यहाँ द्रव्यस्वभाव, उसे यहाँ शुद्धभाव कहा गया है। वह शुद्धभाव उपादेय है। बाकी तो पर्याय में चार भाव हैं। हैं सही, व्यवहारनय का विषय चार भाव है सही, परन्तु वे आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! यह बात। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और उसका फल जो मोक्ष, वह साध्यरूप से, प्रगट करनेरूप से आदरणीय है। साध्य कहा न? केवलज्ञानादि सिद्धपद साध्य है, तो साध्यरूप से साधनेयोग्य है, आदरनेयोग्य है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह पर्याय प्रगट करने की अपेक्षा से '**णियमेण य जं कज्जं**' यह पाठ आया है तीसरी गाथा में। निश्चय से कर्तव्ययोग्य है, प्रगट करनेयोग्य है तो वह तीन बोल हैं। परन्तु यहाँ तो जिसके आश्रय से उत्पन्न हो, वह चीज़ उपादेय है। आहाहा! भाई! बहुत सूक्ष्म बात। व्यवहार-निश्चय का झगड़ा बड़ा। आज बड़ा लेख आया है जैन गजट में। जैन गजट में यहाँ के विरोध का लेख आया है। उसका तो विरोध जरा मक्खनलालजी ने लिखा होगा कि तुम क्यों विरोध करते नहीं? भाई! सिद्धान्त है, वह विरोध करते हैं। मतभेद है, परन्तु मनभेद हम नहीं करते, द्वेष नहीं करते। ऐसा करके बड़ा लेख (आया है)। अरे! भगवान! और यह गाथा रखी है।

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्च॥

व्यवहार का विषय नहीं, ऐसा नहीं।

यह कहते हैं देखो, **क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं**—यह पर्याय में नहीं? है वह व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह प्रगट करने की अपेक्षा से कर्तव्य है, ऐसा तीसरी गाथा में कहा। '**णियमेण य जं कज्जं**' नियम से कर्तव्य-करनेयोग्य हो तो वह मोक्ष का मार्ग। सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र जो आत्मा के अवलम्बन से होते हैं। परन्तु वे होते हैं द्रव्य के आश्रय से। समझ में आया? आहाहा! इस कारण से निर्मल पर्याय को भी यहाँ तो ५०वीं गाथा में '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' (कहा है)। आहाहा! बात किस अपेक्षा से है? क्योंकि नयी पर्याय जैसे परद्रव्य में से नहीं आती, वैसे निर्मल पर्याय मोक्षमार्ग की, उसमें से नयी पर्याय नहीं आती। पर्याय तो द्रव्य में से आती है। इस अपेक्षा से मोक्षमार्ग की पर्याय को, नयी पर्याय का कारण नहीं; इसलिए परद्रव्य कहकर हेय कह दिया है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

मतिज्ञान,... पहला बोल लिया। तो मतिज्ञान है, वह प्रगट करने की अपेक्षा से कर्तव्य है। '**णियमेण य जं कज्जं**' में ज्ञान आया या नहीं? ज्ञान प्रगट करने की अपेक्षा से आदरणीय है, प्रगट करने की अपेक्षा से। परन्तु वह मतिज्ञान जो है, वह क्षायोपशमिकदशा है, सम्यग्ज्ञान की दशा, हों! आहाहा! वह भी द्रव्य में से आती है और मतिज्ञान में से नयी मतिज्ञान की वृद्धि पर्याय में से नहीं आती। इसलिए मतिज्ञान की पर्याय जो है, वह हेय है। आहाहा! समझ में आया? कर्तव्य करने की अपेक्षा से ठीक है, परन्तु वह मतिज्ञान द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होता है, आहाहा! पर्याय में से पर्याय नहीं आती। आहाहा! वस्तु ऐसी है। तो कहते हैं कि मतिज्ञान, सम्यक् मतिज्ञान जो आत्मा को प्रत्यक्षरूप से पकड़े। समझ में आया? मतिज्ञान-सम्यक् मतिज्ञान, वह स्वभावसन्मुख होकर आत्मा को पकड़ता है। आहाहा! तथापि वह पर्याय है। वह द्रव्य को पकड़ती है तो द्रव्य आश्रय है, उपादेय है और पर्याय आदेय नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

मतिज्ञान,... सम्यग्ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञान। मतिज्ञान है, वह स्व को पकड़ने में प्रत्यक्ष है। समझ में आया? क्योंकि मतिज्ञान में कोई विकल्प और मन की अपेक्षा वहाँ नहीं। सीधे भगवान आत्मा को पकड़ता है, इस कारण से मतिज्ञान को प्रत्यक्ष कहा, परन्तु है द्रव्य की अपेक्षा से हेय है। आहाहा! प्रगट करने की अपेक्षा से उपादेय। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है न कि संवर, निर्जरा, वह उपादेय है। संवर उपादेय है, निर्जरा हितकर है, मोक्ष परमहितकर है—ऐसा लिया है। तो यहाँ कहते हैं कि वह

मतिज्ञान जो है मोक्ष के मार्ग की पर्याय, वह हेय है। वह प्रगट करने की अपेक्षा से वहाँ उपादेय कहा था। यहाँ तो जिसके आश्रय से उत्पन्न होती है, वह द्रव्य ही उपादेय है। भगवान पूर्णानन्द निर्विकल्प चैतन्य दल शुद्धभाव, वह एक ही उपादेय और मतिज्ञान की पर्याय भी उस द्रव्य की अपेक्षा से हेय है। आहाहा! ऐसी बात भारी कठिन जगत को। समझ में आया?

पश्चात् **श्रुतज्ञान,...** यह भावश्रुतज्ञान की बात है, हों! यह द्रव्यश्रुत की नहीं। क्षयोपशम है न? क्षयोपशम का प्रकार है। जिसमें से भावश्रुतज्ञान विकल्परहित निर्विकल्प वेदन में आता है। स्वसंवेदन। स्व अर्थात् अपना, सं अर्थात् प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन श्रुत द्वारा आता है। आहाहा! १४४ (गाथा, समयसार) में लिया है न कि श्रुतज्ञान में भी विकल्प की आकुलता है, इस विकल्प की आकुलता को निकालकर श्रुतज्ञान को निर्विकल्प बनाकर आत्मा की ओर झुका दे। १४४ (गाथा) कर्ताकर्म (अधिकार)! आहाहा! तो वह श्रुतज्ञान प्रगट करने की अपेक्षा से उपादेय कहा गया है। परन्तु है वह द्रव्य की अपेक्षा से उसे हेय कहा गया है। यह अनेकान्त मार्ग प्रभु का... समझ में आया? समझे बिना व्यवहार से... ऐसा कि वहाँ व्यवहार से होता है। आगे वृद्धि होती है न, वह व्यवहार से होती है। इसलिए व्यवहार तीर्थ है, नाश करनेयोग्य नहीं। ऐसा नहीं है। व्यवहार से आगे वृद्धि नहीं होती। वृद्धि जो शुद्धि की होती है, वह द्रव्य के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि होती है। उत्पन्न भी द्रव्य के आश्रय से और टिकना भी द्रव्य के आश्रय से और वृद्धि भी द्रव्य के आश्रय से। आहाहा! ऐसी बात भारी सूक्ष्म! यह कहते हैं, इस अपेक्षा से श्रुतज्ञान पर्याय है और पर्याय, द्रव्य जो त्रिकाल है, इस अपेक्षा से तो वह अंश है। तो वह अंश हेय है। त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, वह उपादेय है। आहाहा!

अवधिज्ञान... वह अवधिज्ञान क्षयोपशमभाव से है। रूपी पदार्थ को जाने। ऐसा क्षयोपशमभाव का भाव आदेय नहीं, उपादेय नहीं। आहाहा! अवधिज्ञान उपादेय नहीं। परन्तु यहाँ तो केवलज्ञान उप्रादेय नहीं, फिर प्रश्न कहाँ रहा? आहाहा! केवलज्ञान तो एक अंश है, गुण का एक अंश है। आहाहा! ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु शुद्धभाव, उसके समक्ष तो इसकी कीमत नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो उसके पास वहाँ

दया, दान और व्रत के विकल्प की कीमत आ जाये, यह है नहीं, भाई! आता है। मुनि को, (श्रावक को) पाँचवें गुणस्थान से लेकर व्रत का विकल्प व्यवहार आता है। तो व्यवहार है सही, परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं और वह व्यवहार संवर-निर्जरा का कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह बड़ी गड़बड़ चली है। यह जैन गजट में आज बहुत लेख आया है। आहाहा!

मनःपर्ययज्ञान... यह क्षयोपशमभाव से है। यह भी ज्ञानगुण की एक अवस्था है, एक दशा है, एक अंश है। इस अपेक्षा से मनःपर्ययज्ञान को भी हेय कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! भगवान शुद्धस्वरूप, पर्याय के लक्ष्य को छोड़कर (आश्रय करनेयोग्य है)। पार्यय का लक्ष्य करने जाता है तो विकल्प उत्पन्न होते हैं, राग उत्पन्न होता है। आहाहा! है सही पर्याय, नहीं-ऐसा नहीं, परन्तु उसका लक्ष्य करने जाए तो विकल्प उत्पन्न होता है। भेद है न। भगवान आत्मा शुद्ध जो अभेद है... आहाहा! वही, उसमें दृष्टि पसरने से द्रव्य ही उपादेय कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! बहुत गड़बड़ है अभी। एकान्त, सोनगढ़ का एकान्त-एकान्त है। डालचन्दजी!

भगवान! सम्यक् एकान्त तो यह चीज़ है और सम्यक् एकान्त बिना अनेकान्त की वास्तविक सिद्धि भी नहीं होती। श्रीमद् में लिखा है, श्रीमद् में यह वाक्यांश है। सम्यक् एकान्त बिना अनेकान्त भी हितकारी नहीं। ऐसा है। व्याख्यान दिया था एक लाईन के ऊपर एक घण्टे। ववाणिया। श्रीमद् का जन्मस्थल है वहाँ गये थे। उसके ऊपर व्याख्यान किया था। सम्यक् एकान्त—स्व सन्मुख आदरणीय, इसके बिना अनेकान्त की यथार्थ सिद्धि नहीं होती। सम्यक् एकान्त में गया तो पर्याय का ज्ञान होता है, उसका नाम व्यवहार है, उसका नाम अनेकान्त हुआ। आहाहा! क्या हो? श्रीमद् ने वाक्य बहुत (गूढ़ लिखा है)। ऐसे तो कितनी ही बात... एक यह श्वेताम्बर और दिगम्बर की भिन्नता नहीं आयी। यह गड़बड़ रह गयी है। फिर अन्त में तो स्पष्टीकरण कर दिया, शास्त्र के नाम दिये। १९ नाम दिगम्बर के दिये हैं। १९ शास्त्र समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, मोक्षमार्गप्रकाशक, अष्टपाहुड़। १९ नाम दिये। एक २०वाँ श्वेताम्बर का शास्त्र नहीं एक भी, परन्तु उनका एक ग्रंथ है। बनाया हुआ है। वह ग्रन्थ है वह तो वस्तु

की... उसका नाम दिया है। शास्त्र में आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग सत्सूत्र में नाम दिये ही नहीं। परन्तु बाद में। पहले जरा गड़बड़ है।

यहाँ तो पहले से... आहाहा! भगवान सर्वज्ञ की परम्परा का मार्ग हो तो सनातन यह दिगम्बर धर्म एक है। समझ में आया? ऐसा ही परम्परा सनातन जैनदर्शन यह है, इसके अतिरिक्त कोई जैनदर्शन है नहीं। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा ले लिया है न, पाँचवें अधिकार में श्वेताम्बर को अन्यमत में डाला है। यह तो वस्तु का स्वरूप बतलाया है, हों! समझ में आया? एक श्वेताम्बर आचार्य थे तो वह मोक्षमार्गप्रकाशक देखकर ऐसा बोले थे कि पण्डितजी ने तो सबको मूंड ही डाला है। यह उस्तरा होता है न। हजामत। ऐसा कहते थे। अरे भाई! यह तो जो वस्तु की स्थिति है, उसका वर्णन किया है। समझ में आया? दर्शनपाहुड़ और बोधपाहुड़ में भी जैनदर्शन क्या है, उसका स्पष्टीकरण कर दिया है। जिसमें तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव है और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प व्यवहार है और नग्नपना है और खड़े-खड़े हाथ में आहार लेते हैं, वह जैनदर्शन है, इसके अतिरिक्त जैनदर्शन है नहीं। ऐसा अष्टपाहुड़ में लिया है। ऐसा पाठ है। १४वीं गाथा है। दर्शनपाहुड़ की १४वीं और बोधपाहुड़ की १४वीं। दोनों एक है। आहाहा!

मुनिपना जो मोक्षमार्ग, वह जैनदर्शन, ऐसा सिद्ध किया है। दशा नग्न होती है। विकल्प होते हैं तो अट्ठाईस मूलगुण के ही विकल्प उन्हें होते हैं। और अन्तर में तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव की दशा वह मुनिपना है, परन्तु व्यवहार में ऐसी चीज़ होती है। पंच महाव्रत के विकल्प, नग्नदशा और ऐसे खड़े रहकर (आहार ले)। पात्र नहीं, इसका यह अर्थ है। वस्त्र तो नहीं, परन्तु पात्र भी नहीं। यह अन्तर अनुभवसहित की बात है, हों! मात्र नग्न हो जाये, वह कोई धर्म नहीं। अन्तर में तीन कषाय का अभाव, स्वसंवेदन निर्मल विज्ञानघन भगवान विज्ञानदल, विज्ञानघन प्रभु अतिनिर्मल, उसमें निमग्न, प्रचुर स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष आनन्द के वेदन में जिनकी उग्रता आयी है, वह मुनिपना है, वह निश्चय जैनधर्म है। परन्तु उस निश्चय धर्म के साथ पंच महाव्रत के विकल्प भी भूमिका प्रमाण आते हैं, वह व्यवहार है। वह नग्नपना हो जाता है, करना नहीं पड़ता। नग्नपना हो जाता है, पंच महाव्रत का विकल्प होता है, वह व्यवहार है,

परन्तु उससे धर्म है, (ऐसा नहीं)। धर्म तो द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो प्रगट हुए, यह निश्चयधर्म तो वह है, परन्तु निश्चय के साथ ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं। कोई ऐसा कहे कि नग्नपना नहीं, चाहे जो वस्त्र हो और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प चाहे जैसे व्रतादि के हो तो उसे मुनिपना है, तो ऐसा है नहीं। आहाहा! क्योंकि जहाँ मन, वचन और काया, करण, करावन, अनुमोदन से जब परिग्रह का त्याग होता है तो वस्त्र का धागा नहीं रहता। नौ कोटि से। तो काया से करण, करावन, अनुमोदन छूटे तो काया से वस्त्र का करण, करावन, अनुमोदन छूट जाये। तब नग्नदशा हो जाती है। आहाहा! जैसा माता से जन्मा वैसा। वह वस्तु होनी चाहिए, परन्तु वह वस्तु धर्म है, ऐसा नहीं। आहाहा! और वह धर्म का कारण है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! तथापि होवे तो वही होती है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **मनःपर्ययज्ञान...** आहाहा! जिसमें पर के मन को जान लेना, ऐसा ज्ञान हो तो भी वह क्षयोपशमभाव है न, भाई! वह तो पर्याय है। और वह तो द्रव्य के समक्ष उसकी कुछ कीमत नहीं। आहाहा! महा भण्डार भगवान शुद्ध चैतन्यस्वभाव का सागर प्रभु पड़ा है, उसके पास मनःपर्ययज्ञान भी हेय है। आहाहा! ...भाई! ऐसी व्याख्या बहुत कठिन। यह चार ज्ञान (हुए)।

कुमतिज्ञान... यह तो हेय ही है। कुमति मिथ्यादृष्टि का कुमतिज्ञान तो हेय ही है। **कुश्रुतज्ञान...** सम्यग्ज्ञान बिना का कुश्रुतज्ञान। अकेला पठन करके ज्ञान मानता है, वह कुश्रुतज्ञान है। आहाहा! वह भी हेय है। **विभंगज्ञान...** वह भी हेय है। विभंग। **ऐसे भेदों के कारण अज्ञान तीन; चक्षुदर्शन,...** क्षयोपशमभाव से जो चक्षु का अन्दर जानना होता है, वह हेय है। **अचक्षुदर्शन...** हेय है। ओहोहो!

परमात्मप्रकाश में तो ऐसा लिया है कि जैसे सम्यग्दर्शन से आत्मा जानने में— प्रतीति में आता है, वैसे अचक्षुदर्शन से भी ज्ञात होता है। अचक्षुदर्शन से, ऐसा लिया है। अन्दर में दर्शन झुकता है न? परमात्मप्रकाश। भाई, दर्शन है तो उसमें कोई अचक्षुदर्शन में आत्मा आदरणीय है या नहीं? वह अचक्षुदर्शन आत्मा को आदरणीय मानता है। निश्चय सच्चा अचक्षुदर्शन। परमात्मप्रकाश में लिया है। वह अचक्षुदर्शन भी यहाँ तो हेय

है। आहाहा! भगवान आत्मा को ज्ञान से जाने, समकित से प्रतीति करे और दर्शन से देखे सामान्यरूप से। वह अचक्षुदर्शन भी हेय है। आहाहा! पर्याय है न।

अवधिदर्शन, ऐसे भेदों के कारण दर्शन तीन; काललब्धि,... काललब्धि है न? क्या नाम दिया है उसमें? क्षयोपशम। नाम दिये हैं न उसमें? है? गुजराती है उसमें? गुजराती नहीं। नहीं? नहीं? गुजराती है, उसमें लिखा है। गुजराती में लिखा है। है? कहाँ? काललब्धि। काललब्धि का अर्थ पाँच लब्धियाँ आती हैं न पाँच? उसमें से काललब्धि... क्षयोपशमभाव लिया है। क्षयोपशमलब्धि। पाँच लब्धियाँ आती हैं न? उसमें एक क्षयोपशमलब्धि को यहाँ काललब्धि कहा है। **करणलब्धि...** यह तो पाँच में आती है। **उपदेशलब्धि...** देखो, करणलब्धि। यथा प्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, वे परिणाम भी हेय हैं। आहाहा!

उपदेशलब्धि,... यह देशनालब्धि। पाँच बोल में आती है न देशना। उस देशनालब्धि का अर्थ देशना और **उपशमलब्धि...** यह विशुद्धि। विशुद्धि आती है न? उसे उपशम कहा। पाँच को समाहित कर दिया है। और **प्रायोग्यतालब्धि...** यह पाँचों ही लब्धियाँ भी हेय हैं। आहाहा! समझ में आया? **वेदकसम्यक्त्व...** क्षयोपशम लेना है न। क्षयोपशम में वेदकसमकित है। जिसमें समकितमोह का वेदन थोड़ा है, ऐसा वेदकसम्यक्त्व भी उपादेय नहीं। आहाहा! और **वेदकचारित्र...** चारित्र वेदक है। क्षयोपशमचारित्र है न। क्षयोपशमचारित्र को यहाँ वेदक कहा। थोड़ा राग है न क्षयोपशम का? विकास है, वह चारित्र, परन्तु उसके साथ थोड़ा राग है, इस अपेक्षा से वेदकचारित्र कहा गया है। वह सब हेय है। आहाहा! लो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह नहीं। यह अन्तराय की बात है। यह तो पाँच लब्धि। देशना, विशुद्धि, क्षयोपशम आदि पाँच लब्धियाँ नहीं आतीं? समकित प्राप्त करने की पाँच लब्धियाँ। गोम्मटसार में पाँच नाम दिये हैं।

मुमुक्षु : मोक्षमार्गप्रकाशक में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, सबमें है। गोम्मटसार में पाँच लब्धियाँ सम्यग्दर्शन पाने से

पहले आती है। तुम्हारे आता है न दोपहर में अधिकार। नहीं? दोपहर में आती है न लब्धि? पाँच लब्धियाँ हैं। क्षयोपशमलब्धि, देशनालब्धि, विशुद्धिलब्धि, प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि, ये पाँच लब्धियाँ, यह पाँच हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ ऐसे नाम दिये हैं। यह कहा न पहले। काललब्धि को हेय कहा। पहले स्पष्टीकरण किया है। इसमें नाम दिये हैं। देखो, काललब्धि का नाम क्षयोपशमलब्धि और करणलब्धि तो आती है। दो। उपदेशलब्धि में देशनालब्धि और उपशमलब्धि में विशुद्धि। नाम में अन्तर किया है और प्रायोग्यलब्धि। दो जगह आता है। एक यहाँ भी आता है और एक ३१३ पृष्ठ पर आता है। वह भी पाँच बोल लिये हैं। ३१३ पृष्ठ पर आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : करणलब्धि आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह करणलब्धि भी हेय है। कहते हैं न कि करणलब्धि से होता है। कान्तिलाल बहुत सिद्ध करता है। कान्तिलाल ईश्वर, मुम्बई में। यहाँ तो कहते हैं कि वह परिणाम पूर्व में था, उसका ज्ञान कराया, उससे समकित होता नहीं, उसके अभाव से होता है। समझ में आया? उससे होता नहीं, उसके अभाव से होता है। आहाहा! भाषा व्यवहार से कथन है वहाँ। यहाँ तो पाँचों ही लब्धियों को हेय कहा है। क्षयोपशमभाव से पाँचों ही लब्धियों को गिना गया है यहाँ तो। समझ में आया? आहाहा! यह करणलब्धि भी हेय है। अब केवलज्ञान हेय है तो फिर यह क्या? आहाहा! जहाँ द्रव्य का आश्रय करना है, वहाँ कोई पर्याय के आश्रय से लाभ होता है, ऐसी बात है नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात! भगवान पूर्णानन्द के नाथ की भेंट करने से निर्मल पर्यायदशा उत्पन्न होती है। पर्याय की भेंट करने से तो विकल्प उत्पन्न होता है। सूक्ष्म बात, भाई!

'अब हम कबहु न निजघर आये' आता है या नहीं? 'अब हम कबहु न निजघर आये, परघर भ्रमत अनेक नाम धराये।' हम पण्डित हैं, हम मूर्ख हैं, हम ज्ञानी हैं, अज्ञानी हैं। वह तो पर्याय है। परन्तु निजघर भगवान आत्मा... आहाहा! बैल और भैंस के लिये गमाण नहीं होती गमाण? गमाण को क्या कहते हैं? खाने का स्थान। घास

डालते हैं न? खड्डा, बड़ी गमाण? वहाँ भोजन करते हैं तिर्यंच गाय, भैंस। हमारे (गुजराती में) गमाण कहते हैं। उसमें घास डाले फिर खाये। यह आत्मा गमाण है बड़ी आनन्दकन्द है। वहाँ मुख डाले तो आनन्द का भोजन मिलेगा। आहाहा! बाकी पर्याय के ऊपर नजर करेगा तो आनन्द का भोजन नहीं मिलेगा। आहाहा! बहुत मार्ग, भाई! यह तकरार... तकरार... तकरार... वाद-विवाद। 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा' (समयसार नाटक में) आया है। समयसार नाटक। समयसार नाटक, बनारसीदास (कृत)। यह क्षयोपशमलब्धि नहीं, जाओ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न।

औदयिकभाव के इक्कीस भेद इस प्रकार हैं—नारकगति,... आत्मा में नरकगति के आश्रय से लाभ नहीं होता। भाई! नरकगति के दु:ख से वैराग्य से समकित पावे, ऐसा नहीं आता? आता है या नहीं? दु:ख का लक्ष्य करने से। परन्तु वह तो लक्ष्य किया, इतनी बात है। परन्तु नरकगति से उस भाव से समकित नहीं होता। सम्यग्दर्शन तो त्रिकाली भगवान की भेंट से होता है। आहाहा! अब यहाँ दूसरा, **तिर्यंचगति, मनुष्यगति...** लो, मनुष्यगति होती है न केवलज्ञान पाने में? एक पण्डित आये थे, बहुत विवाद करते थे। कुचामन के थे पहले। पण्डित थे एक कुचामन के। नाम क्या था? नहीं? घासीलालजी। कुचामन-कुचामन है न? घासीलाल पण्डित थे। मनुष्यगति है तो उससे केवलज्ञान होता है। यहाँ कहते हैं कि मनुष्यगति से होता ही नहीं, सुन न! वह तो हेय है, उदयभाव है। उदयभाव से होता है? संहनन है। यह आयेगा।

और देवगति, ऐसे भेदों के कारण गति चार;... यह भी नहीं। देवगति भी हेय है। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि की गति भी हेय है। चारों ही गति पराधीन दशा है। आहाहा! स्वाधीन सुख का उनमें—चार गतियों में नाश है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भी आता है, देव स्वर्ग की गति में मनुष्यगति को चाहते हैं। लो, ऐसा आता है। कब हमको मनुष्यगति मिले और हम चारित्र अंगीकार करके (पूर्ण) आनन्द (प्राप्त करें)। यह तो निमित्त से कथन है। समझ में आया? स्वर्ग के देव एकभवतारी जीव। मनुष्य भव हो,

मनुष्यभव पाकर हम हमारी दशा प्राप्त करके मोक्ष में जायेंगे, चारित्र वहाँ होता है। एक मनुष्यगति में चारित्र (होता है), परन्तु गति में चारित्र होता है, वह गति के कारण से नहीं। समझ में आया? चारित्र जो होता है, वह तो अनन्त आनन्द के नाथ में एकाग्र होने से चारित्र होता है। आहाहा! गति, वह तो उदयभाव है। आहाहा!

क्रोधकषाय... यह तो उदयभाव है। **मानकषाय...** उदयभाव है। **मायाकषाय...** कपट उदयभाव है। **और लोभकषाय...** इच्छामात्र उदयभाव है। उसके **कारण कषाय चार...** है, वह उदयभाव है। **स्त्रीलिंग...** वह उदयभाव है। स्त्रीलिंग कौन? द्रव्य नहीं, अन्दर विकल्प है वह। उदयभाव है न? **स्त्रीलिंग, पुलिंग...** स्त्रीलिंग के विषय का विकल्प है, वह उदयभाव है। पुरुषलिंग वह उदयभाव है, नपुंसक उदयभाव है। ये तीन हैं। **सामान्यसंग्रहनय की अपेक्षा से मिथ्यादर्शन एक,...** है। ऐसे मिथ्यादर्शन के भेद तो असंख्य हैं, **सामान्यसंग्रहनय की अपेक्षा से मिथ्यादर्शन एक,...** है, वह उदयभाव है। मिथ्यादर्शन, वह उदयभाव। कर्म के निमित्त से अपने में अपने कारण से उत्पन्न होता है, उसका नाम उदयभाव कहते हैं। उदयभाव तत्त्वार्थसूत्र में लिया है। तत्त्वार्थसूत्र दूसरा अध्याय। पाँच भाव जीवतत्त्व है, ऐसा लिया है। औदयिक, क्षयोपशम, मिश्र जीवतत्त्व लिया है। उदय को जीवतत्त्व (कहा है)। उसकी पर्याय में है न? यह उदयभाव तत्त्व जीव की पर्याय में है। शरीर की यहाँ बात नहीं। आहाहा!

यह **मिथ्यादर्शन एक, अज्ञान एक...** उदयभाव से, हों! उदयभाव का अज्ञान। आहाहा! जितना ज्ञान प्रगट नहीं, उसका नाम उदयभाव है। उघाड़ है, वह तो क्षयोपशमभाव है, परन्तु जितना नहीं, उतना अज्ञान, वह उदयभाव है। आहाहा! **असंयमता एक...** अविरतभाव, वह उदयभाव है। **असिद्धत्व एक...** ओहोहो! चौदहवें गुणस्थान तक संसार कहा गया है। क्योंकि वह असिद्धत्वभाव है। असिद्धत्वभाव है वहाँ तक। आहाहा! वह उदयभाव है। है न। आहाहा! पश्चात्?

शुक्ललेश्या,... लो, देखो, शुभ से लिया है। कृष्ण (लेश्या) से नहीं लिया। शुक्ललेश्या, वह उदयभाव है। आहाहा! शुक्लध्यान अलग चीज़, शुक्ललेश्या अलग चीज़। शुक्ललेश्या तो अभव्य को भी होती है। अभव्य को भी शुक्ललेश्या होती है।

शुक्ललेश्या से नौवें ग्रैवेयक चला जाता है। शुक्ललेश्या के कारण से। वह तो उदयभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **पद्मलेश्या, पीतलेश्या,...** पहले शुभ ली। पश्चात् **कापोतलेश्या, नीललेश्या और कृष्णलेश्या...** यह उदयभाव है। **पारिणामिकभाव के तीन भेद इस प्रकार हैं—जीवत्वपारिणामिक, भव्यत्व-पारिणामिक और अभव्यत्वपारिणामिक। यह जीवत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है;...** आहाहा! भेद से बात करते हैं न। **भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है; अभव्यत्वपारिणामिकभाव, अभव्यों को ही होता है।** परन्तु ऐसे भेद हैं... आहाहा! वे हेय हैं। त्रिकाल पारिणामिकभाव अकेला, वही उपादेय है। समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार पाँच भावों का कथन किया। पाँच भावों में क्षायिकभाव, कार्य-समयसारस्वरूप है। देखो, पाँच भाव में क्षायिकभाव, वह कार्यसमयसार है। भगवान त्रिकाल प्रभु कारणसमयसार, तब केवलज्ञान वह कार्यसमयसार। आहाहा! तथापि हेय है। आहाहा! अभी तो शुभ व्यवहाररत्नत्रय को हेय मानने में पसीना उतरे। तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह भी हेय है, आकुलता है। जिस भाव से बन्ध पड़ता है, वह भाव आकुलता है, धर्म नहीं।

मुमुक्षु : क्षायिक....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिकदर्शन से बन्ध नहीं पड़ता, राग से पड़ता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य नहीं। वह कार्य यहाँ नहीं। पूरा। पूरे की अपेक्षा से बात ली है। पूर्ण केवलज्ञान को कार्यसमयसार कहा जाता है। शुरुआत कार्य की हुई, परन्तु अल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। पूर्ण कार्य तो वहाँ कहा जाता है। आहाहा!

कहते हैं कि **वह (क्षायिकभाव) त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतुभूत...** आहाहा! **खलबली। तीर्थंकर के जन्मकल्याणकादि...** होता है तो पूरे लोक में जरा साता हो जाती है। **प्रसंगों पर तीन लोक में आनन्दमय खलबली होती है।** आनन्दमय अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द की यह बात नहीं। लौकिक सुख की (बात है)। अतीन्द्रिय आनन्द

प्रगट हो जाए तो मुक्ति हो जाती है और भगवान के जन्म के कारण से अतीन्द्रिय आनन्द आता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! नरक में भी जरा साता (हो जाती है)। वहाँ उदय आने की योग्यता ऐसी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, निमित्त से नहीं होता, वहाँ योग्यता ही ऐसी है। जन्मे तब योग्यता ऐसी है। साता का उदय खलबलाहट हो जाती है। समझ में आया?

वह (क्षायिकभाव) त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त... तीर्थनाथ को। सामान्य केवली को भी ऐसा लेना। **सिद्धभगवान को होता है।** यह औदयिक, उपशम, क्षायोपशमिकभाव संसारियों को होते हैं। आहाहा! क्षायिकभाव केवली, तीर्थंकर और सिद्ध को होता है और यह औदयिक, उपशम आदि संसारी प्राणी को होते हैं। भाषा देखो अब।

पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं। आहाहा! आवरण की अपेक्षा (अर्थात्) कर्म के अभाव की अपेक्षा उसमें आती है तो आवरण की अपेक्षा उसमें ली। **चार भाव आवरणसंयुक्त होने से...** निमित्त की अपेक्षा होने से, क्षायिक में भी निमित्त के अभाव की अपेक्षा होने से आवरण संयुक्त कहा गया है। आहाहा! पहले कहा था न? चार भावान्तरों को अगोचर आत्मा है। चार भावान्तर अर्थात् पारिणामिकभाव से चार भाव अन्य भाव हैं। तो उसमें क्षायिकभाव भी आया। तो पाठ तो ऐसा आया था कि क्षायिकभाव से भी आत्मा अगोचर है। इसका अर्थ? कि क्षायिकभाव के आश्रय से आत्मा जानने में नहीं आता। पारिणामिकभाव के आश्रय से जानने में आता है। यह पहले आ गया है। पहले आया न? ७८ पृष्ठ पर।

औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से। ७८ पृष्ठ, चौथी लाईन। हिन्दी की चौथी (गाथा ३८)। **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर...** भगवान आत्मा परमपारिणामिकस्वभाव शुद्धभाव, वह चार भाव से अगम्य है। इसका अर्थ? चार भाव के आश्रय से अगम्य है। बाकी गम्य बाद में कहा था। तुरन्त आया था, नहीं? **विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है**—पीछे ८० पृष्ठ पर आया। ८० पृष्ठ पर आया,

देखो, **विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है...** वहाँ ऐसा लिया। कलश है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि विचारवन्त को आत्मा गम्य है और यहाँ कहा कि चार भावान्तरों से अगम्य है। इसका अर्थ कि चार भावों के आश्रय से पारिणामिकभाव प्रगट नहीं होता, ऐसा लेना है। भाषा का क्या अर्थ है, यह समझना चाहिए।

और यहाँ तो वापस कहा, **विचारवन्त चतुर पुरुषों को...** सम्यग्दृष्टि विचारवन्त चतुर पुरुष, आहाहा! उन्हें परमपारिणामिकभाव गम्य है। आहाहा! परमपारिणामिक का उन्हें स्पर्श हुआ है। आहाहा! समझ में आया? अकेला प्रभु ज्ञानरस, आनन्दरस, सत्त्व सत् का सत्त्व पूरा। सत्, वह वस्तु, उसका सत्त्व—उसका भाव, परिपूर्ण भाव से भरपूर प्रभु, वह पारिणामिकभाव है। गुण भी पारिणामिकभाव है, द्रव्य भी पारिणामिकभाव है। आहाहा! सहजात्मस्वरूप पारिणामिकभाव समकिती को गम्य है। समझ में आया? वह उपशमभाव से, क्षयोपशमभाव से, क्षायिकभाव से गम्य है। वहाँ इनकार किया कि (चारों से) अगम्य है। इसका अर्थ कि उनके आश्रय से अगम्य है। समझ में आया? आहाहा! यह अपेक्षा। लक्ष्य है न, वहाँ निमित्त का अभाव हुआ न उतना? और उसका आश्रय करने जाये तो विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा!

पूर्वोक्त चार भाव... आहाहा! राग तो उदयभाव है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव भी उदय है। आहाहा! वह आवरणवाला भाव है। यहाँ तो क्षायिकभाव और क्षयोपशम को आवरण कहा। क्यों? कि त्रिकाली भगवान जिसे आवरण और अनावरण है ही नहीं, ऐसी चीज़ की अपेक्षा से क्षायिकभाव को भी निमित्त का अभाव हुआ, इतनी अपेक्षा लेकर आवरणसंयुक्त कहा गया है। डालचन्दजी! आहाहा! समझ में आया? त्रिकाल निरावरण भगवान आत्मा, वह तो पारिणामिकभाव है, (ऐसा कहते हैं)। त्रिकाल निरावरण वस्तु। आवरण नहीं और जिसमें राग का निमित्तरूप से सम्बन्ध नहीं। पर्याय में निमित्तरूप से सम्बन्ध है राग के साथ। वस्तु तो वस्तु है। चैतन्यघन, विज्ञानघान ध्रुवस्वभाव, शुद्धभाव, उसे तो राग के साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया? आवरण के निमित्तपने का अभाव, वह क्षायिक में है। स्वभाव तो आवरणरहित त्रिकाल है। त्रिकाल निरावरण भगवान, वही आदरणीय है। आहाहा! यह लोगों को यह सब निश्चय-निश्चय करके मानो व्यवहार उड़ जाता है, ऐसा मानते हैं। परन्तु व्यवहार है,

वह उड़ता है। होवे, वह उड़ता है या न हो, वह उड़ता है? चार भाव नहीं है? उदयभाव रागादि नहीं है? पंच महाव्रतादि विकल्प मुनि को नहीं है? है, परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! उससे धर्म होता है, ऐसा नहीं। उससे धर्म होता है, ऐसा नहीं। त्रिकाली भगवान परमपारिणामिकस्वभाव आनन्ददल, चैतन्यदल, परम सहजात्मस्वरूप के आश्रय से धर्म होता है। वह एक ही उपादेय है। आहाहा! समझ में आया?

पूर्वोक्त... पहले क्षायिकभाव की महिमा की है कि कार्यसमयसाररूप क्षायिकभाव, तीन लोक में क्षोभ का कारण ऐसा तीर्थंकर और केवली को होता है। आहाहा! तथापि उस भाव को यहाँ आवरण कहा। कैसी शैली है! पंचास्तिकाय में चार भाव को कर्मकृत कहा गया है। मूल श्लोक है। पंचास्तिकाय। निमित्तपना है। कर्मकृत कहा है, हों! समझ में आया? पंचास्तिकाय है? निमित्त से कथन है, ऐसा कहा। ५६ नहीं? यह तो कर्ता की आयी। लो ५८। ५८ गाथा। पंचास्तिकाय ५८ गाथा।

कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्जदे उवसमं वा।
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं॥५८॥

क्षायिकभाव, वह '**कम्मकदं**'। ५८— ५० और ८। निमित्त है न? निमित्त का अभाव हुआ, इतनी अपेक्षा हुई। '**कम्मकदं**' बाद में कहा कि वे भाव '**भावो जदि कम्मकदो अत्ता कम्मस्स होदि किध कत्ता।**' तो फिर कर्म का कर्ता आत्मा कहाँ से हुआ? समझ में आया? '**ण कुणदि अत्ता किंचे वि मुत्ता अण्णं सगं भावं॥**' अपने भाव के अतिरिक्त आत्मा पर का कर्ता है ही नहीं। तो वह निमित्त से कहा है। पंचास्तिकाय, ५८ गाथा। पाँच भाव का वर्णन है। ५३-५४ (गाथा) से पाँच भावों का वर्णन है। उदय, उपशम आया न? यह पाठ है वहाँ।

कहते हैं, **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** आहाहा! भगवान आत्मा निश्चय आत्मा जिसे कहते हैं, ध्रुव जिसे कहते हैं, परमपारिणामिकभाव जिसे कहते हैं, भूतार्थ जिसे कहते हैं, सत्यार्थ जिसे कहते हैं, शुद्ध जिसे कहते हैं... आहाहा! वह तो त्रिकाल निरुपाधि (तत्त्व है)। उन चार को उपाधिवाले कहा। **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप**

है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव की... आहाहा! जिसमें अंजन नहीं। निज परम वापस, निज परम पंचमभाव। भगवान का पंचमभाव उनके पास रहा। आहाहा! **निज परम पंचम भाव की...** भाषा देखो! क्योंकि शास्त्र में तो उदयभाव को भी पारिणामिकभाव कहा है। वह तो कर्म के निमित्त की अपेक्षा से उदय कहा। बाकी पारिणामिकभाव की पर्याय है न वह? राग, मिथ्यात्व को भी पारिणामिकभाव कहा है, परमपारिणामिक नहीं। जयधवल में (कहा है)। राग आदि चार भावों को पारिणामिकभाव की पर्याय कहा है। निमित्त की अपेक्षा से उदय, निमित्त की अपेक्षा से क्षयोपशम, निमित्त की अपेक्षा से क्षायिक ऐसा कहा जाता है। बाकी ... त्रिकाल परमपारिणामिकभाव से उसकी पर्याय तो पारिणामिकभाव है उसका। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो **परमपंचमभाव...** की भावना। भाषा देखो वापस। भावना तो उपशम समकित, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव है। समझ में आया? एक ओर इनकार किया कि चार भाव आवरणवाले हैं। दूसरी ओर कहते हैं कि परमपारिणामिक (की) भावना से, त्रिकाली की भावना से, त्रिकाली में एकाग्र होने से। त्रिकाली भाव एकाग्रता की भावना। वह भावना तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकवाली है। परन्तु वह तो पर के आश्रय से नहीं होती, इतना बतलाने के लिये आवरणवाला कह दिया। आहाहा! वापस भावना में तो आ गया वह। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभावना। पंचम पारिणामिक की भावना उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक है। समझ में आया? त्रिकाल भगवान आत्मा की जो भावना, वह तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय है, परन्तु उस त्रिकाल का आश्रय लेकर उत्पन्न हुई है, इसलिए उसकी भावना कही जाती है। आहाहा! गजब भाई! वह भावना मोक्ष का मार्ग। जिसे यहाँ हेय कहा। वहाँ वापस वह परमपंचमभाव भगवान की भाव की भावना, उसके भाव की भावना। कौनसा भाव? पंचम पारिणामिकभाव, वह वस्तु, उसकी भावना वह पर्याय।

मुमुक्षु : कौन सी पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : पारिणामिक की पर्याय है न वह? कहा न? चार भाव की पर्याय को भी पारिणामिक कहते हैं।

परमपारिणामिकभाव... आहाहा! वहाँ उदयभाव को भी पारिणामिकभाव कहा है, परमपारिणामिक नहीं। परमपारिणामिक त्रिकाल। पारिणामिकभाव, वह पर्यायरूप परिणमता है न। पर्यायरूप से। भाव तो भाव है। आहाहा! इस अपेक्षा से उदयभाव को, मिथ्यात्व को पारिणामिकभाव कहा। आहाहा! असंयम को पारिणामिकभाव कहा। क्योंकि वह पारिणामिक त्रिकाल की पर्याय की अपेक्षा से कहा गया है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं.... आहाहा! परमपंचमभाव, पारिणामिकभाव, ध्रुवभाव, शुद्धभाव, अभेदभाव, नित्यानन्द प्रभु भाव की भावना। समझ में आया? भाषा तो सादी है, कहीं बहुत (कठिन नहीं), भाव भले (सूक्ष्म है)। भाषा तो सरल है, इतनी कठिन नहीं। भाव है। अलौकिक बात है यहाँ तो, भगवान! आहाहा! पंचमभाव की भावना है तो पर्याय वह। पंचमभाव वह ध्रुव, द्रव्य, शुद्धभाव। यहाँ शुद्धभाव कहा न? पंचमभाव, वह ध्रुव शुद्धभाव। उसकी भावना—सन्मुख होकर एकाग्रता होना, वह भावना। आहाहा! है तो वह भावना उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभावरूप। पण्डितजी! ... नहीं, उसके आश्रय से हुई, वह पर्याय। ऐसा। वह पर्याय मोक्ष का कारण है। निश्चय से तो मोक्ष का कारण वह पर्याय कही गयी है, वह भी व्यवहार है। मोक्ष की पर्याय का कारण कारणपरमात्मा है। क्योंकि इस भावना की पर्याय भी व्यय होती है। आहाहा! तो व्यय हो, वह भाव का कारण कैसे हो? केवलज्ञान और क्षायिकभाव की पर्याय का व्यय कारण अभाव कैसे हो? भाव त्रिकाली है। आहाहा! समझ में आया या नहीं? भाई! ऐसा मार्ग है, भगवान! आहाहा! प्रभु अन्दर विराजता है। अतीन्द्रिय नाथ गुफा में विराजता है। आहाहा! आया न वहाँ। अनुभवप्रकाश में आया है। एक शरीर गुफा से भिन्न कर, कर्म गुफा से भिन्न कर, राग की गुफा से भिन्न कर। अन्दर गुफा में भगवान विराजता है। पोपटभाई! ऐसी बातें, बापू! आहाहा!

निरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव की भावना से पंचम गति में मुमुक्षु जाते हैं,... भाषा देखो, पंचमपारिणामिक भगवान आत्मा ध्रुव, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता, भाव की भावना एकाग्रता, उससे मोक्ष जाते हैं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय से जाते नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आप सोनगढ़....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके पास स्थित है न भगवान। सोनगढ़ में कहाँ है ? आहाहा! दरबार! सूक्ष्म बात है। कितने ही कहते हैं कि यह दरबार है और यह तो बनियों का धर्म, वहाँ तुम कहाँ गये ? ऐसा कहे। परन्तु यह बनियों का धर्म नहीं, यह तो आत्मा का धर्म है। लोटियावोरा कहा न। मुसलमान लोटियावोरा जीवाजीभाई है मुल्ला। वोरा। बहुत वर्षों से और अभी तो आ नहीं सकते। शरीर काँपता है। ९२-९३ वर्ष हो गये। लड़का लेकर आया था दर्शन कराने। महाराज! अलिंगग्रहण के १८-१९-२० बोल, ओहोहो! ऐसा कहा। अन्तिम है न ? वह गुणी गुण के भेद को स्पर्शता नहीं। द्रव्य गुण के भेद को स्पर्शता नहीं। द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं, पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं। यह १८-१९-२० है। दरबार! वह लोटियावोरा मुसलमान। आहाहा! यह १८-१९-२० (बोल) अलिंगग्रहण के। आहाहा! ऐसे प्रसन्नचित्त से। डालचन्दजी! आत्मा है न।

मुमुक्षु : आत्मा कहाँ मुसलमान है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुसलमान आत्मा कहाँ है ? आत्मा रागी नहीं, शरीर नहीं, नात नहीं, जाति नहीं। आहाहा! वह तो भगवान परमस्वभावरूप पड़ा है, प्रभु! आहाहा! उसकी भावना से, उस भाव की एकाग्रता से, यह भावना कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो। पंचम भाव की भावना कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय कहो। आहाहा!

पंचम गति में मुमुक्षु... आहाहा! **(वर्तमान काल में) जाते हैं,...** आहाहा! अरे! प्रभु! परन्तु यहाँ पंचम काल में मोक्ष नहीं न ? अरे! सुन तो सही। अपनी दशा को प्राप्त होता है, वह अन्दर में मोक्ष ही है। **भावना से पंचम गति में मुमुक्षु...** देखो, यह मुमुक्षु उसे कहते हैं। आहाहा! पंचम भाव भगवान की भावना करते हैं, वे मुमुक्षु मोक्ष जाते हैं। आहाहा! भविष्यकाल में जायेंगे। वर्तमान में जाते हैं। भविष्य में जायेंगे, भूतकाल में जाते थे। एक ही उपाय त्रिकाल का है। परमस्वभावभाव की भावना से वर्तमान में मोक्ष जाते हैं, भूतकाल में गये और भविष्य में जायेंगे। दूसरा कोई उपाय है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १४, बुधवार, दिनांक २०-०८-१९७५
गाथा - ४१-४२, कलश - ५८-५९, प्रवचन - १०

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार। यहाँ आया है। **पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं।** यह बात क्यों कही ? कि द्रव्य की पर्याय चार भावरूप होती है। उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशम, क्षायिक। यह पर्याय में भाव है, परन्तु उस वस्तु में अन्दर में नहीं। एक-एक आत्मा की बात चलती है। वेदान्त है, वह तो सर्व आत्मा को एक ही मानता है। उसे तो द्रव्य अनेक और पर्याय की बात है नहीं उसमें।

यह तो जैन परमेश्वर सर्वज्ञ भगवान ने प्रत्येक आत्मा की चार पर्याय प्रकार जो पर्याय में देखे हैं, वह व्यवहार है (ऐसा देखा और वर्णन किया है)। आहाहा! वह पर्याय, पर्याय में है, परन्तु वस्तु जो त्रिकाली ज्ञायकभाव—ध्रुवभाव, उसमें वह पर्याय नहीं। आहाहा! वह पर्याय आती है द्रव्य में से और जाती भी है द्रव्य में। आहाहा! जल कल्लोलवत्, ऐसा आया न ? आलाप पद्धति में श्लोक आया है। जल कल्लोलवत्। जल में जैसे तरंग उठती है, वह उनमजंति, निमजंति ऐसा शब्द है। उनमजंति अर्थात् उत्पन्न होती है और निमजंति अर्थात् पर्याय डूब जाती है। आहाहा! समयसार नाटक में उसे 'डुबुक' कहा है। जो पर्याय एक समय में है, दूसरे समय में तो रहती नहीं, तो गयी कहाँ ? वह तो सत् थी, असत् नहीं। व्यय भी सत्, उत्पाद भी सत्, ध्रुव भी सत् है। तो व्ययरूप हुआ, वह सत् है। तो सत् द्रव्य में गया। आहाहा! समझ में आया ? तो वह द्रव्य में गयी, वह तो पारिणामिकभाव हुआ। दोपहर में कहा था न ? ऐ प्रकाशचन्दजी! भाई! आता है न यह, सातवें अध्याय में। केवलज्ञान, वह कहीं पारिणामिकभाव नहीं। सातवें (अधिकार) में आता है पहले पृष्ठ पर। सातवाँ अध्याय मोक्षमार्गप्रकाशक। शुरुआत में पहले से इस ओर। इस ओर आता है। आहाहा! वह केवलज्ञान पर्याय क्षायिकभाव की है। त्रिकाल है, वह भाव नहीं। त्रिकाल जो केवलज्ञान शक्तिरूप है, वह तो

पारिणामिकभाव है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? यह लिया है न सातवें में? अभी बताया था।

कोई ऐसा मानता है कि — 'आत्मा के प्रदेशों में तो केवलज्ञान ही है'.... केवलज्ञान आत्मा के प्रदेश में है। समझ में आया? वह **ऊपर आवरण होने से प्रगट नहीं होता।** आवरण के कारण से प्रगट नहीं है, अन्दर तो है, ऐसा कोई कहता है। वह भी भ्रम है। सूक्ष्म बात है। **यदि केवलज्ञान हो तो वज्रपटलादि आड़े होने पर भी वस्तु को जानता है, वह कर्म आड़े आने पर कैसे अटकेगा?** यदि शक्तिरूप से केवलज्ञान हो तो। आहाहा! **इसलिए कर्म के निमित्त से केवलज्ञान का अभाव ही है।** पर्याय में कर्म का निमित्त और अपने पुरुषार्थ की कचाश, इस कारण से पर्याय में केवलज्ञान का अभाव है। धन्नालालजी! आहाहा! **यदि उसका निरन्तर सद्भाव रहे...** यदि केवलज्ञान त्रिकाल रहे, निरन्तर रहे **तो उसे पारिणामिकभाव कहते....** पारिणामिक कहते। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञान आत्मा में कायम है, ऐसा कहे। श्वेताम्बर में ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान सत्तारूप से कायम है, ऐसा कहते हैं। आवरण के कारण से... सत्तारूप है केवलज्ञान, ऐसा नहीं। शक्तिरूप है, वह तो गुणरूप है, पारिणामिकभावरूप है। वह केवलज्ञान जो प्रगट होता है, वह पर्याय अन्दर में (प्रगट) नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! वीतराग परमेश्वर का मार्ग जिनेन्द्रदेव ने कहा हुआ मार्ग बहुत गम्भीर, भाई! आहाहा! कहते हैं कि वह सद्भाव जो केवलज्ञान की सत्तारूप से कायम हो तो, तब तो उसे पारिणामिकभाव कहेंगे। **वह तो क्षायिकभाव है।** केवलज्ञान की पर्याय तो क्षायिकभाव है। अन्दर में केवलज्ञान की पर्याय है, तब तो पारिणामिकभाव हो गया वह तो। वह तो केवलज्ञान पर्याय नहीं, वह तो गुणरूप है। आहाहा! है? देखो,

सर्वभेद जिसमें गर्भित है,... सातवाँ अध्याय है? **सर्वभेद जिसमें गर्भित है...** अन्तर पारिणामिकभाव में सर्वभाव सामान्य गर्भित हैं। **ऐसा चैतन्यभाव, वही पारिणामिकभाव है,...** आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान है, वह सत्ता में (होवे तो) वह तो पारिणामिकभाव हो जाता है। वह तो पारिणामिकभाव है नहीं। आहाहा! वे

श्वेताम्बर ऐसा कहते हैं। सत्तारूप है, परन्तु केवलज्ञानावरणीय प्रकृति के कारण से प्रगट नहीं होता। ऐसा नहीं। समझ में आया? पण्डितजी! जरा सूक्ष्म है। सत्तारूप केवलज्ञान है, परन्तु आवरण के कारण से केवलज्ञान दिखता नहीं।

मुमुक्षु : आवरण होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवरण होता नहीं। यह तो कहा न पहले? कि **वज्रपटलादि आड़े होने पर भी वस्तु को जानता है,...** केवलज्ञान। **वह कर्म आड़े आने पर कैसे अटकेगा?** आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय में तो वज्रपटल इन्द्र का होता है, उसे भी जानता है अन्दर में देव है उसे। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! अन्दर स्वरूप भगवान स्वरूप चैतन्यसत्ता और शक्ति, वह तो पारिणामिकभाव, सहजभाव, त्रिकालभाव, ध्रुवभाव और केवलज्ञान प्रगट पर्याय, वह तो क्षायिकभाव। समझ में आया? वह तो पर्यायभाव है, द्रव्यभाव नहीं। बहुत लम्बी बात है।

यहाँ कहते हैं कि **चार भाव आवरणसंयुक्त होने से...** उस पर्याय में आवरण के निमित्त की अपेक्षा आती है, इस अपेक्षा से आवरण कहा है। पर्याय में, हों! **मुक्ति का कारण नहीं।** क्षायिकभाव, आहाहा! क्षयोपशमभाव एक समय की पर्याय है। वह मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप—भगवान आत्मा का (स्वरूप) है। **ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव...** अंजन, मैलरहित पंचम शक्तिरूप भाव सहजात्म प्रभु... आहाहा! उसकी भावना। यह पंचमभाव की भावना (अर्थात्) अन्तर्मुख होना। आहाहा! यह तो वापस पर्याय है। भावना पर्याय है, परन्तु वह भावना पंचम त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव को लक्ष्य में लेकर एकाग्र होता है, उसे यहाँ भावना कहा जाता है। वह भावना तो है उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव। पहले इनकार किया था कि उसमें है नहीं। उसमें है नहीं, यह तो बात रही, परन्तु उसमें जो चीज़ परम स्वभावभाव सहजस्वरूप ध्रुवभाव अनादि-अनन्त अनुत्पन्न और अविनाशी ऐसा परमस्वभावभाव, उसे ध्येय बनाकर, ध्यान में ध्येय बनाकर, वह ध्येय परमपारिणामिकभाव है और ध्यान, वह भावना है। ऐसा मार्ग है बहुत... यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं ऐसी बात है नहीं।

वेदान्त तो एक ही, सर्व आत्मा एक ही मानता है। वहाँ तो पर्याय भी नहीं और अनेक आत्मा भी नहीं। यहाँ तो जैन में अनेक आत्मा है, अनेक द्रव्य है, वे होने पर भी पर्याय में जो क्षायिक आदि चार भाव हैं, उनके आश्रय से मोक्षमार्ग नहीं होता, उनके आश्रय से। त्रिकाल भगवान परमस्वभाव, ध्रुवभाव, परमभाव, नित्यभाव, सहजभाव, स्वभावभाव, सत् का सत्त्वभाव, सत् का सत्त्व। समझ में आया? उस पंचमभाव की भावना। आहाहा! देखो, त्रिकाल मार्ग यह कहते हैं। उसकी भावना से। भाई! क्या करना? यह करना, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहे, क्या करना? पर्याय को अन्तर में झुकाना, यह करने का है। आहाहा!

पर्याय का मुख पर की ओर है। स्व से विमुख, पर्याय का मुख स्व से विमुख, पर से सन्मुख है। वह पर से विमुख और स्व से सन्मुख करना। आहाहा! समझ में आया? वर्तमान पर्याय का मुख परसन्मुख है और एक समय की पर्याय में ही अनादि की एकताबुद्धि कर रखी है। वस्तु जो त्रिकाल है, वह तो ख्याल में आयी ही नहीं। पर्याय में क्रीड़ा। नौवें ग्रैवेयक (गया), अनन्त बार साधु हुआ, दिगम्बर साधु, परन्तु उस पर्याय में उसकी क्रीड़ा। पर्यायबुद्धि। वह पर्याय परसन्मुख है, इसलिए पर्यायबुद्धि को मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आहाहा! वह पर्याय भगवान आत्मा परमस्वभावभाव की भावना से। देखो, है? व्यवहाररत्नत्रय और व्यवहार से मुक्ति नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वे भाव होते हैं, आते हैं, परन्तु उनसे मुक्ति नहीं। उनसे धर्म नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

पूरा पलटा खाना है। दिशा बदलनी है। पर्याय की दिशा परसन्मुख है, उस दिशा के कारण से दशा विपरीत है। पर्याय की दिशा परसन्मुख है। वह दिशा पर (के ऊपर होने के) कारण से दशा विपरीत है। उस दशा को स्वसन्मुख करने से, स्वदिशा सन्मुख झुकाने से स्वदशा उत्पन्न होती है। समझ में आया? ऐसी बात है। मार्ग तो ऐसा है। इसे पहले तो यह निर्णय करना चाहिए निर्णय में, निश्चय में विकल्पसहित। विकल्पसहित भले हो, परन्तु ऐसा तो निर्णय होना चाहिए कि त्रिकाली भगवान आत्मा की भावना, भाव की भावना, भाव त्रिकाल, भावना वर्तमान। आहाहा!

उससे पंचमगति में **पंचम भाव की भावना से पंचम गति में मुमुक्षु (वर्तमान**

में) जाते हैं,... आहाहा! महाविदेह में मोक्ष में जाते हैं, वर्तमान जाते हैं। आहाहा! ६०८ (जीव) छह महीने में मुक्ति पाते हैं। यह तो त्रिकाल धारावाही चलता है। छह महीने और आठ समय में ६०८। समझ में आया? इतने तो मुक्ति में जाते हैं। कहाँ जाते हैं? अभी तो यहाँ नहीं। कहाँ जाते हैं? धारावाही जाते हैं। आहाहा! परन्तु इस पंचम भाव की भावना से। कोई व्यवहार के विकल्प और दया, दान, व्रत और व्यवहार, वह तो बन्ध का कारण है। जैसे क्षायिकभाव अन्दर नहीं, वैसे उदयभाव अन्दर नहीं, यह दूसरी बात। चारों ही भाव अन्दर नहीं, ऐसा कहा न? परन्तु चारों ही भाव अन्दर में नहीं, परन्तु उदयभाव अन्दर में झुकने से उदयभाव रहता नहीं। अन्दर में झुकने से उदयभाव रहता नहीं। अन्दर में झुकने से क्षयोपशम, क्षायिकभाव आ जाता है। समझ में आया? आहाहा!

पंचम भाव की भावना से पंचम गति में मुमुक्षु जाते हैं, (भविष्य काल में) जायेंगे... इसी मार्ग से जायेंगे। **और (भूतकाल में) जाते थे।** इस मार्ग से अनन्त काल में भूतकाल में पंचमभाव की भावना से मुक्ति को पाये हैं। आहाहा! महाविदेह कहा न। यह पहले कहा था। वर्तमान काल में महाविदेह में से जाते हैं। समझ में आया? भूतकाल में यहाँ से गये हैं और भविष्यकाल में यहाँ से जायेंगे। आहाहा! तीर्थंकर परमात्मा की उपस्थिति होगी, तब मोक्षमार्ग खुल्ला होगा। समझ में आया? आहाहा! स्वभाव की महिमा आवे, जब अन्दर में एकाग्र होता है, उससे भविष्य में मोक्ष जायेगा, वर्तमान में जाते हैं और भूतकाल में (गये)। आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' परमार्थ का पंथ यह एक ही है। मोक्ष के मार्ग दो हैं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। मोक्षमार्ग का प्ररूपण दो प्रकार का है—एक निश्चय और एक व्यवहार। निमित्त देखकर व्यवहार कहा। वस्तु दो प्रकार की नहीं, वस्तु—मोक्षमार्ग तो एक ही प्रकार का है। लिया न उसमें? मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें (अधिकार में)। वहाँ कहे मोक्षमार्ग दो मानना, वह भ्रम है। तब रतनचन्दजी कहते हैं कि दो न मानना, वह भ्रम है। ऐसा कहते हैं। अनेक प्रकार हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो एक ही प्रकार यह कहा। भगवान पूर्णानन्द की खान सच्चिदानन्द प्रभु... आहाहा! उसमें आता है, (परम) अध्यात्म तरंगिणी है न, उसमें आता है। ध्यान में विषय बनाकर। लो! पर्याय में उसका विषय बनाकर। 'ध्यान में विषय बनाकर' ऐसा

पाठ है संस्कृत में। (परम) अध्यात्म तरंगिणी है। यह (समयसार) कलश की टीका है न, उसमें आया है। ध्यान में विषय बनाकर। किसे? भगवान पंचमभाव को। आहाहा! उसे विषय बनाकर ध्यान की पर्याय जो उत्पन्न होती है, (वह भावना है, मोक्षमार्ग है)। यह द्रव्यसंग्रह में आया है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' द्रव्यसंग्रह में। ४७ (गाथा)। ४ और ७। सैंतासीस कहते हैं तुम्हारे? सैंतालीस। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ऐसी गाथा है, नेमिचन्द सिद्धान्तचक्रवर्ती। अन्तर आत्मा शुद्धपद स्वभाव यहाँ शुद्धभाव कहा, वह पंचमभाव कहो, उसे ध्यान में पकड़ने से निश्चयमोक्षमार्ग उत्पन्न होता है और राग बाकी रहता है, उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ऐसा लिया है। व्यवहार भी ध्यान। क्यों? कि अन्दर ध्यान में स्वभावसन्मुख होता है, (और उसमें) जहाँ एकाग्र हुआ, वह तो निश्चय हुआ, परन्तु राग बाकी रहा, उसे व्यवहार कहा जाता है, उपचार से। आहाहा! समझ में आया? पद्मचन्दजी! यह पैसा-बैसा कमाना और कमाना, ऐसा यहाँ नहीं। ढ़ेर पैसे हो जायें और मानो उसमें बस। आहाहा! यह तो अन्दर की लक्ष्मी की बात है।

★ ★ ★

कलश - ५८

(अब, ४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं—)

(आर्या)

अञ्चितपञ्चमगतये पञ्चमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः।
सञ्चितपञ्चाचाराः किञ्चनभावप्रपञ्चपरिहीणाः॥५८॥

(वीरछन्द)

किञ्चित् भी परिग्रह प्रपञ्च बिन, पञ्चाचार सहित विद्वान।
पञ्चमगति की प्राप्ति हेतु वे सुमरें पञ्चमभाव महान॥५८॥

श्लोकार्थ :— (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्यरूप) पाँच आचारों से युक्त और किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित, ऐसे विद्वान पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिए पंचम भाव का स्मरण करते हैं।।५८॥

कलश - ५८ पर प्रवचन

(अब, ४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं—) श्लोक ५८।

अञ्चितपञ्चमगतये पञ्चमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः।
सञ्चितपञ्चाचाराः किञ्चनभावप्रपञ्चपरिहीणाः ॥५८॥

श्लोकार्थ :— (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्यरूप) पाँच आचारों से युक्त... निश्चय। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप, सम्यक्वीर्य। स्वभाव की एकाग्रता से उत्पन्न होनेवाले पाँच प्रकार के आचार। आहाहा! है ? **पाँच आचारों से युक्त और किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित,...** मुनि की दशा कहते हैं न। जिसे एक विकल्प का भी परिग्रह या पकड़ नहीं, **ऐसे विद्वान...** आहाहा! उन्हें विद्वान कहते हैं। देखो, बहुत पढ़े-गुने, इसलिए विद्वान - ऐसा नहीं है। आहाहा! विद्वान। आहाहा! विद्-स्वरूप की लक्ष्मीवाला। पण्डितजी! आहाहा! विद्-विद्-ज्ञानवाला अथवा वित्-लक्ष्मीवाला। अन्दर लक्ष्मी पड़ी है, उसे जाननेवाले को विद्वान कहा जाता है। भले दूसरा कोई ज्ञानादि न हो, परन्तु यहाँ तो यह कहते हैं कि ऐसे विद्वान। आहाहा!

पूजनीय पंचमगति को... ऐसे पण्डित। समयसार में आया है न। विद्वजन (ज्ञानी) व्यवहार को छोड़कर निश्चय में आते हैं। अज्ञानी (अपने को) विद्वान मानकर निश्चय को छोड़कर व्यवहार में आते हैं। आहाहा! 'विद्वजन भूतार्थ तज' ऐसा पाठ है। आहाहा! विद्वान नाम धरावे, शास्त्र का पठन करे, उसमें से निकाले कि व्यवहार से होता है। तो कहते हैं कि भूतार्थ को छोड़कर विद्वत्जन व्यवहार में वर्तते हैं। परन्तु निश्चय के आश्रय से मुक्ति होती है। व्यवहार के आश्रय से नहीं। आहाहा! बड़ा झगड़ा अभी यह। व्यवहार-व्यवहार। परन्तु व्यवहार है, परन्तु वह व्यवहार बन्ध का कारण है। समझ में आया ? व्यवहारनय का विषय नहीं है ? जहाँ तक केवलज्ञान नहीं तो व्यवहार का विषय

अन्दर विकल्प उठते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, भक्ति, शास्त्र का ज्ञान, वह व्यवहार है। शास्त्र का ज्ञान, वह व्यवहार है।... परन्तु इसके विरोध के लिये दोनों एक हो जाये। आहाहा! अरे भाई! किसका विरोध, बापू! अपना विरोध करता है, भाई! किसका विरोध करे?

मुमुक्षु : परिग्रह....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प का परिग्रह भी जिसे नहीं। भावकर्म का विकल्प जो है, वह भी जिसे अन्दर नहीं। व्यवहार है न? व्यवहार भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित,... निर्ग्रन्थदशा लेनी है न। **ऐसे विद्वान पूजनीय पंचम गति को...** ऐसे पण्डितजन **पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिए...** आहाहा! **पंचम भाव का स्मरण करते हैं।** पंचमभाव को याद करते हैं। आहाहा! पंचमभाव का स्मरण करते हैं। भगवान परमानन्दस्वरूप का स्मरण करते हैं। आहाहा! धारणा में तो पहले लिया है, अब बारम्बार उसका स्मरण करते हैं। परमात्म शुद्ध चिदानन्द प्रभु के आश्रय से ही मेरी मुक्ति होती है। आहाहा! समझ में आया? पंचम काल हो या चौथा काल हो, महाविदेह हो या भरत हो या ऐरावत हो, मार्ग तो यह एक है। समझ में आया? आहाहा! **विद्वान पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिए...** पंचमगति को प्राप्त करने के लिये, सिद्धगति प्राप्त (करने के लिये)। देखा! प्रगट करनी है न वह? सिद्धगति को प्राप्त करने के लिये पंचमभाव को, पंचमभाव त्रिकाल, पंचमगति प्राप्त करने के लिये पंचमभाव का स्मरण करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो पर्याय को पूज्य बता दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूज्य है न। यहाँ तो पूजनीय पंचमगति, पंचमगति को पूजनीय कहा है और वहाँ १५वीं गाथा नियमसार। पूज्य पंचमगति की.... वह कारणपर्याय, उसे पूजनीय कहा है।

मुमुक्षु : कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नियमसार। यह क्या है? यह नियमसार है। नीचे है अन्तिम पद। **यहाँ सहजशुद्धनिश्चय से अनादि-अनन्त...** देखो, कारणशुद्धपर्याय अनादि-अनन्त।

अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र... परमवीतराग सुखात्मक शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप जो स्वभाव अनन्तचतुष्टय स्वरूप के साथ... देखो, त्रिकाल जो शुद्धभाव गुण है, उसके साथ की **पूजित पंचमभाव परिणति।** पंचमगति को पूजनीक कहा, यहाँ कारणपर्याय को पूजनीक कहा।

मुमुक्षु : कारणपर्याय ध्रुव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव है। यह कारणपर्याय ध्रुव है, उत्पाद-व्यय नहीं। यह सूक्ष्म भाव है। इन्होंने डाला है, पद्मप्रभमलधारिदेव ने। पाठ में है। क्यों? कि नियमसार मोक्षमार्ग का अधिकार है। नियमसार, वह पर्याय का अधिकार है तो पर्याय में शुद्धकारणपर्याय डाली। दूसरी जगह ऐसा अधिकार है नहीं। आहाहा! कहा न? त्रिकाल जो सहज ज्ञानानन्द आदि है, ऐसा जो अनन्तचतुष्टयस्वरूप अन्तःतत्त्व... आहाहा! उसके साथ की, अन्तःतत्त्व त्रिकाल जो है, उसके साथ की पूजित पंचमभावपरिणति। आहाहा! उसके साथ तन्मयरूप से रहनेवाली पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति। वह उत्पाद-व्यय बिना की बात है, हों! **वही कारणशुद्धपर्याय है।** ऐसा अर्थ है। वह कारणशुद्धपर्याय है। आहाहा! ऐसी बात श्वेताम्बर में यह शब्द भी है नहीं। इसके अतिरिक्त अन्यत्र ऐसा स्पष्टीकरण नहीं, नियमसार के अतिरिक्त। आहाहा!

क्यों? यह १९ गाथा में आया है। नियमसार नहीं? १९ गाथा नहीं पहली? उनके (प्रवचन की) पुस्तक बाहर प्रसिद्ध हो गयी है। उसमें (संवत्) २००० के वर्ष में पढ़ा था न ३२ वर्ष पहले। उसमें आया है कि क्यों यह कारणपर्याय है? कि धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल, उसकी पर्याय जो पारिणामिक पर्याय है, पारिणामिकभाव की। द्रव्य भी पारिणामिक, गुण-पर्याय और उसकी पर्याय भी पारिणामिक। वह पर्याय अनादि-अनन्त एकसरीखी है। एकसरीखी एक धारावाही। चार द्रव्यों में। और आत्मा में संसार की पर्याय, पश्चात् मोक्षमार्ग की पर्याय, पश्चात् मोक्ष। ऐसे पर्याय का भंग हो गया। तो एकधारी उसमें पर्याय है, वैसी इसमें होना चाहिए न? वह यह कारणपर्याय। यह स्पष्टीकरण किया है। १९ गाथा में किया है। १९ गाथा, नहीं? पढ़ा है या नहीं? नियमसार की १९वीं गाथा।

मुमुक्षु : उसमें परिवर्तन नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिवर्तन नहीं होता। यह परिवर्तन होता है इसमें, परन्तु यहाँ तो एक सरीखी है, इतना बतलाना है। एकसरीखी है तो यह द्रव्य में एकसरीखी होना चाहिए न? तो वह परिवर्तनवाली है, यह (कारणपर्याय) परिवर्तन बिना की एकधारा है। आहाहा! वस्तु सूक्ष्म है थोड़ी। इसका दृष्टान्त भी दिया था, समुद्र का। परन्तु यह बाहर में पूछा बंसीधरजी को, वर्णीजी को, नहीं बैठा तो अभी इन लोगों को नहीं बैठी तो दूसरों को किस प्रकार से बैठेगी? फिर नक्शा नहीं डाला। नक्शा है वहाँ स्वाध्याय मन्दिर में। शक्ति का। सूक्ष्म बात है। भगवान द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव जैसे त्रिकाल है, वैसी पर्याय ध्रुवरूप एकसरीखी भले ध्रुव अंश... अंश... अंश... अंश... परन्तु वह एक सरीखी त्रिकाल है। तब उस द्रव्य की पूर्णता होती है। निश्चय की पूर्णता तब होती है और उत्पाद-व्यय की पर्याय जो है, वह व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! सूक्ष्म है। यह कारणपर्याय निश्चयनय का विषय है और उत्पाद-व्यय की जो पर्याय मोक्षमार्ग की, वह सब व्यवहारनय का विषय है।

मुमुक्षु : कारणपर्याय पारिणामिक ध्रुव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पारिणामिक ध्रुव है। पर्याय, वह पारिणामिकभाव कहा न। पंचमभाव की... देखो न! पंचमभाव परिणति, पंचमभाव से पूज्य ऐसी पारिणामिकभाव की परिणति, वही कारणशुद्धपर्याय। पंचमभाव की परिणति ध्रुव।

मुमुक्षु : परिणति शब्द से पर्याय लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है। उत्पाद-व्ययवाली नहीं। जरा सूक्ष्म बात है। अन्यत्र कहीं ऐसा अधिकार है नहीं। उस समय स्पष्टीकरण किया था। बात करते थे। (संवत्) २००० के वर्ष में। आहाहा! उसमें है। (गाथा १ से) १९ गाथा (तक) का प्रवचन है, उसमें है। आहाहा! भगवान आत्मा अपने स्वभाव में पंचमभाव का स्मरण करता है। उस पंचमभाव में यह कारणपर्याय भी आ गयी। समझ में आया? यह ५८ हुआ। ५९ (कलश)।

★ ★ ★

कलश - ५९

(मालिनी)

सुकृत-मपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परम-तत्त्वाभ्यास-निष्णातचित्तः ।
उभय-समय-सारं सार-तत्त्व-स्वरूपं,
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः ॥५९॥

(वीरछन्द)

ये समस्त शुभकर्म भोगियों के भोगों के मूल सदा।
अहो मुनीश्वर! परम तत्त्व अभ्यास कुशल है चित् जिनका॥
भव से मुक्ति प्राप्ति हेतु तुम उस समस्त शुभ को छोड़ो।
इसमें क्या क्षति ? सार तत्त्वमय उभय समय का सार भजो॥५९॥

श्लोकार्थः—समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है। परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर, भव से विमुक्त होने हेतु उस समस्त शुभ कर्म को छोड़ो और सारतत्त्वस्वरूप[१] ऐसे उभय समयसार को भजो। इसमें क्या दोष है ?।।५९।।

कलश - ५९ पर प्रवचन

सुकृत-मपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परम-तत्त्वाभ्यास-निष्णातचित्तः ।
उभय-समय-सारं सार-तत्त्व-स्वरूपं,
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः ॥५९॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है।** आहाहा! शुभभाव से पुण्य बँधता है और उससे तो भोग मिलते हैं। आहाहा! भोगियों के भोग का मूल है शुभभाव। समझ में आया? भोग है न, राग है। राग से पुण्य बन्ध होता है और पुण्यबन्ध से संयोग मिलते हैं। भोगियों के भोग का मूल है शुभभाव।

आहाहा! यह वाणी तो वीतराग की ऐसा कहे वीतरागी सन्त। आहाहा! आता है, होता है व्यवहार। जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब व्यवहार आता है। व्यवहार और निश्चय। जहाँ तक पूर्ण निश्चय न हो, वहाँ तक व्यवहार आता है, परन्तु उस व्यवहार का फल पुण्यबन्ध है और उससे संयोगी चीज़ मिलती है। वह भोगियों के भोग का मूल है, ज्ञानी का नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सुकृत (शुभकर्म)... वापस ऐसा लेते हैं, यह तो शुभकर्म कहा है, इसमें शुभभाव कहाँ आया? वे रतनचन्दजी कहते हैं। वह पुण्य अधिकार है न, उसमें शुभकर्म का निषेध किया है, परन्तु शुभभाव का कहाँ निषेध है? परन्तु टीका में चारों ही बोल लिये हैं। शुभभाव, शुभकर्म। समझ में आया? बन्ध के हेतु, ये चार बोल लिये हैं, वहाँ पुण्य-पाप के अधिकार में। आहाहा! शुभभाव लिया है, उसका फल लिया है। सब शुभकर्म में वह आ जाता है और फिर टीका में तो स्पष्ट लिया है। व्रत, नियम, तप आदि शुभकर्म है, ऐसा लिया है। संस्कृत टीका है, पुण्य-पाप (अधिकार) में। व्रत, नियम आदि वह शुभकर्म है, ऐसा लिया है। शुभकर्म राग का शुभ कर्तव्य है। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं कि इस पुण्य के ऊपर तो बड़ी लाठी लेकर खड़े हुए हैं। कैलाशचन्दजी ऐसा कहते थे। परन्तु यह क्या कहते हैं भगवान आचार्य? ऐई!

मुमुक्षु : कथंचित् लगा दो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् है ही नहीं। शुभभाव सर्वथा बन्ध का कारण है। वह सब पड़ा है। ऐसा आया है। सन्त, ज्ञानी ऐसे पड़े हैं, लक्ष्य देकर पड़े हैं। आहाहा! अरे... भाई! बाहर की सामग्री जो पुण्य की मिलती है, वह चीज़ क्या है? अन्तर के आनन्द के अनुभव के समक्ष उस बाहर की चीज़ की क्या कीमत? अरे! अन्तर आनन्द के अनुभव के समक्ष व्यवहाररत्नत्रय की भी कीमत नहीं। आहाहा! होता है, हो। जब तक वीतराग न हो, तब तक व्यवहार आता है न।

मुमुक्षु : संसार....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार... है वह तो। आहाहा! उसे भला कैसे कहें? जो संसार में प्रवेश करे, करावे — ऐसे पुण्य को शुभ कैसे कहें? ऐसा कहते हैं। वह कुशील है।

आहाहा! भगवान आत्मा का स्वभाव कहाँ है वह? भगवान आत्मा का स्वभाव तो निर्मलानन्द शुद्ध है और राग तो कुशील है। आहाहा! संसार में प्रवेश शुभभाव संसार में प्रवेश कराता है। ओहोहो! शास्त्र में तो यहाँ तक आया, समयसार नाटक में कि छठवें गुणस्थान में जो महाव्रत का विकल्प उठता है, वह जगपंथ है। ऐसा पाठ है समयसार नाटक में। जगपंथ। इस ओर मोक्षपंथ है, वह जगपंथ है। आहाहा! समझ में आया? समयसार नाटक में है। ओहो!

समस्त सुकृत (शुभकर्म)... ऐसा शब्द है वापस। कोई शुभकर्म का सहारा है, ऐसा नहीं। आहाहा! देखो न, सन्तों की वाणी तो देखो। दिगम्बर वीतरागी सन्त। **समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है। परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर,...** आहाहा! **परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात...** आनन्द का नाथ प्रभु अन्दर में, उसके अभ्यास में निष्णात। उस ओर के मार्ग में एकाग्र होने में निष्णात। आहाहा! ऐसे **चित्तवाले मुनीश्वर, भव से विमुक्त होने हेतु...** भव से छूटने के अर्थ **उस समस्त शुभकर्म को छोड़ो...** आहाहा! व्यवहार छोड़ो। छोड़ो इसका अर्थ यह कि दृष्टि में छोड़ो, ऐसा आया, परन्तु उस समय सर्वथा छूट जाता है, ऐसा नहीं। छोड़ो, वह दृष्टि में से छोड़ो, उसका आदर छोड़ो। आदर छोड़ो, इसका अर्थ कि उसे घटाओ, स्वभाव का आश्रय लो। आहाहा! भाव है सही न। भाव न हो तो घटावे किसे? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कठिन मार्ग पड़े लोगों को ऐसा। इसीलिए फिर सोनगढ़ का एकान्त, सोनगढ़ का एकान्त। अभी आया है न, आया है। यह जैन गजट में आया है कल। यह तो व्यवहार को तो धर्म मानते ही नहीं। नय ही मानते नहीं, ऐसा कहते हैं। अकेला निश्चय को मानते हैं। व्यवहारनय मानते नहीं? व्यवहारनय है, विषय है, छोड़नेयोग्य है। धन्नालालजी! ऐसी बात है।

कोटा में यह आया था। चार दिन चला कोटा में। कोटा में लोग बहुत थे। भाई थे न धन्नालालजी थे। जुगलकिशोर की बहुत छाप और जम्बुकुमार सेठ। उम्र छोटी है परन्तु गम्भीर बहुत। यह तो व्याख्यान करे भाषण। जुगलकिशोर। पाव-पाव घण्टे, बीस मिनिट एकधारावाही। शान्त... शान्त... शान्त... यहाँ अनुकूल है। जम्बुकुमार बेचारे बोल सकते नहीं, परन्तु बहुत अनुकूल। दोनों ने पैसे खर्च किये। आठ दिन के शिक्षण

शिविर के। १६ दिन। आठ दिन पहले। हम तो आठ दिन बाद में आये। १६ दिन। जम्बुकुमार भी व्यक्ति सेठ है। उम्र तो ५० की मुश्किल से होगी। नहीं? इतनी होगी। परन्तु बहुत व्यक्ति... उसे ऐसा हुआ, ओहोहो! यह मार्ग! सुनने को मिलता नहीं यह मार्ग। भाई! मार्ग तो ऐसा है, बापू!

यहाँ तो कहते हैं, धर्मात्मा जीव भव से विमुक्त होता है। वह भव का कारण है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार रागादि, पुण्यादि, वह भव का कारण है। उस समस्त शुभकर्म को छोड़ो। **और सारतत्त्वस्वरूप...** आहाहा! समयसार तत्त्व। **ऐसे उभय समयसार को भजो।** उभय समयसार अर्थात् कारणसमयसार और वर्तमान में कार्यसमयसार, दोनों को भजो। त्रिकाली भगवान का भजन करो। भजन का अर्थ एकाग्रता। और वर्तमान कार्यपरमात्मा—कार्य जो होता है, उसका भजन करो, उसमें रमण करो। आहाहा! व्यवहार में रमने का छोड़ दो। वह बन्ध का कारण है। आहाहा! निर्ग्रन्थमार्ग, ग्रन्थ में से तो निकलने की बात करते हैं। राग, वह ग्रन्थ है। यह तो निर्ग्रन्थमार्ग है। राग में से निकलकर स्वभाव-सन्मुख जाता है तो मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : उभय समयसार अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : कारणसमयसार और कार्यसमयसार। उसे भजो। कारणसमयसार को भजो और कार्य प्रगट करने के लिये उसकी एकाग्रता करो। उस ओर साध्य प्रगट करने की। दोनों को। समझ में आया?

उसमें क्या दोष है? यह क्या कहते हैं? कि व्यवहार को छोड़ता है और (कारणसमयसार और) कार्यसमयसार को भजे, इसमें क्या दोष है? वह तो लाभ का कारण है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार छोड़े तो नुकसान हो, ऐसा है? ऐसा कि व्यवहार छोड़ता है तो नुकसान है? क्या दोष है उसमें? वह तो निर्दोषता प्रगट होती है। आहाहा! व्यवहार स्वयं ही दोष है। उसे छोड़ो, इसमें क्या दोष है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! पंच महाव्रत और व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प होता है, छोड़ो। छोड़ने में क्या दोष है? लाभ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव। देखो, है न? यह ४१ हुई। ४२ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ४२

चउगइभवसंभमणं जाइजरामरणरोगसोगा य।
कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति ॥४२॥

(हरिगीत)

चतु-गति भ्रमण नहिं, जन्म-मृत्यु न, रोग, शोक, जरा नहीं।
कुल योनि नहिं, नहिं जीवस्थान, रु मार्गणा के स्थान नहिं ॥४२॥

अन्वयार्थ : [जीवस्य] जीव को [चतुर्गतिभवसंभ्रमणं] चार गति के भवों में परिभ्रमण, [जातिजरामरणरोगशोकाः] जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, [कुलयोगिजीव-मार्गणस्थानानि च] कुल, योनि, जीवस्थान और मार्गणास्थान [नो सन्ति] नहीं है।

टीका :— शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीव को समस्त संसार विकारों का समुदाय नहीं है — ऐसा यहाँ (इस गाथा में) कहा है।

द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का स्वीकार न होने से, जीव को नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियों का परिभ्रमण नहीं है।

नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव को द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के ग्रहण के योग्य विभावपरिणति का अभाव होने से जन्म, जरा, मरण, रोग और शोक नहीं है।

चतुर्गति (चार गति के) जीवों के कुल योनि के भेद, जीव में नहीं हैं — ऐसा (अब) कहा जाता है। वह इस प्रकार —

पृथ्वीकायिक जीवों में बाईस लाख करोड़ कुल हैं; अप्कायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; तेजकायिक जीवों के तीन लाख करोड़ कुल हैं; वायुकायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; वनस्पतिकायिक जीवों के अट्ठाईस लाख करोड़ कुल हैं; द्वीन्द्रिय जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; त्रीन्द्रिय जीवों के आठ लाख करोड़ कुल हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; पंचेन्द्रिय जीवों में जलचर जीवों के साढ़े बारह लाख करोड़ कुल हैं; खेचर जीवों के बारह लाख करोड़

कुल हैं; चार पैर वाले जीवों के दस लाख करोड़ कुल हैं; सर्पादिक पेट से चलनेवाले जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; नारकियों के पच्चीस लाख करोड़ कुल हैं; मनुष्यों के बारह लाख करोड़ कुल हैं और देवों के छब्बीस लाख करोड़ कुल हैं। कुल मिलाकर एक सौ साढ़े सत्तानवे लाख करोड़ (१९७५०००,०००,०००,००) कुल हैं।

पृथ्वीकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; अप्कायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; तेजकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; वायुकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; नित्य निगोदी जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; चतुर्गति (चार गति में परिभ्रमण करनेवाले, अर्थात् इतर) निगोदी जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; वनस्पतिकायिक जीवों के दस लाख योनि मुख हैं; द्वीन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; त्रीन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; देवों के चार लाख योनि मुख हैं; नारकों के चार लाख योनि मुख हैं; तिर्यंच जीवों के चार लाख योनि मुख हैं; मनुष्यों के चौदह लाख योनि मुख हैं। (कुल मिलाकर ८४,००,००० योनि मुख हैं।)

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; स्थूल एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; असंज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त — ऐसे भेदोंवाले चौदह जीवस्थान हैं।

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व, और आहार—ऐसे भेदस्वरूप (चौदह) मार्गणास्थान हैं।

यह सब, उन भगवान परमात्मा को शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से) नहीं हैं — ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव का) अभिप्राय है। इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ३५-३६ वें श्लोकों द्वारा) कहा है कि —

(वीरछन्द)

चित् शक्ति से रहित सकल परभावों का तुम त्याग करो।
चित् शक्तिमय निज आतम में प्रगटरूप अवगाह करो॥

हे आत्मन् ! तुम सकल विश्व के ऊपर तिरते आत्मा को।
एकरूप अविनाशी निज को निज में ही अनुभवन करो॥

श्लोकार्थ :— **चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर और चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से अवगाहन करके, आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान, ऐसे इस केवल (एक) अविनाशी आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभव करो।**

(वीरछन्द)

जीवमात्र इतना जिसका सर्वस्व सार चित्शक्ति स्वरूप।
चित्शक्ति से शून्य भाव जो, वे सब हैं जड़ पुद्गलरूप॥

श्लोकार्थ :— **चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है — ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है; इस चित्शक्ति से शून्य जो ये भाव हैं, वे सब पौद्गलिक हैं।**

गाथा - ४२ पर प्रवचन

चउगइभवसंभमणं जाइजरामरणरोगसोगा य।
कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति॥४२॥
चतु-गति भ्रमण नहिं, जन्म-मृत्यु न, रोग, शोक, जरा नहीं।
कुल योनि नहिं, नहिं जीवस्थान, रु मार्गणा के स्थान नहिं॥४२॥

टीका :- शुद्धनिश्चयनय से... शुद्धनिश्चयनय से, यथार्थ दृष्टि से **शुद्ध जीव को...** त्रिकाली शुद्धजीव में **समस्त संसार विकारों का समुदाय नहीं...** पहली सामान्य बात की। **समस्त संसार विकारों का समुदाय नहीं है — ऐसा यहाँ (इस गाथा में) कहा है।** संसार का कोई भाव ही आत्मा में नहीं। आहाहा! अब कहते हैं। **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का स्वीकार न होने से,...** आहाहा! जहाँ ज्ञायकभाव परमस्वभाव का स्वीकार है, वहाँ **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का स्वीकार न होने से, जीव को नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियों का परिभ्रमण नहीं है।** वह वस्तु में परिभ्रमण है नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि जहाँ परमस्वभाव का स्वीकार है और द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का जहाँ स्वीकार नहीं, तो परिभ्रमण उसमें है नहीं। आहाहा!

जीवस्वरूप भगवान पूर्णानन्द में परिभ्रमण है ही नहीं। पर्याय में परिभ्रमण है, वह द्रव्य में नहीं। समझ में आया?

नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव को... दूसरा बोल। **नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप...** आहाहा! कितनी महिमा की है! भगवान आत्मा नित्य, शुद्ध, चिदानन्दमय आत्मा। आहाहा! **नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप...** ज्ञानानन्दरूप, वह तो ज्ञान का, आनन्द का रूप आत्मा है। आहाहा! **कारणपरमात्मस्वरूप....** कैसा है भगवान? कारणपरमात्मस्वरूप है। आहाहा! त्रिकाली नित्य शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, वह कारणपरमात्मस्वरूप है। ऐसे **जीव को...** वह कारणपरमात्मस्वरूप वह जीव। आहाहा! **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के ग्रहण के योग्य विभावपरिणति का अभाव होने से...** द्रव्यकर्म और भावकर्म दोनों की योग्यता ग्रहण करने की है ही नहीं उसमें। भगवान कारणपरमात्मा में ऐसे जीव में वह है नहीं। इस कारण से **जन्म...** नहीं, **जरा...** नहीं, **मरण...** नहीं। **रोग....** नहीं **और शोक नहीं।** आहाहा! परमब्रह्म भगवान आत्मा में द्रव्यकर्म और भावकर्म है नहीं। आहाहा! इस कारण से उसे ग्रहण करने की योग्यता ही आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। इस कारण से आत्मा में, आहाहा! जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं। आत्मा में जन्म नहीं, जरा अवस्था नहीं, मरण नहीं, रोग नहीं और शोक नहीं, ऐसा भगवान आत्मा है। आहाहा! भगवान का दरबार ऐसा है, ऐसा कहते हैं। दरबार! आहाहा!

मुमुक्षु : .... विभावपरिणति ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह विशेष कहा न! विशेष बताया न? कि विभावपरिणति उसमें नहीं। भावकर्म को ग्रहणयोग्य विभावपरिणति नहीं, ऐसा। भावकर्म को ग्रहण करना, वह विभावपरिणति है नहीं। इस कारण से उसे जन्म-जरा है नहीं। भगवान जन्म, जरा, मरण, रोग आदि से भिन्न है। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

चतुर्गति (चार गति के) जीवों के कुल... जीव के उत्पत्ति स्थान है न। **तथा योनि के...** उत्पत्ति का स्थान। उसमें उत्पन्न हो वह जीव, वह कुल। उत्पन्न स्थान को योनि कहते हैं। **जीव में नहीं...** वह जीव में है ही नहीं। **ऐसा (अब) कहा जाता है।**

पश्चात् इसका विस्तार है। **पृथ्वीकायिक जीवों में बाईस लाख करोड़ कुल हैं;...** कुल किसे कहते हैं, समझे? जैसे दही हो, वह सड़ जाये तो उसमें ईयळ, चींटियाँ पैदा होती है न? वे उत्पन्न होती है, उस शरीर को कुल कहते हैं और जिसमें उत्पन्न हो, उसे योनि कहते हैं। जिसमें से उत्पन्न हो, वह योनि और शरीर उत्पन्न हुआ, वह कुल। दोनों आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? गोबर होता है न, छाण को क्या कहते हैं? तो गोबर, वह योनि स्थान है और उसमें कीड़े, जीवांत, ईयळ भिन्न-भिन्न पैदा हो, कोई छोटी, बड़ी ... वह उसका कुल कहा जाता है। शरीर आदि। समझ में आया? भिन्न-भिन्न जाति के। एक ही योनि हो, उसमें से भिन्न-भिन्न जाति के जीवांत पैदा होते हैं। आहाहा! वह कुल भी नहीं और योनि भी आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। योनि बाद में ली। बाईस लाख करोड़ हैं।

अप्कायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; तेजकायिक जीवों के तीन लाख करोड़ कुल हैं; वायुकायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; वनस्पतिकायिक जीवों के अट्ठाईस लाख करोड़ कुल हैं; द्वीन्द्रिय जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; त्रीन्द्रिय जीवों के आठ लाख करोड़ कुल हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; पंचेन्द्रिय जीवों में जलचर जीवों के साढ़े बारह लाख करोड़ कुल हैं; खेचर जीवों के बारह लाख करोड़ कुल हैं; चार पैर वाले जीवों के दस लाख करोड़ कुल हैं; सर्पादिक पेट से चलनेवाले जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; नारकियों के पच्चीस लाख करोड़ कुल हैं; मनुष्यों के बारह लाख करोड़ कुल हैं... उत्पन्न होने की शरीर की जाति की बात है, यह कुल की बात। **देवों के छब्बीस लाख करोड़ कुल हैं। कुल मिलाकर एक सौ साढ़े सत्तानवे लाख करोड़ (१९७५०००,०००,०००,००) कुल हैं।** लो! यह सब आत्मा में नहीं। आहाहा!

अब, योनि की बात करते हैं। उत्पत्ति। **पृथ्वीकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं;...** पृथ्वीकाय के जीवों के उत्पत्तिस्थान को योनि कहते हैं। ऐसे सात लाख योनिमुख हैं। यह जानने की चीज़ यह तो। उसमें है नहीं इतना विशेष। यह व्यवहार है। जैन परमेश्वर की पर्याय में ऐसा जानने में आया है, परन्तु वह है व्यवहार से। अन्दर में नहीं। उस व्यवहार को उठाया है और वह व्यवहार जैन की परमेश्वर

की जो स्थिति बतायी, उसमें ऐसा व्यवहार है। दूसरे में ऐसा (व्यवहार) कहाँ है? समझ में आया?

मुमुक्षु : इतने भेद अन्यत्र कहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यत्र कहाँ है? सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं। उसके भेद बताकर, अन्दर में नहीं, ऐसा कहना है। भेदरूप से है, व्यवहाररूप से योनि और कुल की जाति है। आहाहा! अन्दर में नहीं।

अप्कायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; तेजकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; वायुकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; नित्य निगोदी जीवों के सात लाख योनि मुख हैं;... लो, नित्यनिगोद। **चतुर्गति (चार गति में परिभ्रमण करनेवाले, अर्थात् इतर) निगोदी जीवों के सात लाख योनि मुख हैं;...** बाहर परिभ्रमण करते हैं न। **वनस्पतिकायिक जीवों के दस लाख योनि मुख हैं; द्वीन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; त्रीन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; देवों के चार लाख योनि मुख हैं; नारकों के चार लाख योनि मुख हैं; तिर्यंच जीवों के चार लाख योनि मुख हैं; मनुष्यों के चौदह लाख योनि मुख हैं। (कुल मिलाकर ८४,००,००० योनि मुख हैं।)** तो चौरासी लाख योनिमुख हैं, वे भगवान ने देखे हैं। दूसरे कहते हैं कि चौरासी लाख योनि—चौरासी लाख योनि। परन्तु वे बिना भान के कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वज्ञ ने जो कहा....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वज्ञ ने कहा कि ऐसे हैं, ऐसी योनि है और ऐसे कुल भी हैं, परन्तु वस्तु में ऐसा है नहीं। पर्याय में है। भगवान ने देखे हैं। ऐसा व्यवहार है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; स्थूल एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; असंज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त— ऐसे भेदोंवाले चौदह जीवस्थान हैं (वे जीव में नहीं हैं)। वे जीवस्थान जीव में नहीं। आहाहा! ऐसे जीव के प्रकार - भेद हैं। भगवान त्रिकाली चैतन्य का नाथ, उसमें वे हैं

नहीं। उसमें नहीं तो उनसे रहित हो जाता है। आहाहा!

अब कहते हैं, यह **गति...** चार। वह द्रव्य में है नहीं। **इन्द्रिय...** पाँच। भावेन्द्रिय और जड़ इन्द्रिय, वह आत्मा में है नहीं। **काय...** अन्दर ... आती है न काय? काय आत्मा में है नहीं। **योग...** आत्मा में नहीं, **वेद...** है नहीं। **कषाय...** आत्मा में नहीं। **ज्ञान...** का भेद आत्मा में नहीं। आहाहा! पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान कहते हैं न, वे द्रव्य में नहीं। आहाहा! वे हैं सही पर्याय में, हों! ऐसी अस्ति सिद्ध करके अन्दर में वे नहीं। आहाहा! ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त जैन परमेश्वर के अतिरिक्त अन्यत्र यह बात है ही नहीं। आहाहा! और **संयम...** संयम का भेद। यथाख्यात और सामायिक और उसके भेद अन्दर में है नहीं। **दर्शन...** समझे? अन्दर है नहीं। यह दर्शन कौन? चक्षु-अचक्षु, अवधि वह केवलदर्शन अन्दर में नहीं। लो! यथाख्यातचारित्र पर्याय भी अन्दर में नहीं। **लेश्या,...** छह लेश्या अन्दर में नहीं। **भव्यत्व...** अभव्यत्व (अन्दर) नहीं। त्रिकाली द्रव्य में भव्यत्व-अभव्यत्व कैसा? और **सम्यक्त्व...** के भेद हैं न सम्यक्? क्षायिकसमकित, उपशमसमकित, यह भेद भी द्रव्य में नहीं। आहाहा! **संज्ञित्व...** असंज्ञी द्रव्य में नहीं। **आहार...** अनाहार द्रव्य में नहीं। **ऐसे भेदस्वरूप (चौदह) मार्गणास्थान हैं।** वे आत्मा में हैं नहीं। विशेष्य कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १५, गुरुवार, दिनांक २१-०८-१९७५
गाथा - ४२, कलश - ६०, प्रवचन - ११

... वस्तुस्वभाव की दृष्टि करने से वस्तु के स्वभाव में ये पर्यायभाव है नहीं। बहुत सूक्ष्म बात है। जिसे आत्मा प्राप्त करना हो तो वह आत्मा तो द्रव्यस्वभाव जो शुद्ध है, पूर्ण है, इसकी पर्याय में ज्ञानादि का भेद है, मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल आदि। संयम के भेद हैं, वह सब पर्याय में जाननेयोग्य हैं। परन्तु उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव शुद्ध ध्रुव जो है, उसकी दृष्टि करने से उस निश्चयनय के बल से वे पर्यायभेद स्वभाव में नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन प्रगट करने में वर्तमान पर्याय में भेद होने पर भी उनका लक्ष्य छोड़कर, अन्तर्मुख वस्तुस्वभाव जो है पर्याय से भिन्न, ऐसी जो शुद्ध चीज़ पूर्ण आनन्दकन्द, वे सब भगवान परमात्मा को, अन्तिम शब्द है, वे सब **गति, इन्द्रिय, काय,...** ज्ञानभेद, चारित्रभेद, समकितभेद। आहाहा! **यह सब, उन भगवान परमात्मा को...** यह भगवान परमात्मास्वरूप जो है... आहाहा! **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** अर्थात् कि पर्याय की रुचि छोड़कर निश्चय के बल से, अन्तर्मुख की दृष्टि के बल से... आहाहा! वह वस्तु में नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन का विषय शुद्ध चैतन्यघन अभेद है, ऐसी दृष्टि करने से उस शुद्धनिश्चय का बल कहो या शुद्धनिश्चय से कहो, ऐसे शुद्ध निश्चय के स्वभाव से, वे पर्यायभेद उसमें है नहीं। आहाहा! प्राप्त करने की पद्धति यह है। प्रथम में प्रथम धर्म, प्रथम में प्रथम धर्म प्राप्त करने की चीज़ यह है। आहाहा! वे सब गुणस्थानभेद, मार्गणा के भेद... आहाहा! भगवान परमात्मा को (नहीं)। यह भगवान परमात्मा, हों! पूर्ण शुद्ध चिदानन्दघन प्रभु ध्रुव ज्ञायकभाव में **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** अर्थात् अन्तर्मुख दृष्टि करने से... आहाहा! उस स्वभाव में भेद है ही नहीं। आहाहा! परद्रव्य तो (स्वभाव में) है ही नहीं, परद्रव्य के क्षेत्र, काल, भाव तो आत्मा में है नहीं, रागादि भाव है, वह भी आत्मद्रव्य में है नहीं, परन्तु उसमें क्षायिक आदि पर्याय का भेद है... आहाहा! उस शुद्ध अन्तर्मुख की

दृष्टि के बल से शुद्ध चैतन्यतत्त्व को निहारने से उसमें वे भेद है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आठ वर्ष की बालिका हो शरीर, वह भी जब सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है तो इस दृष्टि से प्राप्त करती है। आहाहा! परन्तु वह बहुत सूक्ष्म। चैतन्यदल पूरा भगवान। यहाँ तो कहा न, भगवान परमात्मा, ऐसा कहा। त्रिकाल वस्तु शुद्धभाव। जो यहाँ शुद्धभाव कहा। समयसार में ज्ञायकभाव कहा, परमपारिणामिकभाव जो है परमस्वभावभाव, वह भगवान परमात्मा है। आहाहा! उस भगवान परमात्मा को... ओहोहो! सूत्र। यह पहले आ गया न कि नियम से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह जीव को कर्तव्य है। तो सम्यग्दर्शन कर्तव्य में अन्तर्मुख दृष्टि करने से जिसमें कोई भेद है नहीं। आहाहा! यह तो आया न? समकित, क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम, वह सब पर्याय में है, द्रव्य में है नहीं। आहाहा! वस्तु समझ में आती है कुछ? पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु भगवान विराजता है, सभी आत्मायें, सभी आत्मायें भगवान परमात्मास्वरूप हैं। उसकी अन्तर निश्चयनय अर्थात् पर्याय में होने पर भी अन्तर्मुख के जोर से देखने से... आहाहा! वह भगवान आत्मा में है नहीं। समझ में आया?

देव, गुरु और शास्त्र, मूर्ति, मन्दिर, यात्रा और सम्मेदशिखर... सम्मेदशिखर वह तो अन्दर में है नहीं, परन्तु उसकी यात्रा का जो विकल्प है, वह भी स्वरूप में नहीं। वह तो नहीं, परन्तु क्षायिकसमकित आदि का भेद है... आहाहा! बहुत धीर की बातें हैं, अन्तर स्वभाव पूर्णानन्द का नाथ, उसमें वे भेद है नहीं। ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का; टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। **ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का (श्रीमद्भगवत्-कुन्दकुन्दाचार्यदेव का) अभिप्राय है।** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो' तीसरे नम्बर में आते हैं। आहाहा! उन भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का यह अभिप्राय है। समझ में आया? पर्याय के ऊपर का लक्ष्य छोड़ दे। प्रगट व्यक्त जो दशा है, वह अंशमात्र है। उस अंश के लक्ष्य से तुझे राग होगा, विकल्प होगा, पुण्यबन्ध होगा। अबन्धस्वभाव में पर्याय के लक्ष्य से बन्धभाव होगा। आहाहा!

अबन्धस्वभाव में अबन्धस्वभाव के आश्रय से अबन्धपरिणाम उत्पन्न होंगे। समझ में आया? यह बात है। आहाहा! फिर लोग ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ़ की बात, ऐसा कहते हैं। निश्चय की। परन्तु यह किसकी बात है?

मुमुक्षु : यह तो भगवान की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की बात है।

यहाँ तो कहा। टीकाकार मुनि हैं, पद्मप्रभमलधारिदेव छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं। वे ऐसा कहते हैं कि भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है कि भगवान परमात्मस्वरूप में यह भेद है नहीं। धन्नालालजी! आहाहा! रोग, शोक और भोग यह सब क्रन्दन। यह तो सब बाहर रह गये, परन्तु राग का रोग भी मेरे अन्तर में नहीं। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव द्रव्यस्वभाव में नहीं। जो भाव केवलज्ञानरूप से प्रगटे... आहाहा! आज सब बहुत देखा, भाई! '**सर्व द्रव्य पर्यायेसु**' केवलज्ञान का ऐसा है न? '**सर्व द्रव्य पर्यायेसु**' ऐसा पाठ है। परन्तु उसमें फिर अर्थ में दो लिये हैं। सर्वद्रव्य और सर्वपर्याय, ऐसा लिया है। वरना ....

मुमुक्षु : 'सर्व द्रव्य पर्यायेसु केवलस्य....'

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। सर्व द्रव्य और पर्याय, दोनों। तीन काल की पर्याय और द्रव्य, वह तो सामान्य। बाकी तीन काल की पर्याय, वही द्रव्य है। तीन काल की पर्याय से कोई भिन्न सामान्य वस्तु नहीं। ऐसा सूक्ष्म... बहुत देखा है। तत्त्वार्थसार, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक और फूलचन्दजी का। फूलचन्दजी का है न, सर्वार्थसिद्धि। उन सबमें दो भेद कर दिये अन्दर। द्रव्य और पर्याय, ऐसे दो भेद। पाठ ऐसा है कि '**सर्व द्रव्य पर्यायेसु**' सर्व द्रव्य की पर्यायों को केवलज्ञान जानता है और... परन्तु वह ... त्रिकाली पर्याय को जाना, वह द्रव्य को जाना। त्रिकाली पर्याय को जाना, वह द्रव्य को जाना। दूसरा कोई उपाय उसमें नहीं। बहुत विचार किया है। मंथन बहुत चला शास्त्र देखकर। क्योंकि त्रिकाली पर्याय, वही वस्तु है। त्रिकाली पर्याय से कोई सामान्य (चीज़) भिन्न है? सामान्य कहो या त्रिकाली पर्याय का पिण्ड कहो, दोनों एक ही बात है। आहाहा! सूक्ष्म पड़े। आये नहीं? कहाँ गये? पालीताणा गये? यहाँ तो यह कहते

हैं कि श्रीमद् भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है कि शुद्ध, बुद्ध जो स्वभाव का शुद्धभाव त्रिकाली ज्ञायकभाव, त्रिकाली भावस्वभाव लिया है, हों! स्वभाव के धारक भी वह त्रिकाली स्वभावधर्म आ गया। त्रिकाली द्रव्य का जो स्वभाव शुद्धभाव, परमस्वभावभाव, ज्ञायकभाव, अभेदभाव, सामान्यभाव, नित्यानन्दभाव, ध्रुवभाव, एक सदृश्यभाव। आहाहा! इतने (नाम)। उसमें यह भेद नहीं। जहाँ सामान्य के ऊपर दृष्टि देने से दृष्टि में भेद आता नहीं। समझ में आया? यह कर्तव्य है। एकरूप त्रिकाली ज्ञायकभाव के ऊपर दृष्टि देने से अभेद ही दृष्टि में आता है। दृष्टि में भेद दिखाई नहीं देते। आहाहा!

यह सातवीं गाथा में कहा है न, द्रव्य अनन्त पर्याय को पी गया है। सातवीं गाथा में आया है। अभेद है उसमें। पी गया अर्थात् अन्दर पड़ी है। परन्तु दृष्टि के विषय को देखने से अभेद में भेद दिखाई नहीं देते। भेद देखने जाये तो दृष्टि का विषय नहीं रहता। आहाहा! यह तो मूल मक्खन चीज़ है। जैनदर्शन का सार जो वीतरागता है, चारों ही अनुयोगों का सार वीतरागता है, तो वह वीतरागता सार तात्पर्य कब होगा? कि सामान्यस्वभाव त्रिकाल ध्रुव पर दृष्टि देने से वीतराग की पर्याय उत्पन्न होगी। सम्यग्दर्शन, वह वीतरागी पर्याय है; स्वसंवेदन, वह वीतरागी पर्याय है और स्वरूप में रमणता—चारित्र, वह भी वीतरागी पर्याय है। वह वीतरागी पर्याय त्रिकाल ज्ञायकभाव का आश्रय करने से प्रगट होती है। आहाहा! भगवान के लक्ष्य से नहीं, भगवान की वाणी के लक्ष्य से नहीं। आहाहा! भगवान की वाणी सुनी और अपनी पर्याय में इतना परलक्ष्यी ज्ञान हुआ... आहाहा! उसके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता।

मुमुक्षु : केवली के पादमूल में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पादमूल में होता है, स्व के पादमूल में होता है, तब निमित्त कहलाये। क्षायिक (समकित) केवली, श्रुतकेवली के समीप में होता है। इसका अर्थ कि क्षयोपशम में जो भाव है, अपने ऊपर विशेष एकाग्र हुआ तो क्षायिक होता है। तब भगवान के समीप में व्यवहार से कहा है। यदि भगवान की समीपता से होता हो तो सर्व क्षयोपशमसमकितियों को क्षायिक होना चाहिए। यह उपादान-निमित्त में आया है।

४७ दोहे हैं। समझ में आया? भगवान के समीप में (होता हो) तो क्षयोपशमसमकिती सभा में बहुत बैठे हैं। श्रुतकेवली की सभा, भगवान की सभा। आहाहा! यदि उससे होता हो तो सबको होना चाहिए। परन्तु उस समय निमित्त है, परन्तु लक्ष्य अन्दर में जब एकाग्र हुआ, तब एकाग्र हुआ तो क्षायिक होता है। आत्मा को बहुत नजदीक किया। यह आता है, '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' सम्यग्दर्शन में आत्मा समीप है, निमित्त समीप नहीं। आहाहा! यह नियमसार में आगे आता है। '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' है न इसमें? कहाँ है? ... सामायिक के अधिकार में है, देखो! कितनी? 'संयम नियम और इच्छा निरोधरूपी आनन्द का तप, उसमें आत्मा समीप है।' (नियमसार, गाथा १२७) आहाहा! समझ में आया? बात। आहाहा!

तीन लोक का नाथ आनन्दमूर्ति प्रभु, स्वयं सच्चिदानन्द परमात्मा भगवान स्वरूप आत्मा है। आहाहा! वह सम्यग्दर्शन में भी उसकी समीपता, सम्यग्ज्ञान में भी उसकी समीपता, चारित्र में भी उसकी समीपता। राग की समीपता और निमित्त की समीपता से वह होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! परन्तु यह चीज़ कैसे बैठे? एक राग के विषय की वासना में जहाँ मजा देखे... आहाहा! एक पैसा, पाँच, पच्चीस लाख मिले, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये और आहाहा! अपने को मानो क्या हुआ? अब उसे कहाँ यह आत्मा बैठे? समझ में आया? थोड़ा शास्त्र का ज्ञान हो जाये तो अन्दर में प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये और यह आत्मा अन्दर तीन लोक का नाथ जिसके पास क्षयोपशम समकित की भी कीमत नहीं, जिसके पास क्षायिक केवलज्ञान की कीमत नहीं। आहाहा! अरे! यह बात कैसे बैठे? समझ में आया?

यह कहा, देखो न यहाँ कहा न। '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' है? 'जैसे संयम में, नियम में, तप में आत्मा समीप है।' है? यह गाथा श्वेताम्बर में भी अनुयोग में आती है, अनुयोगद्वार में। उस समय अर्थ करते थे। अनुयोगद्वार है उसके ३२ सूत्र में उसमें यह गाथा आती है। समझ में आया? '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' भगवान त्रिलोकनाथ ध्रुवस्वरूप शुद्धभाव जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में समीप है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान में आत्मा दूर रहता है, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं।

आहाहा! वीतरागी पर्याय में आत्मा समीप है। उसे राग समीप है तो सम्यग्दर्शन होता है, व्यवहाररत्नत्रय की शुद्धि है वहाँ शुभभाव, तो सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा, आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत के सागर का अणीन्द्रियस्वभाव जिसके धर्म की पर्याय में उसका समीपपना है, उसे धर्म की पर्याय कहा जाता है। जिसमें भगवान समीप नहीं रहता, आत्मा समीप, हों! श्रुतकेवली और केवली के समीप में क्षायिक होता है। यहाँ कहते हैं कि उस क्षायिकसमकित के समीप में आत्मा है। वह तो निमित्त की व्याख्या करते हैं। उस समय निमित्त ऐसा होता है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु उस समय में क्षायिक होने में भी अपना आत्मा ही समीप है, तब क्षायिक होता है और तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भी भगवान के समीप में बँधता है। समझ में आया? है तो वह विकल्प। वह संयोग है और यह स्वभाव। आहाहा! जिनेन्द्र का मार्ग जिनेश्वर परमात्मा। तू जिनेश्वर ही है, भगवान! यह जिनेश्वर तू भी जिनेश्वर। आहाहा! अरे! एक बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, दो सिगरेट पीवे तो भाईसाहब को पायखाने में दस्त उतरे। अब ऐसे व्यसनी को ऐसा कहना कि तू ऐसा है। कहाँ बैठे? ...भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु आदत पड़ गयी हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे यह आत्मा ऐसा। आहाहा! आदतन हो गया है पर में, परन्तु स्व में आदतन नहीं। आहाहा! 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो'—ऐसा आता है न छहढाला में। 'छोड़ी जगत द्वंद्वफंद' द्वैतपना छोड़ दो, ऐसा कहते हैं वहाँ। 'निज आतम उर ध्याओ।' निज आतम उर ध्याओ। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ ग्रन्थकार मुनिराज हैं, भावलिंगी सन्त हैं... आहाहा! वे कहते हैं, स्वयं कहते हैं कि हमारे मुख में से परमागम झरता है। जो वाणी निकले वह परम आगम है। आहाहा! दो बार आया है इसमें। यह परम आगम झरता है, ऐसे मुनिराज ऐसा कहते हैं कि शास्त्रकर्ता भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का तो यह अभिप्राय है। समझ में आया? देखो, आचार्य कुन्दकुन्द को भगवान कहा। पहले अपने को भगवान कहा। **भगवान परमात्मा**

को... आहाहा! भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मीवान प्रभु है। पूर्ण ज्ञान और आनन्द की भग अर्थात् लक्ष्मी है। आहाहा! ऐसे भगवान परमात्मा परमस्वरूप भगवान। यह **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** ओहोहो! दो लाईन में तो पूरे चौदह पूर्व का सार कह दिया है। शुद्धनिश्चय त्रिकाली स्वभाव।

ग्यारहवीं गाथा में तो ऐसा कहा '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।**' यह भूतार्थ त्रिकाल शुद्ध है, उसे ही शुद्धनय कहते हैं, परन्तु यह शुद्धनय और उसका विषय, ऐसा भेद अध्यात्म में नहीं। परम अध्यात्म में। आहाहा! त्रिकाली शुद्ध ध्रुवस्वभाव को यहाँ (शुद्धनय कहा है)। यह निश्चयनय वही है, त्रिकाली वस्तु वही निश्चयनय है। आहाहा! त्रिकाली ध्रुवस्वरूप वही शुद्धनय है। स्वयं नय है। एक अंश है न। पर्याय का अंश इसके अतिरिक्त का। आहाहा! अरे! यात्रा तो यह है। बाकी सब सम्मेदशिखर और शत्रुंजय, वह तो शुभ विकल्प होता है।

मुमुक्षु : तो हमारे यात्रा करनी, महाराज?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो यह लगायी है, भगवान! आहाहा! यह करे कौन? कर्ता होकर करे कौन? आहाहा! अपना शुद्धस्वभाव ध्रुवस्वभाव का माहात्म्य आने से दृष्टि उस ओर झुक जाती है। दृष्टि को भगवान की भेंट होती है। समझ में आया? दृष्टि की पर्याय को परमात्मा की भेंट होती है। यह दृष्टि के समीप में परमात्मा बसता है। आहाहा! स्वयं परमात्मा, हों! आहाहा!

ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव का) अभिप्राय है। पहले भगवान परमात्मा यह कहा, पश्चात् कहा कि भगवान सूत्रकर्ता। शास्त्र के कर्ता भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है, भाई!

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ३५-३६ वें श्लोकों द्वारा) कहा है कि — पहले ३५ श्लोक है, दूसरा ३६ में है।

सकलमपि विहायाह्राय चिच्छक्तिरिक्तं,
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।

इम-मुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्,
कलयतु परमात्मात्मान-मात्मन्यनन्तम्॥

आहाहा! **श्लोकार्थ :— चित्शक्ति से रहित...** चित्शक्ति, ज्ञानशक्ति, त्रिकाल शक्ति, स्वभावशक्ति। आहाहा! त्रिकाल ध्रुवशक्ति, ज्ञानशक्ति कहो, आत्मशक्ति कहो त्रिकाल। आहाहा! **चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर...** पर्याय को भी सकल चित्शक्ति के कारण से, (उसका) आश्रय करने से वह छोड़ता है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द अतीन्द्रिय आनन्द, वह चित्शक्ति, वह ज्ञानशक्ति, वह आनन्दशक्ति, वह प्रभुत्वशक्ति, उस शक्ति से रहित **अन्य सकल भावों को...** आहाहा! क्षायिकभाव और केवलज्ञान की पर्याय भी चित्शक्ति से रहित है। आहाहा! समझ में आया? भगवान ध्रुवस्वरूप ज्ञानशक्ति कहो, ज्ञान सत्त्व कहो, ज्ञायकभाव कहो, जिसे यहाँ शुद्धभाव कहा है, उसे यहाँ चित्शक्ति कही। आहाहा!

वह चित्शक्ति भगवान आत्मा जिसका ज्ञान ही सामर्थ्य है, पूर्णानन्द के नाथ का ज्ञान ही सामर्थ्य है, ऐसा चित्शक्ति भगवान आत्मा, उससे **रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर...** आहाहा! भगवान कहते हैं कि हमारा भी लक्ष्य छोड़ दे। सर्व भेदभाव। क्षायिकभाव भी भेदभाव। समझ में आया? यह तो जन्म-मरण के अन्त की बातें हैं, भगवान! आहाहा! भव तो कलंक है। भव का भाव, वह भी आत्मा में कलंक है। यहाँ तो भव के भावरहित की क्षायिकदशा से भी भगवान रहित है। आहाहा! गजब बात! आहाहा! अरे! जगत के समक्ष जैन परमेश्वर का मार्ग परोसा नहीं गया। अजैन करके परोसा गया। पीरसाणुं समझ में आया? दिया, देने में आया। यह परोसना नहीं करते? थाली भर-भरकर। परोसना। उसी प्रकार जगत को अजैनपना, जैन के नाम से अजैनपना परोसा है। व्रत करने से ऐसा होता है, तप करने से ऐसा होता है। सब बात विरुद्ध है।

मुमुक्षु : ऐसा कहने से श्रावक के आचार (कोई नहीं पालेगा)।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक का आचार होगा ही। निर्बलता से होगा। श्रावक के आचार होते हैं षट्आवश्यक नहीं कहे? वह तो विकल्प है। उस भूमिका के प्रमाण में

कमजोरी से आते हैं। वास्तव में वे छह आवश्यक, आवश्यक नहीं; वे निश्चय में तो अनावश्यक हैं। समझ में आया? आयतन, देव-गुरु-शास्त्र को आयतन कहा न? निश्चय से तो वे अनायतन हैं। आयतन तो यह है। आयतन जिसमें देव विराजता है भगवान, ऐसा अपना स्थान जो है, वह आयतन है। आहाहा! समझ में आया?

चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को... देखो, अन्य सकल भावों। परद्रव्य तो ठीक, परद्रव्य से उत्पन्न हुआ भाव राग भी ठीक, परन्तु पर्याय जो है, वह भी परभाव है। अहाहा! अन्य भावों से रहित **मूल से छोड़कर और चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा...** देखो **चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा...** वह तो ज्ञानमात्र, स्वभावमात्र भगवान। पर्याय की दृष्टि छोड़कर **निज आत्मा का अति स्फुटरूप से...** अति स्फुट अर्थात् प्रत्यक्षरूप से, प्रगटरूप से **अवगाहन करके...** जैसे समुद्र में अवगाहन करते हैं, प्रवेश करते हैं तो मोती आदि मिलते हैं; उसी प्रकार भगवान आनन्दस्वरूप परमात्मा में अवगाहन करके... आहाहा! अन्दर में प्रवेश करके... आहाहा! ऐसा धर्म, भाई! वे कहे, दया पालो, व्रत पालो, यह करो।

स्थानकवासी में ऐसा है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप इन सबमें तप प्रधान है। यह अपवास करना वह। किसी ने महीने के अपवास किये होंगे, कोई साधु है स्थानकवासी। लंघन है। आहाहा! यहाँ ऐसा लिखा दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप में तप प्रधान। कौनसा तप प्रधान? यह। वर्षीतप करना और मासखमण करना और दो-दो महीने के अपवास करना। यह लांघन है। बालतप और बालव्रत है। सम्यग्दर्शन बिना की जो क्रिया है, वह सब बाल-मूर्खता से भरपूर क्रिया है। समझ में आया? वहाँ कोई होगा साधु। महीने के अपवास किये। चीमनचकु की अध्यक्षता में बड़ा महोत्सव मनाया जाता है। बड़ी सभा भरकर मनाया। ओहो! बहुत गजब किया तुमने। तुम अभिनन्दन के पात्र हो। यहाँ भगवान कहते हैं कि तू निन्दा का पात्र है। जहाँ आत्मा क्या है राग से रहित, पर्याय से रहित, उसकी दृष्टि की तो खबर नहीं। मूल भूमिका की तो खबर नहीं और वृक्ष उग गये? आहाहा! आकाश में वृक्ष उगते हैं? ऐसे मूल चीज़ जो ध्रुवस्वरूप भूमिका... आहाहा!

बन्ध अधिकार में कहा न यह, उपयोगभूमिका में राग की एकता करता है, वही

मिथ्यात्व और संसार है। समझ में आया? बन्ध अधिकार में है पहली गाथा। उपयोग, उपयोग में राग की एकता करता है। उपयोगभूमिका जो है जानन-देखन परिणाम, उसमें राग की एकता करता है, वह संसार है। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत का, तप का विकल्प हो, परन्तु वह विकल्प चैतन्य के परिणाम के साथ, उपयोग के साथ, उपयोग के साथ, उपयोगभूमिका के साथ एकता मानता है, वही मिथ्यात्व संसार है। आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत कड़क।

पूज्य गुरुदेवश्री : चीज़ तो ऐसी है।

अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर और... आत्मा कैसा? **चित्शक्तिमात्र...** आत्मा। चित्शक्तिमात्र आत्मा, ज्ञानस्वभावमात्र आत्मा, आनन्दस्वभावमात्र आत्मा, प्रभुत्वशक्तिमात्र आत्मा। आहाहा! **ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से...** अन्तर में जाकर प्रगटरूप से **अवगाहन करके,...** अनुभव करके। अन्तर में प्रत्यक्ष प्रमाण से अन्दर जाकर। आहाहा! मति-श्रुतज्ञान से अन्दर में जाकर। समझ में आया? **आत्मा समस्त विश्व के ऊपर...** सभी पर्याय और पूरी दुनिया से भिन्न '**चारू**' **प्रवर्तमान...** वहाँ 'चारू' शब्द चाहिए। वहाँ 'चारू' शब्द पड़ा रहा है। चारू शब्द आया है न? वह पड़ा रहा है। विश्व के ऊपर आनन्दमय प्रवर्तमान करता है चारू अर्थात्। आहाहा! सब विकल्प और पर्याय से भी भिन्न ऊपर तैरता है, वह अपना चारू, सुन्दर, मनोहर आनन्द। आहाहा!

मुमुक्षु : विश्व के ऊपर।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, रागादि सबसे भिन्न। पर्याय और राग, वह विश्व, उससे भिन्न। आहाहा! यह तो मुद्दे की रकम की बात है। मनुष्य ने दस लाख रुपये दिये हों आठ आना के ब्याज से २० वर्ष तक ब्याज लिया। ब्याज तो लिया, परन्तु मूल रकम तो लाओ अब। कहे, मूल रकम है नहीं। सरकार ने कानून निकाला। गायकवाड सरकार ने एक कानून निकाला कि २० वर्ष का जिसने ब्याज खाया हो जमीन का, वह छोड़ दो, उसे सौंप दो। तुम्हारे हक की नहीं अब। कानून निकाला था गायकवाड़ सरकार, सियाजीराव।

मुमुक्षु : ऐसा कानून सर्वत्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र है। तब निकाला था। तो फिर हमारे दामोदर सेठ को जरा खलबलाहट हो गयी। उसकी जमीन है न घर की। उसे बहुत धक्का लगता था। दरबार के पास गये कि इसमें तो २०-२० वर्ष तक ... परन्तु अब सब जमीन चली जाती है तो हमारे पास कुछ नहीं रहता। तो दरबार ने कहा कि कहीं तुम्हारे अकेले के लिये यह कानून नहीं निकाला। पूरे राज के लिये यह कानून निकाला है। दामोदर सेठ। दस लाख रुपये तब ६० वर्ष पहले। और जमीन घर की बड़ी ४० हजार की तो उपज। एक गाँव घर में। एक गाँव पूरा। मूळियापाट दस हजार की उपज का घर में गाँव। बड़ा जमींदार। घर में अरबी, घर में घोड़ासर, घर में तलवार और बन्दूकों की लाईन। एक-एक तलवार ऐसे नहीं। परन्तु वह ऐसा मानते थे। उस राज में कानून आया न? तो कहे, यह मुझे नुकसान जाता है। तुम्हारे अकेले के लिये यह कानून नहीं। पूरे राज के लिये यह कानून है। इसी प्रकार यह नियम अकेले के लिये नहीं। तीन काल के आत्मा के लिये नियम है कि स्वभाव के ऊपर पूरे संसार से भिन्न, विश्व से भिन्न, अनेकता की पर्याय और राग से भिन्न। विश्व अर्थात् अनेकता। पर्याय की अनेकता से भिन्न। आहाहा!

सुन्दर रीति से प्रवर्तता... मनोहर प्रवर्तन, आनन्द का प्रवर्तन। आहाहा! पर्याय से भी भिन्न तैरनेवाली दशा। आहाहा! ऐसा धर्म! एक भाई आज आये थे। रतलामवाले भाई है न। उन्हें इसका प्रेम है न जरा, तो आज आये थे अन्दर। वे कहते हैं यहाँ तो बारह महीने में एक मेला करना चाहिए। रतलामवाले भाई आये थे। आये थे अन्दर। ऐसा कि ऐसी बात के लिये मेला (अर्थात्) कि जितने लोग हों, वे सब इकट्ठे हों। दस हजार, बीस हजार, पाँच हजार।

मुमुक्षु : सबको लाभ मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ के लिये। कहा, मेला ही है यहाँ सदा ही। सब आते हैं यहाँ। और तिथि आदि ऐसा हो तो लोग आते हैं। परसों लोग आयेंगे। बहिन की तिथि है न, तब बहुत आयेंगे। राजकोट से बस आयेगी। बाहर से आयेंगे। लोगों से भर जायेगा। मेला ही है यहाँ तो आत्मा को समझने की चीज़ के लिये सदा। जब आओ तब

यह है। आहाहा! गायन में नहीं? उस बाई ने गाया था नागपुरवाली। 'जब जाग जाओ तब सबेरा...' 'जब जाग जाओ तब सबेरा है।' यह बहिन ने गाया था नागपुरवाली। 'जब जाग जाओ तब सबेरा है।' आहाहा!

कहते हैं कि समस्त पर्याय आदि भेद से भिन्न होकर द्रव्यस्वभाव ऊपर तैरता है। आहाहा! आनन्दरूपी प्रवर्तमान ऐसे केवल एक अविनाशी **आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभव करो।** आहाहा! प्रत्यक्ष। मति-श्रुत प्रत्यक्ष होता है। यह साक्षात् होता है। क्योंकि उसमें एक प्रकाश नाम का गुण है। ४७ शक्तियाँ हैं न? ४७ गुण, समयसार। उसमें एक प्रकाश नाम की बारहवीं शक्ति है। बारहवीं है। उसका स्वभाव यह है कि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है। मति-श्रुत में स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! समझ में आया? प्रकाश नाम का गुण है ऐसा। है न? जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वदर्शी, स्वच्छत्व, प्रकाशत्व। प्रकाश नाम की शक्ति। प्रकाश (शक्ति) तो चल गयी है। प्रकाश नाम का गुण है अन्दर कि जिस गुण का कार्य प्रत्यक्ष स्वसंवेदन होना, यह है। आहाहा! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष हो जाता है। पर के आश्रय से नहीं, स्व के आश्रय से प्रत्यक्ष हो जाता है। समझ में आया?

यह १४४ (गाथा) में लिया है न। कर्ता-कर्म (अधिकार) में लिया है, १४४ (गाथा, समयसार)। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के तत्त्व को अन्तर में झुकाता है। अन्तर में झुकाने से प्रत्यक्ष हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? ... यह आता है। गाथा आती है। अनुभव, वह प्रत्यक्ष है। श्रुतज्ञान से अनुभव करता है, इस अपेक्षा से परोक्ष भले कहा, परन्तु वेदन की अपेक्षा से प्रत्यक्ष है। आनन्द अपना आत्मा वेदता है, कोई पर से वेदा जाता है और पर वेदता है, ऐसा नहीं। आहाहा! 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावे विश्राम, रसस्वादत सुख उपजे, रसस्वादत सुख उपजे अनुभव याको नाम।' अनुभव में अनन्त गुण का रस पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? भाई! बात बहुत सूक्ष्म। आहाहा! **अविनाशी आत्मा को...** केवल अविनाशी अकेली वस्तु एकरूप त्रिकाल **आत्मा को आत्मा में...** अन्तर में **साक्षात् अनुभव करो।** प्रत्यक्ष अनुभव करो। आहाहा! राग की और पर्याय की आड़ भी वहाँ नहीं। सीधे भगवान ध्रुव का अनुभव करो। यह

अनुभव, वह पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! यह श्लोक तो समयसार का है। दूसरा श्लोक।

चिच्छक्ति-व्याप्त-सर्वस्व-सारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी॥

आहाहा! यह भी इसकी गाथा है। कलश है ३६वाँ। **चैतन्यशक्ति से व्याप्त...** ज्ञायकभाव से पसरा हुआ भगवान आत्मा, बस। ध्रुव। **जिसका सर्वस्व-सार है...** सर्वस्व सार है। अकेला ज्ञानभाव, आनन्दभाव, शान्तभाव, वीतरागभाव, स्वच्छभाव, प्रभुत्वभाव वह सर्वस्व सार है अन्दर। आहाहा! ध्रुव की बात है, हों! **चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है—ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है;...** यह जीव इतना ही मात्र है। **इस चित्शक्ति से शून्य जो ये भाव हैं, वे सब पौद्गलिक हैं।** आहाहा! ज्ञानरस चैतन्यशक्ति, चैतन्यशक्ति स्वभाव ध्रुव त्रिकाल इतना आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो पर्याय भी निकाल दी। चैतन्यशक्तिमात्र, वही आत्मा है। आहाहा! दृष्टि पर्याय है, परन्तु दृष्टि का विषय चैतन्यशक्तिमात्र ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया?

यह कहीं सम्प्रदाय की बात नहीं। यह तो वस्तु के स्वभाव की बात है। और जैनदर्शन ऐसा कहता है तथा अन्य दर्शन ऐसा कहते हैं, ऐसी बात यहाँ नहीं। वस्तु ऐसी है। जैनदर्शन कहता है, ऐसी ही चीज़ है। चीज़ है, वह जैनदर्शन है। समझ में आया? आहाहा! यह कहा न '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं**' अबद्धस्पृष्ट चैतन्य शक्तिमात्र। वह अबद्धस्पृष्ट है। पर से बन्ध का सम्बन्ध है नहीं। ऐसा द्रव्यस्वभाव '**पस्सदि**' प्रत्यक्ष जो देखता है मति-श्रुतज्ञान, वह जैनशासन है। मति-श्रुतज्ञान में त्रिकाल भगवान आत्मा को ज्ञेय बनाकर जो अनुभव करता है, वह पर्याय वीतरागी, वह जैनशासन है, वह जैनधर्म है। वह जैनधर्म कोई पक्ष का नहीं। यह दरबार को ऐसा कहते हैं कि और तुम जमींदार होकर इन बनियों का धर्म कहाँ (अपनाया)? तीर्थंकर जमींदार थे। क्षत्रिय तीर्थंकर होते हैं, बनिया तीर्थंकर नहीं होते। बनिये मोक्ष जाये, तीर्थंकर नहीं होते। तीर्थंकर तो क्षत्रिय ही होते हैं। जिनका वीर्य और जिनके पुरुषार्थ की जागृति अनन्त है। समझ में आया? जिन्हें खत्री खेद करना, जिसे अन्तर की आती है। आहाहा!

ऐसा यह जीव... चित्शक्ति से व्याप्त... देखो, राग से व्याप्त या पर्याय से व्याप्त, ऐसा नहीं कहा। त्रिकाल ज्ञानशक्ति से व्याप्त। आहाहा! अपने स्वभाव में पसरा हुआ आत्मा। आहाहा! **जिसका सर्वस्व-सार है...** पूरी चीज़ ही यह सर्वस्व साररूप है। आहाहा! **ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है;...** यह चित्शक्ति से शून्य, जिसमें ध्रुवशक्ति चिदानन्द का अभाव है, वह सब पौद्गलिक है। आहाहा! समझ में आया? आवरण कहा था न? क्षायिकभाव को भी आवरण कहा। पुद्गल के निमित्त का अभाव होता है न, इतनी अपेक्षा है न उसमें? उसे ५८ गाथा में तो यह कहा था, नहीं? पंचास्तिकाय। कर्मकृत। चार भाव कर्मकृत है। कर्म की अपेक्षा लागू पड़ती है न अभाव की, इतनी अपेक्षा। है तो अपनी पर्याय अपने से होती है, कर्म से नहीं; परन्तु निमित्त की अपेक्षा चार भाव में लागू होती है। परमस्वभाव चित्शक्तिमात्र में कोई अपेक्षा है नहीं। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द में व्याप्त भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द के पूर्ण स्वभाव में व्याप्त आत्मा, वह आत्मा। उससे शून्य है, उससे रहित है, वह सब पुद्गल। आहाहा! समझ में आया?

वे और ऐसा कहे कि तुम समयसार अकेला वाँचते हैं, समयसार-समयसार। यह एकान्त है। सब वाँचो। परन्तु कौन इनकार करता है? सब वाँचते हैं हम। सबमें सार तो वीतरागता है। और वीतरागता कब प्रगट होती है? त्रिकाल द्रव्य का आश्रय ले तो वीतरागता प्रगट होती है। शास्त्र का तात्पर्य तो यह है। चाहे तो चरणानुयोग हो, करणानुयोग हो। आहाहा! चारों ही अनुयोग का तात्पर्य तो वीतरागता है। वीतरागता कब होगी? द्रव्यस्वभाव का आश्रय ले तो वीतरागता होगी। पर्याय का आश्रय लेगा तो वीतरागता नहीं होगी, राग होगा। आहाहा! समझ में आया? तो शास्त्र को यही कहना है चारों अनुयोग में। भले चरणानुयोग में क्रिया की बात करे राग की, परन्तु उसका तात्पर्य वीतरागता कहना है। समझ में आया? वह हेय है, छोड़नेयोग्य है। आहाहा! कोई भी सूत्र हो, उसका तात्पर्य तो वीतरागता है। वीतरागता तात्पर्य न आवे और जैनदर्शन कहने में आवे, वह जैनदर्शन है ही नहीं। आहाहा! लोग ऐसा कहे, यह पंचम काल है, मति थोड़ी है। उसे ऐसी वस्तु बतलाना? भाई! मति थोड़ी, तू तो पूर्णानन्द का

नाथ है। मति क्या, केवलज्ञान की पर्याय भी तेरे समक्ष तो अल्प है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा... आहाहा!

ऐसा जीव **चित्शक्ति से शून्य जो ये भाव हैं, वे सब पौद्गलिक हैं।** अपना स्वभाव अकेला पूर्णानन्द का नाथ, वही आत्मा है, बस। आहाहा! पर्याय को भी यहाँ छोड़ दिया।

★ ★ ★

कलश - ६०

और (४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं —)

(मालिनी)

अनवरतमखण्डज्ञानसद्भावनात्मा,
व्रजति न च विकल्पं सन्सृतेर्घोररूपम्।
अतुलमनघमात्मा निर्विकल्पः समाधिः,
पर-परिणति-दूरं याति चिन्मात्र-मेषः ॥६०॥

(वीरछन्द)

जिसे निरन्तर ज्ञान अखण्ड भावना की धारा बहती।
उसे न किञ्चित घोर विकल्पों की धारा भी छू पाती॥
अहो ! समाधि निर्विकल्प वह भव्य पुरुष है पा लेता।
पर परिणति से दूर अनघ अनुपम चिन्मात्र प्राप्त करता॥६०॥

***श्लोकार्थ :*— सतत्रूप से अखण्डज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा (अर्थात् - 'मैं अखण्डज्ञान हूँ'—ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है, वह आत्मा) संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता, किन्तु निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ, पर-परिणति से दूर; अनुपम, अनघ[१] चिन्मात्र को (चैतन्यमात्र आत्मा को) प्राप्त होता है।॥६०॥**

१. अनघ=दोषरहित; निष्पाप; मलरहित।

कलश - ६० पर प्रवचन

और (४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं —) यह स्वयं मुनिराज श्लोक करते हैं।

अनवरतमखण्डज्ञानसद्भावनात्मा,
व्रजति न च विकल्पं सन्सृतेर्घोररूपम्।
अतुलमनघमात्मा निर्विकल्पः समाधिः,
पर-परिणति-दूरं याति चिन्मात्र-मेषः ॥६०॥

श्लोकार्थ : — सतत्रूप से अखण्डज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा... आहाहा! मुनिराज श्लोक करते हैं। **सतत्रूप...** निरन्तर **अखण्डज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा...** अर्थात् सद्भाव। जिसका ज्ञान और आनन्द ही सद्भाव है, ऐसा आत्मा। निरन्तर ज्ञान और आनन्द की सद्भावनावाला यह आत्मा। आहाहा! **सतत्रूप से अखण्डज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा...** अखण्ड ज्ञायकभाववाला आत्मा। पर्याय भी नहीं और राग भी नहीं। आहाहा!

भाई! अनादि अभ्यास नहीं, इसलिए यह बात सुनने में कठिन लगती है, परन्तु कठिन वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। जिसे जन्म-मरण मिटाना है चौरासी भवसिन्धु। आहाहा! एक बार राजा हो, दूसरी बार नरक में जाये। यह भव, निगोद का भव एक श्वास में अठारह, अठारह बार भव करे। आहाहा! भव के ऊपर भव... भव के ऊपर भव... आहाहा! परन्तु भूल गया। मानो मनुष्य हो, कुछ शरीर ठीक मिले और पाँच-पच्चीस लाख पैसे (रुपये) इकट्ठे हों और लाख, दो लाख की आमदनी हो। इसलिए हो गया मानो। आहाहा! भाई! तू यह नहीं। तेरी पर्याय में प्रगट अवस्था, वह भी तू नहीं। तो यह तो कहाँ से आयी तेरी चीज़? आहाहा! भ्रम घुस गया है इसे। पोपटभाई! पैसे का प्रवाह हो हमेशा, लो। पाँच-पाँच हजार की आमदनी, दस-दस हजार की आमदनी, एक दिन की दस-दस हजार की। ऐई! मलूकचन्दभाई! है न इनका पुत्र, पूनम-पूनम। दस-दस हजार की आमदनी एक दिन की, हों! एक दिन की दस हजार। यह मलूकचन्दभाई का पुत्र। पुत्र कहलाये, वहाँ था पुत्र किसका? आहाहा! पाँच करोड़

रुपये। दस हजार की आमदनी। यह तो एक बार कहते थे कि यह धन्धा छोड़ दूँ तो भी पाँचेक हजार इतने तो हमेशा आवे।

मुमुक्षु : बहुत सूखी होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल है, दु:खी है। महादु:खी है। डॉक्टर ने कहा, क्या कहलाता है? किडनी बतायी। तो ३० प्रति किडनी काम करती है, ७० प्रतिशत बन्द है। हाय...हाय... भाई को ऐसा है न जयन्तीभाई को। इनका छोटा भाई जयन्ती है न। उसने अभी कराया न, ऑपरेशन कराया। उसे बेचारे को किडनी का बड़ा दर्द। एक व्यक्ति ने फिर दी एक भाग एक किडनी। उनका नौकर है वह। उसने दी तो अब और अभी ठीक है। वह छोटा, यह बड़ा। आहाहा! अरे! किडनी ३० प्रतिशत काम करे। चिल्लाहट मचा जाये अन्दर। हाय... हाय... अब यह किडनी कब बैठ जाये? पेशाब का जहर हो जाये। होगा कुछ किडनी का। अपने को कहाँ खबर है। आहाहा! भाई को ऐसा था जयन्तीभाई को। उनके छोटे पुत्र को, उसे तो यह था। आठ दिन में दो बार या तीन बार पूरा खून निकाल डालना पड़े। सब खून निकाल डालना पड़े और नया वापस डाले। बहुत दु:खी हो, सब बेचारा घबरा जाये। फिर अभी आपरेशन कराया है। लाखों रुपये खर्च किये। लाखों रुपये भाई ने दिये हैं पूनमभाई ने। अरे! कहीं धूल में भी सुख नहीं। आहाहा! शरीर में जहर हो जाये। पेशाब का जहर, विष्टा का जहर। आहाहा! यहाँ तो राग का जहर। शुभराग वह जहर। अमृत का सागर भगवान आत्मा, उसका अनुभव कर, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

'मैं तो अखण्डज्ञान हूँ'... है? **सतत्‌रूप से अखण्डज्ञान की सद्‌भावनावाला आत्मा...** मैं तो अखण्ड ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रभु हूँ। आहाहा! **ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है,...** निरन्तर वर्तती है। लो! **संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता,...** वह संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता। आहाहा! विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १, शुक्रवार, दिनांक २२-०८-१९७५
गाथा - ४३, कलश - ६०-६१, प्रवचन - १२

४२ गाथा का श्लोक थोड़ा बाकी है। फिर से। **और (४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं —)** पृष्ठ - ८९, हिन्दी-हिन्दी। गुजराती में यह ही है? टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव फरमाते हैं.... अकेली मक्खन की चीज़ है। **सततरूप से...** निरन्तरपने **अखण्डज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा...** निरन्तर अखण्ड ज्ञान की सद्भावना—अस्तिवाला आत्मा। आहाहा! कैसे इसे हाथ नहीं आया? ४२वाँ श्लोक कहा, हाथ नहीं आता? ४२ गाथा हाथ नहीं आयी? अभ्यास नहीं न। पहले कहा न, ४२ गाथा, उसके दो श्लोक। **सतत्रूप से अखण्डज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा...** आत्मा कैसा है? कि निरन्तर अखण्ड ज्ञान की अस्ति—मौजूदगीवाला आत्मा। आहाहा! राग नहीं, पर नहीं, पर्याय भी नहीं यहाँ तो। आहाहा! अखण्ड ज्ञान की सद्भावनावाला—अस्तिवाला—मौजूदगी (वाला), ऐसा आत्मा।

'मैं अखण्डज्ञान हूँ'—ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है,... स्पष्टीकरण किया। 'मैं अखण्ड ज्ञान हूँ' ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती। **वह आत्मा...** भावना। **संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता,...** आहाहा! अखण्ड ज्ञायकभाव से अस्ति मेरी है, ऐसे अखण्ड ज्ञान की भावना, जिसकी पर्याय में... यह रात्रि में प्रश्न उठाते थे न, ध्रुव में पर्याय कैसे झुकाना? यह तो चलता है पूरे दिन। पहले प्रश्न चलता था दूसरा। उसमें भी रात्रि में ऐसा ही था। वस्तु जो स्वभाव अखण्ड ज्ञान त्रिकाल, उसके ओर की सद्भावना, एकाग्रता। पर्याय से भी हटकर अखण्ड ज्ञायकभाव में एकाग्रता, वह ध्रुव में पर्याय को झुकाया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! लिखा है न वहाँ? ... कहा।

'मैं अखण्डज्ञान हूँ'—ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है,... ऐसा। अखण्ड ज्ञान की सद्भावनावाला। सद्भावनावाला। एक तो यह सद्भाव त्रिकाल है, अब उसकी सद्भावना (अर्थात्) वर्तमान में उसकी भावना। आहाहा! एक न्याय से तो मैं

सतत्रूप अखण्ड ज्ञान के सद्भाव, ज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा हूँ। ऐसी सद्भावनास्वरूप त्रिकाल है, परन्तु उसकी सद्भावना वर्तमान में। आहाहा! निमित्त से लक्ष्य छोड़कर, राग, व्यवहार से लक्ष्य छोड़कर और एक समय की पर्याय जो वर्तमान प्रगट है, उससे भी लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली ज्ञायकभाव की अस्तिवाला जो भगवान, उसकी सद्भावना। उसकी सत्भावना वर्तमान। आहाहा!

ऐसा आत्मा वह **संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता,...** यह तो भावना वर्तमान ऐसी हुई कि त्रिकाली अखण्ड ज्ञायकभाव की भावना करनेवाले को संसार का घोर कारण विकल्प (उसे प्राप्त नहीं होता)। देखो भाषा। शुभराग है, वह भी संसार का घोर कारण है। बात बहुत (सूक्ष्म)। अन्तर में भगवान पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! कहते हैं कि 'पूर्णानन्दस्वरूप अखण्ड ज्ञान मैं हूँ' ऐसी वर्तमान में सत्भावना—अन्तर में एकाग्रता (होने से) ऐसे आत्मा को संसार का घोर कारण जो विकल्प... आहाहा! चाहे तो गुण-गुणी के भेद का विकल्प उठता है, वह विकल्प संसार का कारण है। घोर संसार का कारण। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता,...** अन्तर भगवान पूर्णानन्द के नाथ में एकाग्रता की भावनावाला विकल्प को प्राप्त (नहीं होता)। घोर संसार का कारण वह विकल्प है। आहाहा! उसे प्राप्त नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? करनेयोग्य यह है।

नित्यानन्द प्रभु अखण्ड आनन्दस्वरूप, यहाँ अखण्ड ज्ञानस्वरूप लिया, ऐसा ज्ञानस्वभाव और आनन्दस्वभाव, उस ओर का ध्येय करके जो भावना उत्पन्न हुई, निर्विकल्पदशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति की जो उत्पन्न हुई, उसमें संसार के घोर विकल्प की नास्ति है। आहाहा! है? **घोर विकल्प को नहीं पाता,...** धन्नालालजी! ऐसा मार्ग, बापू! आहाहा! भगवान आत्मा निर्विकल्प अभेद अखण्डस्वरूप को ध्येय बनाकर जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह सद्भाव की भावना है, सत्भाव की पर्याय है। आहाहा! अन्तर में जीव ऐसा अपने स्वभाव की भावना में आता है, (उसे) विकल्प उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! और विकल्प, वह घोर संसार का कारण है। चाहे शुभ विकल्प हो, आहाहा! गुण-गुणी के भेद का विकल्प भी घोर संसार का कारण है। आहाहा! वाणी

तो देखो! समझ में आया? विकल्प उठता है, वह संसार है। आहाहा! भगवान आत्मा संसार की विकल्पदशा से भिन्न है। ऐसा चैतन्यमूर्ति भगवान, उसकी एकाग्रता से जो सद्भाव की भावना उत्पन्न हुई, उसमें विकल्प को अवकाश नहीं। उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

किन्तु निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ,... भाषा देखो! संसार का घोर कारण, ऐसा विकल्प उत्पन्न नहीं होता। तब होता क्या है? **निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ,...** रागरहित शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आनन्दरस, समाधिरस, शान्तिरस की प्राप्ति करता हुआ। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह शान्तरस की प्राप्ति है, वह समाधि है। समझ में आया? आधि-व्याधि-उपाधि से रहित, वह समाधि। आधि अर्थात् संकल्प-विकल्प मन का; व्याधि अर्थात् शरीर की रोगादि अवस्था; उपाधि अर्थात् समीप में जो उपाधि संयोग की। वह उपाधि, व्याधि और संकल्प की आधि, इन तीन से रहित, वह समाधि। आहाहा! समझ में आया? तीन से रहित, वह मोक्ष का मार्ग।

मुमुक्षु : वह समाधि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समाधि। वे बाबा करे और ऐसा करे।

मुमुक्षु : शरीर के रोग का नाम व्याधि या शरीर में एकत्व का.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, शरीर की व्याधि। रोग वह व्याधि। उसे अपना मानना, वह दूसरी वस्तु है। यह तो मात्र संकल्प आधि, शरीर की व्याधि, संयोग की उपाधि।

मुमुक्षु : शरीर की व्याधि....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो कहा न, तीन से रहित, वह समाधि। उपाधि से रहित, व्याधि से रहित, संकल्प की आधि से रहित। समझ में आया? यह समाधितन्त्र में आता है, द्रव्यसंग्रह में आया है। यह तीन व्याख्या है ऐसी। आधि, व्याधि, उपाधि से रहित समाधि। जिसमें शरीर की व्याधि नहीं, उपाधि जो संयोग की है, उसमें नहीं और संकल्प-विकल्प की आधि भी जिसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? शान्त अकषायस्वभाव वीतरागस्वरूप आत्मा की एकाग्रता होती है, वह शान्ति और समाधि

है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समाधिस्वरूप हैं, तीनों आनन्दस्वरूप हैं, तीनों शान्तस्वरूप हैं। आहाहा! समझ में आया? यह उपाधि पैसे की है। पोपटभाई! लोग तुमको बड़े पैसेवाले कहते हैं।

मुमुक्षु : बड़े भाई को सौंपकर आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सौंपकर, परन्तु हाथ में रखकर सब। पत्र-बत्र सब ज्ञात रखे, ध्यान रखे। आहाहा! उप-आधि अर्थात् नजदीक में, समीप में जो संयोग, वह उपाधि। और शरीर की व्याधि, वह शरीर में दशा। संकल्प, वह मन की ओर के झुकाववाली दशा। इन तीनों से रहित भगवान आत्मा स्वरूप तो तीन से रहित ही है, परन्तु उसकी भावना करे, उसकी भावना में तीनों से रहित है। समझ में आया? आहाहा! बहुत मार्ग! ऐसा मार्ग सूक्ष्म है। यह अभी ऐसी बात में गड़बड़ बहुत हो गयी। बाहर से ऐसे करो, व्रत करो, तप करो, ऐसा करो और वैसा करो। यह उसे राग असमाधि दुःख है। आहाहा! परन्तु लोगों को यह व्रत लिये, तपस्या की, नग्नपना लिया, नंगे पैर चलते हैं, (इसकी महिमा)। आहाहा!

मुमुक्षु : साधन तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी साधन नहीं। साधन तो निर्विकल्प समाधि, वह साधन है। साध्य जो परमात्मदशा, आहाहा! साध्य जो सिद्धदशा, उसका साधन तो यह निर्विकल्प समाधि है। यह समयसार में पीछे लिया है न? कि उपाय और उपेय, दोनों आत्मा हैं, राग नहीं। उपाय और उपेय। उपेय साध्य सिद्धदशा। वह ज्ञान की, आत्मा की पूर्ण दशा, वह उपेय और उसी आत्मा की अपूर्ण दशा, वह साधन, वह उपाय। समझ में आया? भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उसी ज्ञानस्वरूप में अधूरी दशा स्वभाव-सन्मुख की, वह उपाय। पूर्ण दशा, वह उपेय। उपेय अर्थात् उसका फल। बहुत अधिकार लिया है अन्त में। कोई उपाय राग है और निमित्त राग है और साधन है, ऐसा नहीं।

चिदानन्द भगवान आत्मा अपने सन्मुख होकर, अभिमुख होकर, आश्रय लेकर जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह आत्मा की ज्ञान की ही पर्याय है, वह शुद्ध की ही पर्याय है। उसे साधन कहते हैं, उसे उपाय कहते हैं, वह साधन, व्यवहार साधन नहीं।

आहाहा! आता है समयसार में, उपाय-उपेय। एक ही आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अपनी अपूर्ण दशारूप से शान्तरूप से परिणमना, वह उपाय, निर्विकल्प शान्तिरूप से होना, वह उपाय और पूर्ण दशा प्राप्त करना, वही आत्मा की पूर्ण दशा, वह साध्य, वह उपेय। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार साधन-फाधन रहा नहीं वहाँ।

मुमुक्षु : दूसरे शास्त्र में कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे शास्त्र में कहा, वह तो ज्ञान कराया है। पंचास्तिकाय में कहा है। वह तो साधन तो एक ही है अपने स्वरूप की एकाग्रता, परन्तु राग आया, उस सम्बन्धी तो आरोप करके उसे साधन कहा। साधन है नहीं, उसे साधन कहना, वह व्यवहारनय है। आहाहा! साधन है नहीं, उसे साधन करना, वह अभूतार्थ, व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! अपना शुद्धभाव, वही शुद्धरूप से परिणमन करना अल्प दशारूप से, वही उपाय है और उसकी पूर्ण दशारूप होना, वह उपेय है।

कहते हैं कि **समाधि को प्राप्त करता हुआ, पर-परिणति से दूर;...** लो! विकल्प की परिणति, अवस्था से दूर है। आहाहा! कलश बहुत (ऊँचा)। परपरिणति से दूर, व्यवहार के विकल्प की परिणति से निश्चयपरिणति दूर है। आहाहा! **पर-परिणति से दूर; अनुपम,...** आहाहा! जिसकी उपमा नहीं ऐसे **अनघ (निर्दोष) चिन्मात्र को (चैतन्यमात्र आत्मा को) प्राप्त होता है।** देखो, पूर्ण को प्राप्त करता है। ऐसा **समाधि को प्राप्त करता हुआ, पर-परिणति से दूर; अनुपम, अनघ (निर्दोष) चिन्मात्र...** अकेले ज्ञानमात्र, ज्ञानस्वभावमात्र को **प्राप्त करता है।** यह मोक्ष। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार का झगड़ा बहुत बड़ा अभी। उसमें आया है कि व्यवहार वह साधन है। व्यवहार से आचरण करना, वही तुझे पहला कल्याण का कारण है।

मुमुक्षु : व्यवहार साधन कहा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो व्यवहार कहा निमित्त का ज्ञान कराने के लिये। साधन-फाधन कैसा? जैसे मोक्षमार्ग, वह कारण है। मोक्षमार्ग दो नहीं, इसका अर्थ क्या हुआ? दो कारण नहीं। कथनपद्धति का दो निमित्त है, उसका आरोप करके कहा, परन्तु मोक्षमार्ग दो नहीं। आहाहा! एक ही मार्ग है। स्वभाव की अन्तर दृष्टि, ज्ञान और रमणता

यह एक ही प्रकार है। तो साधन कहो या उपाय कहो या कारण कहो। तो वहाँ कारण एक ही कहा, दूसरा कारण लिया नहीं। समझ में आया? मोक्ष का उपाय कहो या कारण कहो। तो कारण तो एक ही लिया। तो वह कारण दो हैं, ऐसा है नहीं। आहाहा! दो कारण का कथन आया है। निमित्त सहकारी व्यवहार से जानकर, उपचार से जानकर व्यवहार कहने में आया है। समझ में आया? यह है उसमें—मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवें अध्याय में। और निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र लक्षण यह है, ऐसा लिखा है। पण्डितजी! उसमें यह शब्द पड़ा है। निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र यही लक्षण है। है न?

'अब मोक्षमार्ग तो कहीं दो नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग कहना, वह निश्चयमोक्षमार्ग है। जहाँ जो मोक्षमार्ग तो नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है।' सहचारी साथ में राग की मन्दता देखकर 'उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहे, वह व्यवहार है। क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा लक्षण है।' यह शब्द है। टोडरमलजी ने तो बहुत स्पष्ट कर दिया है मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में। आहाहा! मक्खन कह दिया। देखो, 'कारण कि निश्चय और व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।' पण्डितजी! यह तकरार बड़ी। निमित्त से होता है, व्यवहार से होता है, सब एक ही बात है। यह तकरार सोनगढ़ के सामने पाँच (बातों की)। वास्तव में तो निमित्त से होता है और व्यवहार से होता है, यह एक ही बोल है। परन्तु अन्दर के विकल्प से होता है, वह व्यवहार और बाहर के निमित्त से होता है, यह उपादान-निमित्त और क्रमबद्ध होता है, इन पाँच का विवाद। पण्डितजी! पाँच। आहाहा! पाँच का एक ही ... सब उड़ जाता है।

जब अपने स्वकाल में अपने को मोक्षमार्ग अपने से हुआ, तब राग हो, उसे निमित्त से व्यवहार कहा गया है, परन्तु व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा है नहीं। ऐसे उपादान की पर्याय में अपने काल में है, पर के कारण से नहीं। निमित्त से (होता है यह) उड़ गया। और जिस समय जिस द्रव्य की पर्याय उत्पन्न होने का काल है, वह जन्मक्षण में वह उसका उत्पन्न काल होता है। यह क्रमबद्ध हो गया। कुछ समझ में आया? अरे! ऐसी सीधी-सरल बात है, परन्तु ऐसी गड़बड़ कर दी।

अन्य कारण, वह कारण है ही नहीं। कारण तो यह है। कहा न, 'सर्वत्र निश्चय-

व्यवहार का लक्षण यह है।' कोई भी निश्चय-व्यवहार का कथन चला हो, वहाँ वास्तविक अपने स्वरूप की स्थिति, स्थिरता, श्रद्धा आदि, वह कारण और निमित्त देखकर राग की मन्दता उस काल में, उस प्रकार की देखकर, निमित्त देखकर, सहचर देखकर, साथ में देखकर उपचार से व्यवहार कहने में आया है। आहाहा! बराबर है। आहाहा! प्रभु! तेरी स्वतन्त्रता तुझे बैठती नहीं? और राग से होता है, यह परतन्त्रता तुझे बैठती है? आहाहा! और निमित्त से होता है, यह तो परतन्त्रता हुई। अपने से होता है, यह स्वतन्त्रता तुझे बैठती नहीं? क्या? कर्ता स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। कर्ता की व्याख्या क्या? स्वतन्त्ररूप से करे, वह कर्ता। पर की अपेक्षा नहीं। स्वतन्त्ररूप से करे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका नाम कर्ता है। जिसमें व्यवहार और निमित्त की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यह कहते हैं।

पर-परिणति से दूर; अनुपम, अनघ... जिसे उपमा नहीं, ऐसी परिणति को **अनघ (निर्दोष) चिन्मात्र को प्राप्त होता है।** पूर्णानन्द की दशा पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होती है। आहाहा! वह निजसमाधि द्वारा चिन्मात्र की पूर्णदशा प्राप्त करता है। समझ में आया? अब ६१। यह ६०वाँ श्लोक था न?

★ ★ ★

कलश - ६१

इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं,
भक्तिप्रह्वामरेन्द्रप्रकटमुकुटसद्रत्नमालार्चिताङ्घ्रेः।
वीरात्तीर्थाधिनाथाद्दुरितमलकुलध्वान्तविध्वन्सदक्षं,
एते सन्तो भवाब्धेरपरतटममी यान्ति सच्छीलपोताः ॥६१॥

(वीरछन्द)

भक्त अमर नत मुकुट रत्न से पूज्य चरण वे वीर जिनेश।
जन्म मृत्यु अरु जरा विनाशक देते अघ नाशक उपदेश॥

महावीर तीर्थाधिनाथ वच सन्त जिसे उर में धरते।
सत्यशील नौका द्वारा वे पार भवोदधि को पाते॥६१॥

***श्लोकार्थः*—भक्ति से नमित देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला द्वारा जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं—ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा ये सन्त, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक तथा दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश समझकर, सत्शीलरूपी नौका द्वारा, भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।॥६१॥**

कलश - ६१ पर प्रवचन

इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं,
भक्तिप्रह्वामरेन्द्रप्रकटमुकुटसद्रत्नमालार्चिताङ्घ्रेः।
वीरात्तीर्थाधिनाथाद्दुरितमलकुलध्वान्तविध्वन्सदक्षं,
एते सन्तो भवाब्धेरपरतटममी यान्ति सच्छीलपोताः॥६१॥

आहाहा! अब जरा सा भगवान की व्याख्या करते हैं। **भक्ति से नमित देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला द्वारा जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं—ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा...** आहाहा! कैसे हैं भगवान महावीर? लो, यह भगवान महावीर को यह २५००वाँ वर्ष चलता है। भगवान महावीर की प्रतिष्ठा हुई। आहाहा! **भक्ति से नमित देवेन्द्र,...** अर्धलोक के स्वामी, बत्तीस लाख विमान शकेन्द्र उनका स्वामी, ईशान इन्द्र २८ लाख विमान का स्वामी। दो... सौधर्म दक्षिण के स्वामी अर्धलोक के। ईशान इन्द्र उत्तर पूरे लोक के स्वामी। ऐसे इन्द्र आकर भगवान के पास (नमते हैं)। आहाहा! **भक्ति से नमित...** ऐसी भाषा है। दूसरे तो नमन-नमन में अन्तर है। बिल्ली भी चूहे को पकड़ने में नमन हो जाती है। समझ में आया? यहाँ तो नमन-नमन में अन्तर है। यहाँ तो भक्ति से नमित। आहाहा! बहुत प्रेम से, भक्ति से, जहाँ इन्द्र के मुकुट नम गये हैं, ऐसे।

देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला द्वारा... मुकुट की सुन्दर रत्नमाला द्वारा। रत्न की माला। **जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं...** वह तो समवसरण में महावीर थे,

उनकी स्थिति ली है। अभी तो मोक्ष गये तो उन्हें ऐसे स्मरण किया। भगवान महावीर परमात्मा जब वर्तमान में समवसरण में विराजते थे, ऐसे लेकर स्तुति की है। आहाहा! महावीर तो मोक्ष पधारे हैं, परन्तु वर्तमानरूप से यहाँ लिया। यह भगवान विराजते हैं। **भक्ति से नमित...** इन्द्रों द्वारा **मुकुट की सुन्दर रत्नमाला...** भाषा देखो, **मुकुट की सुन्दर रत्नमाला द्वारा जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं...** आहाहा! सिद्ध भगवान तो दूर हो गये। यह तो अरिहन्त पद में विराजमान की बात करते हैं। आहाहा! भगवान मोक्ष पधारे, तथापि मुनिराज तो ऐसा कहते हैं कि मानो यह समवसरण में भगवान विराजते हैं। समझ में आया? ऐसे नमन करके **जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं...** आहाहा!

ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ... तीर्थ के अधिपति द्वारा। वर्तमान शासन तीर्थाधिनाथ भगवान का शासन चलता है। आहाहा! **तीर्थाधिनाथ द्वारा ये सन्त, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक...** आहाहा! समझ में आया? कौन कहता है? कि उनका कहा हुआ उपदेश। ऐसा कहना है। यह उपदेश की व्याख्या है। आहाहा! भगवान महावीर प्रगट समवसरण में विराजते थे, तब वाणी निकलती थी न? उस समय की यादगिरी करते हुए नमन करनेवाले इन्द्र जिनके मुकुट में रत्नमाला से प्रगट पूजा करते थे। आहाहा! ऐसे **तीर्थाधिनाथ द्वारा ये सन्त, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक...** आहाहा! कैसा है भगवान का उपदेश? जन्म-जरा-मरण के नाश का उपदेश है। भव करना, वह उपदेश वहाँ है नहीं। आहाहा! कोई कहते थे। भले हमारे एकाध भव करना पड़े, परन्तु अध्यात्म का उपदेश तो हम अभी नहीं देंगे। ऐसा कोई कहता था। कौन कहता था? नहीं? यह भाई गुजर गये न चुन्नीलाल। उनके लिये कोई कहता था। अभी कोई कहता था। भावनगर से कोई कहता था। ऐसा कहते थे। भले एकाध भव करना पड़े, परन्तु अध्यात्म का उपदेश हम अभी नहीं देंगे। कोई भावनगर का था। शान्तिभाई या कोई थे। आहाहा! गाँधीजी ऐसा कहते थे न कि कदाचित् भव करने के लिये परन्तु कल्याण के लिये मुझे भले जन्म लेना पड़े। अरे भगवान! जन्म की भावना, वह मिथ्यात्व की भावना है। आहाहा! समझ में आया? जन्म लेना हो तो विकारभाव से होता है और विकारभाव की भावना, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य की टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारि सन्त मुनि कहते हैं (कि) भगवान का उपदेश **जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक तथा दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर,...** आहाहा! दुष्ट पापसमूहरूपी अन्धकार। यह पुण्य और पाप दोनों पाप हैं यथार्थरूप से, हों! समझ में आया? यह अधिकार लिया है। पुण्य-पाप अधिकार है न जयसेनाचार्य की टीका में। अधिकार तो पाप का चलता है, उसमें और तुमने यह व्यवहाररत्नत्रय का अधिकार क्या लिया? कहते हैं कि वह व्यवहाररत्नत्रय भी पाप ही है। जयसेनाचार्य की टीका में है। निश्चय से पाप ही है। स्वरूप से राग में पतित करता है तो पाप है। आनन्द का नाथ प्रभु स्वरूप से व्यवहार में चल हो जाता है। आहाहा! नुकसान है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो योगसार में कहा है। योगसार में योगीन्द्रदेव ने कहा है, 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को ही पाप कहे।' योगसार में आता है। 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' भगवान आनन्द में से छूट जाता है, विकल्प में आता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि ऐसा भगवान, पापसमूह—पाप का समूह वह सब विकल्प वह अन्धकार है। **दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का उपदेश...** भगवान का उस प्रकार का उपदेश है। भव होते हैं और भव का कारण सेवन करो, ऐसा उपदेश भगवान का है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश समझकर,...** पापसमूह का नाश करनेवाला। समझ में आया? और **जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक...** ऐसा भगवान का उपदेश समझकर **सत्शीलरूपी नौका द्वारा,...** आहाहा! सत्शीलरूपी। सत्शील—अपना स्वभाव, शुद्ध परिणति। **सत्शीलरूपी नौका द्वारा, भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।** आहाहा! नौका द्वारा जैसे समुद्र पार करते हैं, उसी प्रकार सत्शीलरूपी नौका। स्वभाव जो शुद्ध है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वह सत्शील है। व्यवहार है, वह असत्शील है। आहाहा! समझ में आया? इसलिए लोग कहते हैं, यह एकान्त है-एकान्त है। ऐसा कहते हैं। कहो भगवान को। भगवान तो ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सत्शीलरूपी नौका... व्यवहार तो असत्शील है। सत्शील, स्वभाव का शुद्ध आचरण, शुद्ध आनन्द का नाथ, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह सत्शीलरूपी नौका। आहाहा! समझ में आया? **सत्शीलरूपी नौका द्वारा, भवाब्धि...** भव-अब्धि, भवसिन्धु। ओहोहो! चौरासी लाख का कारण जो राग, वह भवाब्धि, भव की अब्धि संसार, उसके **सामने किनारे पहुँच जाते हैं।** अल्पकाल में पहुँच जाते हैं। आहाहा! संसार का किनारा आ जाता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। आहाहा! यह ४२ (गाथा) हुई। इसमें भी यह कहा। उस पंचमभाव की भावना करने से मोक्ष गये, ऐसा कहा न पहले? तो यहाँ यह कहा, सत्शीलरूपी नौका द्वारा। आहाहा!

मुमुक्षु : सत्शील अर्थात् सम्यक्चारित्र?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित, वह सत्शील। आहाहा! शुभभाव, वह सत्शील नहीं, असद्भाव है। आहाहा!

उससे (सत्शीलरूपी नौका द्वारा) **भवाब्धि के सामने किनारे...** संसार के किनारे आ जाते हैं। तब उसमें लिखा है। उसमें अभी आया है जैनगजट में बहुत (आया है)। व्यवहार से तो शुद्धि बढ़ती है। घटते... घटते... घटते... जहाज को फिर छोड़ना किनारे आवे तब। इसी प्रकार व्यवहार को बाद में छोड़ना। ऐसा उसमें लिया है। जैन गजट में आया है। व्यवहार से श्रेणी-सीढ़ी आगे चढ़ते हैं, फिर छोड़ देना। मोक्ष हो, तब छोड़ना। आहाहा! यहाँ का कहा है। यहाँ किसी का विरोध नहीं। उसकी दृष्टि में उसका विरोध करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले से हेय माना हो तो... परन्तु उपादेय....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उससे वृद्धि होती ही नहीं। वृद्धि जो आगे बढ़ता है तो स्वद्रव्य के आश्रय से वृद्धि होती है। व्यवहार से आगे बढ़े और शुद्ध होता है, ऐसा तीन काल में है ही नहीं। वह तो व्यवहार को अन्धकार कहा। उसे पार करना है। आहाहा! ओहोहो! अनन्त तीर्थंकर यह कहते हैं, भाई!

अपना शुद्धस्वभाव, उसकी पर्याय में सत्शील नौका बना दे। आहाहा! उस सत्शील स्वभाव की दृष्टि, स्वभाव का वेदन-ज्ञान, स्वभाव में लीनता, वही सत्शीलरूपी

नौका द्वारा पार होता है। आहाहा! व्यवहार से पार होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! तब कहे, व्यवहार को न माने तो यह तीर्थ का नाश होता है। परन्तु इसका अर्थ क्या? पर्याय नहीं है, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान ऐसा नहीं है तो तीर्थ का नाश कहा जाता है। (ऐसा) नहीं। है, व्यवहारनय का विषय है, आदरणीय नहीं, आदरणीय नहीं। व्यवहारनय नहीं है? दो नय का उपदेश ग्रहण करनेयोग्य, ऐसा तो कहा भगवान ने। एक नय का उपदेश ग्रहण नहीं करना। इसका अर्थ क्या हुआ? कि पर्यायभेद, गुणस्थानभेद आदि व्यवहार का विषय है। इनकार करे कि नहीं है, तो चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान पर्यायभेद, वह रहता नहीं और तत्त्व का यदि नाश हो त्रिकाल आनन्दस्वरूप। तब तो उसके आश्रय से तो मोक्ष होता है। तो तत्त्व का नाश होने पर वस्तु का नाश हो जाता है। आहाहा! यह दृष्टान्त दिया है। जइ जिणमग्ग देखो, व्यवहार को भी न छोड़ो। परन्तु किस अपेक्षा से? व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं। व्यवहार है, है उसका किसने इनकार किया कि व्यवहार नहीं, तो पर्याय में अल्पता है, अशुद्धता है, शुद्धता थोड़ी बढ़ी, वह मार्ग रहता नहीं। समझ में आया? व्यवहार उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। ऐसा (समयसार की) १२वीं गाथा में (आया)।

मुमुक्षु : बहुत बार चल गया है यह....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं यहाँ तो पाठ है न। पाठ है। व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान, ऐसा पाठ है। यह यहाँ कहते हैं। यह अर्थ किया, वह दूसरी बात है। परन्तु यह अर्थ तो बतलाया है इस काल में। उस समय में, उस समय ऐसा भाव आता है। उस भाव से लाभ होता है या नहीं, इसका प्रश्न नहीं। भाव होता है। सम्यग्दर्शन और ज्ञान निश्चय स्वभाव हुआ, परन्तु जहाँ तक पूर्ण नहीं, वहाँ तक ऐसा भाव आवे, वह व्यवहार है। है, इतना सिद्ध करना है। समझ में आया? उससे लाभ होता है और उससे निश्चय होता है, यह बात है नहीं वहाँ। आहाहा! भाई ने भी दिल्ली में शाहूजी ने भी एक बार व्याख्यान में यह लिया था। लोग कहे सही न। देखो, व्यवहार का उपदेश। निश्चय न हो, उसे व्यवहार का उपदेश देना। ऐसा है न?

सुद्धो सुद्धोदेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदा पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१२॥

इसका अर्थ क्या ? उपदेश देना, ऐसी व्याख्या वहाँ है नहीं। उपदेश का वाच्य जो व्यवहार है, वह 'है' उसको जानना, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन में जो अकेली निश्चय की बात हुई कि भूतार्थ के आश्रय से सम्यक्त्व होता है। वह तो निश्चय हुआ। अब पर्याय में अशुद्धता, शुद्धता की वृद्धि, ऐसे भेद हैं या नहीं ? उस भेद को जानना, वह व्यवहार है। समझ में आया ? '**ववहारदेसिदा**' का अर्थ दिखलाया अर्थात् ? उपदेशा, ऐसा नहीं। वहाँ व्यवहार है, ऐसा जानना, उसे प्रयोजनवान कहा गया है। अकेले व्यवहार को माने तो 'देशना नास्ति' आहाहा!

सत्शीलरूपी नौका... भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसका शील शुद्धस्वभाव, सत्शील शुद्धस्वभाव ऐसी **नौका द्वारा, भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।** समझ में आया ? यह तो श्रद्धा का, व्यवहार का ठिकाना नहीं। व्यवहार की श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं। हम यह महाव्रत पालते हैं और यह है, वह सब मुनिपना है और उससे निश्चय होता है। सब गलत बात है। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : द्रव्यलिंग को छोड़ दो....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंग को छोड़ दो, इसका अर्थ ? दृष्टि में नहीं लेना, ऐसा। ... आता है। द्रव्यलिंग दृष्टि में आश्रय करनेयोग्य नहीं, ऐसा कहा है। ...आता है। विकल्प और नग्नपना, वह कोई धर्म का कारण नहीं। दृष्टि में से छोड़ दे। अस्थिरता तो पूर्ण स्थिरता होगी, तब व्यवहार छूटेगा, परन्तु दृष्टि में से उसे छोड़ दे पहले। आहाहा! रागादि व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य (अर्थात् कि) व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं। यह व्यवहार का उपदेश इसका नाम नहीं। व्यवहार का उपदेश का अर्थ वह पर्याय में हीनता और अशुद्धता है, उसे जानना, वह व्यवहार का उपदेश है। आहाहा! यदि ऐसा न जाने तो व्यवहार को जाना नहीं और व्यवहार दया, दान, आदि से निश्चय प्रगट होता है तो तत्त्व रहेगा नहीं। त्रिकाल तत्त्व के आश्रय से मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया ? क्या हो ? यह ४२ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - ४३

णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्ममओ णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा॥४३॥

निर्दंड अरु निर्द्वंद्व निर्मम निःशरीर निराग है।
निर्मूढ़ निर्भय, निरवलंबन आत्मा निर्दोष है॥४३॥

अन्वयार्थः—[आत्मा] आत्मा [निर्दण्डः] निर्दण्ड [निर्द्वन्द्वः] निर्द्वन्द्व [निर्ममः] निर्मम, [निःकलः] निःशरीर, [निरालंबः] निरालंब, [नीरागः] नीराग, [निर्दोषः] निर्दोष, [निर्मूढः] निर्मूढ और [निर्भयः] निर्भय है।

टीकाः—यहाँ (इस गाथा में) वास्तव में शुद्ध आत्मा को समस्त विभाव का अभाव है—ऐसा कहा है।

मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड के योग्य द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों का अभाव होने से आत्मा, निर्दण्ड है। निश्चय से परमपदार्थ के अतिरिक्त समस्त पदार्थ समूह का (आत्मा में) अभाव होने से आत्मा, निर्द्वन्द्व (द्वैतरहित) है। प्रशस्त-अप्रशस्त, समस्त मोह, राग, द्वेष का अभाव होने से आत्मा, निर्मम (ममतारहित) है। निश्चय से औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, और कार्मण नामक पाँच शरीरों के समूह का अभाव होने से आत्मा, निःशरीर है। निश्चय से परमात्मा को परद्रव्य का अवलम्बन न होने से आत्मा, निरालम्ब है। मिथ्यात्व, वेद, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, और लोभ नामक चौदह अभ्यन्तर परिग्रहों का अभाव होने से आत्मा, निराग है। निश्चय से समस्त पापमलकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में समर्थ, सहज, परमवीतराग-सुखसमुद्र में मग्न (डूबी हुई लीन) प्रगट सहजावस्थास्वरूप जो सहजज्ञान-शरीर, उसके द्वारा पवित्र होने के कारण आत्मा, निर्दोष है। सहज निश्चयनय से सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहज-परमवीतराग सुख आदि अनेक परमधर्मों के आधारभूत निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ होने से

१. निर्दण्ड=दण्डरहित। (जिस मनवचनकायाश्रित प्रवर्तन से आत्मा दण्डित होता है, उस प्रवर्तन को दण्ड कहा जाता है।)

आत्मा निर्मूढ़ (मूढ़तारहित) है; अथवा, सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से तीन काल और तीन लोक के स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में जानने में समर्थ सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से आत्मा, निर्मूढ़ है। समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती—ऐसे निज शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप महादुर्ग में (किले में) निवास करने से आत्मा, निर्भय है। ऐसा यह आत्मा वास्तव में उपादेय है।

इसी प्रकार (श्री योगीन्द्रदेवकृत) अमृताशीति में (५७ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(वीरछन्द)

स्वर समूह व्यञ्जन विसर्ग से आत्मतत्त्व है शून्य सदा।
संख्या से भी मुक्त और जो शाश्वत अहित-विहीन सदा॥
अन्धकार, रस, गंध तथा ही स्पर्श रूप से भिन्न सदा।
भू, जल, अग्नि पवन अणुओं से दिशा चक्र से भिन्न सदा॥

श्लोकार्थः—आत्मतत्त्व, स्वरसमूह, विसर्ग और व्यञ्जनादि अक्षरोंरहित तथा संख्यारहित है (अर्थात्, अक्षर और अंक का आत्मतत्त्व में प्रवेश नहीं है); अहितरहित है; शाश्वत है; अंधकार तथा स्पर्श, रस, गंध और रूपरहित है; पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के अणुओं रहित है, तथा स्थूल दिक्चक्र (दिशाओं के समूह) रहित है।

गाथा - ४३ पर प्रवचन

अब ४३। कैसा है आत्मा? ४३ है न? अन्तिम शब्द है न अन्तिम? '**अप्पा**' '**अप्पा**' शब्द है न? तो '**अप्पा**' अर्थात् आत्मा। कैसा है?

णिद्दंडो णिद्वंद्वो णिम्ममओ णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा॥४३॥

आहाहा! आत्मा कैसा है? आहाहा! शुद्धभाव अधिकार है न?

निर्दंड अरु निर्द्वंद्व निर्मम निःशरीर निराग है।
निर्मूढ़ निर्भय, निरवलंबन आत्मा निर्दोष है॥४३॥

ऐसी मार्ग की स्थिति दिगम्बर जैनधर्म में है, अन्यत्र कहीं नहीं। दूसरे धर्म ही है नहीं। समझ में आया? परन्तु इतना ख्याल न करे कि सम्प्रदाय में थे और छोड़ दिया तो इसका कारण होगा या नहीं? समझ में आया? सम्प्रदाय में तो २१ वर्ष में लोग तो हमको प्रभु मानते थे। गाँव में जायें, शहर में जायें तो लोगों के झुण्ड (इकट्ठे हुए)। बालक छोटे-छोटे कहे, प्रभु आये, प्रभु आये—ऐसा कहते थे।। छोटे बालक दो-तीन वर्ष के। बहुत प्रसिद्धि थी न और सुन्दर शरीर था। यह तो ८७ वाँ (वर्ष) चलता है। गर्भ के ८७, जन्म के ८६। उस समय में तो २५, २६, २७ वर्ष। तो छोटे-छोटे बालक, गाँव में जायें न, वे घर में बातें करें न महाराज आज आये हैं, वे प्रभु आये... प्रभु आये... ऐसा कहें बेचारे, हों! परन्तु यह बात सब झूठी थी, वेश झूठा, मार्ग झूठा, वे शास्त्र झूठे, उन शास्त्र में कहे वे देव झूठे, मोक्षमार्ग झूठा। आहाहा! यह तो अन्दर से (आता था)। डालचन्दजी!

हमारे बड़े भाई थे। ६२ वर्ष हुए न दीक्षा को? तो उस समय १८०० खर्च किये थे। ६२ वर्ष पहले घर से दीक्षा, घर से दी थी। १८००। ६२ वर्ष पहले १८०० खर्च किये। दीक्षा लेने के बाद कहा, भाई! यह मार्ग नहीं। मैं तो छोड़ दूँगा। (संवत्) १९८७ के वर्ष में कहा। ८७। ७० में दीक्षा। ८७ वींछिया में। १९८७। (संवत्) १९९१ में छोड़ा। भाई! मार्ग यह नहीं। हाथी के हौदे दीक्षा। २३ वर्ष, साढ़े २३ वर्ष की उम्र, सुन्दर शरीर। सेठिया तो शोर मचाते थे, भाई! हमारे दामोदर सेठ, हों, ऐसा कहते। दामोदर सेठ थे बेचारे। महाराज! भाई! तुम्हारा शरीर सुन्दर रूपवान, किस प्रकार तुम साधुपना पालन करोगे? स्थानकवासी की क्रिया कठोर है न। यह तुम्हारा शरीर। आहाहा! साढ़े २३ वर्ष की उम्र थी। रूपवान शरीर, अवयव सुन्दर, कोमल शरीर। यह धूप, छाया तुम कैसे सहन करोगे? ऐसा कहते थे। दामोदर सेठ थे। पहले तो बेचारे वैराग्य दीक्षा में आये थे। उमराला आये थे। बाद में विरोध हो गया। यह तत्त्व की दृष्टि। भाई! यह तो सहन करना, वह तो सहजस्वभाव है। उसमें कोई सहन करना, ऐसी चीज़ है नहीं। परन्तु यह मार्ग उसमें नहीं था। समझ में आया? यह क्रिया करो, यह करो और यह करो, इससे मोक्ष होगा, वह धर्म ही नहीं। वह जैनधर्म नहीं, ऐसा कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य ने तो स्थानकवासी और श्वेताम्बर को जैन नहीं, ऐसा कहा है। दुःख लगे, न लगे, वे जाने।

मोक्षमार्ग (प्रकाशक के) पाँचवें अधिकार में तो ऐसा कहा कि श्वेताम्बर और

स्थानकवासी अन्यमति हैं, जैन नहीं। ऐई! चन्दुभाई! यह सब स्थानकवासी के सेठिया हैं न। यह सेठिया रहे। यह स्थानकवासी यह रहे हमारे नेमिदास लो! यह स्थानकवासी सेठिया। तब इस सम्मेदशिखर में एक रात्रि में जो दिगम्बर के चरण थे, एक रात्रि में बदल डाले श्वेताम्बर लोगों ने। वहाँ उपस्थित थे नेमिदास। पैसेवाले व्यक्ति हैं। पुत्र-पुत्री नहीं। पैसा दस लाख। दो-दो लाख के बँगले हैं। तो वहाँ गये तो यह तो स्थानकवासी थे। हमको क्या तुम परिवर्तन करते हो, ऐसा इन्होंने सुना। कहे, क्या सेठ यहाँ आये? दूसरे सेठ श्वेताम्बर के। यह दिगम्बर के चरण हैं, ये रात्रि में बदल डालना है। चरण ऐसे थे न? ऐसे कर डाले। अपने दिगम्बर में ऐसे होते हैं। नीचे का भाग ऐसा होता है। उसे बदल डाले एक रात्रि में। नेमिदास थे। नहीं नेमिदासजी? इन्होंने कहा था मुझे। इनकी मौजूदगी थी। परन्तु (हम तो) स्थानकवासी, तुम बदलो या न बदलो, हम कहाँ मानते हैं! आहाहा! सब एक रात्रि में बदल डाले, हों! सनातन वस्तु थी, वह कहाँ नयी थी? आहाहा! वह सेठ कौन सेठ था? वे श्वेताम्बर सेठ थे न कोई। अहमदाबाद के सेठ थे। वहाँ ... थी उनकी। उन्हें अभी ९० वर्ष हुए। ९० वर्ष हैं। शरीर ऐसा दिखता है। ९० वर्ष है। ९० क्या कहते हैं? नब्बे। यह ८६ वर्ष। मुझसे चार वर्ष बड़े हैं। ९० वर्ष हुए। गृहस्थ हैं। घर का मन्दिर बनाया दिगम्बर मन्दिर। उस समय स्थानकवासी थे। तो वे लोग कहे हम ... परिवर्तन ... एक रात्रि में परिवर्तन। हमारे क्या? परिवर्तन करो या नहीं। हम तो मूर्ति को मानते नहीं। ऐसा हुआ है, परिवर्तन बहुत कर डाला। लोगों ने बहुत तीर्थ में भी फेरफार कर डाला... अरेरे! काल ऐसा।

यह तो सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के द्वारा कहे हुए द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का मार्ग कहा, वह आया है, दूसरा मार्ग है नहीं। परमसत्य तो यह है, भाई! यह कोई पक्ष नहीं, यह कोई वाड़ा नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। छठवाँ गुणस्थान हो और वस्त्र रहे, वह दशा ही नहीं ऐसी। स्थिति ऐसी है, ऐसा कहते हैं। ऐसा विकल्प रहे वस्त्र लेने का तो छठवाँ गुणस्थान नहीं रहता। वह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा! यह कहा न भगवान ने उपदेश दिया। तत्प्रमाण जिसने सत्शीलरूपी नौका प्रगट की (वह) संसार से पार हो गया। यहाँ स्पष्टीकरण करते हैं। ४३ गाथा है न।

यहाँ (इस गाथा में) वास्तव में शुद्ध आत्मा को... शुद्ध अर्थात् त्रिकाली भगवान

ज्ञायकभाव को **समस्त विभाव का अभाव है—ऐसा कहा है।** पहला शब्द। **मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड के योग्य द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों का अभाव होने से आत्मा, निर्दण्ड है।** मन-वचन-काय से दण्ड होता है, वह आत्मा में नहीं, पर्याय में है। आत्मा तो मन, वचन, काया के दण्ड से पार है। आहाहा! उसे यहाँ निर्दण्ड कहा गया है। निर्दण्ड है। आहाहा! अब यह आया। छहढाला में आता है न। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद...' यह द्वंद्व यहाँ लिया। द्वैतपना छोड़ो, ऐसा कहते हैं द्वैत का अर्थ। समझ में आया? यहाँ छहढाला में बहुत गागर में सागर भर दिया है। द्वंद्व अर्थात् दो भाग। विकल्पादि वह द्वंद्व है। वह सब द्वंद्व है।

देखो, **निश्चय से परमपदार्थ के अतिरिक्त समस्त पदार्थ समूह का (आत्मा में) अभाव होने से आत्मा, निर्द्वन्द्व (द्वैतरहित) है।** देखो, निर्द्वंद्व—विकल्प का द्वंद्व उसमें है नहीं। आहाहा! 'छोड़ी सकल जगत द्वंद्व फंद, निज आतम उर ध्यावो।' द्वैतपना भी छोड़ दे। वह द्वंद्व है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। अपना स्वरूप अखण्ड द्वंद्व अर्थात् विकल्प से रहित है। आहाहा! उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। '**अप्पा**' कहा न? '**अप्पा**' शब्द पड़ा है न? निर्द्वंद्व आत्मा है। विकल्प का सम्बन्ध आत्मा में है ही नहीं। द्वंद्वरहित वह आत्मा है अर्थात् द्वैतरहित आत्मा, अद्वैत चैतन्यस्वरूप है। वह वेदान्त अद्वैत कहता है, वह नहीं, हों! यह तो ज्ञायकभाव अकेला एकस्वरूप है, उसमें विकल्प का द्वंद्वपना है नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ तो हुआ कि विकल्प पर्याय में है सही। समझ में आया? वेदान्त कहता है कि सदाशिव सदाशुद्ध है। ऐसा नहीं। पर्याय में सदाशुद्ध है, ऐसा नहीं है। पर्याय में अशुद्ध है। वस्तु में द्वंद्वपना, अशुद्धपना नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं कि **निश्चय से परमपदार्थ के अतिरिक्त...** भगवान परमपदार्थ, ज्ञायकभाव शुद्ध, उससे भिन्न **समस्त पदार्थ समूह का अभाव होने से आत्मा, निर्द्वन्द्व (द्वैतरहित) है।** उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। यह शुद्धभाव जो कहते हैं, वह निर्द्वंद्व आत्मा, उसे शुद्धभाव कहा जाता है। ज्ञायकभाव तो अकेला ज्ञायकभाव जिसमें कर्म का (अभाव है)। वस्तु को राग का सम्बन्ध कैसा? ऐसी चीज़ जो आत्मा है, उसे यहाँ निर्द्वंद्व कहा गया है। उसे दृष्टि में लेना और ध्यान करना, वह धर्म है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण २, शनिवार, दिनांक २३-०८-१९७५
गाथा - ४३, प्रवचन - १३

नियमसार के दो अर्थ हैं—एक त्रिकाली शुद्धभाव शुद्धचेतना, वह नियमसार और स्वसन्मुख होकर स्वभाव में से निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त हो, वह वर्तमान पर्याय, वह मोक्षमार्ग है। समझ में आया? नियमसार वस्तु में न हो तो पर्याय में नियमसार कहाँ से आयेगा? समझ में आया? वस्तु आत्मा पदार्थ ऐसी चीज़ है कि उसमें नियमसार उसका स्वरूप ही ऐसा है। उसे यहाँ शुद्धभाव कहा गया है। उसका आश्रय त्रिकाल। तो वह शुद्धभाव, वह द्रव्यस्वभाव, वह परमात्मस्वभाव। भगवान आत्मा का परम आत्मा, परमस्वरूप स्वभाव की दृष्टि करने से जिसे दृष्टि में ऐसा भाव समीप करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि होते हैं। उसका नाम यहाँ आत्मा, उसका नाम यहाँ शुद्धभाव कहा जाता है। आहाहा!

तो कहते हैं, दो बोल आ गये हैं। आत्मा में दण्ड नहीं। मन, वचन, काया की पर्याय में दण्ड है, वह पर्याय में है, वस्तु में है नहीं। आहाहा! निर्दण्ड आत्मा है। भगवान आत्मा आनन्द ज्ञायक शुद्धस्वभाव, वह निर्दण्ड है। उसमें आ गया। और निर्द्वन्द्व है। दूसरे पदार्थ का सम्बन्ध द्वैतपना एक चीज़ में है नहीं। ओहोहो! ऐसे आत्मा में दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी। ऐसी बात है। धर्म की शुरुआत कहाँ से होती है? जो वस्तु अभेद त्रिकाल अखण्डानन्द प्रभु निर्द्वन्द वस्तु है (उसका आश्रय करने से धर्म होता है)। यह आ गया है। आज तीसरा बोला है। कल आ गया था। कल नहीं थे? थे?

अब तीसरा बोल है। **निर्मम है।** यह भगवान आत्मा। निर्मम का अर्थ? **प्रशस्त-अप्रशस्त, समस्त मोह, राग, द्वेष का अभाव होने से...** शुभराग प्रशस्त या अप्रशस्त राग या अप्रशस्त मोह, ऐसी जो परिणति विकारीभाव, वह आत्मा में है नहीं। आहाहा! उसे

यहाँ आत्मा कहते हैं भगवान। उस आत्मा को अन्तरदृष्टि में लेना, अपनी ज्ञानपर्याय को ऐसे आत्मा में झुकाना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान है। समझ में आया? छह द्रव्य की श्रद्धा और नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह सब भेदवाली श्रद्धा, वह तो विकल्प है, वह वस्तु में है नहीं, ऐसा कहते हैं। दूसरे प्रकार से कहें, प्रशस्त अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, वह वस्तु में नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वेदान्त में....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं... वेदान्त में नहीं कहा। उसकी पर्याय में तो है, द्रव्य में नहीं। ऐसा वेदान्त में है नहीं। समझ में आया? और पर्याय में द्वैतपना है। स्वरूप में द्वैतपना नहीं, पर्याय में है। है, उसके व्यवहार की पर्याय का विषय जो है, है व्यवहारनय का विषय। है, इतनी बात है। परन्तु वह वस्तु भगवान चिदानन्द परमात्मस्वरूप अकेला ज्ञायकदल, आनन्ददल, ऐसा जो ध्रुव शुद्धभाव ज्ञायकभाव, उसमें व्यवहार के विकल्प का अभाव है, इस अपेक्षा से उसे निर्मम कहा है। व्यवहार की पर्यायरहित है, इसलिए निर्मम है। आहाहा! समझ में आया? बात तो बहुत सूक्ष्म! अभी तो ऐसी गड़बड़ हो गयी है।

मुमुक्षु : अब तो गड़बड़ बहुत मिट गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब बात सच्ची, परन्तु बड़ा भाग अभी विरोध करता है। आहाहा! वस्तु की खबर नहीं। समझ में आया? और चीज़ जो सत्... सत्... सत्... सत्... वह सत् त्रिकाल सत्, उसका सत्त्व जो भाव है, वह तो अकेला शुद्ध ज्ञायकभाव है। उस ज्ञायकभाव को ममत्वरहित क्यों कहा? कि 'शुभराग भी मेरा है' ऐसा वस्तु में नहीं। 'व्यवहाररत्नत्रय मेरा है' ऐसा वस्तु में नहीं। आहाहा!

प्रशस्त-अप्रशस्त, समस्त मोह, राग, द्वेष का अभाव होने से आत्मा,... पाठ है न? '**अप्पा**' है न? ४३ में अन्तिम शब्द है। '**अप्पा**' यहाँ अर्थ में पहला लिया है, आत्मा-आत्मा, '**अप्पा**' आहाहा! भगवान आत्मा जिसमें शुभराग मेरा है, ऐसी ममत्वदशा ही नहीं, ऐसा ममत्व उसका भाव ही नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि व्यवहार करने से निश्चय हो, यह बात ही झूठी है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ न हो, अन्यत्र तो हो न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी होता नहीं। माने, माने। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा तो ऐसा यदि मानने जाये तो दूसरे आचार्यों का बलिदान हो जायेगा! ऐसा यहाँ चला था। अरे.. भगवान! अरे! यह ऐसा नहीं होता, प्रभु! सब दिगम्बर आचार्यों की एक ही शैली है। कोई व्यवहार की कथनी हो, कोई निश्चय की कथनी हो भले, परन्तु उसका तात्पर्य तो एक ही है। वीतरागता तात्पर्य है। चाहे तो चरणानुयोग में व्यवहार की बात की हो, परन्तु उसका तात्पर्य ? कि व्यवहार वस्तु में है नहीं, ऐसा अनुभव करना, वह तात्पर्य है। आहाहा! शान्त... शान्तरस पड़ा है अकेला। एक ही मत है।

'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव।' जैसै निर्मल स्फटिक है। स्फटिक हमने देखा है। वहाँ जामनगर में एक है। डॉक्टर है न, भाई! प्राणजीवनदास। अभी... मुम्बई रहते हैं। उन्होंने बताया था। एक छह लाख का सोलेरियम यन्त्र है। छह लाख का। उन्होंने वहाँ व्याख्यान सुनकर राजकोट आये थे। सुनने के बाद वहाँ जामनगर व्याख्यान सुना। महाराज! हमारे वहाँ सोलेरियम है, तुमको लागू पड़ेगा यह दृष्टान्त देने में। फिर उसके पास बड़ा स्फटिक था। स्फटिक दिखलाया। जामनगर में है। वह जैसे निर्मल स्फटिक वह पत्थर है और रूपी है। यह भगवान आत्मा चैतन्य है और अरूपी है। अकेले चैतन्य के प्रकाश का पुंज प्रभु, उसमें व्यवहार के विकल्प का अभाव है, इसलिए आत्मा को निर्मम कहा जाता है। आहाहा!

चौथा बोल। **निश्चय से औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, और कार्मण नामक पाँच शरीरों के समूह का अभाव होने से...** भगवान आत्मा में पाँच शरीरों का अभाव है। आहाहा! समझ में आया ? कार्मणशरीर जो आठ कर्म की पूँजी। क्या कहलाता है ? पिण्ड। यह कहलाता है न ? यह छोड़े न। मिट्टी के नहीं बनाते ? उसमें रखे अनाज। वह मिट्टी के बनाते हैं। रखे अन्दर। होंगे सब जगह। पहले तो यह थे न मिट्टी के बड़े-बड़े क्या कहलाते हैं वे ? भाषा अलग। तुम्हारी भाषा तो आती नहीं। उसमें रोटी, रोटला, ठाम रखे उसमें। कोठला-कोठला। उसी प्रकार यह आठ कर्म कोठला है। जिसमें रजकण रहे हैं। वह कोठला आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं कि यह औदारिकशरीर ही आत्मा में नहीं, तो जिसमें नहीं, उसका वह कर कैसे सकता है? ऐसा कहना है। प्रशस्त-अप्रशस्त राग आत्मा में नहीं, जिसमें अभाव है, जिसमें अभाव है, उसका वह करे कैसे? समझ में आया? शरीर का भगवान आत्मा में अभाव है। तो उसका अभाव है, तो अभाव को करे कैसे? भाव हो तो करे। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि पाँचों ही शरीरों का अभाव है। तो शरीर की क्रिया आत्मा करे पर्याय में, ऐसा भी है नहीं। आहाहा! द्रव्य में नहीं तो उसकी पर्याय में भी पाँच शरीरों का करे, ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : शरीर तो धर्म का साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन, वह निमित्त से कहा। 'शरीर आद्यं खलु धर्म साधनम्' पुरुषार्थसिद्धिउपाय में लिखा है। पहले लिया है। वह तो निमित्त से कथन है। विकल्प साधन नहीं तो और फिर यह शरीर साधन कहाँ से आया? आहाहा! राग से भिन्न करना, वह प्रज्ञाछैनी साधन है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! जिनेन्द्रदेव यह दिगम्बर स्वरूप धर्म वास्तव में दिगम्बर शब्द से तो विकल्प की वृत्ति भी जिसमें नहीं। बाह्य में नग्नपना वस्त्र नहीं, परन्तु अभ्यन्तर में विकल्प की कल्पना वृत्ति आत्मा में नहीं। ऐसा भगवान आत्मा दिगम्बर है। समझ में आया? उस चीज़ को पाँच शरीररहित कहकर ऐसा कहा कि निःशरीरी है। अर्थात् वह शरीर इसमें नहीं, वह शरीर इसमें नहीं तो उसे करे किस प्रकार? शरीर की क्रिया करे, यह दया पालना, ऐसा करना, ऐसा करना। स्वाहा (करे) पूजा में।

मुमुक्षु : पानी में मक्खी पड़ी हो तो निकाल ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : मक्खी पड़े, उसे निकाले कौन? ऐई! नेमिदासभाई! तुम्हारा काका। अभेचन्दभाई नहीं? चातुर्मास में जाते हों और पानी में मक्खी पड़े न! खबर है न? मकोड़ा और मक्खी पड़े, (उनकी) दया पालने जाते थे। इनके काका अभेचन्दभाई थे। नरम व्यक्ति, परन्तु दृष्टि की खबर नहीं, तत्त्व की खबर नहीं। चातुर्मास में आवे पानी में मकोड़ा गिरे। वर्षा आवे न। मकोड़ा, मक्खी। सेठिया व्यक्ति था। ऐसे निकालने जाये। हम दया पालते हैं। वह शरीर की क्रिया आत्मा तीन काल में कर नहीं सकता।

ऐसे डाले पानी। ऐसे पानी नीचे जाये और मक्खी ऊपर रह जाये। बच जाये। वह क्रिया आत्मा कर सकता है, ऐसा तीन काल में नहीं। आहाहा!

निःशरीर है। आहाहा! **निश्चय से परमात्मा को...** देखो, परमात्मा आत्मा की बात करते हैं यहाँ। यह आत्मा, वही परमात्मा है। अप्पा सो परम अप्पा। कहाँ गये शोभालालजी! यह तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार में कहते हैं। अप्पा सो परम अप्पा। आत्मा, वही परमात्मा है। समझ में आया? यह कहा, देखो, **निश्चय से...** वास्तव में, यथार्थ से **परमात्मा को...** परमस्वरूप भगवान परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप भगवान को **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से...** परद्रव्य का आलम्बन उसे नहीं। आहाहा! निरालम्बी। यह समवसरण की स्तुति में आया है न? जैसा निरालम्बन आत्मद्रव्य, वैसे निरालम्ब भगवान अन्तरिक्ष में। अन्तरिक्ष में विराजते हैं न? आलम्बन है नीचे का? सिंहासन का आलम्बन नहीं। अन्तरिक्ष तो दिगम्बर में ही होता है। यह अन्तरिक्ष में बड़ा विवाद हुआ था न? अपने धनकुमार है न? अन्तरिक्ष श्वेताम्बर में है ही नहीं। भगवान अन्तरिक्ष रहते हैं, यह बात श्वेताम्बर में है ही नहीं। यह अन्तरिक्ष दिगम्बर का ही तीर्थस्थान है। यह तो नीचे...

मुमुक्षु : वह तो पाँच पाटला हो तो दे आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था एक बार। केवलज्ञानी जब मोक्ष जाते हैं तो पाँच पाटला सौंपते हैं। ऐसा पाठ है। वह भगवान क्या केवलज्ञानी (कुछ खबर नहीं होती)। उन्हें कहाँ पाटला थे? लोगों को ऐसा लगे। परन्तु दो हजार वर्ष हुए, इस शास्त्र को किये हुए दो हजार वर्ष हुए। तार-पत्र नहीं था तो उसे खबर नहीं। .... मार्ग चला। दो हजार वर्ष पहले दिगम्बर में से यह पंथ निकला। अर्धफालक थोड़ा टुकड़ा लिया था। थोड़ा टुकड़ा था। ... उसमें से ... अभी तो एक श्वेताम्बर साधु है, उसने निकाला है कि अभी तो १०८ उपकरण हो गये हैं। एक श्वेताम्बर साधु है उसने कुछ... अर्धफालक में से १०८ उपकरण हो गये। अभी कहाँ जायेंगे? ऐसा लिखा है। यहाँ आये थे। वहाँ मिले थे, श्वेताम्बर थे। परन्तु अभी गड़बड़ की सब। अभी कुछ श्वेताम्बर का थोड़ा रखना। ऐसा यहाँ रहे नहीं। श्वेताम्बर की कोई बात वस्त्र के टुकड़ की बात है नहीं इसमें। एक

टुकड़ा भी रखे और मुनिपना माने, कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं, निगोद में जायेगा। जायेगा निगोद में। वह ऐसा ही है।

कोई ऐसा कहता है कि ककड़ी के चोर को फाँसी? क्या कहते हैं तुम्हारी भाषा? ककड़ी का... चीभड़ा के चोर को फाँसी? ऐसा नहीं। वह वस्त्र का टुकड़ा रखे, ऐसा जो राग, उस राग की भूमिका छठवें गुणस्थान में होती ही नहीं। राग है और वस्त्र रखता है तो उसे आस्रव की भी खबर नहीं और संवर की भी खबर नहीं। और जीव में एकाग्र होता है, छठवें गुणस्थान में तो कितना राग रह जाये, तो उस जीव की खबर नहीं। राग जाता है तो संयोग वस्त्र का रहता नहीं। तो संयोग अजीव की भी उसे खबर नहीं। नौ ही तत्त्व की भूल है। नौ तत्त्व की भूल है, ऐसा कहा। एक भूल नहीं, सब भूल है। परन्तु सम्प्रदाय निकल गया, इसलिए अभी बहुत कठिन पड़े लोगों को। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, बापू! कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, वह कड़क होकर अतिशयोक्ति से नहीं कहा। समझ में आया? भगवान! यह मार्ग, आहाहा! अपने स्वरूप में जहाँ उग्र आश्रय हुआ, वहाँ तो उसकी राग की मन्दता बहुत अल्प रह गयी। वह इतने राग की मन्दता है कि जिसमें आहार लेने का विकल्प, विनय करने का, बस इतना। परन्तु उसे वस्त्र लेने का भाव और पात्र लेने का भाव या उसके लिये बनाया हुआ आहार लेने का भाव, वह विकल्प उसे होते ही नहीं। आहाहा! वस्तुस्थिति ऐसी है। यह कोई पक्ष नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : कालदोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कालदोष है कहाँ? काल में दोष कहाँ है? दोष तो उसकी दशा में है। काल क्या करे? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **परमात्मा को परद्रव्य का अवलम्बन न होने से...** ओहोहो! वास्तव में तो राग का भी अवलम्बन उसे नहीं। भगवान की मूर्ति का अवलम्बन हो तो लाभ होगा, ऐसा आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह स्थानकवासी और श्वेताम्बर में बड़ा विवाद है न? वे कहे कि आलम्बन होता है, श्वेताम्बर कहे। स्थानकवासी कहे, नहीं। वे मूर्ति को नहीं मानते न। वह तो शुभराग आता है, तब

निमित्त के ऊपर लक्ष्य जाता है। इतना व्यवहार से आलम्बन (आता है), परमार्थ से आत्मा में आलम्बन है ही नहीं। व्यवहार ही नहीं, वहाँ फिर आलम्बन कैसा अन्दर में? परन्तु ऐसा आलम्बन नहीं, तो व्यवहार का विकल्प जब आता है, तो निमित्त का आलम्बन है, इतना व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? ऐसे कोई निकाल डाले तो ऐसा नहीं चलता।

चर्चा हुई थी बहुत वर्ष पहले। सेठ थे, दामोदर सेठ थे। दामनगर। तो वे कहे प्रतिमा है, वह जब तक मिथ्यादृष्टि हो, तब तक मान सकता है, सम्यग्दृष्टि नहीं मानता। बहुत चर्चा हुई थी, (संवत्) १९८३ के वर्ष में। बहुत हुई थी। मैंने कहा, ऐसा है नहीं। (मिथ्यादृष्टि को) निक्षेप भी होता नहीं, नय भी नहीं, निक्षेप नहीं। सम्यग्दृष्टि को श्रुतज्ञान होता है तो उसका भेद नय होता है। तो नय का विषय जो निक्षेप, वह उसे होता है। सम्यग्दृष्टि को ही निक्षेप होता है, व्यवहार। आहाहा! बात समझ में आयी? बहुत चर्चा चलती थी।... मार्ग तो ऐसा है। अन्तर में, स्वभाव में किसी का आलम्बन है नहीं, परन्तु जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक राग आये बिना रहता नहीं और राग का निमित्त भगवान की प्रतिमा और वे हैं, व्यवहार का विषय है। व्यवहार के विषय से धर्म होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! कहाँ गये चिमनभाई? है या नहीं? ये बैठे। ये सब स्थानकवासी के प्रमुख कहलाये। आहाहा! बापू! यह तो वस्तु का स्वरूप ही है।

परमात्मा निश्चय से भगवान! यह कहते हैं, देखो, **परद्रव्य का आलम्बन नहीं...** वस्तु में है नहीं, परन्तु जब तक वीतरागता पर्याय में पूर्ण न हो, तब तक शुभराग, वह योग्यता के काल में आता है। तब उसका निमित्त के ऊपर लक्ष्य जाता है। राग का लक्ष्य दिशा पर के ऊपर है। प्रतिमा भगवान का लक्ष्य वह राग है तो वहाँ जाता है, ऐसा व्यवहार है, निश्चय में है नहीं। धन्नालालजी! यह गजब बात, भाई! ऐसे खींचने गये तो आलम्बनरहित आत्मा है। अब वह तो ऐसा ही है, परन्तु पर्याय में जब तक वीतरागता (पूर्ण) न हो तो पर्याय में राग आता है, तब आलम्बन भगवान, मूर्ति आदि भगवान निमित्त है। समझ में आया? है तो बन्ध का कारण, परन्तु वह पूर्ण अबन्ध परिणाम न हो, वहाँ बन्ध का कारण आये बिना रहता नहीं। बात ऐसी है। निश्चय निर्णय करने जाये

तो व्यवहार उड़ा दे कि व्यवहार है ही नहीं, ऐसा है नहीं। और व्यवहार मानकर उससे धर्म होता है, वस्तु में है ही नहीं राग, वह मानता नहीं, तो दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया? धन्नालालजी!

मुमुक्षु : निचली अवस्था में होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : निचली दशा सम्यग्दर्शन में ऐसी होती है, 'मैं तो त्रिकाल निरालम्बन हूँ। मुझे किसी का आलम्बन नहीं। भगवान का आलम्बन है नहीं, भगवान की भक्ति का आलम्बन है नहीं। ऐसी मेरी वस्तु है।' ऐसी दृष्टि होने के पश्चात् जब तक वीतरागता (पूर्ण) न हो, तो उस काल में शुभराग के काल में आता है, वहाँ भगवान या प्रतिमा या तीर्थंकरदेव निमित्त पड़ते हैं। उतना आलम्बन है।

मुमुक्षु : आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है। ...करनेयोग्य नहीं, परन्तु आये बिना रहता नहीं। कमजोरी से (आता है)। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! क्या हो? यह तो अन्दर से बात आयी थी। तब तो सबको कहते थे ... तुम्हारी बात खोटी है। मार्ग तो यह है। समझ में आया? परिवर्तन किया तो कुछ कारण होगा या नहीं? समझ में आया? यह विचार करते नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से...** यहाँ उड़ा दे कि देखो, भगवान की मूर्ति और पर का आलम्बन नहीं, ऐसा यहाँ कहा। केवली की स्तुति कहकर ३१वीं गाथा में (कहा)। तब कहा कि पर की स्तुति, वह केवली की स्तुति नहीं। यह स्थानकवासी उड़ा देते हैं। देखो, इनकार किया है वहाँ स्तुति का। परन्तु वह तो व्यवहारस्तुति पर की है और निश्चयस्तुति नहीं, इस अपेक्षा से, परन्तु व्यवहारस्तुति के काल में व्यवहारस्तुति आती है। समझ में आया? खींचतान करे, ऐसा नहीं चलता, भाई! यह तो 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही, वहाँ वहाँ वह वह आचरे आत्मार्थी जन सही।' यह कहीं ... यह तो वीतरागमार्ग है। यह कहीं किसी का पक्ष या पंथ है?

कहते हैं कि आलम्बन नहीं। वस्तु में नहीं। तो वस्तु की दृष्टि करने में आलम्बन

है नहीं दृष्टि करनेवाले को। वस्तु (में) नहीं तो दृष्टि करनेवाले को कोई आलम्बन नहीं। आहाहा! व्यवहार है तो निश्चय होता है, राग है तो द्रव्यसन्मुख हो जाता है, ऐसी बात है नहीं है। तथापि निरालम्बन तत्त्व की दृष्टि होने पर भी... आहाहा! जब तक वीतराग न हो, तब तक सुनने का राग आता है। गणधरों को भी सुनने का राग आता है। आता है, वह अलग बात है, परन्तु वह बन्ध का कारण है। तो कैसे आया? परन्तु जब तक अबन्धपरिणाम, अबन्धस्वरूपी भगवान... '**जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।**' यह अबद्धस्वरूपी भगवान दृष्टि में आया, अबन्ध परिणाम प्रगट हुये, परन्तु पूर्ण अबन्ध परिणाम जब तक प्रगट न हो, तब तक बन्ध का कारण व्यवहारनय का विषय आये बिना रहता नहीं। ऐसी चीज़ है। तथापि वह आता है, वह मोक्ष का मार्ग और धर्म है, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह निरालम्बन में ऐसा ... कुछ भी आलम्बन नहीं। तुम मूर्ति और फूर्ति को आलम्बन मानते हो। यहाँ आलम्बन से इनकार करते हैं। भगवान! तू सुन तो सही, प्रभु! आहाहा! भाई! यह तो तेरे हित के पंथ का मार्ग है। आहाहा! किसी के पक्ष की यह बात नहीं।

भगवान आत्मा जिसमें व्यवहार का विकल्प नहीं, उसे आलम्बन किसका? ऐसा निरालम्ब प्रभु भगवान... वह समवसरण की स्तुति में लिया है, नहीं? वहाँ क्या कहा? जैसा निरालम्बन आत्मा, वैसा निरालम्बन देह। समवसरण की स्तुति बनायी है न पण्डितजी ने! 'जैसा निरालम्बन आत्मा, वैसा निरालम्ब देह।' भगवान का देह भी निरालम्ब। नीचे सिंहासन, गन्धकुटी ऊपर बैठे। स्पर्शते नहीं, शरीर उसे स्पर्शता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी चीज़ दिगम्बर में है, श्वेताम्बर में नहीं। यह अन्तरिक्ष तीर्थ है, वह दिगम्बर का तीर्थ है। ... यह धनकुमार ने ले लिया अभी, बहुत मेहनत करके। दिगम्बर का है, ऐसा सिद्ध किया। धनकुमार ब्रह्मचारी है न! धनकुमार ब्रह्मचारी है। दस भाई हैं। नौ विवाहित हैं और स्वयं बालब्रह्मचारी है। दस भाई हैं। आते हैं न यहाँ। थोड़े वहाँ काम में रुकते हैं। इसने अन्तरिक्ष का सुना था। अन्तरिक्ष दिगम्बर का है। आधीन ले लिया। फिर केस-बेस करे भले, परन्तु वस्तु यह विवाद... विवाद। सत् के पंथ में विवाद कैसा? समझ में आया? वह पंथ ही अनादि सनातन है, तो दिगम्बर धर्म, वही सनातन है। आहाहा! श्वेताम्बर और स्थानकवासी, वह पंथ तो बाद में निकला

है। वह जैन (मार्ग नहीं)। सूक्ष्म बात है, भगवान! उन्हें जैनधर्म में गिना नहीं। ... मोक्षमार्गप्रकाशक के पाँचवें अध्याय में श्वेताम्बर, स्थानकवासी को अन्यमत में डाला है। आहाहा!

एक लालचन्दभाई वकील थे। वांकानेर, वांकानेर। श्वेताम्बर के प्रमुख थे। फिर यहाँ के मुमुक्षु हो गये। वांचन करते हुए बात बैठी कि ओहो! मार्ग तो यह है। लालचन्दभाई... वह मस्तिष्कवाले व्यक्ति थे। वकील थे। तो यह बात बैठ गयी। फिर एक श्वेताम्बर साधु आये थे गाँव में। तो श्वेताम्बर के एकाध-दो व्यक्ति गये उनके पास। भाई! चलो न वहाँ प्रश्न करने। महाराज आये हैं। वह व्यक्ति तो इतना कड़क था। ऐसा कह दिया कि जाओ, मैं तो मुसलमान को गृहीतमिथ्यात्व मानता हूँ, वैसे श्वेताम्बर को गृहीतमिथ्यात्व मानता हूँ। ऐई...! पोपटभाई! बहुत कड़क थे, वकील थे। लॉजिक-न्याय से यह बात उन्हें बैठ गयी कि ओहो! मार्ग तो यह है। तो उसके साधु आये तो कहे आओ, पूछने आओ। बड़े विद्वान आये हैं। कहा, मैं तो मुसलमान और श्वेताम्बर दोनों को एक मानता हूँ। पण्डितजी! वह गृहीतमिथ्यात्व की अपेक्षा से। फिर मिथ्यात्व में अन्तर हो थोड़ा। वह तो मिथ्यात्व के असंख्य भेद हैं न। भले थोड़ा भेद परन्तु है तो मिथ्यात्व। आहाहा! अरे! प्रभु! विवाद की यह बात नहीं, भगवान! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! उसमें डाला है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में डाला है। मुसलमान, वैशेषिक, बौद्ध और श्वेताम्बर और स्थानकवासी सबको एक में डाला है। गृहीतमिथ्यात्व में सबको डाला है। पाँचवें अध्याय में।

एक श्वेताम्बर साधु ऐसे थे कि मोक्षमार्गप्रकाशक देखा। वल्लभविजय था एक। उसने तो सजाया... सजाया समझे? हजामत सबकी कर डाली है। वह तो वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान आत्मा... विकल्प की वृत्ति बिना की चीज़ है। यह कहा न? आलम्बन नहीं। जिसे विकल्प राग है, वह तो व्यवहार हुआ। निश्चय में क्या है? राग का आलम्बन है ही नहीं। आहाहा! भगवान का आलम्बन भगवान आत्मा को नहीं। भगवान आत्मा को भगवान का आलम्बन कैसा? यह तो कहा न!

निश्चय से परमात्मा को... ऐसी भाषा ली है। आत्मा को परमात्मा शब्द से ही

बुलाया है। एक समय की पर्याय के अतिरिक्त पूरा भगवान परमात्मा है। आहाहा! अरेरे! लक्ष्मी घटती है, बाप मर जाता है, फिर लड़के विवाद करते हैं। उसी प्रकार केवलज्ञानी परमात्मा का विरह पड़ा। केवलज्ञान की प्राप्ति का विरह पड़ा। यह अन्दर ही अन्दर लड़के झगड़ते हैं। यह मार्ग हमारा, वे कहे यह मार्ग हमारा। समझ में आया? मार्ग तो यह है, बापू! निरालम्बन परमात्मा चिदानन्दस्वरूप नित्यानन्द जिसे उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! निश्चय परमात्मा को अस्तिरूप से रहने में अपने उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह १०१ गाथा में आया न? प्रवचनसार। उत्पाद उत्पाद से, व्यय व्यय से, ध्रुव ध्रुव से। उत्पाद उत्पाद के आलम्बन से, व्यय व्यय के आलम्बन से, ध्रुव ध्रुव के आलम्बन से। समझ में आया? प्रवचनसार की १०१ गाथा। आया न? देखो, **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंशों के धर्म हैं। अंश भंग-उत्पाद-ध्रौव्यस्वरूप निज धर्मों द्वारा आलम्बित एक साथ ही भासित होते हैं,...** व्यय का आलम्बन व्यय को, उत्पाद का आलम्बन उत्पाद को, ध्रुव का आलम्बन ध्रुव को। १०१ (गाथा) है। १६० पृष्ठ है, १६० पृष्ठ है। देखो, तीसरा पैराग्राफ। **ये तीन अंश...** व्यय-उत्पाद(-ध्रौव्य) बीच में है। तीन अंश... (संस्कृत) टीका में लें तो '**उत्पादव्ययध्रौव्याणि हि पर्यायानालम्बन्ते**' अपना आलम्बन अपने में है। उत्पाद का आलम्बन उत्पाद, उत्पाद का आलम्बन ध्रुव नहीं। आहाहा! समझ में आया? और फिर भावार्थ में तो बहुत लिया है भाई ने तो।

नष्ट होते हुए भाव का नाश, उत्पन्न होते हुए भाव का उत्पाद और स्थायी भाव का ध्रौव्य एक ही साथ है। इस प्रकार नाश नष्ट होते भाव के आश्रित है... भाावार्थ है। **नाश नष्ट होते भाव के आश्रित है, उत्पाद उत्पन्न होते भाव के आश्रित है और ध्रौव्य स्थायी भाव के आश्रित है,...** आहाहा! समझ में आया? उत्पाद को ध्रुव के आश्रय की आवश्यकता नहीं। आहाहा! और ध्रुव को रहने के लिये उत्पाद-व्यय के आश्रय की आवश्यकता नहीं। आहाहा! टीका में है। १६१ पृष्ठ पर स्पष्ट किया है। है? नाश **नष्ट होते भाव के आश्रित है, उत्पाद उत्पन्न होते भाव के आश्रित है और ध्रौव्य स्थायी भाव के आश्रित है; नाश-उत्पाद-ध्रौव्य उन भावों से भिन्न पदार्थरूप नहीं। और वे भाव भी**

द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं है, इसलिए यह सब, एक द्रव्य ही है। परन्तु उत्पाद के आश्रित उत्पाद है। आहाहा! संस्कृत टीका है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी के आश्रय से नहीं। उत्पाद उत्पाद के आश्रय से, व्यय व्यय के आश्रय से, ध्रुव ध्रुव के आश्रय से। उत्पाद ध्रुव के आश्रय से नहीं। है १०१ गाथा। प्रवचनसार है। द्रव्य के आश्रय से नहीं, वह तो उत्पन्न होने की अपेक्षा से, परन्तु उत्पन्न हुई, इसे कोई अपेक्षा नहीं। संस्कृत है। उसमें १०१ गाथा में पाठ है। मोक्षमार्ग की उत्पाद पर्याय को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यहाँ कहा कि द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। आश्रय का अर्थ? परसन्मुख लक्ष्य था, उसे स्वसन्मुख किया तो आश्रय किया, ऐसा कहा गया है। बाकी तो पर्याय, पर्याय में रहकर द्रव्य का ज्ञान करती है। सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? ऐसे तो द्रव्य के आश्रय से समकितदृष्टि कहा न! आश्रय का अर्थ इतना कि पर्याय ऐसे थी, वह ऐसे गयी, इतना आश्रय कहा जाता है।

मुमुक्षु : पर्याय द्रव्य की मोहताज नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सन्मुख हुई न, बस इतना। आहाहा! पर्याय द्रव्य से दूर थी, उस पर्याय में द्रव्य का समीपपना आया, इतना आश्रय कहा जाता है। पर्याय में द्रव्य दूर था। पर्याय का लक्ष्य राग के ऊपर था तो पर्याय में द्रव्य दूर था। वह पर्याय इस ओर झुकी तो पर्याय में द्रव्य समीप आ गया। आहाहा!

मुमुक्षु : कितना दूर था?

पूज्य गुरुदेवश्री : परलक्ष्य करता है, उतना दूर था। यह हमारे लड़के हैं न, वहाँ घातकीखण्ड में। घाती क्या कहलाता है? अपने यह घाटकोपर लड़के हैं न। यह अध्यात्म के अभ्यासवाले। अपने निहालभाई की पुस्तक का बहुत अभ्यास है। वह करते... करते... करते... उनसे जरा चर्चा हो गयी थी। एक व्यक्ति ने कहा कि पर्याय द्रव्य से दूर है। तो कहे, कितनी दूर है? कि लोग और अलोक जितनी दूर है। फिर यहाँ आये और कहा कि ऐसा नहीं है। यह दूर का अर्थ पर्याय में द्रव्य नहीं और द्रव्य में पर्याय को इतनी दूर कहा जाता है। दूर कहीं पर्याय दूर है और द्रव्य यहाँ रहता है, ऐसा

है नहीं। आहाहा! अन्यत्र है। ऐई! क्या कहा जाता है? अतुल उसमें था न वहाँ? वह तो पाँच-छह व्यक्ति—लड़के हैं न। भूपत-भूपत। है घाटकोपर। भूपत और वह भाई आये हैं या नहीं मणिभाई? मणिभाई आये हैं? मणिकान्त। नहीं आये? सवेरे देखा था मणिकान्त को। मैं यहाँ आहार करके यहाँ घूमता था, तब देखा था। गये होंगे कहीं। वह मणिकान्त है, उसका भाई है, फिर ऐसे पाँच-छह जवान हैं। वे यह निहालभाई की पुस्तक बहुत वाँचन करते हैं। उसमें से यह जरा सा निकला। फिर लोग यहाँ आकर बोले ऐसा... ऐसा... दूर का अर्थ द्रव्य में पर्याय नहीं, पर्याय में द्रव्य नहीं, इतनी दूर की अपेक्षा। द्रव्य के क्षेत्र से भिन्न है, पर्याय का क्षेत्र? है तो अन्तर दोनों के क्षेत्र भिन्न, परन्तु पर्याय का क्षेत्र सामने है और द्रव्य का क्षेत्र यहाँ है, ऐसा नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा निश्चय से तो पर्याय का क्षेत्र भी भिन्न है और ध्रुव का क्षेत्र भी भिन्न है। परन्तु वह असंख्य प्रदेश में और असंख्य प्रदेश में है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। असंख्य प्रदेश हैं, उसमें जितने क्षेत्र में से पर्याय उत्पन्न होती है, वह क्षेत्र पर्याय का है और उससे भिन्न जो क्षेत्र है, वह ध्रुव का है। ब्रह्मचारीजी! सूक्ष्म बात है। यह चिद्विलास में स्पष्टीकरण किया है दीपचन्दजी ने। चिद्विलास नहीं यहाँ। सब देखा है न। उसमें लिया है, पर्याय का क्षेत्र पर्याय में है, ध्रुव का क्षेत्र ध्रुव में है। पर्याय की शक्ति से पर्याय है, ध्रुव की शक्ति से पर्याय नहीं। पर्याय के वीर्य के कारण से पर्याय है, द्रव्य के वीर्य से पर्याय नहीं। ऐसा बहुत लिया है। आहाहा! सूक्ष्म, बापू!

भगवान! तेरी चीज़ ही ऐसी है। भाई! तू प्रभु है। वस्तु प्रभु भगवान साक्षात् भगवान है, व्यक्तरूप भगवान है। वह तो पर्याय की अपेक्षा से अव्यक्त कहा जाता है। द्रव्य तो व्यक्त है, प्रगट है। आहाहा! जिसका अस्तित्व पूर्ण ध्रुव ऐसे परमात्मा को परद्रव्य का आलम्बन नहीं होने से आत्मा निरालम्बन है। आहाहा! एक बोल बराबर समझे तो, एक भाव समझे तो दूसरे सब भाव समझ में आ जाये। गड़बड़-गड़बड़ करता है। भाई! यह मार्ग ऐसा नहीं, बापू! अनन्त काल हुआ... आहाहा! पर्याय ने द्रव्य का आश्रय लिया नहीं। अर्थात् स्वसन्मुख हुआ नहीं, अर्थात् जो द्रव्य की पर्याय है, वह द्रव्य के ऊपर गयी नहीं। पर्याय द्रव्य की है व्यवहार से, वह पर्याय राग के ऊपर और पर के ऊपर और या एक समय की पर्याय में एकत्वबुद्धि। एक समय की पर्याय में एकत्वबुद्धि, वही

मिथ्यात्व है। समझ में आया? यह ९३ गाथा में है न भाई! ९३ (गाथा) प्रवचनसार। '**पज्जयमूढा हि परसमया**' प्रवचनसार ९३।

मुमुक्षु : इसमें ही विवाद निकाला था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ा विवाद यशोविजय ने निकाला है। यशोविजय एक श्वेताम्बर आचार्य हो गये हैं बड़े। ९३-९३, पहली गाथा ज्ञेय (अधिकार की)। '**पज्जयमूढा ही परसमया**' तो उसमें श्वेताम्बर के यशोविजय हैं, उन्होंने भूल निकाली कि पर्यायमूढ़ा परसमया तो वेदान्त हो जायेगा। अरे! ऐसा नहीं। यहाँ तो एक समय की पर्याय को अपना पूर्ण मानना, वह पर्यायमूढ़ है। समझ में आया? दिगम्बर के ८४ बोल विरुद्ध निकाले हैं यशोविजय ने। और उसके सामने हेमराजजी, प्रवचनसार का अर्थ किया न? हेमराजजी ने ८४ बोल निकाले हैं, उसके उत्तर भी निकाले हैं। दोनों हैं, दोनों पढ़े हैं। यहाँ है न उत्तर उनका? हेमराजजी का। ८४... आया है। उत्तर है और उस यशोविजय का। यशोविजय का है न, वह पढ़ा है न सब? उसमें ऐसा है कि '**पज्जयमूढ़ा हि परसमया**' ९३ में कहा है, वह झूठी बात है। वेदान्त हो जायेगा। परन्तु यहाँ तो पर्याय जितना आत्मा को माने, (उसकी बात है)।

मुमुक्षु : पर्याय को तो मानता है, द्रव्य को नहीं मानता!

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को माने एक समय की अवस्था को। क्योंकि उसके ऊपर अनादि का लक्ष्य है और पूरा घुटन ही पर्याय में है। पर्याय में (खड़े रहकर) द्रव्य ऐसा है और वैसा है, ऐसा कहता है, परन्तु पर्याय द्रव्य की ओर झुकती नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बापू ऐसा है। तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा कहा, ऐसा यहाँ लिखा है।

आत्मा निरालम्बन है। कैसा आत्मा? **निश्चय से परमात्मा को...** यह आत्मा। निश्चय से परमात्मा, वह आत्मा। आहाहा! है? **निश्चय से परमात्मा को...** वे भगवान हो गये, उनकी यहाँ बात नहीं। यह तो त्रिकाल निश्चय से परम आत्मा परमस्वरूप, परमपारिणामिकभाव अकेला ज्ञायकभाव, पर्याय की क्रियारहित निष्क्रियभाव। आहाहा! राग की क्रिया तो नहीं, पर्याय की क्रिया से रहित निष्क्रिय आत्मा को यहाँ निश्चय से

परमात्मा कहा है। उस परमात्मा को **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से आत्मा, निरालम्ब है।** आहाहा! पश्चात् विशेष। चौदह अभ्यन्तर परिग्रह। अभी तो देरी है। यह पद पूरा हुआ। यह आलम्बन... व्याख्यान पूरा हुआ, ऐसा नहीं।

देखो, **मिथ्यात्व,...** परिणाम निश्चय निष्क्रिय भगवान में है नहीं। पर्याय में मिथ्यात्व है, आहाहा! वस्तु में नहीं। वस्तु तो परमस्वरूप अखण्डानन्द प्रभु सम्यक्स्वभाव सत् से परिपूर्ण भरपूर है, उसमें मिथ्यात्व है नहीं। समझ में आया? तो उसमें मिथ्यात्व नहीं तो उसका लक्ष्य करने से मिथ्यात्व का नाश होता है। जिसमें मिथ्यात्व नहीं, ऐसे भगवान परमात्मा का लक्ष्य करने से, उसमें मिथ्यात्व नहीं, (इसलिए उसका) लक्ष्य करने से मिथ्यात्व का नाश होता है। समझ में आया? दूसरी कोई पद्धति-उपाय है नहीं। आहाहा! मिथ्यात्व नहीं। **वेद...** नहीं वेद—स्त्री, पुरुष, नपुंसक की वासना, वह भगवान आत्मा में नहीं, पर्याय में है। निश्चय अभ्यन्तर परिग्रह की बात है यह। यह अभ्यन्तर परिग्रह वस्तु में नहीं। आहाहा! वस्तु में नहीं तो अपरिग्रह हो सकता है। यदि परिग्रह ही आत्मा हो तो अपरिग्रह हो नहीं सकता। आहाहा! राग का भी परिग्रह आत्मा में नहीं।

वेद,... वासना स्त्री, पुरुष, नपुंसक। भाववेद, हों! आहाहा! यह वृत्ति जो उठती है स्त्री की पुरुष को और पुरष की स्त्री को, वह वासना भगवान वस्तु में नहीं। आहाहा! अवेदी भगवान है। पर्याय में अवेदी तो आगे जाकर होता है, परन्तु अवेदी है तो अवेदी होता है। आहाहा! समझ में आया? बापू! यह तो केवलज्ञानी का मार्ग। आहाहा! अभी उसमें लिखा है न भाई ने—हरिभाई ने। वींछिया में बोला जाता था वह। भाषा लिखी है। संसार को पार। उसमें आया था। नहीं बोले थे? 'मुझे अब रुचे नहीं संसार, मुझे जाना है उस पार।' अन्त में आया है। जहाज बनाया है। जहाज, उसमें मनुष्य बैठा है। यह उस वींछिया में बोला गया था। पहले जब थे न ... ९९। ३२ वर्ष हुए। 'मुझे अब रुचे नहीं संसार, मुझे जाना है उस पार।' आहाहा! संसार पर्याय से रहित भगवान आत्मा वहाँ मैं जाऊँगा तो संसाररहित हो जाऊँगा। जिसमें संसार नहीं, उसका आश्रय करने से संसार का अभाव हो जाता है। आहाहा! उदयभाव आदि तो संसार है। रागादि की क्रिया व्यवहार की, वह तो संसार है। तो संसार में उस पार जाना हो तो संसार का आश्रय

लेकर जाते हैं ? आहाहा ! संसाररहित भगवान आत्मा... वह कहीं भाषा पड़ी थी थोड़ी-थोड़ी। ... अन्यत्र दी है न कहीं नहीं ? मूळी, मूळी। वह कुँवारी थी। ऐसी भाषा थी, हों! उस पार। ऐसा बोली थी। मुझे तो संसार के उस पार जाना है। संसार ऐसा उदयभाव, वह संसार। संसार कोई आत्मा की पर्याय से भिन्न रहता है, ऐसा नहीं। शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, दुकान, वह संसार नहीं। वह तो संसार के निमित्त हैं। संसार तो अन्दर उदयभाव, वह संसार है। समझ में आया ? शरीर, कुटुम्ब, यह स्त्री, पुत्र छोड़े तो संसार छोड़ा, यह खोटी बात है। दीक्षा ली तो यह संसार छोड़ा यह बात खोटी है। संसार छोड़ा उसे कहते हैं कि जिसने उदयभाव आत्मा में नहीं, ऐसा आत्मा का अनुभव करके उदयभाव को छोड़ा, उसने संसार छोड़ा। स्त्री, पुत्र, परिवार तो अनन्त बार छोड़े हैं। और वह संसार हो शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, धन्धा तो मरते हुए सब छूट जाता है, तो संसार छूट जाये तो उसका मोक्ष हो जाये। आहाहा ! संसार तो उदयभाव है। यह अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है। वाँचा था आज।

जहाँ वेद की वासना नहीं... आहाहा ! ऐसा भगवान निर्विकल्प परमात्मस्वरूप। उसका आश्रय करने से वेद की वासना का नाश होता है। दूसरा कोई उपाय नहीं। इन्द्रियदमन करे और कम खाये.... समझ में आया ? वह तो राग है। सूरदास में आता है न ? अन्यमत में सूरदास में। आँख फोड़ डाली। स्त्री को देखकर ऐसा हुआ। वेश्या का रस लगा। वेश्या के घर में रास्ता नहीं था तो सर्प लटकता था। तो उसे पकड़कर अन्दर गया। भूल गया कि यह सर्प है या नहीं। वेश्या का रंग बहुत था। फिर समझ में आया कि ओहो ! इस आँख से सब नुकसान हुआ। आँख फोड़ डालो। यह सूरदास हुए न अन्यमत में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, खबर है न। श्रीकृष्ण ने बनाया उन्होंने। श्रीकृष्ण थे तो उनका हाथ पकड़कर सूरदास चलते थे। कृष्ण ने हाथ छुड़ा दिया। तो सूरदास कहते हैं कि प्रभु ! तुम हाथ छुड़ाकर गये, मेरे हृदय में से तुम नहीं जा सकोगे। आता है न ? आता है, खबर है, सब देखा है।

यहाँ कहते हैं कि इन्द्रिय छोड़े तो इन्द्रिय का दमन हो, वह खोटा है। समझ में आया? ऐसे देखे और जरा थप्पड़ लगावे। आँख क्या दिखलावे? आँख से रूप देखे तो... भ्रमणा है वह सब। समझ में आया? वह दोष है, वह पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। तो द्रव्य का आश्रय करने से दोष नाश होता है, दूसरा कोई इसका उपाय नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

वेद नहीं, **राग,...** नहीं। भगवान आत्मा में राग नहीं। ओहोहो! भगवान की भक्ति का राग आत्मा में नहीं। उस राग के जितने प्रकार कहे, वे सब वस्तु में नहीं। ऐसी वस्तु का प्रकाश करने से, दृष्टि करने से विकार का नाश होता है। इसके लिये यह कहा गया है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ३, रविवार, दिनांक २४-०८-१९७५
गाथा - ४३, प्रवचन - १४

यह नियमसार, शुद्धभाव अधिकार। शुद्धभाव का अर्थ त्रिकाली ज्ञायकभाव। एक समय की पर्याय के अतिरिक्त की चीज़ जो है, उसे यहाँ शुद्धभाव, ध्रुवभाव, परमस्वभाव, परमात्मा कहा जाता है। आहाहा! उस परमात्मा में इसकी नजर अनन्त काल में गयी नहीं। परमात्मस्वरूप भगवान पूर्णानन्द। अन्यमत में ऐसा आता है कि मेरी 'नयन के आलस्य से रे मैंने निरखे न नयन से हरि।' हरि अर्थात् आत्मा। पंचाध्यायी में लिया है। पंचाध्यायी में हरि (आता है)। अज्ञान और राग-द्वेष को हरनेवाला ऐसा भगवान आत्मा हरि है। समझ में आया? हरनेवाला। पंचाध्यायी में श्लोक है। आत्मा को हरि कहते हैं। क्यों? कि अज्ञान और राग-द्वेष को हरनेवाला—नाश करनेवाला अर्थात् अज्ञान और राग-द्वेष उसमें नहीं तो उसका आश्रय करनेवाले को राग, द्वेष और मोह नाश होता है। आहाहा! समझ में आया? उसमें यह कहते हैं। श्रीमद् में एक वाक्य है, 'हरतां फरतां प्रगट प्रभु देखु रे, मेरा जीना रे सफल तव लेखुं रे।' 'हरतां फरतां प्रगट हरि देखुं।' त्रिकाल ज्ञायकभाव को मैं देखूँ, वह मेरा परमात्मा है। आहाहा! 'हरतां फरतां प्रगट हरि देखुं रे, मेरा जीवन सफल तब देखुं रे, मुक्तानन्द का नाथ विहारी रे, यह ओघा जीवन डोरी हमारी रे...' आत्मा की जीवनडोरी हमारी हमारे पास है। समझ में आया? आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

निश्चय से... निराग के पश्चात्। भगवान आत्मा निश्चय अर्थात् सत्यार्थ से, यथार्थरूप से, वास्तव में **समस्त पापमलकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में समर्थ,...** एक तो यह बात है। कि समस्त संसार का उदयभाव, वह पाप है। चाहे तो पुण्य का उदय हो, वह भी पाप है। आहाहा! उस **समस्त पापमलकलंकरूपी कीचड़ को...** यहाँ तो उस पुण्य को ही पाप कहा गया है। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु से विरुद्ध, आनन्द से विरुद्ध विकल्प आदि उसमें है नहीं। एक बात। दूसरी, **पापमलकलंकरूपी कीचड़**

को धो डालने में समर्थ,... अर्थात् कि उसका आश्रय लेने से पुण्य और पाप का भाव नाश हो जाता है। यह बात है। भगवान पूर्ण आनन्दस्वरूप सहजात्म परमात्मस्वरूप आत्मा है। जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही यह आत्मा है। समझ में आया? इसे दृष्टि में लेने से यह चीज़ ऐसी है कि जिसमें पाप और पुण्य का अभाव है और दूसरे प्रकार से यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ के आश्रय से पुण्य-पाप का नाश हो जाता है। उसमें है नहीं और उसका आश्रय करने से नाश होते हैं। दो बातें हैं। आहाहा! यह धर्म की क्रिया और यह धार्मिक आचरण। आहाहा! कठिन जगत को। धन्नालालजी!

देखो! क्या कहते हैं, **कीचड़ को धो डालने में समर्थ,...** कैसा है भगवान आत्मा? **सहज, परमवीतराग-सुखसमुद्र में मग्न...** है वह तो। आहाहा! परमवीतराग सुखसमुद्र वह भी सहज। सहजात्मस्वरूप, सहजस्वरूप परमस्वभावभाव जिसमें परिणमन की पर्याय भी नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान सहज-स्वाभाविक **परमवीतराग-सुखसमुद्र...** परमवीतराग सुख का समुद्र भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? परम सहज, परमवीतराग सुखसमुद्र में। टीकाकार को शब्द कम पड़ते हैं। इसकी व्याख्या करते हुए शब्द कम पड़ते हैं, ऐसी अन्दर में गम्भीरता है। भगवान आत्मा स्वाभाविक परमवीतराग सुखसमुद्र में मग्न है। पर्याय की यहाँ बात नहीं। सुखसमुद्र स्वरूप ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : (मग्न कहने से पर्याय की बात नहीं?)

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु त्रिकाल है, उसमें है इतना। मग्न पर्याय की बात नहीं। **सहज, परमवीतराग-सुखसमुद्र में मग्न (डूबी हुई लीन)...** अन्दर स्वरूप की बात है, पर्याय की बात नहीं। अन्दर स्वभाव में डूबा हुआ पड़ा है आनन्द में, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र भगवान आत्मा, उसमें वह लीन है। बाहर में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। पर्याय में आता नहीं, विकल्प में तो कहाँ से आवे? आहाहा! समझ में आया? कि यह सम्यग्दर्शन का यह विषय। आहाहा! और उस सम्यग्दर्शन की पर्याय **सहज, परमवीतराग-सुखसमुद्र में मग्न...** पड़ी है वस्तु। उसे सम्यग्दर्शन, समकित की पर्याय द्रव्य में पसरती है। द्रव्य में सम्यग्दर्शन की पर्याय फैलती है। समझ में आया? बात तो यह मुद्दे की रकम की बात है।

प्रगट सहजावस्थास्वरूप... प्रगट सहज—अव—निश्चय स्थ। ऐसा। अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं लेना यहाँ। समझ में आया? स्वाभाविक प्रगट सहज अवस्थ। अव अर्थात् निश्चय, स्थ ऐसा स्वरूप। आहाहा! भाषा ऐसी है। बहुत जगह ऐसा आता है। जयसेनाचार्य की टीका में सहज अवस्थास्वरूप। अव अर्थात् निश्चय स्थ। ऐसा लेना। अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं लेना। पण्डितजी! आहाहा! अवस्थ, अवस्था। निश्चय में स्थित है वहाँ। आहाहा! ध्रुव भगवान परमपरमात्मा, यह आया था न पहले? उसमें आया था, नहीं?

मुमुक्षु : निश्चय से परमात्मा को....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। परमात्मा लिया था न। चौथी लाईन।

निश्चय से परमात्मा को परद्रव्य का अवलम्बन न होने से... परमात्मा भगवान त्रिलोकनाथ... आहाहा! उसे परद्रव्य का आलम्बन नहीं। तीन लोक का नाथ और वाणी का भी जिसमें आलम्बन नहीं। आहाहा! ऐसी वह चीज़ स्वतः सहज त्रिकाली पड़ी है अन्दर, प्रगटरूप वस्तु पड़ी है। आहाहा! नजर के आलस्य से। वह नजर वहाँ गयी नहीं। 'नजर के आलस्य से रे निरखे न नयन से हरि।' अपने हरि भगवान को नयन के आलस्य से देखा नहीं। आहाहा! समझ में आया? परमात्मा ने दर्शन दिये, ऐसा कहते हैं न? वह यह परमात्मा। समझ में आया? ओहो! जिसके पास केवलज्ञान की पर्याय भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। यह निश्चय विषय है। आहाहा! केवलज्ञान सिद्धपद की पर्याय, वह द्रव्य में भेद पड़े या बन्ध अवस्था और मोक्ष अवस्था, यह दोनों व्यवहार हैं। आहाहा! दोनों अवस्था से भिन्न भगवान जो बन्ध का कारण भी नहीं और बन्ध के कारण को उत्पन्न करनेवाला भी नहीं, मोक्ष का भी कारण नहीं और मोक्ष के मार्ग का भी वह कारण नहीं। समझ में आया? यह तो मूल तत्त्व की बात है, भाई!

कहते हैं **सहज...** प्रगट सहज। प्रगट देखो, भाषा ली है। पर्याय की अपेक्षा से पर्याय व्यक्त है, वस्तु अव्यक्त है। ४९ में कहा। ४९ (गाथा समयसार में) अव्यक्त के छह बोल लिये हैं न, वहाँ ऐसा लिया है कि छह द्रव्यस्वरूप (लोक) ज्ञेय-व्यक्त है, उससे भगवान भिन्न अव्यक्त है, ऐसा कहा। पहला बोल है। आहाहा! आया न? छह

द्रव्यस्वरूप ज्ञेय, वह व्यक्त है। तो उससे भगवान आत्मा भिन्न अव्यक्त है। सप्तम वह आत्मा है। धर्मदास क्षुल्लक ने तो ऐसा ले लिया है, इस शब्द का अर्थ। भगवान आत्मा सातवाँ हो जाता है। सप्तमा, सातवाँ। ऐसा लिया है। इस शब्द का अर्थ लिया है। छह द्रव्यस्वरूप ज्ञेय व्यक्त है, उससे भगवान आत्मा भिन्न अव्यक्त है। भिन्न लिया, वह छह द्रव्य से भिन्न तो सातवाँ (द्रव्य) हो गया। क्षुल्लक धर्मदास, सम्यग्ज्ञान दीपिका है न, उसमें यह लिया है। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त जीव, अनन्त ज्ञेय, वह तो एक समय की पर्याय में ज्ञात हो, इतनी पर्याय की सामर्थ्य है। तो कहते हैं कि वह पर्याय और छह द्रव्य जो जाने पर्याय में, वह व्यक्त है। उनसे भगवान द्रव्यस्वभाव तो अव्यक्त है। तो पर्याय की अपेक्षा से व्यक्त कहा। यहाँ दूसरा लिया है, देखो! यहाँ प्रगट कहा। वस्तु प्रगट ही है। समझ में आया? आहाहा! छह बोल लिये न अव्यक्त में? पहला बोल ऐसा लिया है। दूसरा बोल ऐसा लिया है कि कषायभावरूपी भावक का भाव, वह व्यक्त है। भगवान आत्मा उससे भिन्न अव्यक्त है। आहाहा! चेतन के सामान्य स्वभाव में चैतन्य की व्यक्तता, प्रगटता अन्तरलीन है। इसीलिए भगवान आत्मा को अव्यक्त कहते हैं। जो यहाँ प्रगट कहते हैं, वह उसमें अव्यक्त कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं। एक समय की पर्यायमात्र नहीं, इसलिए भगवान को अव्यक्त कहा। भगवान यह, हों! आहाहा! व्यक्त और अव्यक्त दोनों को जानने पर भी व्यक्त को द्रव्य स्पर्श नहीं करता।

मुमुक्षु : थोड़ा स्पष्टीकरण करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, करते हैं न। कहते हैं। यह पाँचवाँ बोल है। व्यक्त पर्याय, अव्यक्त त्रिकाली वस्तु। दोनों एक साथ जानने में आने पर भी द्रव्यस्वभाव व्यक्त को स्पर्श नहीं करता, द्रव्यस्वभाव पर्याय को छूता नहीं। यह पाँचवाँ बोल है। यह तो बहुत बार लिया है। टीका में आ गया है।

मुमुक्षु : पर्याय में मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : तथापि ज्ञान में। ज्ञान में दोनों मिश्रित भासित होते हैं कि यह अव्यक्त और व्यक्त साथ में जानने में आते हैं, तथापि जो अव्यक्त वस्तु है, वह व्यक्त को

स्पर्शती नहीं। पाँचवाँ बोल है। समयसार में। सबके ऊपर व्याख्यान हो गये हैं।

मुमुक्षु : पर्याय .... परिणमन...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय नहीं, पर्याय को स्पर्शता नहीं। ज्ञान में व्यक्त और अव्यक्त दोनों एक साथ जानने में आने पर भी व्यक्त को भगवान आत्मा छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। यह पाँचवाँ बोल है। छठवाँ जरा सूक्ष्म है। बाह्य-अभ्यन्तर अनुभव में आने पर भी व्यक्त जो है, उससे परम उदास है। अर्थात् पर्याय में उदास है, पर्याय में... नहीं। द्रव्यस्वभाव... द्रव्यस्वभाव... द्रव्यस्वभाव... पर्याय से उदास है। आहाहा! पर्याय से उदास है अर्थात् पर्याय में नहीं आता। पर्याय से उदास है। यह अव्यक्त के छह बोल हैं। ४९ गाथा समयसार।

यहाँ कहते हैं कि यह प्रगट है। वह वस्तु की अपेक्षा से प्रगट कहा। वह तो पर्याय की अपेक्षा से अव्यक्त कहा था। समझ में आया? आहाहा! भगवान पर्याय में आता नहीं, इस अपेक्षा से अव्यक्त कहा, परन्तु वस्तु जो है, वह तो प्रगट सहज अवस्थास्वरूप। सहज-अवस्थ, सहज-निश्चयरूप अवस्थ, निश्चय स्वरूप ऐसा स्वरूपवाला होने से। आहाहा! स्वस्वरूप **सहजज्ञानशरीर...** देखो, जिसका ज्ञान ही शरीर है। सहजस्वाभाविक त्रिकाल। त्रिकाल ज्ञान जिसका शरीर है। आहाहा! समझ में आया? **सहजज्ञान-शरीर, उसके द्वारा पवित्र होने के कारण...** आहाहा! **पवित्र होने के कारण आत्मा, निर्दोष है।** आहाहा! त्रिकाल स्वरूप निर्दोष है, ऐसा कहते हैं। यहाँ पर्याय की बात नहीं। आहाहा! समझ में आता है?

भगवान आत्मा वस्तुरूप से, ध्रुवरूप से, सत् के सत्त्वरूप से, अर्थ के भावरूप से जो त्रिकालस्वरूप है, वह प्रगट अवस्थारूप है। अवस्थरूप है। प्रगट अपने में रहा हुआ है। आहाहा! ऐसे **सहजज्ञान-शरीर, उसके द्वारा...** सहजज्ञानशरीर। यह ज्ञानशरीर। शरीरशरीर, रागशरीर या पर्याय भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? अकेला ज्ञानस्वरूप ही पूरा। आहाहा! समझ में आया? भाई! वह दृष्टि देना, ऐसा कहते हैं। बाकी सब बातें हैं। यह तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव, उनकी वाणी में (जो आया वह) दिगम्बर सन्तों ने अपनी वाणी में यह बात कही। आहाहा! भगवान ने जो कहा था और कहने में आया

था, वह इन सन्तों ने अपनी वाणी में कह दिया है। आहाहा! समझ में आया? जिसके माहात्म्य की क्या बात करें! जिसके समक्ष केवलज्ञान की भी कीमत नहीं। क्योंकि वह पर्याय है और भेद है तो सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। आहाहा! ११वीं गाथा में कहा न, कि '**ववहारोऽभूदत्थो**'। व्यवहार के चार भेद—सद्भूत उपचारिक व्यवहार, सद्भूत अनुपचारिक व्यवहार, असद्भूत उपचारिक व्यवहार, असद्भूत अनुपचारिक व्यवहार। चारों को असत्यार्थ कहा गया है। ११वीं गाथा (समयसार)। चन्दुभाई! आहाहा! इसलिए वहाँ टीका में तो ऐसा लिया, समस्त व्यवहार। समस्त वयवहार कहने से चार भेद। अध्यात्म के, हों! आगम की बात वहाँ नहीं।

मुमुक्षु : सर्व हेय।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व हेय। असत्यार्थ है। आहाहा! सद्भूत उपचार—ज्ञान राग को जाने, वह सद्भूत उपचार व्यवहारनय है। वह भी वहाँ आगे आश्रय करनेयोग्य नहीं। सद्भूत अनुपचार ज्ञान, वह आत्मा—ऐसा सद्भूत अनुपचार व्यवहार, वह भी असत्यार्थ है। और राग ज्ञात होता है, वह राग है, ऐसा ख्याल में आता है, वह असद्भूत उपचार व्यवहार है और उसी समय में ख्याल में नहीं आनेवाला ऐसा राग, उपयोग स्थूल है, इस कारण से, ख्याल में नहीं आता ऐसा राग अबुद्धिपूर्वक है, उसे असद्भूत अनुपचार व्यवहार कहा जाता है। तो चारों ही व्यवहार असत्यार्थ हैं, ऐसा कहा। धन्नालालजी! फिर से। यह है इसमें। यह समयसार है न? व्यवहारनय...

टीका :- व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ होने से अविद्यमान, असत्य, अभूत अर्थ को प्रगट करता है,... आहाहा! यह संस्कृत है, हों! '**व्यवहारनयो हि सर्व एवाभूतार्थत्वाद-भूतमर्थं प्रद्योतयति, शुद्धनय एक एव भूतार्थत्वात् भूतमर्थं प्रद्योतयति।**' आहाहा! दो टुकड़ों में निश्चय और व्यवहार (समाहित कर दिया)। क्या कहा? **व्यवहारनय सब ही...** सबका अर्थ चार। पहले असद्भूत उपचार व्यवहारनय। राग है और ज्ञात होता है, उसे असद्भूत उपचार व्यवहारनय कहा जाता है। वह असत्यार्थ है, वस्तु में है नहीं। और राग को जानता है, ज्ञान जानता है, प्रमाण, प्रमाणज्ञान राग को जानता है, स्व को जानता है और पर को जानता है, ऐसा जो प्रमाण, तो वह प्रमाण सद्भूत व्यवहारनय का

उपचार व्यवहारनय हुआ। सद्भूत व्यवहारनय का उपचार व्यवहार आया। वह असद्भूत कहा राग को। असद्भूत उपचार व्यवहार आया... आहाहा!

फिर से। जो राग ख्याल में आता है, वह असद्भूत उपचार व्यवहार, ख्याल में आता नहीं वह असद्भूत अनुपचार व्यवहार। दो। तीसरा सद्भूत व्यवहार। आत्मा राग को जानता है, यह उपचार सद्भूत व्यवहारनय है। प्रमाण-प्रमाण सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। प्रमाण है, वह सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। निश्चय को जाने और व्यवहार को जाने, उन दोनों को जाने वह प्रमाण। वह प्रमाण स्वयं ही सद्भूत व्यवहारनय का विषय है। सद्भूत उपचार व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! डालचन्दजी! ऐसी बात है। अब चौथा एक बोल रहा। 'ज्ञान, वह आत्मा' वह सद्भूत अनुपचार व्यवहारनय है। ये चारों सब नय अभूतार्थ हैं। अभेद में ये नहीं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहारनय... क्या कहा?

मुमुक्षु : आगम का व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, आगम के नहीं। आगम तो पर को व्यवहारनय कहता है। यहाँ पर के साथ सम्बन्ध नहीं। यहाँ तो उसमें जो राग है, उसके दो प्रकार। असद्भूत उपचार, असद्भूत अनुपचार। ज्ञात होता है, वह असद्भूत उपचार, ज्ञात नहीं होता वह असद्भूत अनुपचार। उसमें है ऐसी बात। पर के साथ सम्बन्ध नहीं। और राग को ज्ञान जाने, इतना भी असद्भूत व्यवहार उपचार। क्योंकि ज्ञान तो अपना है तो सद्भूत है। परन्तु उसे जानता है, ऐसा कहना, वह उपचार है। आहाहा! और ज्ञान, वह आत्मा। यह सातवीं गाथा में कहा है। सातवीं में कहा न? वह सद्भूत अनुपचार है। भेद है न इतना, सद्भूत अनुपचार है। चारों ही नय अभूतार्थ है। यहाँ तो ऐसा कहा। त्रिकाल में इस अपेक्षा में नहीं और अभेद दृष्टि में वह भेद दिखाई नहीं देता तो अभेद की अपेक्षा से भेद को असत्यार्थ कहा गया है। इस अपेक्षा से, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : गौण करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : गौण करके, अभाव करके नहीं। शैली ही ऐसी है। स्याद्वाद शैली भगवान की।

पर्याय को अभूतार्थ कहा, असत्यार्थ कहा। क्यों? कि त्रिकाल की अपेक्षा से पर्याय को गौण करके असत्यार्थ कहा। जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य असत् है। (स्वद्रव्य) सत् है तो परद्रव्य असत् है। ऐसे त्रिकाल की अपेक्षा से... वह तो सर्वथा असत् है, वह बराबर है। स्वद्रव्य की अपेक्षा से सत् है और पर असत् है, वह तो बराबर है। यहाँ जो त्रिकाल को सत् कहकर, पर्याय को असत् कहा, वह गौण करके कहा है। दोनों में अन्तर है। धन्नालालजी! आहाहा! ऐसी भाषा है, भाई!

ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो गजब काम किये हैं! पंचम काल में तीर्थंकर जैसा काम किया है। यह देवसेनाचार्य कहते हैं न, श्लोक है वहाँ। अपने उसमें डाला है न। उसमें है? उसमें है? हिन्दी में नहीं होगा। है? देवसेन आचार्य मुनि सन्त भावलिंगी ऐसा कहते हैं, महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान तीर्थंकरदेव श्री सीमन्धरस्वामी से प्राप्त दिव्यज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ, कुन्दकुन्दाचार्य ने बोध नहीं दिया होता... आहाहा! तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते? समझ में आया? तो क्या दूसरे आचार्य का बलिदान हो गया? समझ में आया?

मुमुक्षु : आप नहीं मिले होते तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं, बात तो ऐसी कहनी है कि यह कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास जाकर ऐसी चीज़ यदि हमको नहीं मिली होती तो हम सच्चे मार्ग को कैसे प्राप्त करते? यह फिर मुनि नहीं हुए? इनके पहले भी मुनि नहीं हुए? गणधर के पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य तो ६०० वर्ष बाद हुए हैं। तो उन्होंने इनको नहीं दिया होता तो हम सच्चा मार्ग कैसे प्राप्त करते? तो बीच में आचार्य हैं, उनका झूठा हो गया? ऐसा है नहीं। उसमें बहुत आचार्य हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्य के पहले बहुत आचार्य हुए हैं न। ६०० वर्ष में हुए हैं न वे तो। ६०० वर्ष में तो बहुत आचार्य हुए हैं। आहाहा! परन्तु यहाँ तो जिनका स्पष्ट कथन, स्पष्ट कथन, भगवान के पास गये थे और वहाँ सुनकर और यहाँ हमको नहीं देते तो सच्चा मार्ग कैसे प्राप्त करते? आहाहा! समझ में आया? यह कैलाशचन्दजी के हिसाब से तो दूसरे आचार्यों का बलिदान (हो गया)। लोगों को खबर नहीं। लोग बेचारे...

मुमुक्षु : कहाँ आया बलिदान?

पूज्य गुरुदेवश्री : बलिदान ऐसा कि यह एक ही सच्चे और दूसरे व्यवहारनय के कथन हैं, चरणानुयोग में ऐसा कि व्यवहारनय का कथन है, वह झूठा हो जाता है इनके कारण।

यहाँ तो कहते हैं कि सद्भूतव्यवहार भी झूठा है, सुन तो सही। करणानुयोग, चरणानुयोग की जो क्रिया है, वह तो असद्भूतव्यवहारनय में जाती है। चरणानुयोग की जो क्रिया व्रतादि, वह तो असद्भूतव्यवहारनय में जाती है। परन्तु यहाँ तो ज्ञान, वह आत्मा और ज्ञान राग को जाने, ऐसा सद्भूतव्यवहार उपचार और सद्भूत अनुपचार असत्यार्थ है। किस अपेक्षा से? गौण करके उसका प्रयोजन व्यवहारनय के आश्रय से अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और प्रयोजन सम्यग्दर्शन-ज्ञान का प्रयोजन त्रिकाल अभेद की अपेक्षा से प्रयोजन सिद्ध होता है। इस (अपेक्षा से) कहते हैं कि वही सत्य, यह असत्य। गौण करके असत्य कहा है। आहाहा! धन्नालालजी! ऐसा मार्ग, भाई!

मुमुक्षु : अनुपचरित असद्भूत....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ... नहीं। यह ख्याल में आता है, वह उपचार असद्भूत, परन्तु उसी समय में ख्याल में नहीं आता, वह अनुपचार राग। असद्भूत अनुपचार व्यवहार। सद्भूत नहीं। वह दूसरी बात। यह तो ख्याल में आता है, इतनी बात है। व्यक्त ख्याल में आता है। यह जाने वह दूसरी बात यहाँ है। यहाँ तो राग ज्ञात होता है, उसे असद्भूतव्यवहारनय उपचार कहा और वह राग अन्दर ज्ञात नहीं होता, अबुद्धिपूर्वक है, उसे असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय कहा गया है। दोनों को यहाँ असत्यार्थ कह दिया। वह तो असद्भूत है ही। अब यहाँ तो ज्ञान राग को जाने, अपने को जाने और राग को जाने, ऐसा कहना, वह असद्भूत उपचारनय व्यवहारनय है, वह अभूतार्थ है। क्योंकि उसके ऊपर लक्ष्य करने से विकल्प उठते हैं। आहाहा! और भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, गुणस्वरूप है—ऐसा भेद करना, वह भी अनुपचार सद्भूतव्यवहारनय कहा जाता है। उसे भी यहाँ असत्यार्थ कहकर, गौण करके असत्यार्थ कहकर त्रिकाली वस्तु को सत्यार्थ कहा गया है कि जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आनन्द

उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! क्या हो? जगत लुट गया है तत्त्व की वस्तु की खबर बिना। आहाहा!

यहाँ यह कहा, हम मुनिजन... आहाहा! सच्चे मार्ग को कैसे जानते? मुनिजन ऐसा कहते हैं। देवसेनाचार्य। आहाहा! क्योंकि कुन्दकुन्दाचार्य तीसरे नम्बर में आये। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमा गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। बीच में आचार्य थे, वे नहीं आये और ये आये। मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मास्तु मंगलं। वीतरागस्वभावी जैनधर्म वह जगत में मांगलिक है। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! इसे समझ में न आवे, इससे कहीं दूसरा मार्ग हो जाये? मार्ग तो जो है, वह है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं अपने, **प्रगट सहजावस्थास्वरूप जो सहजज्ञान-शरीर, उसके द्वारा...** भगवान स्वाभाविक ज्ञान ध्रुव, हों! आहाहा! ज्ञानशरीर लिया। वरना अनन्त गुण उसके हैं। परन्तु ज्ञान की प्रधानता करके सहजज्ञानशरीर पूरा आत्मा। वरना आत्मा तो अनन्त गुण सहजस्वभावी है, परन्तु ज्ञान की प्रधानता असाधारण शक्ति उसकी है, जो स्व और पर को जानने पर भी विकल्प नहीं, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। ऐसा सहजज्ञानस्वरूप त्रिकाल, हों! त्रिकाली **सहजज्ञान-शरीर, उसके द्वारा पवित्र...** भगवान आत्मा। आहाहा! धो डाला, ऐसा कहा न, कीचड़ को। कारणआत्मा निर्दोष है। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! इस एक लाईन में आधा घण्टा हुआ। एक व्यक्ति कहे, वाँच गया समयसार, पन्द्रह दिन में वाँच गया। बहुत अच्छा, बापू! वाँच डाल। भाई! उसका एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर, उसका एक-एक पद बहुत गम्भीर है, भाई! आहाहा! समझ में आया? यह समयसार तो जगत्चक्षु है। ऐसा आता है न अन्त में? अद्वितीय जगत्चक्षु। ओहोहो! आहाहा!

क्रमबद्ध का पण्डितजी ने कहा था, २०१३ के वर्ष में। जबलपुर है न वहाँ? ऐसा कि यह क्रमबद्ध यदि नहीं आया होता तो जैन के एक अंग की कमी रह जाती। (संवत्) २०१३ के वर्ष। १८ वर्ष हुए। उस समय पहले गये थे न।... आहाहा! कहते हैं, एक बोल निर्दोष आत्मा कैसा है? उसकी व्याख्या हुई। आहाहा! त्रिकाली को निर्दोष कहा तो पर्याय सदोष हुई? पर्याय का लक्ष्य करने से राग होता है, इस अपेक्षा से

निर्दोष यह है और वह पर्याय निर्दोष नहीं, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? आहाहा! निर्दोष की बात हुई।

दूसरा। निर्मम, निरालम्ब, निर्दोष। अब निर्मूढ़। निर्मूढ़ की व्याख्या (करते हैं)। निर्मूढ़ की दो व्याख्या है। **सहजनिश्चयनय से...** सहज निश्चयनय से त्रिकाली **सहजज्ञान,...** त्रिकाली **सहजदर्शन,...** त्रिकाली **सहजचारित्र...** त्रिकाली, हों! पर्याय की बात नहीं। आहाहा! **सहज परमवीतरागसुख...** स्वाभाविक परमवीतराग सुखस्वरूप भगवान, **आदि अनेक परमधर्मों के आधारभूत...** आहाहा! द्रव्य है, वह अनन्त परम धर्मों का आधार है। समझ में आया? आहाहा! धर्म जो अनन्त सहजस्वभाव है, वह आधेय है। भगवान आत्मा उनका आधार है। आहाहा! यद्यपि उसमें आधार-आधेय भेद नहीं, परन्तु यहाँ समझाया इतना। कि सहजज्ञान त्रिकाल, सहज आनन्द सुखामृतस्वरूप, ऐसा सहजदर्शन, सहज चारित्र वीतराग सुखस्वरूप ऐसा भाव गुण का, एकरूप द्रव्य उसका आधार कहा गया है। समझ में आया?

भेदज्ञान, संवर अधिकार में प्रथम गाथा में ऐसा लिया है, '**उवओगे उवओगो**', वह दूसरी चीज़ है। '**उवओगे उवओगो**', अपनी निर्मल परिणति के आधार से उपयोग आत्मा है। '**उवओगे**' पहला शब्द है, संवर (अधिकार की) गाथा। '**उवओगे**' निर्मल वीतरागपरिणति में उसके आधार से। क्योंकि उससे ज्ञात होता है। निर्मल परिणति द्वारा ज्ञात होता है। आहाहा! इस कारण से निर्मल परिणति को आधार कहकर, वस्तु त्रिकाल को वहाँ आधेय कहा। आहाहा! क्यों? पर्याय को आधार बनाया। क्यों? पर्याय द्वारा जानने में आया। उस पर्याय द्वारा जानने में आया, द्रव्य द्वारा द्रव्य ज्ञात नहीं होता। आहाहा! कठिन बात, भाई! ऐसा धर्म और ऐसी बात। वह तो दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, पूजा करो, भक्ति करो और शत्रुंजय की यात्रा करो। यह प्रवीणभाई ने अभी भाई ने किया नहीं था? तीन महीने बाबूभाई ने। धर्मचक्र चलाया था न। उसमें एक उलहाना दिया था थोड़ा बाबूभाई को। नहीं? कहा रात्रि में चलाना। यात्रा दिन में करना और रात्रि में चलाना, यह मार्ग नहीं, बापू! अभी यहाँ भाई देखा न दिशा को जाते हुए। बड़ा चूहा मर जाता है रात्रि में। निकले तो दिखाई नहीं देता। सर्प मर गया था,

कल देखा था। बड़ा सर्प था। क्योंकि रात्रि में दिखता नहीं और वह उलझ जाये चलते-चलते। वास्तव में तो ८ से ४ बजे तक भोजन के लिये रात्रि में। कौन? चूहा, सर्प, शेळो। शेळो समझते हो? शेळो होता है कांटावाला। वह सबको पकड़े। शेळो-शेळो। तुम्हारे कुछ कहते होंगे। ... हाँ, वह। वह बहुत मर जाये। कुचल जाये। हमने तो बहुत देखा है न। हमारे तो कायम बाहर जाने का हो। ओहोहो! कल या परसों बड़ा सर्प देखा। ऐसा होगा भले बच्चा परन्तु बड़ा था।

मुमुक्षु : ट्रकवाले तो रात्रि में ही जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ट्रक... परन्तु रात्रि में ध्यान कौन रखे? वह निकले तो चूरा उड़ जाये बेचारे का। आहाहा! वह तो उस काल में वह चीज़ होने की थी, परन्तु भाववाले को प्रमादभाव... समझ में आया? अरे! रात्रि में पूजा का निषेध है तो रात्रि में चलना, यात्रा में जाना दिन में। डालचन्दजी! पंचेन्द्रिय का वध हो जाता है। रात्रि में १० से ४ बजे तक बहुत जीव भोजन के लिये निकलते हैं। पहले घण्टे, दो घण्टे न निकले जीव। फिर तो बहुत निकलते हैं। शेळो-शेळो समझते हो? क्या कहते हैं तुम्हारे? ... काँटावाला होता है। चूरा उड़ जाये। सर्प, चूहा, बिच्छू, नेवला, मोटा चूहा ऐसी जीवांत पंचेन्द्रिय। बापू! यह तो प्रभु का मार्ग है। अहिंसा का है। डालचन्दजी! अपना पक्षकार करे वह सच्चा और दूसरा करे वह खोटा, ऐसी बात यहाँ है? आहाहा! यह अभी दो दिन देखा न। अपने दो दिन से ऐसे जाते हैं, परन्तु इससे पहले दो दिन। एक सर्प बड़ा इतना चूहा, चूरा। और सर्प ऐसे कुचल गया और मर गया। ऐसे चूहे, सर्प, नेवला, मोटा चूहा अरे! खरगोश। ससला समझते हो? खरगोश। रात्रि में निकले भोजन के लिये, उसमें क्या कहलाता है वह? बस और ट्रक (ऊपर फिर जाये)। चूरा। आहाहा! यह तो जैन का मार्ग है, भाई! मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में तो कहा है कि मन्दिर-मन्दिर बनते हों परन्तु त्रस की हिंसा का (ख्याल) करना। स्थावर की हिंसा तो उसमें होती है, परन्तु त्रस न मरे, उसका ध्यान रखना। आहाहा! समझ में आया? डालचन्दजी! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! भगवान आत्मा जो परमात्मस्वरूप है, निश्चय से परमात्मा,

वह अनन्त ज्ञान, दर्शन, सहजस्वभाव, उसका आत्मा आधार है। गुण आधेय है, प्रभु आधार है। यहाँ टिकने की अपेक्षा से कहना है। और उसमें जो भेदज्ञान में आया कि निर्मल परिणति के कारण से द्रव्य ज्ञात हुआ, इसलिए निर्मल परिणति आधार है और आत्मा आधेय है।

मुमुक्षु : भेद नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद नहीं, ऐसा नहीं, परन्तु आधार-आधेय कहना है। यहाँ आधार-आधेय द्रव्य को लिया। रहने की सत्ता होने की अपेक्षा से यह ज्ञान, दर्शन, जो आनन्द आदि गुण है, वे द्रव्य के आधार से रहते हैं। आता है ? '**निर्गुणागुणाः**' गुण द्रव्य के आश्रय से रहते हैं, गुण के आश्रय से गुण नहीं रहते। आता है ? आहाहा! आचार्यों की शैली तो गजब! दिगम्बर मुनियों की शैली... '**निर्गुणागुणाः**' गुण के आश्रय से गुण नहीं रहते; गुण, द्रव्य के आश्रय से रहते हैं। यह यहाँ कहा। समझ में आया ? और वहाँ कहा कि यह द्रव्य है, भगवान पूर्णानन्द ध्रुव का बोध होता है तो उसकी अस्ति का भान हुआ। ज्ञान हुआ तो अस्ति का भान हुआ। तो वह ज्ञान हुआ, वही आधार, वस्तु आधेय। आहाहा! अमरचन्दभाई! ऐसी बात है, भाई! अरे! वीतराग का मार्ग! आहाहा!

एक राग का कण उठे तो हिंसा। आया न ? पुरुषार्थसिद्धि उपाय। जिस अंश में सम्यग्दर्शन, उतने अंश में अबन्ध है। जितने अंश में राग ज्ञानी को होता है, उतने अंश में हिंसा है। आहाहा! परजीव की दया का भाव उठना, वह भी हिंसा है। यह बात है। वस्तु ऐसी है। वृत्ति उठती है, वहाँ स्वभाव की हिंसा होती है। समझ में आया ? पर की हिंसा कौन करे ? पर की दया कौन पालन करे ? वह तो है ही नहीं, परन्तु अपने में जो राग होता है, उसमें आत्मा के स्वभाव की हिंसा होती है। आहाहा! और अरागी परिणति अहिंसक जो पर्याय उत्पन्न हुई... समझ में आया ? वह धर्म और वह अहिंसा है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन परिणाम, वे अहिंसक हैं। वे अहिंसक हैं। तो भेदज्ञान में कहा कि उन अहिंसक परिणाम द्वारा ज्ञात हुआ न ? वरना थी वस्तु तो थी, परन्तु वह है उसका ज्ञान पर्याय में भान हुआ तो पर्याय के आधार से वह ज्ञात हुआ तो पर्याय को आधार कहकर आत्मा को '**उवओगे**' शुद्ध उपयोग में, शुद्ध उपयोग में

'**उवओगे**' शुद्ध उपयोग द्रव्य, शुद्ध उपयोग में द्रव्य रहता है। क्योंकि शुद्ध उपयोग द्वारा द्रव्य ज्ञात होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो भले है, परन्तु है, वह जानने में आये बिना है, ऐसा कहाँ से आया? समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म आ गया। वस्तु तो ऐसी है। वस्तु ऐसी है त्रिकाल। किसी की बनी बनाई नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। जैसी है, वैसा दिगम्बर सन्त प्रसिद्ध करते हैं। आत्मख्याति आया न? टीका का नाम आत्मख्याति—आत्मा की प्रसिद्धि। आहाहा! टीका का नाम यह है न? समयसार की टीका आत्मख्याति। आत्मा को प्रसिद्ध करती टीका। वह टीका अर्थात् शब्द से और भाव से यह आत्मख्याति (अर्थात्) सम्यग्दर्शन-ज्ञान से आत्मख्याति-प्रसिद्धि होती है। समझ में आया? टीका तो शब्द है। उससे आत्मख्याति नहीं होती। आत्मख्याति बतलायी। आत्मप्रसिद्धि। आहाहा! है ऐसा जहाँ पूर्णानन्द का स्वीकार किया, ऐसा है, अस्तित्व ऐसा पूर्णानन्द प्रभु है। जब स्वीकार किया, तब है ऐसा ज्ञात हुआ। तब वह जीवन जो है त्रिकाल, वह त्रिकाल टिकनेवाली चीज़ है, उसने मानी तब त्रिकाल चीज़ के जीव की अस्ति स्वीकार की और राग का स्वीकार करने से तो त्रिकाल के स्वीकार की हिंसा होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा! यह शुद्धभाव का अधिकार चलता है न! त्रिकाल शुद्ध है। जानने में आया, वह फिर शुद्ध है। ज्ञात नहीं हुआ, तो भी शुद्ध तो है ही। समझ में आया? यह छठवीं गाथा में कहा न?

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

भगवान आत्मा अप्रमत्त नहीं और प्रमत्त नहीं, ऐसा पर्यायरहित '**एवं भणंति सुद्धं**' जिसने द्रव्य की सेवा करके पर का लक्ष्य छोड़कर, ऐसा पाठ है, द्रव्य की उपासना करने से अर्थात् पर्याय आयी। द्रव्य की सेवा करने से, सेवा करनेवाले को शुद्ध

का अस्तित्व है, ऐसा उसे ख्याल में आया। उसके लिये शुद्ध त्रिकाल है। ऐसा का ऐसा कहे कि शुद्ध है... शुद्ध है - ऐसा नहीं। समझ में आया? इस ओर से दलील आयी थी पहले, १५-२० वर्ष पहले। आत्मा तो शुद्ध है, उसमें क्या करना? अशुद्धता टालने क लिये पुरुषार्थ करना, यह बात ही खोटी है। आत्मा शुद्ध है, ऐसी अस्तित्व की प्रतीति किसे आती है? वह तो है वह है। परन्तु वह है, उसकी प्रतीति उसकी ओर की सेवा करने से, पर्याय उस ओर झुकने से वह शुद्ध है, ऐसा ख्याल में आता है। अज्ञानी को शुद्ध है... शुद्ध है, ऐसा कहाँ से आया उसे? समझ में आया? आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा स्वयं भगवान, उस ओर पर्याय झुकने से शुद्ध जो हुई, उपासना करने से शुद्ध पर्याय हुई, उस शुद्ध पर्यायवाले को त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा ज्ञात हुआ। विषय शुद्ध बना नहीं, ख्याल में आया नहीं और शुद्ध आया कहाँ से तुझे? आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आहाहा! तीन-तीन ज्ञान के धनी इन्द्र, चार-चार ज्ञान के धनी गणधर, उनके समक्ष जिन की वाणी निकलती हो, वह कैसी होगी, भाई! आहाहा!

जानने में समर्थ... क्या कहा? **अनेक परमधर्मों के आधारभूत निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ...** त्रिकाल शक्ति, हों! त्रिकाल शक्ति की बात है पहली। आहाहा! त्रिकाली ज्ञानशक्ति को, शक्ति में ज्ञानशक्ति में अनन्त गुण का आधार ऐसा जो भगवान आत्मा, ऐसे **निज परमतत्त्व को...** देखो न, **आधारभूत निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ होने से आत्मा निर्मूढ़ है;....** यह त्रिकाल की अपेक्षा से बात है। अब पर्याय लेंगे। समझ में आया? बहुत सरस अधिकार आया। आनन्द के रस के झरने झरते हैं, वह रस है। दुनिया माने, न माने, दुनिया पागल कहे, निश्चयाभासी कहे। कहो बापू! ... बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! और वह भी तेरे हित के लिये बात है। तेरा अनादर करने की बात यहाँ है नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं?

सहजनिश्चय से... स्वाभाविक निश्चयनय से सहजज्ञान त्रिकाली, सहजदर्शन त्रिकाली, सहजचारित्र त्रिकाली, सहजवीतरागसुख त्रिकाली यह **इत्यादि अनेक परमधर्मों...** परम धर्म लिये। धर्म शब्द से त्रिकाली गुण हैं। **धर्मों के आधारभूत निज परमतत्त्व को...** ऐसे निज परमात्मतत्त्व को। अब ऐसा लिया है। अनन्त गुण का आधार ऐसे निज

परमतत्त्व को **जानने में समर्थ...** कौन ? अन्दर ज्ञानशक्ति जो स्वाभाविक है वह। **होने से आत्मा निर्मूढ़ (मूढ़तारहित) है;...** ध्रुव में जो ज्ञान पड़ा है, वह अनन्त गुण का आधार जो भगवान, उसे जानने में समर्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल। अनन्त धर्म गुण हैं न त्रिकाल।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न त्रिकाल। त्रिकाल परम वीतरागसुख। यह तो कहा न, त्रिकाल की बात है। त्रिकाल परम वीतरागसुख, त्रिकाल परम ज्ञान, परम दर्शन का आधार जो तत्त्व, ऐसे तत्त्व को जानने में ज्ञानस्वभाव है, वह समर्थ है। ऐसे ज्ञानस्वभाव की सामर्थ्य है। आहाहा! ऐसी बात सुनना मुश्किल, ऐसी बात है। आहाहा! यह तो प्रभु का प्रवाह है, भाई! समझ में आया? पानी का धोरिया चलता हो न पानी। धोरिया समझे? पानी चलता है न ऐसे। धोरिया को क्या कहते हैं? रास्ते में गाडावाला निकले तो पानी पी ले। धोरिया नहीं समझते? कुएँ में से पानी निकले न! ऐसे निकलता है।

मुमुक्षु : पानी का प्रवाह।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु वह धोरिया है। धोरिया में से पानी आया, उसमें से ऐसे... ऐसे... चलता जाये खुल्ला। हमारे तो उमराला से गारियाधार जाना पड़ता था न, छोटी उम्र में। उमराला से गारियाधार है। हमारी बहिन का घर। बारह कोस है। बारह कोस, वहाँ रेल तो थी नहीं। एका में जाना पड़े। एक बैलवाले उसमें। दो बैलवाले को गाड़ा कहा जाता है, एक बैलवाले को एका कहते हैं। एक बैलवाले में बैठने की चीज़ को एका कहते हैं। तो हम छोटे थे न, तब छोटी उम्र में जाते थे। दस बजे चालू किया हो, तीन-चार कोस चले हों, फिर वहाँ भोजन कर लें। साथ ढेबरा... ढेबरा समझते हो? थेपला। वे साथ में हों और गाँव में कोई सेठिया महाजन हो तो छाछ ले आवें। अचार हो साथ में। तो वहाँ खायें और धोरिया पानी का हो वहाँ पानी पी लें। आधे घण्टे, एक घण्टे रहें, फिर चलने लगें। शाम को पहुँचते थे। बारह कोस है न। उमराला से गारियाधार बारह कोस है। उस धोरिया की खबर है न। वह तुम्हारी भाषा होगी कुछ।

क्यारी। पानी की क्यारी निकले न, तो बीच में जो कोई जानवर आवे वह पी लेता है। उसी प्रकार भगवान का प्रवाह ऐसा चला है, पात्र हो वह पी लेता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान का मार्ग ही ऐसा है, प्रभु! आहाहा! इससे उन लोगों को ऐसा लगे न, सोनगढ़ एकान्त है, एकान्त है यह। भाई! सबको एकान्त लगता है। कैलाशचन्दजी को भी एकान्त लगता है। बापू! खबर नहीं, भाई! यह कोई पक्ष का मार्ग नहीं, बापू! आहाहा! सम्यक् एकान्त त्रिकालस्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि करना, वह सम्यक् एकान्त है। आहाहा! ऐसा है। विशेष कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ४, सोमवार, दिनांक २५-०८-१९७५
गाथा - ४३, कलश-६२, प्रवचन - १५

...का भेद पड़ा तो उसे शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय कहा जाता है। आहाहा! त्रिकाली भगवान आत्मा में जो ज्ञानादि अनन्त गुण हैं, उनका आधार प्रभु, उसे जानने की शक्ति है, इस अपेक्षा से निश्चय निर्मूढ़ है। वह निश्चय निर्मूढ़ है, यह व्यवहार निर्मूढ़ है। पर्याय में स्वभाववाला शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय। आहाहा! यह शुद्ध कहा न? शुद्ध का अर्थ आ गया। यह शुद्ध आ गया। अनुपचरित का अर्थ शुद्ध आ गया।

शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से... आहाहा! **तीन काल और तीन लोक के...** केवलज्ञान की पर्याय, वह शुद्ध सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। आहाहा! समझ में आया? **तीन काल और तीन लोक के स्थावर-जंगमस्वरूप...** स्थावर-एकेन्द्रिय आदि और जंगम-त्रस आदि। स्थिर रजकण या अस्थिर रजकण प्रत्येक के **समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को...** भाषा देखो, **समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को... तीन काल और तीन लोक के...** समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय। इसका अर्थ यह हुआ कि तीन काल की, तीन लोक की जो पर्याय है, उसे जाना तो द्रव्य और गुण को जाना, ऐसा। द्रव्य-गुण भी जाने और पर्याय भी जानी, इस अपेक्षा से वहाँ है। सूक्ष्म बात है थोड़ी। तीन काल, तीन लोक की द्रव्य-गुण-पर्याय। तो अब पर्याय तो तीन काल की है। तो तीन काल की पर्याय में द्रव्य-गुण कोई भिन्न नहीं रहे, परन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि तीन काल, तीन लोक की पर्याय ऐसे ज्ञात होती है तो उस तीन काल की पर्याय को धरनेवाला द्रव्य और गुण भी जानने में आये, ऐसा कहा गया है। यह जरा सूक्ष्म है। समझ में आया? आहाहा!

स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त... कोई द्रव्य बाकी नहीं, कोई गुण बाकी नहीं, कोई त्रिकाल की पर्याय बाकी नहीं। कहते हैं न कितने ही कि केवलज्ञान वह भविष्य की पर्याय अभी नहीं जानता। यह धवल का दृष्टान्त देते हैं न, जयधवल का। वर्तमान पर्याय, वह अर्थ है। दूसरी पर्याय को अर्थ नहीं कहा है। पण्डितजी! जयधवल में है।

है न वहाँ। खबर है न। परन्तु उसका अर्थ तो वर्तमान कहो, पश्चात् भूत और भविष्य भी वर्तमान प्रगट जैसी थी, वैसी जानते हैं। वर्तमान की अपेक्षा से तीन काल को जानते हैं, ऐसा नहीं, वह तो परोक्ष ज्ञान हो गया। सूक्ष्म बात है, भाई! केवलज्ञान की पर्याय, अरिहन्त की पर्याय,... तत्त्वार्थश्रद्धान में सात तत्त्व आये न? तो सात तत्त्व में मोक्षतत्त्व आया, केवलज्ञान की पर्याय आयी।

ऐसा कहा न वहाँ मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में कि तत्त्वार्थश्रद्धान की मुख्यता क्यों की? एक आत्मा की नहीं ली, स्व-पर की नहीं ली, देव-गुरु-शास्त्र की नहीं ली और तत्त्वार्थश्रद्धान की मुख्यता क्यों ली? कि तत्त्वार्थश्रद्धान में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा भी आ जाती है। क्योंकि संवर-निर्जरा, वह गुरु की श्रद्धा और मोक्ष, वह देव की श्रद्धा। आहाहा! देव अर्थात् अरिहन्त, सिद्ध। आहाहा! समझ में आया? एक भी पर्याय की प्रतीति करना, वह अलौकिक बात है। आहाहा! सद्भूतव्यवहार। यह केवलज्ञान पर्याय भी शुद्ध सद्भूत। है शुद्ध, है अपने में अपनी पर्याय, इस कारण भेद से व्यवहार कहा। आहाहा!

कहो, केवलज्ञान सद्भूत शुद्धव्यवहार। पर्याय है न? पर्याय को व्यवहार कहे, (तब) द्रव्य को निश्चय कहे। आहाहा! त्रिकाली द्रव्य। यह पहले कहा। त्रिकाली द्रव्य में जो गुणादि का आधार द्रव्य है, उसे जानने में शक्ति जो ज्ञान की है, ज्ञान ज्ञान को जाने, ज्ञान दर्शन को जाने, सर्व गुण का आधार द्रव्य को जाने, ऐसी शक्ति अन्दर, वह निश्चय है। उस कारण से आत्मा त्रिकाल को निर्मूढ़ कहा गया है। ऐसा दृष्टि का विषय जो भगवान आत्मा, वह परमात्मस्वभाव जो आत्मा, उसका आश्रय करना, वही सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ पर्याय आयी है, वह भी तत्त्वार्थश्रद्धान में आ जाती है। आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, वह सब पर्याय। पर्यायसहित आया न सवेरे? पर्याय, ज्ञेयाकाररूप ज्ञान की पर्याय, वह आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, वह भी ज्ञेयाकाररूप ज्ञानपर्याय में आ गया है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में वह क्या स्वरूप है संवर, निर्जरा, मोक्षादि का ज्ञान परिणमन में आ गया है। ऐसा ज्ञानपर्यायवाला आकारवाला प्रभु। तो पर्याय और द्रव्य दोनों लिये। तत्त्वार्थश्रद्धान है न? तो वह पाँच पर्याय है। दो—जीव और अजीव और

यह पाँच पर्याय है। ऐसे नौ कहो तो सात पर्याय है। तो उस पर्याय को और इस पर्याय को जाननेवाली ज्ञानपर्याय... आहाहा! ऐसी एक समय की पर्याय में उन सातों तत्त्वों का ज्ञान होता है, ऐसे ज्ञान के आकाररूप भगवान आत्मा।

तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा कहा। तत्त्वार्थसूत्र में तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन लिया है और वही मोक्षमार्ग और वही मुख्य लिया है। क्योंकि स्वच्छन्दी न हो जाये। तत्त्वार्थश्रद्धान में तो आस्रव हेय है, संवर उपादेय है, निर्जरा हितकर है, मोक्ष परमहितकर है, बन्ध अहितकर है। समझ में आया? अकेला आत्मा... आत्मा करे और फिर पर्याय का ज्ञान न करे तो वह स्वच्छन्दी हो गया।

मुमुक्षु : निश्चयाभासी हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चयाभासी हो जायेगा। समझ में आया? आहाहा!

तो कहते हैं कि तीन काल और तीन लोक... आहाहा! ज्ञान की पर्याय का केवलज्ञान का इतना स्वभाव। समय एक, पर्याय एक, जाने तीन काल, तीन लोक। लोक लिया तो अलोक भी उसमें आ गया। आहाहा! क्षेत्र का अन्त नहीं। क्षेत्र का अन्त है कहीं? बाद में... बाद में... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अन्त कहाँ? उसका अन्त कहाँ? अन्त हो तो बाद में क्या? ओहोहो! जिसका क्षेत्रस्वभाव भी अनन्त-अनन्त तर्क से लक्ष्य में न आ सके, ऐसी चीज़ है। तो क्षेत्र है इतना, उसका क्षेत्रज्ञ, केवलज्ञान पर्याय क्षेत्रज्ञ है। सर्वक्षेत्र की, सर्वकाल की। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : एक समय की....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय की। आहाहा! और तीन काल के समय, उससे क्षेत्र के प्रदेश अनन्तगुणे। देखो, यहाँ तो कहते हैं तीन काल-तीन लोक देखे। यह तीन काल जाने और क्षेत्र जो लोकालोक है, उसे भी जाने। आहाहा! क्योंकि तीन काल जो है, वह तो आकाश की एक ही श्रेणी में समाहित हो जाता है। अनन्त श्रेणी है न आकाश की? तो आकाश की चाहे जहाँ से श्रेणी उठाओ, उसकी यहाँ आदि नहीं, यहाँ अन्त नहीं। तो जैसे काल का आदि-अन्त नहीं तो इस क्षेत्र की एक श्रेणी, हों! एक... एक... एक... एक... एक... एक... एक श्रेणी। उसमें तीन काल समा जाते हैं। उससे अनन्तगुणी

श्रेणी आकाश की है। आहाहा! अनन्तगुणा इसलिए कहा है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा! समझ में आया?

यह कहते हैं, **तीन काल और तीन लोक के...** इसमें अलोक भी आ गया। **स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को...** आहाहा! समस्त द्रव्य, गुण और पर्याय, ऐसा लिया है। वरना तो तीन काल की पर्याय वह द्रव्य-गुण है, परन्तु वह तीन काल की पर्याय जानी, वही द्रव्य और गुण को जाना और त्रिकाल को जाना। समझ में आया? आहाहा! एक समय में। भाषा है? **एक समय में...** आहाहा! **जानने में समर्थ...** एक समय में जाने, तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय को एक समय में जानने में समर्थ। आहाहा! समझ में आया?

यह प्रश्न हमारे (संवत्) १९७२ के वर्ष में चला था। ७२। कितने वर्ष हुए? २८ और ३१। ६० में एक कम। बहुत चला सम्प्रदाय में, 'केवलज्ञानी है, उन्होंने देखा वैसा होगा, अपने पुरुषार्थ क्या करना?' ऐसा कहते थे। समझ में आया? सम्प्रदाय के गुरुभाई थे, मूलचन्दजी। बहुत पहले से कहते थे। मैं सुनता था परन्तु मुझे यह बात बैठती नहीं थी। फिर दो वर्ष हुए। ७० में दीक्षा। ७० समझे? तुम्हारे क्या कहते हैं? सत्तर। (संवत्) १९७२ के फाल्गुन मास में यह प्रश्न उठा। तुम कहते हो कि सर्वज्ञ है, तो सर्वज्ञ ने देखा वैसा होगा। अपने पुरुषार्थ क्या करें? 'भाई! सर्वज्ञ है, ऐसी एक समय की पर्याय जगत में है, उसकी मान्यता है? फिर देखा है, वैसा होगा।' जगत में ऐसी एक पर्याय तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसी अस्ति है, ऐसी अस्ति है, सत्ता है, उसके स्वीकार बिना देखो है किसने? तो उसका स्वीकार करने जाता है, तब द्रव्यदृष्टि हो जाती है। धन्नालालजी! बहुत चर्चा हुई थी। बहुत चली। ऐई! तेरे उस पाळियाद में। पाळियाद है न, तेरे गाँव के पास। बोटाद के पास पाळियाद। तू तो कहाँ जन्मा था तब? ७२ की बात है, संवत् १९७२। बहुत चर्चा चली। हमने तो सम्प्रदाय छोड़ दिया। छोटी उम्र २५ वर्ष की। यह बात हमको नहीं बैठती। सर्वज्ञ जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे, ऐसी पर्याय की सत्ता जगत में है, ऐसा स्वीकार करनेवाले को अन्तर्मुख दृष्टि होती है। क्योंकि पर्याय का निर्णय पर्याय के आश्रय से नहीं होता। पर की पर्याय

का (निर्णय) भी पर के आश्रय से नहीं होता और अपनी पर्याय की श्रद्धा भी अपनी पर्याय के आश्रय से नहीं होती, द्रव्य के आश्रय से होती है। धन्नालालजी! आहाहा! भाई! हमको तो बैठता नहीं। ऐसी वाणी? यह वाणी कहाँ से लाये ऐसी स्वच्छन्दी! उस समय तो छोटी उम्र थी न! २५ वर्ष की उम्र थी। ६० वर्ष पहले की बात है।

ओहोहो! एक समय में तीन काल-तीन लोक पर्याय में ज्ञात होते हैं। आहाहा! समय एक, जाने तीन काल, समय एक जाने लोकालोक। समय एक, आदि-अन्त रहित काल और आदि-अन्त बिना का क्षेत्र। काल भी आदि-अन्त बिना का, क्षेत्र भी आदि-अन्त बिना का। ... उठाओ तो यहाँ आदि है कहीं? आकाश के प्रदेश की आदि है कहीं? आहाहा! बापू! तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है, भाई! सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा, तो जिसने वह माना, फिर देखा वैसा होगा। एक समय में... यह भाषा है न? एक समय में जानने में समर्थ। किसने प्रतीति की। किसे यह बात रुचि? क्योंकि इस तत्त्वार्थश्रद्धान में भाई आया न, मोक्षपर्याय? तत्त्वार्थश्रद्धान में मोक्षपर्याय आयी। उस समय इतनी सब खबर नहीं थी, परन्तु अन्दर इतनी तो बात आयी थी। यह तो ७२ की बात है न!

मोक्षपर्याय तत्त्वार्थश्रद्धान में सात पर्याय श्रद्धा में आ गयी है। तो जगत में मोक्षपर्याय, केवलज्ञानपर्याय है, ऐसी श्रद्धा (करनेवाले को), (ऐसी) पर्यायवाला आत्मा, उस आत्मा की श्रद्धा किये बिना केवलज्ञान की श्रद्धा यथार्थरूप से मानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। आहाहा! वस्तु ऐसी है, भाई! यह तो पूर्व की अन्दर थी तो चली आती थी। दो वर्ष की (दीक्षा में) ऐसा हुआ। हमने तो सम्प्रदाय छोड़ दिया। अकेले निकल गये। यह बात कैसी? जिसे भगवान सर्वज्ञ की पर्याय जगत में है, ऐसी सत्ता, ऐसी मौजूदगी जिसके ज्ञान में बैठे... बेसे समझे? बैठे। उस पर्याय का लक्ष्य उसके द्रव्य के ऊपर चला जाता है, वह पुरुषार्थ है। समझ में आया? धन्नालालजी! यह बात ऐसी है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : पुरुषार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ कहीं कूदना है बाहर? एक समय की पर्याय की इतनी सामर्थ्य। मेरी पर्याय अभी इतनी है नहीं और पर्याय की सत्ता जगत में ऐसी है।

आहाहा! ऐसी प्रतीति जब करने जाता है तो केवलज्ञान की पर्यायसहित ऐसा द्रव्य... यह आया न सवेरे? उस समय इतनी सब खबर नहीं थी, परन्तु इतना तो आया था कि यदि पर्याय की प्रतीति करने जाता है तो उसमें केवलज्ञान ने निश्चय देखा है कि उसे भव है नहीं। प्रश्न ऐसा बड़ा था। केवलज्ञानी ने देखा, तब होगा, तब भव घटेंगे। कहा, जिसे केवलज्ञान ज्ञान में बैठे, उसके भव भगवान ने देखे ही नहीं। डालचन्दजी! आहाहा! अरे बापू! केवलज्ञान आहाहा! यह ज्ञान की पर्याय केवलज्ञानरूप से, सर्व ज्ञेयाकाररूप से परिणमन हुआ, वह तो अब सब स्पष्ट हुआ। समझ में आया? और तत्त्वार्थश्रद्धान में यह आ गया। तत्त्वार्थ में सात पर्यायसहित द्रव्य (श्रद्धा में आया)। आहाहा! ऐसी पर्याय की श्रद्धा जिसे अन्तर में बैठ जाये, वही स्वभावसन्मुख का पुरुषार्थ है। समझ में आया? और भगवान ने, यह केवलज्ञान जिसे बैठा, उसके भव भगवान ने देखे ही नहीं अनन्त आदि। एक-दो भव का कोई प्रश्न नहीं। समझ में आया? आहाहा!

देखो न, निर्मूढ़। एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय को (जाने)। आहाहा! है पर्याय व्यवहार। त्रिकाल की अपेक्षा से एक पर्याय का भेद हो गया न? है शुद्ध, है सद्भूत अपनी पर्याय है, परन्तु है पर्याय व्यवहार। आहाहा! समझ में आया? ऐसे आत्मा की पर्याय ऐसी है, ऐसी सत्ता जिसे ज्ञान में रुचे, पोसाये, यह हमारी गुजराती भाषा है। पोसाण-पोसाण होता है। यह माल पोसाता है न? माल लेने जाये तो पोसाण हो, वह माल ले या नहीं? साढ़े तीन का मण मिले और यहाँ तीन रुपये में बेचा जाये तो वह माल ले? साढ़े तीन का मण हो और यहाँ चार में बेचे तो साढ़े चार में, तो माल ले। बनिया को तो पोसाये। पोसाये समझे न? पोसाण खाये। उसी प्रकार भगवान ज्ञान एक समय में... आहाहा! जिसे उस ज्ञान की पर्याय में रुचि और पोसाण हो गया... आहाहा! समझ में आया? अरिहन्त के ज्ञान का पोसाण जहाँ हुआ तो उसमें भी कहा न ८० (गाथा) में। '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**' कैसी शैली है! आहाहा! '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**' उनकी पर्याय केवलज्ञान, द्रव्य त्रिकाल, गुण त्रिकाल, उसे जो जाने, '**सो जाणदि अप्पाणं**' तो वह आत्मा को जाने, उनका लक्ष्य छोड़कर। समझ में आया? वह द्रव्य-गुण-पर्याय पहले मन से जानने में आये। विकल्प से है न? परद्रव्य के हैं न। फिर जानने में आया कि यह पर्याय

इतनी सामर्थ्यवाली ! तो वर्तमान में मेरी पर्याय में इतनी सामर्थ्य तो है नहीं। तो वह इतनी पर्याय कहाँ से आती है ? अन्दर से आती है। आहाहा ! समझ में आया ?

उस समय तो हमने दृष्टान्त दिया था। गजसुकुमार आते हैं न गजसुकुमार। गजसुकुमार नहीं ? श्रीकृष्ण के भाई। उस समय तो हमने दिगम्बर (शास्त्र) वाँचे नहीं थे। (संवत्) १९७८ फिर वाँचा था। यह तो ७२ की बात है। तो उसमें .... में आती है गजसुकुमार की बात। गजसुकुमार है न ? श्रीकृष्ण के भाई। गजसुकुमार। श्मशान में गये और पगड़ी... धूल। सोमिल ब्राह्मण उसके ससुर ने (बाँधी)। तो वहाँ... में ऐसा पाठ है, सूत्र है। भगवान को वन्दन करने श्रीकृष्ण जा रहे थे। ऐसा पाठ वहाँ है। गजसुकुमार छोटे भाई थे न ? गोद में बैठे थे। तो उसमें एक सोनी की पुत्री थी बहुत सुन्दर रूपवान। तो हाथी के ऊपर बैठे हुए श्रीकृष्ण ने देखी। कि ओहो ! यह कन्या तो राजकन्या जैसी है। गजसुकुमार से विवाह कर दें। जाओ उस लड़की को लेकर अन्तःपुर में ले जाओ। गजसुकुमार बैठे थे। उनके लिये कहा कि यह गजसुकुमार के लिये यह कन्या विवाहानी है। समझ में है ? क्या कहते हैं तुम्हारे ? वहाँ तो गुजराती भाषा थी न ?

वे जहाँ भगवान के निकट व्याख्यान सुनते हैं, गये और कहा, प्रभु ! मैं संसारदशा को छोड़कर, मैं मुनिपना अंगीकार करता हूँ। आहाहा ! कैसी वाणी होगी ? यह तुम्हारे जैसी होगी ? आहाहा ! और मैं तो अभी संसार का त्याग करके, विकार का त्याग करके मेरी आत्मभूमि आनन्द में मैं चला जाता हूँ। उस समय तो इतनी भाषा नहीं थी। परन्तु इतना कहा कि मैं तो आगार को छोड़कर अणगार होनेवाला हूँ। क्या वाणी सुनी उन्होंने कि एकदम क्षण में अणगार होने की भावना आयी ?

तेरा आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है। पर्याय में तेरी पूर्ण चीज़ नहीं आती। केवलज्ञान की पर्याय भी तेरी पर्याय में से नहीं आती। उसकी प्रतीति तो द्रव्यस्वभाव में से होती है। समझ में आया ? आहाहा ! घर में माता के पास जाते हैं। देवकीनन्द है न उनकी माता ? देवकी। माता ! मैं तो मुनिपना लेने जाता हूँ। अरे बेटा ! तेरी एक ही जिन्दगी में... कृष्ण आदि सात कुमार, छह पहले थे। कृष्ण सात और यह आठवें थे। तो छह तो गर्भ में से

सारण हो गया था न ? सारण हो गया दूसरी जगह और यह श्रीकृष्ण, वे भी बाल ग्वाल में ले गये थे। तेरे अकेले का मैंने पालन-पोषण किया और तू चला जाता है, मुझे बहुत दु:ख होता है। माता! मैं तो आत्मा में अणगारपना लेना चाहता हूँ। माँ! तुझे रोना हो तो एक बार रो ले, माता! मैं फिर से जनेता नहीं करूँगा। मैं फिर से माता के गर्भ में नहीं आऊँगा। आहाहा! कितना कहा यह पुरुषार्थ! समझ में आया ? मैं फिर से जनेता के गर्भ में नहीं आऊँगा। माता! तेरा अन्तिम देह माता। अब मुझे दूसरी माता है नहीं। ऐसे मैं आत्मा में चला जाऊँगा।

यह दीक्षा ली और दीक्षा लेने के बाद ऐसा हुआ। महाराज! मैं आज बारहवीं भिक्षु प्रतिमा। जैसे ग्यारह प्रतिमा श्रावक की है, वैसे बारह भिक्षुक प्रतिमा है। अपने सामायिक में है। सामायिक पाठ है न अपने, उसमें है। बारहवीं भिक्षुक प्रतिमा को क्या कहते हैं ? श्मशान में जाकर ध्यान में खड़ा रहूँ। ओहो! अभी दीक्षित हुए और यह! वह राजकुमार, गजसुकुमार। गज अर्थात् हाथी का तलुवा। यह तलुवा समझते हो ? सुकुमार, गजसुकुमार। ऐसा शरीर कोमल... कोमल... कोमल... जिसे सूर्य की किरण छुए तो एकदम लाल शरीर हो जाये। ऐसे गजसुकुमार, प्रभु के समक्ष प्रार्थना करते हैं, नाथ! मैं तो श्मशान में जाऊँगा दीक्षा लेकर। आहाहा! यह तो श्वेताम्बर में ऐसी शैली है न। भगवान ऐसा कहते हैं कि .... ऐसा पाठ है। अन्तगण, यह सब वाँचा था न। भगवान की वाणी ऐसी होती नहीं। भगवान को तो ॐध्वनि आती है। परन्तु ॐध्वनि, ऐसी बात उनमें नहीं। तो ऐसा कहा कि भगवान की वाणी निकली... देव का वल्लभ, तुम्हारा मनुष्यपना देव को वल्लभ है... जैसे सुख उपजे, वैसा करो। प्रतिबद्ध न करना। कहीं रुकना नहीं। चले गये श्मशान में। आहाहा! आज की आज दीक्षा और आज का आज श्मशान। तो उनके ससुर को खबर पड़ी कि इन्होंने तो दीक्षा ले ली। मेरी कन्या तो भटक गयी। वह अन्तगढ़ में रखकर ? क्या कहलाता है ? अन्त:पुर। अन्त:पुर में कन्या छोड़ दी। सोमिल गया श्मशान में। श्मशान में बहुत अग्नि थी, राख थी, पानी था। तो राख में पानी डालकर ऐसी पगड़ी बनायी और उसमें अग्नि डाली। अपने यहाँ फोटो है न। द्रव्य का ध्यान लगाया, केवलज्ञान हो गया। समझ में आया ? यह तुम्हारी भाषा! यह क्या कहते हो ? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ की वाणी में तो ऐसा आता है कि हमारा ज्ञान जिसे

बैठे, उसे भव है ही नहीं। डालचन्दजी! पहले से भणकार था न। भव कैसा? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रथमानुयोग का कथन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रथमानुयोग में भी कहा तो यह है न! यह तो वह सब बात वहाँ वाँची थी न। ... सूत्र बहुत पढ़ा था। पहले से ७०, ७१। वही वाँचते थे न! सब श्वेताम्बर शास्त्र ही वाँचते थे। कथा-बथा हम नहीं वाँचते थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ऐसे **सकल-विमल...** आहाहा! भगवान केवलज्ञान, सद्भूतव्यवहारनय का विषय जो केवलज्ञन। आहाहा! **सकल-विमल (सर्वथा निर्मल)...** आहाहा! **केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से आत्मा, निर्मूढ़ है।** जानने का कुछ बाकी रहता नहीं। यह लोकालोक जानते हैं, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। अपनी पर्याय, लोकालोक जितना सत् है, उसरूप अपने कारण से ज्ञानपर्याय परिणम जाती है, लोकालोक है तो उसके कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय की इतनी सामर्थ्य है। आहाहा! लोकालोक को जानना, ऐसा कहना, वह तो असद्भूतव्यवहारनय का कथन है। समझ में आया? अपनी पर्याय की इतनी शक्ति है कि तीन काल-तीन लोक को जानने की जो पर्याय है, उस पर्याय को जानने से समस्त लोकालोक ज्ञात हो जाता है। समझ में आया? उस पर्याय को जानने से।

यह परमात्मप्रकाश में दृष्टान्त दिया है, परमात्मप्रकाश में। जैसे जल है, जल। रात्रि का जल। उसमें स्वच्छ पानी है। उसमें चन्द्र, नक्षत्र दिखते हैं अन्दर पानी में। वह पानी की अवस्था है, वह लोकालोक की चन्द्र की, नक्षत्र की नहीं। आहाहा! उसी प्रकार भगवान ज्ञान की पर्याय में लोकालोक तो पर्याय में अपने कारण से ज्ञानरूप परिणम गये हैं। तो उसे देखता है तो उसमें इकट्ठा ही वह दिखता है। समझ में आया? पानी की निर्मलता भी देखता है और पानी में नक्षत्र, चन्द्र आदि हैं, उन्हें भी देखता है। वह पानी की पर्याय है। नक्षत्र, चन्द्र वहाँ है नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे भाई! ऐसी एक समय की पर्याय में इतनी सामर्थ्य! आहाहा! समझ में आया? ऐसी प्रतीति करने जाता है तो पर्याय द्रव्य के ऊपर ढल जाती है। पर के ऊपर जो है, वह द्रव्य के

ऊपर ढल जाती है। ढल जाती है, ऐसा कहते हैं न? आहाहा! झुक जाती है। ऐसे आत्मा को निर्मूढ़ कहा जाता है। आहाहा!

अब अन्तिम एक शब्द है। **समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना...** आहाहा! मिथ्यात्व आदि, राग-द्वेष आदि महापापरूपी सेना, शूरवीर सेना, कायर हींजड़ा नहीं। **समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती...** भगवान आत्मा ऐसी चीज़ है कि पापरूपी, वह शत्रु वस्तु में प्रवेश नहीं कर सकते। समझ में आया? आहाहा! है? महा दुर्ग किला है ऐसा। जैसे किला में पर का प्रवेश नहीं होता, वैसे भगवान आत्मा की शक्ति में पर्याय में जो महा पाप के शत्रु की सेना है, वह अन्दर प्रवेश नहीं कर सकती। आहाहा! ऐसा आत्मा दुर्ग-किला है। ऐसा किला मजबूत है। अरे! आत्मा अर्थात् क्या, बापू! आहाहा! एक समय में भगवान साक्षात् परमात्मा शक्ति स्वभावरूप। समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसी **सेना जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती—ऐसे निज शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप...** ऐसे निज शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप, अन्तरभावस्वरूप त्रिकाल **महादुर्ग में (किले में)...** ऐसा महा किला है। उसमें निवास करने से—अपने ज्ञानानन्दस्वभाव में निवास करने से **आत्मा निर्भय है।** भय का स्थान वस्तु में नहीं। आहाहा! इस गाथा की टीका पूर्ण हुई।

अब, **इसी प्रकार...** दृष्टान्त देते हैं मुनि। **(श्री योगीन्द्रदेवकृत) अमृताशीति में (५७ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—**

स्वरनिकरविसर्गव्यञ्जनाद्यक्षरैर्यद्
रहितमहितहीनं शाश्वतं मुक्तसंख्यम्।
अरसतिमिररूपस्पर्शगन्धाम्बुवायुः
क्षितिपवनसखाणुस्थूल दिक्चक्रवालम्॥

आहाहा! योगीन्द्रदेव अमृताशीति में पुस्तक-शास्त्र है, कहते हैं कि **आत्मतत्त्व, स्वरसमूह,...** यह स्वर जो अ, आ, इ वे आत्मा में नहीं। आहाहा! अ, आ, इ, ई, उ, ऊ... ये सब स्वर हैं न? वे आत्मा में है नहीं। आहाहा! आत्मा बोलता नहीं। वह तो स्वर है,

जड़ है। आहाहा! **आत्मतत्त्व...** अ, आ, इ यह स्वर और **विसर्ग...** विसर्ग आता है न शून्य। क:, ख: वे आत्मा में नहीं। **और व्यंजनादि...** क, ख। क, ख, ग, घ यह व्यंजन है। अ, आ, इ यह स्वर है और शून्य वह विसर्ग है। इन **अक्षरोंरहित...** आहाहा! स्वररहित, विसर्गरहित, व्यंजनादि अक्षरोंरहित **तथा संख्यारहित है...** १, २, ३, ४, ५ ऐसी संख्या आत्मा में है नहीं। समझ में आया? अरे! आत्मा वह कौन? बापू! आहाहा! अनन्त सिद्ध अवस्था जिसकी शक्ति में पड़ी है, जिसके गुण में अनन्त मोक्षदशा पड़ी है। मोक्ष तो एक समय की पर्याय है। ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का समुदाय भगवान आत्मा है। समझ में आया?

कहते हैं कि **संख्यारहित है (अर्थात्, अक्षर और अंक का आत्मतत्त्व में प्रवेश नहीं है);...** कहा न पहले? संख्या अर्थात् अंक। अक्षर अर्थात् पहले कहे वे सब। स्वर, विसर्ग, व्यंजन, वे अक्षर और संख्या, वे अंक, उनका आत्मतत्त्व में प्रवेश नहीं। एक, दो, तीन। एक, दो, तीन ऐसा करते हैं न? वह एक, दो, तीन आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। वे तो अक्षर हैं, विकल्प है। समझ में आया? धन्नालालजी!

मुमुक्षु : आत्मा बोलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा बोलता नहीं, जड़ बोलता है। बोले वह दूसरा। आत्मा से दूसरा। जड़ बोले।

मुमुक्षु : जड़ को तो खबर भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर न हो तो क्या हुआ? जड़ की शक्ति नहीं? जानने की शक्ति हो वही तत्त्व है? तो जड़ तत्त्व रह गया, नाश हो गया। जानने की शक्ति भले न हो, जड़रूपी शक्ति उसमें पूर्ण ईश्वर है, ईश्वर है। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप का भान होने से स्वभाव ईश्वर है और स्वभाव का भान न हो तो विभाव ईश्वर है और जड़ जड़ेश्वर है। तीन ईश्वर लिये हैं। श्रीमद् राजचन्द्र में तीन ईश्वर (लिये हैं)। समझ में आया? तीनों स्वतन्त्र ईश्वर अपनी स्वतन्त्रता रखते हैं। आहाहा! शुद्धस्वभाव का भान होने से स्वभावरूपी आत्मा ईश्वर है, भान नहीं होने से विभावरूपी ईश्वर है और जड़ जड़ेश्वर है। आहाहा! एक परमाणु में पलटना, वह किसी की सहायता से पलटता है?

एक परमाणु एक क्षेत्र से भिन्न (क्षेत्र में) जाता है तो किसी की सहायता से जाता है? धर्मास्तिकाय है तो जाता है? वह स्वतन्त्र ईश्वर है। उस समय में क्षेत्रान्तर होना, रूपान्तर होना, रूपान्तर पर्याय, उसमें ईश्वर जड़ेश्वर स्वयं है। आहाहा! समझ में आया?

अहितरहित है;... शब्द है न वहाँ? '**र्यद् रहितमहितहीनं**' श्लोक में है। **अहितरहित है;...** अहितपना उसमें है ही नहीं। वह तो हित का समुद्र है। आहाहा! समझ में आया? हितोपदेश आता है या नहीं? भगवान की वाणी हितोपदेश है। हितस्वरूप भगवान हितस्वरूप है, उसमें अहित है ही नहीं। आहाहा! '**अहितहीनं**' ऐसा पाठ है। भगवान! तीन लोक का नाथ प्रभु, वह अहित से हीन है, अहितपने से रहित है। यह कहा न कि बन्ध अहित है। मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में लिया है, संवर उपादेय है, निर्जरा हितकर है, बन्ध अहितकर है। लिया है। मोक्ष परमहितकर है। तो यहाँ कहते हैं, बन्ध अहितकर है, वह आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया? तत्त्वार्थसूत्र नहीं? तत्त्वार्थश्रद्धान की ही व्याख्या सब की है, उसमें पूरे मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में। फिर कहा कि चार लक्षण में से एक भी यथार्थ जानने में आवे तो चारों ही साथ में हैं। ऐसा आता है।

शाश्वत् है,.... भगवान तो ध्रुव शाश्वत् है। आहाहा! त्रिकाल ध्रुव है। **अन्धकार...** रहित है। अन्धकार-फन्धकार अन्दर वस्तु में नहीं। अज्ञानरूपी अन्धकार भी वस्तु में नहीं। आहाहा! और वह अन्धकार जो बाहर का है, वह भी वस्तु में नहीं। **स्पर्श, रस, गंध और रूपरहित है;...** स्पर्श, रस, गन्ध और रूपरहित भगवान आत्मा है और **पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के अणुओं रहित है,...** पाँच महाभूत कहते हैं न? उसमें चार भूत लिये आकाश के अतिरिक्त। **पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के अणुओं रहित है,...** आहाहा! पृथ्वी के शरीर में जो अणु है, पानी के शरीर में अणु है, आहाहा! और अग्नि शरीर अणु रजकण है, वायु के अणु है शरीर, वह भगवान आत्मा में है नहीं। आहाहा! देखो, दूसरे आचार्य कहते हैं, उसका आधार दिया। ऐसा भगवान आत्मा... वनस्पति यहाँ नहीं ली। वायु के अणुरहित है।

स्थूल दिक्चक्र.... से। बाहर की दिशायें यह पूर्व, पश्चिम और ऐसी दिशा से

रहित है। दिक्चक्र है न? **(दिशाओं का समूह)...** दस दिशा कहते हैं न। चार—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। दो—ऊर्ध्व और अधो, और चार कौने वायु, अग्नि आदि। दसों दिशा स्वरूप में नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसे भगवान आत्मा कहते हैं। यहाँ तो लोग बाहर की भक्ति, पूजा, व्रत और तप करने से कल्याण होगा, यह बड़ा मिथ्या शल्य है। आहाहा! स्वरूप में वह वस्तु है ही नहीं न! समझ में आया? सूक्ष्म बात करते हैं, हों! शुद्धभाव अधिकार है न! शुद्धभाव त्रिकाली भाव, उसमें यह भाव है ही नहीं। **स्थूल दिक्चक्र रहित है।** लो!

★ ★ ★

कलश - ६२

और (४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज सात श्लोक कहते हैं) —

(मालिनी)

दुरघ-वन-कुठारः प्राप्त-दुःकर्म-पारः,
पर-परिणति-दूरः प्रास्त-रागाब्धि-पूरः।
हतविविधविकारः सत्यशर्माब्धिनीरः,
सपदि समयसारः पातु मामस्त-मारः ॥६२॥

(वीरछन्द)

दुष्ट पाप वन को कुठार अरु दुष्कर्मों को नष्ट किया।
पर-परिणति से दूर सदा रागोदधिपूर विनष्ट किया॥
विविध विकार हनन कर्ता जो सुखसागर का नीर अहो!
काम कलंक विनाशक सार-समय मम रक्षा शीघ्र करो॥६२॥

***श्लोकार्थः*—जो (समयसार), दुष्ट पापों के वन को छेदने का कुठार है, जो दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है (अर्थात्, जिसने कर्मों का अन्त किया है), जो परपरिणति से दूर है, जिसने रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है, जिसने विविध**

विकारों का हनन कर दिया है, जो सच्चे सुखसागर का नीर है और जिसने काम को अस्त किया है, वह समयसार मेरी शीघ्र रक्षा करो।।६२॥

कलश - ६२ पर प्रवचन

और (४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज सात श्लोक कहते हैं) — देखो, गाथा एक और श्लोक सात। ६२। देखो, ६१ पूरा हुआ और यह ६२।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा है देखो, ६१ पूरा हुआ और ६२वाँ है। यह हमारे भाई ने कहा था। हिम्मतभाई हैं न हिम्मतभाई। कहाँ गये? उन्होंने कहा था हिम्मतभाई ने। ... कि ६१ श्लोक पूरा हुआ और ६२वाँ आनेवाला है यहाँ। ६१ पूरा हुआ न पहले? यह तो आधार का था। '**इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं**' यह ६१वाँ था। और यह आया ६२वाँ।

दुरघ-वन-कुठारः प्राप्त-दुःकर्म-पारः,
पर-परिणति-दूरः प्रास्त-रागाब्धि-पूरः।
हतविविधविकारः सत्यशर्माब्धिनीरः,
सपदि समयसारः पातु मामस्त-मारः ॥६२॥

प्रत्येक में 'र' आयेगा। प्रत्येक पद में एक-एक 'र' अन्त में आयेगा।

श्लोकार्थः—जो (समयसार),... भगवान आत्मा है **दुष्ट पापों के वन को छेदने का कुठार है,...** अर्थात् पापरूपी भाव उसमें है ही नहीं और उसका आश्रय करनेवाले को पाप का नाश कर डालता है, दूसरा कोई उपाय नहीं। जिसमें नहीं, उसका आश्रय करने से पाप का नाश होता है। **दुष्ट पापों के वन को...** वन। दुष्ट पाप का बड़ा वन। ओहोहो! उसे **छेदने का कुठार है,...** कुल्हाड़ा कहते हैं न? कुठार। आहाहा! मूल में से छेदने का कुल्हाड़ा है। भगवान आत्मा का जिसने आश्रय लिया, उसे मूल का, पाप का कोठार नाश करने की सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया?

जो दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है... आहाहा! भगवान में कर्म का अन्त है। कर्म है ही नहीं। अपने स्वभाव में कर्म परद्रव्य है ही नहीं। वस्तु कर्म का अन्त पाकर वस्तु रही हुई है। आहाहा! और जो उस वस्तु का आश्रय लेता है, उसके कर्म का अन्त आ जाता है। कर्मअन्तरहित है भगवान, तो उसका आश्रय लेने से कर्म का अन्त हो जाता है। आहाहा! आचार्य ने कहा। यह तो मुनिराज हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। तीसरे हैं न यह? यह अमृतचन्द्राचार्य हैं, यह कुन्दकुन्दाचार्य, यह पद्मप्रभमलधारि मुनि हैं, आचार्य नहीं। वे कहते हैं, वे रतनचन्दजी (कहते हैं) कि आचार्यों का कथन मानना, मुनि आदि के नहीं। परमेष्ठी हैं। वहाँ तो फिर फूलचन्दजी ने तो यह भी लिया था कि सम्यग्दृष्टि पण्डित हो गये हैं, उनकी वस्तु भी मान्य है। जैनतत्त्व मीमांसा में डाला है। समझ में आया? जैनतत्त्व मीमांसा दूसरी ढंग से छपती है अभी। पूरी तो हो गयी। यह दूसरी छपती है। उसमें सुधार करके। पृष्ठ थोड़े यहाँ आये थे उसके। जैनतत्त्व मीमांसा दूसरे ढंग से छपती है। थोड़े पृष्ठ यहाँ आये हैं। वाँचे हैं, हमने वाँचे हैं। आहाहा!

दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है (अर्थात्, जिसने कर्मों का अन्त किया है),... यह कर्म का अन्त ही है, कर्म उसमें है ही नहीं। और जिसने उस भगवान आत्मा ध्रुव का आश्रय लिया, उसके कर्म का अन्त आ जाता है। आहाहा! **जो परपरिणति से दूर है,...** विकार की परिणति से भगवान आत्मा भिन्न है। आहाहा! पर्याय से भिन्न है, वह तो दूसरी बात। यह तो परपरिणति से भिन्न, वह तो स्थूल बात है। उदयभावरूपी संसार परिणति। ओहोहो! उससे भगवान आत्मा दूर है, बहुत दूर है अर्थात् कि उसमें उदयभाव है ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो कहते हैं कि उसका आश्रय करने से वे नाश पाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

जो परपरिणति से दूर है,... भगवान ध्रुवस्वरूप प्रभु सच्चिदानन्द परमात्मास्वरूप से भगवान, वह परपरिणति उदयभाव विकार, उससे दूर है। भेदज्ञान में भी कहा है,

समयसार में। वस्तु विकार वह वस्तु भिन्न है। वह चैतन्य की वस्तु ही नहीं। भेदज्ञान लिया है। एक वस्तु दूसरी वस्तु की नहीं। इसका अर्थ कि भगवान आत्मा की परपरिणति, वह वस्तु उसकी नहीं। उसका क्षेत्र भी वहाँ भिन्न लिया है, समयसार। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि विकार **परपरिणति से दूर है, जिसने रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है,...** आहाहा! रागरूपी पूर। देखो, आहाहा! रागरूपी समुद्र का पूर। आहाहा! राग की हिलोरें जैसे अन्दर उत्पन्न होती हैं... आहाहा! ऐसे राग के पूर से पार भगवान आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! **रागरूपी समुद्र...** उदयभाव है न बड़ा भवसिन्धु। उस पूर को नष्ट किया है। आहाहा! उसमें है नहीं और उसका आश्रय करने से राग के पूर का नाश होता है। दो अर्थ हैं।

जिसने विविध विकारों का हनन कर दिया है,... आहाहा! विविध विकार के अनेक प्रकार, ऐसा लिया। अनेक प्रकार के विकारों को नष्ट कर डाला है अर्थात् है ही नहीं। और उसके आश्रय से विकारों का नाश होता है। आहाहा! कोई क्रियाकाण्ड करने से दया, दान, व्रत करने से कर्म नाश को प्राप्त होते हैं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। त्रिकाल भगवान आत्मा के आश्रय से कर्म का नाश होता है। समझ में आया? **जो सच्चे सुखसागर का नीर है...** आहाहा! सच्चे सुख सागर का पानी है। यह सागर / समुद्र कहा न? वह सच्चे सुखसागर का जल है। सागर में पानी-पानी जल। आहाहा! **सच्चे...** यह क्यों लिया? कि इस दुनिया में सुख मानते हैं, वह सुख नहीं, वह खोटा खुश है। यह तो **सच्चे सुखसागर का...** सच्चे सुख का सागर। आहाहा! सच्चे सुख का समुद्र भगवान, उसका **नीर है...** आहाहा! मुनिराज को शब्द कम पड़ते हैं। कैसे कहना? आहाहा!

सच्चे सुखसागर का नीर है... अकेले सुखसागर का पानी। जैसे समुद्र में जल भरा है, वैसे सुखसागर का नीर भरा है। आहाहा! क्षेत्र थोड़ा, उसकी यहाँ बात नहीं। भले क्षेत्र इतने में हो। अरे! अंगुल के असंख्यवें भाग में निगोद पड़े हैं। अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त निगोद। आहाहा! परन्तु उसका द्रव्य जो है, वह सुख सागर का नीर है। समझ में आया? क्षेत्र की विशालता से विशालता नहीं। उसके भाव के सामर्थ्य से विशालता है। आहाहा!

कहते हैं कि **सुखसागर का नीर है और जिसने काम को अस्त किया है,...** विषयवासना जिसमें है ही नहीं। आहाहा! और उसका आश्रय करता है, उसे काम की वासना नाश हो जाती है। आहाहा! देखो, सन्तों की वाणी तो देखो! दिगम्बर मुनियों ने, आहाहा! जंगल में रहकर, जंगल में रहकर कैसी चीज़ बनायी! जंगल में थे। मुनि तो जंगल में ही रहते हैं। गाँव में मुनि होते ही नहीं। अन्दर जंगल ही है, रागरहित वस्तु वह जंगल ही है। आहाहा! वस्तु का माहात्म्य आना और वस्तु के सामर्थ्य की प्रतीति होना, अलौकिक बात है। समझ में आया? सब राग घटाकर बाह्य क्रिया करे, वन्दन करे, इन्द्रियदमन करे, वह कोई चीज़ नहीं।

परमात्मस्वरूप महाप्रभु... आहाहा! **जिसने काम को अस्त किया है,...** काम की वासना वस्तु में गन्ध नहीं। आनन्दसागर में कामवासना कहाँ से आयी? समझ में आया? आहाहा! इस वासना को अस्त किया है। अब मुनिराज कहते हैं अन्त में, आहाहा! **वह समयसार मेरी शीघ्र रक्षा करो।** मेरे हृदय में वह समयसार मुझे बैठा है, वह मेरी रक्षा करो। आहाहा! यह समयसार भगवान चिदानन्द प्रभु सुखसागर का नीर है, वह मेरी शीघ्र रक्षा करो। मैंने उसका आश्रय लिया, वह मेरी रक्षा है। आहाहा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - ६३

(मालिनी)

जयति परमतत्त्वं तत्त्वनिष्णातपद्म-
प्रभमुनिहृदयाब्जे सन्स्थितं निर्विकारम्।
हतविविधविकल्पं कल्पनामात्ररम्याद्,
भव-भव-सुख-दुःखान्मुक्त-मुक्तं बुधैर्यत्॥६३॥

(वीरछन्द)

तत्त्व निपुण पद्मप्रभ मुनि के हृदय कमल में सुस्थित है।
निर्विकार वह परमतत्त्व जो विविध विकल्प विनाशक है॥
भव-भव के सुख-दुःख कल्पना मात्र रम्य जो लगें अहो।
उन सुख-दुःख से रहित कहें बुध परमतत्त्व जयवंत रहो॥६३॥

***श्लोकार्थः*—जो तत्त्वनिष्णात (वस्तुस्वरूप में निपुण) पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में सुस्थित है, जो निर्विकार है, जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है और जिसे बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र-रम्य—ऐसे भव-भव के सुखों से तथा दुःखों से मुक्त (रहित) कहा है, वह परमतत्त्व जयवन्त है।।६३।।**

श्रावण कृष्ण ५, मंगलवार, दिनांक २६-०८-१९७५
कलश-६३ से ६५, प्रवचन - १६

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार। ६३वाँ कलश है।

जयति परमतत्त्वं तत्त्वनिष्णातपद्म-
प्रभमुनिहृदयाब्जे सन्स्थितं निर्विकारम्।
हतविविधविकल्पं कल्पनामात्ररम्याद्,
भव-भव-सुख-दुःखान्मुक्त-मुक्तं बुधैर्यत्॥६३॥

आहाहा! शुद्धभाव अधिकार है न! मुनि कहते हैं कि शुद्धतत्त्व में निष्णात। मैं तत्त्व में निपुण हूँ। भगवान आत्मा तत्त्व शुद्ध अखण्ड आनन्द ऐसा जो तत्त्व सत्यार्थ त्रिकाल जो भूतार्थ, उसमें मैं निपुण हूँ। आहाहा! निमित्त नहीं, राग नहीं, पर्याय नहीं। एक समय में पूर्णानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द के सागर का नीर, उससे भरपूर प्रभु आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? सुखामृत का सागर आत्मा है। आहाहा! उसमें निष्णात। उसे जानना कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसमें निष्णान्त हो, उसे निष्णात कहा जाता है। लोगों में कुछ कहते हैं न क्या? उसमें निष्णात है। चतुर। यह लोगों में कहते हैं, उसमें निष्णात है। विशेषज्ञ। निष्णात तो उसे कहते हैं कि भगवान पूर्णानन्द का जिसने स्वीकार किया, जिसने पर्यायबुद्धि छोड़कर धर्म की शुरुआत करने में भगवान पूर्णानन्दनाथ ध्रुवस्वरूप का जिसने स्वीकार किया, वही तत्त्व में निष्णात है। आहाहा! व्यवहार को जानना, न जानना, उसकी बात यहाँ गौण कर डाली।

यह तत्त्व जो भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु वीतराग परमात्मस्वरूप अपना निज, हों! आहाहा! उसमें निष्णात **(वस्तुस्वरूप में निपुण)...** वस्तु अर्थात् आत्मा, उसके त्रिकाली स्वरूप में निपुण। यह तुम्हारे सर्राफ-फर्राफ में निपुण की बात नहीं। सेठ सर्राफ है न? अब लड़का करता होगा। आहाहा! ऐसी बात है। यह तत्त्व परन्तु चैतन्यतत्त्व वापस, हों! ऐसा लिया है। आहाहा! ज्ञायकभाव जो नित्यानन्द प्रभु सहजानन्द के सागर का पूर्ण रूप नूर-तेज, आहाहा! ऐसे तत्त्व में निष्णात हूँ। ऐसी अपनी बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में सुस्थित है,... आहाहा! स्वयं मुनि है न। हमारे हृदय में स्थित ज्ञानानन्द। ज्ञान का हृदय—ज्ञान के भाव में वह तत्त्व स्थित है। समझ में आया? आहाहा! क्या बात! करने की चीज़ तो यह है। लाख बात की बात करे। कहते हैं कि **पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में...** अन्तर हृदयकमल तो ठीक है, परन्तु ज्ञानरूपी भाव में सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शनरूपी दशा में यह भगवान स्थित है। आहाहा! समझ में आया? हृदयकमल शब्द से ज्ञान की पर्याय है और स्थित है, वह त्रिकाली वस्तु। आहाहा! सम्यग्दर्शन में... वह पर्याय सम्यग्दर्शन की है, सम्यग्ज्ञान कहो, वह भी पर्याय है, उसमें भगवान पूर्ण स्वरूप स्थित है। आहाहा! देखो, यह दशा! सम्यग्दृष्टि की यह

दशा। यह तो मुनि स्वयं टीका करनेवाले हैं। आहाहा! दूसरा जानपना हो, न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा!

भगवान ज्ञायकस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु, वह ज्ञान की पर्याय में स्थित है। आहाहा! समझ में आया? 'सुस्थित है' ऐसा लिया है वापस। अकेला स्थित, ऐसा नहीं, सुस्थित है। आहाहा! हमारी ज्ञानपर्याय में भगवान आत्मा पूर्णानन्द वह सुस्थित है। आहाहा! पर्याय में आया है। आहाहा! आया क्या, वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? यह तो मक्खन की बात है, भाई! मक्खन को क्या कहते हैं? मक्खन कहते हैं न? आहाहा! सोमचन्दभाई! यह है।

मुनि उसे कहते हैं, अरे! समकिती उसे कहते हैं, आहाहा! श्रावक उसे कहते हैं। वह स्थिरता विशेष हो मुनि में, परन्तु ज्ञान की पर्याय में भगवान का सुस्थितपना है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन और पाँचवें गुणस्थान में स्थित है, परन्तु यह तो सुस्थित मुनि रहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सेठ! यह तुम्हारे सेठ तो आये यहाँ। १५-१६ दिन तो हो गये हिन्दी। फिर गुजराती चलेगा। सेठ लाभ लेते हैं।

मुमुक्षु : पाँच-छह दिन बाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाद में गुजराती होगा तब। अब यह चार दिन रहे। १६ दिन हुए न आज? चार दिन (रहे)। आहाहा! जो भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकस्वभाव, वह मेरी ज्ञानपर्याय में सुस्थित है। आहाहा! मुझमें राग और व्यवहार सुस्थित है, ऐसा नहीं। परद्रव्य या राग मुझमें सुस्थित है, ऐसा नहीं, वह तो भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन से लेकर मुनि की दशा ऐसी होती है। आहाहा! ऐसी बात है।

निर्विकार है,... भगवान त्रिलोकनाथ अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु निर्विकार है। विकार कैसा? त्रिकाल वस्तु में विकार कैसा? और त्रिकाल में अपूर्णता कैसी? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय! यह मार्ग वीतराग का बहुत मुश्किल लोगों को। सम्प्रदाय के आग्रह में पड़े हों, उन्हें यह ऐसा लगे। कठिन बात, बापू! यह मुनि! मुनि-आभास में जो मुनिपना मानते हैं, उन्हें बात कठोर लगती है। मार्ग यह तो बापू! मार्ग यह है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ सहजानन्द प्रभु, आत्म

सहजात्मस्वरूप, सहजस्वरूप पूर्ण वह निर्विकार है। निर्विकार है हमारी पर्याय में स्थित है। आहाहा! हमारी पर्याय में व्यवहार या निमित्त स्थित नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार आता है, होता है, परन्तु उसे मैं जाननेवाला हूँ। जाननेवाला हूँ, मेरी पर्याय में तो सुस्थित भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : चारों ओर दृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु यह है, वस्तु यह है। चाहे लाख आगम कहो, परन्तु कहना है कि वस्तु भगवान पूर्णानन्द का स्वीकार कर ले। यह .... शब्द आया था न? तो उसमें आशय लिया है। परन्तु कहा ऐसा आता है या नहीं, ऐसा वाँचन करते हैं। पूर्णानन्द का स्वीकार कर ले प्रभु! आहाहा! पर्याय का और राग का स्वीकार छोड़ दे। समझ में आया? अभी यह तो प्रथम सम्यग्दर्शन की भूमिका की बात है। आहाहा!

निर्विकार है, जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है... अर्थात् कि जिसमें विविध विकल्प का अभाव है, परन्तु उसका जो आश्रय लिया और आत्मा की पर्याय में सुस्थित हुआ, तो विकल्प का तो नाश हो जाता है। आहाहा! अर्थात् विकल्प की उत्पत्ति होती नहीं। यह मार्ग भारी कठिन! परन्तु उसका कोई साधन होगा या नहीं? ऐसा लोग कहते हैं। वहाँ श्रीमद् में गये थे न अगास में? दिन में तो व्याख्यान सुना सबने। परन्तु रात्रि में कहे, परन्तु यह निश्चय बराबर, परन्तु इसका साधन? ऐसा कि यह भक्ति करना... 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोही।' यह आत्मसिद्धि में आता है। भाई! वह साधन-फाधन कोई है नहीं। भगवान आत्मा का अन्तर पर्याय में स्वीकार करना, वह पर्याय ही साधन है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय साधन?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय ही साधन। प्रज्ञाछैनी कहा न? सर्वविशुद्ध में लिया है। राग से भिन्न जो ज्ञान आत्मा में लीन हुआ, वही साधन है। प्रज्ञाछैनी कहा है। २९४ (गाथा) आ गयी है। आहाहा! राग से भिन्न होकर यहाँ एकाकार हुआ, वही साधन है। साधक वह ही है और साध्य पूर्ण दशा है। वह तो सब यहाँ है। समयसार।

आत्मा और बन्ध के नियत स्वलक्षणों की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में... यह भाषा है।

समझ में आया? **आत्मा और बन्ध कि जो चेत्यचेतकभाव की अत्यन्त निकटता के कारण एक (-एक जैसे) हो रहे हैं, और भेदविज्ञान के अभाव के कारण, मानो वे एक चेतक ही हों, ऐसा जिनका व्यवहार किया जाता है।** परन्तु **वे प्रज्ञा के द्वारा वास्तव में किस प्रकार से छेदे जा सकते हैं?** प्रश्न है, शिष्य का प्रश्न है। समाधान— **आत्मा और बन्ध के नियत स्वलक्षणों की सूक्ष्म अन्तःसन्धि में...** राग और आत्मा के बीच सूक्ष्म अन्तःसन्धि है। आहाहा! हमारी भाषा में त्रड कहते हैं। गुजराती में त्रड-त्रड कहते हैं, तिराड है। बड़ा पत्थर होता है न, उसमें रग होती है राग। बड़ा पत्थर होता है न लाखों मण का, उसमें एक बारीक रग होती है, उसे सन्धि कहते हैं। ऊपर का पत्थर और वह पत्थर दोनों एक नहीं। उस सन्धि में सुरंग डालने से लाखो पत्थर निकल जाते हैं। उसी प्रकार भगवान आत्मा के दल में और राग के बीच सन्धि है। तीन काल में एकरूप नहीं हुए। माना है उसने। समझ में आया? वह यहाँ **प्रज्ञाछैनी को सावधान होकर पटकने से...** देखो, **छेदे जा सकते हैं अर्थात् भिन्न किये जा सकते हैं, ऐसा हम जानते हैं।** आहाहा! यह साधन। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तु ध्रुव है स्वयं, परन्तु अन्दर राग से भिन्न करके, राग है, वह बन्ध का लक्षण है और आत्मा का चैतन्यलक्षण है। तो बन्ध के लक्षण को चैतन्य के लक्षण से भगवान को भिन्न करके। साधन प्रज्ञाछैनी भिन्न करने का साधन है। समझ में आया? प्रज्ञाछैनी आता है न कलश आता है। **'प्रज्ञाछेत्री शितेयं कथमपि निपुणैः पातिता सावधानैः' प्रवीण पुरुषों द्वारा... यह प्रज्ञारूपी तीक्ष्ण छैनी प्रवीण पुरुषों द्वारा किसी भी प्रकार से (-यत्नपूर्वक) सावधानरूप से पटकने में आने पर...** आहाहा! **आत्मा और कर्म—दोनों के सूक्ष्म अन्तरंग सन्धि के बन्ध में शीघ्र पड़ती है।** आहाहा! **आत्मा को तो जिसका तेज अन्तरंग में स्थिर और निर्मलरूप से दैदीप्यमान है, ऐसे चैतन्यपूर में मग्न करती हुई और बन्ध को अज्ञानभाव में निश्चल करती हुई, इस प्रकार से आत्मा और बन्ध को सर्व प्रकार से भिन्न-भिन्न करती हुई पड़ती है।** आहाहा! अन्तर्मुख ढलकर, राग से भिन्न करके अन्तर्मुख ढलती है तो दोनों भिन्न हो जाते हैं। यह बारीक सूक्ष्म। यह साधन है। एक ही साधन यह है, दूसरा साधन है ही नहीं। दूसरे को तो आरोप से कथन किया गया है, वह (मार्ग-साधन ही) नहीं।

मोक्ष का मार्ग एक है। मार्ग कहो या साधन कहो या कारण कहो या उपाय कहो, एक है। कथन दो प्रकार के हैं, मार्ग दो प्रकार के नहीं। ऐसे कारण कहो या साधन कहो। वह साधन एक ही प्रकार का है। कथन दो प्रकार का आता है। परन्तु वह तो बीच में राग है, उसे व्यवहार से साधन का आरोप देकर कहते हैं। वह साधन है ही नहीं, उसे कहना, (वह व्यवहार हो गया)। समझ में आया? ऐसी बात! अभी लोगों को सम्प्रदाय की दृष्टि में भारी कठिन पड़े।

मुमुक्षु : लोगों को भले कठिन पड़े परन्तु बहुत लोगों को....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब तो लोग सुनते हैं न! अब तो बहुत... अन्दर में स्वीकार तो करे कि भगवान पूर्ण शुद्ध है, वही मैं। पर्याय और राग जितना मैं नहीं। आहाहा! धन्नालालजी! यह धन्य होने का (मार्ग) है। आहाहा! सच्चा धन यह है। आहाहा!

कहते हैं... यह कहते हैं देखो, **जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है...** अर्थात् जिसमें विविध विकल्प है नहीं, परन्तु राग से भिन्न करने से अपनी पर्याय में विकल्प का नाश होता है। आहाहा! बहुत मार्ग, भाई! **जिसे बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र-रम्य—ऐसे भव-भव के सुखों से तथा दुःखों से मुक्त (रहित) कहा है,...** आहाहा! भव के—संसार के सुख की कल्पना और दुःख की कल्पना से भगवान रहित है। आहाहा! समझ में आया? यह इन्द्रों में सुख है, इन्द्राणी में सुख है, पैसे में सुख है, धनाढ्यपने में सुख है, राजपने में (सुख है), ... यह कल्पना सुख की है, यह कल्पना स्वरूप में है नहीं। समझ में आया? प्रतिकूलता, वह दुःख है, शोक और रागादि दुःख है। वह कल्पनामात्र है, वह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा!

बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र-रम्य... देखो, ज्ञानीपुरुषों ने कल्पनामत्र रम्य भव-भव के सुख। ओहो! इन्द्रिय के विषय के सुख और प्रतिकूल इन्द्रिय के दुःख, उन दुःखों से मुक्त-रहित है। भगवान तो मुक्त है। आहाहा! आनन्द का नाथ प्रभु अमृत का सागर नाथ, सुख-दुःख की कल्पना से तो भिन्न है, रहित है। आहाहा! पर्याय में है, परन्तु वस्तु में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहाँ गये कान्तिभाई? आये हैं या नहीं? नहीं आये? आये हैं। सवेरे कहा था कुछ, फिर आये थे माफी माँगने। मैंने कहा, भाई!

तुम्हारे लिये ऐसा कहा था, किसी ने बतलाया, इसलिए ऐसा कहा था। रजनीश के। आये थे। वे भाग लेते हों न जरा कोई रजनीश के भगत हों, वहाँ बैठते हों, जाते हों। तो किसी ने कहा था कि वहाँ रजनीश को मानते हैं। भाई! यह कहे कि मैं तो ३४ वर्ष से यहाँ हूँ। कहाँ है? आये थे अन्दर। मैंने कहा, किसी ने कहा था। दो बार, दो बार कहा था। एकबार तो बैठे थे और कहा था, परन्तु उसने सुना नहीं। वह रजनीश को मानता है। अरे! रजनीश कैसा? यहाँ भगवान तीन लोक के नाथ, उनके पास (दूसरे) सभी मार्ग गृहीतमिथ्यात्व के हैं। कोई बात ऐसी कह दे कि यह निर्विकल्प ऐसा। परन्तु उससे क्या हुआ? वह तो भाषा हुई, वस्तु क्या है? पर्याय क्या, गुण क्या, द्रव्य क्या, संयोग, वह विकार क्या? यह चीज़ जाने बिना निर्विकल्प और निर्विकार कहाँ से आया तुझे?

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं... अपने को सबको भूल खिलाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था न पहले। यह भी कहा था न भाई को। सब आचार्यों ने भूल खाकर हमको धर्म के खड्डे में डाल दिया। अब फिर जरा कल्पनामात्र उस गीता का लेते हैं, बाईबल का ले, ऐसा करके करते हैं। अरेरे! यह बापू मार्ग, भाई! यह सब भ्रमणा में चढ़ गये और अधूरा था, वह मैं पूरा करने आया हूँ, ऐसा कहता है। मिथ्यात्व है, तीव्र गृहीतमिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं, सब कल्पना है। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो कहा, वह वस्तु कहीं है नहीं। उससे विरुद्ध जितने मार्ग हैं, वे सब गृहीतमिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! समझ में आया? यह कहाँ अब बात गुप्त रखी है। आहाहा! ओहोहो! सनातन जैनदर्शन अनादि प्राचीन वस्तु जैनदर्शन, वह अर्वाचीन नया मार्ग निकला, उससे भी यह भिन्न चीज़ है। समझ में आया? यह तो सनातन-सनातन सत्य जैनदर्शन, सनातन सत्य वस्तु का स्वरूप। वह जैनदर्शन कोई पक्ष नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। देखो न!

मैं तो निर्विकार और विकल्प से रहित बुधपुरुष जो सुख-दुःख की कल्पना अज्ञानी मानते थे, वह मुझमें है नहीं। देखो न, पर्याय बदली। आहाहा! ऐसी बात कहाँ

है ? पर्याय थी, फिर नहीं, द्रव्य में नहीं। वह कहाँ है ? एक बोल कोई ले ले समाधि और समकित और फलाना, उसमें आ गया ? आहाहा ! समझ में आया ? बौद्ध में ऐसे शब्द बहुत पड़े हैं समकित और समाधि और... बौद्धपंथ। क्षणिकवादी है, मिथ्यादृष्टि है बौद्ध सब। अन्दर लिखा है टीका में। जिनमार्ग को छोड़कर बुद्ध आदि पुरुषों का मार्ग... आगे है। सबको छोड़ दे। किसी का मार्ग सच्चा है नहीं। आहाहा ! यह पक्ष नहीं, वस्तु का स्वरूप है। परन्तु अब क्या करें ? इसलिए पहले कहा न, वस्तु में निष्णात। कल्पनामात्र से रम्य, उससे रहित है। आहाहा !

वह परमतत्त्व जयवन्त है। आहाहा ! यह दृष्टि में आया है, इसलिए जयवन्त है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन की दृष्टि में यह वस्तु ऐसी है, तो कहते हैं कि वह जयवन्त वर्तो। आहाहा ! समझ में आया ? शुद्ध है, वह शुद्ध है परन्तु ख्याल में आये बिना वह है, ऐसा कहाँ से आया ? ख्याल में आया कि ओहो ! यह तो ध्रुवतत्त्व परमात्मा पूर्णानन्दस्वरूप है, ऐसी अनुभवदृष्टि में वह वस्तु आयी तो कहते हैं कि आचार्य, मुनि परमतत्त्व जयवन्त वर्तता है। वह परमतत्त्व जयवन्त है। आहाहा ! अनादि की ऐसी चीज़ है। ऐसा हमारी दृष्टि में आया तो जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? मार्ग बापू ! ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा ! कितनों को तो यहाँ का ऐसा लगे न कि मानो व्यवहार नहीं, संयम नहीं, चारित्र नहीं; परन्तु संयम-चारित्र होते किसे हैं ? अभी सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना सम्यक्चारित्र कहाँ से आया ? और सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने के बाद संयम तुरन्त आता है ? तीर्थंकर जैसे ऋषभदेव भगवान ८३ लाख पूर्व असंयम में रहे। भले पाँचवाँ गुणस्थान कहते हैं। उत्तर पुराण में आता है न ? आठ वर्ष में ऐसा कि तीर्थंकर पाँचवें गुणस्थान के (योग्य) व्रत लेते हैं, ऐसा कहते हैं। उत्तर पुराण में है। सभी तीर्थंकर। तथापि उसमें संयम नहीं आया। ८३ लाख पूर्व तक संयम नहीं आया। वह संयम क्या चीज़ है ? वह कहीं बाहर से ले लेवे उसमें संयम हो गया ? आहाहा !

मुमुक्षु : इसीलिए तो लोग कहते हैं कि स्वामीजी में संयम की कमी है !

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ बापू ! संयम कोई ऐसी चीज़ है कि यह बात चली

नहीं ? यह कहते हैं। उसमें कोई ऐसा चारित्र निकला ? कोई प्रतिमाधारी निकले ? ऐसा कहते हैं। खबर है। भाई! अभी सम्यग्दर्शन के ठिकाने बिना तू ऐसी बात करता है! आहाहा! और सम्यग्दर्शन होने के बाद पंचम गुणस्थान आना, वह कहीं बाहर की बात नहीं। अन्तर में उग्र आश्रय होने पर जो पंचम गुणस्थान आता है, उस भूमिका में प्रतिमा का विकल्प होता है। परन्तु वस्तु ही नहीं, वहाँ प्रतिमा का विकल्प कैसे आवे ? ऐसे मुनिपना भी अन्दर में उग्र आश्रय लेकर जब शान्ति... शान्ति... शान्ति... स्थिरता बढ़ गयी, फिर पंच महाव्रत का विकल्प पहले लिया था, उस पंच महाव्रत के विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! ऐसी वस्तु है, भाई! क्या करे ? 'वादविवाद करे सो अन्धा।' यहाँ तो यह है। 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा।' यह तो कहा न उसमें ? नियमसार में आगे आया न। वादविवाद नहीं करना। आता है न उसमें ? '**णाणाजीवा णाणा लब्धि णाणा कम्मा**' विवाद नहीं करना, बापू! अपना कर ले। आहाहा!

एक दृष्टान्त दिया है उसमें कि जैसे एक लक्ष्मी का निधान मिला हो, फिर स्वयं भोगे। वह बाहर प्रसिद्ध करे ? मुझे पाँच लाख निकले हैं, दस लाख निकले हैं, दस करोड़ निकले हैं ? उसी प्रकार आत्मधन को पकड़ लिया तो यह तू स्वयं से भोग न, पर के साथ वादविवाद करना नहीं। '**णाणाजीवा णाणालद्धि णाणाकम्मं**' ऐसा शब्द है। पहले '**णाणाजीवा**' है, पश्चात् '**णाणालद्धि**' है, पश्चात् '**णाणाकम्मं**' है। आहाहा! यह बात बापू! यह तो महा कोई भाग्य हो उसे तो सुनने को मिले और महा संसार के किनारे आया हो, उसे अनुभव हो। समझ में आया ? जिसका संसार रहा न हो, उसे सम्यग्दर्शन होता है। अर्धपुद्गल (परावर्तनकाल) रहे उसे। यह और वे कहते हैं रतनचन्दजी कि सम्यग्दर्शन हो, तब अर्धपुद्गल (परावर्तन) हो जाता है। अर्धपुद्गल (परावर्तन) हो, तब सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं। वे और ऐसा कहते हैं। रतनचन्दजी। रतनलाल। खोटी बात है। वह संसार अर्धपुद्गलपरावर्तन रहे, तब ही सम्यग्दर्शन होता है। होता है पुरुषार्थ से। समझ में आया ? परन्तु इतना संसार... वह है सर्वार्थसिद्धि में। सर्वार्थसिद्धि में यह श्लोक है, पाठ है। अर्धपुद्गल (परावर्तन) रहे, तब सम्यग्दर्शन (होता है)। यह तो कहते हैं, चाहे जिस पुद्गलपरावर्तन में अर्धपुद्गल (परावर्तन) में समकित पावे,

ऐसा नहीं। अन्तिम जो अर्धपुद्गल (परावर्तन) है, वह सम्यक्त्व के योग्य हो जाता है। जरा सूक्ष्म बात है।

यहाँ कहते हैं, **परमतत्त्व जयवन्त है।** उस परमतत्त्व का जो ज्ञान में भास हुआ कि यह। वह जयवन्त है। भास हुआ, उसे जयवन्त कहते हैं। यह ज्ञान में आया नहीं और जयवन्त है, वह तो शब्द जयवन्त हुए। आहाहा! समझ में आया? क्या शैली! दिगम्बर सन्तों की क्या शैली!! आहाहा!

मुमुक्षु : यह सनातन धर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ही सनातन है, दूसरा सनातन है ही कहाँ? तुम्हारे नाम देते हैं वेदान्त सनातन। खबर है न! सनातन सत्य वस्तु यह है। प्राचीन वीतरागमार्ग हो तो यह है। अनादि का सनातन सत्य यह जरा अनुभव में ख्याल... यह कहते हैं। यह तो सब कहे, भाई! क्या करें? स्थानकवासी कहे हमारा अनादि का है। ये तेरापंथी निकले हैं अभी तुलसी, वे कहे हमारा अनादि का है। क्या कहे? प्रभु! तुझे नुकसान होता है, भाई! ऐसे पंथ में गृहीतमिथ्यात्व का पोषण होता है। वह आत्मा को लाभ नहीं, भाई! उसका फल मिथ्यात्व का। प्रभु! बहुत दुःख होगा, बहुत दुःख होगा। ऐसे जीव का तिरस्कार करना नहीं। जानना। आहाहा! समझ में आया? भाई! मिथ्यात्वभाव है, भाई! तुझे दुःख होगा। तू मान लेता है कि सम्प्रदाय में हमारा धर्म बराबर है। आहाहा! प्रभु! अनन्त संसार, जिसके मिथ्यात्व में अनन्त संसार पड़ा है। आहाहा! वह कहता है कि हम समकित धर्मी हैं और समकिती हैं। आहाहा! क्या हो?

श्रीमद् ने कहा है न, 'कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई, माने मार्ग मोक्ष का करुणा उपजे जोई।' ऐसी भाषा ली है। प्रभु! तुझे नुकसान होगा। यह सम्प्रदायदृष्टि में धर्म मानते हैं, वह वस्तु है नहीं। समझ में आया? आहाहा! और श्वेताम्बर में तो भगवान त्रिलोकनाथ महावीर, अरे प्रभु! उन्हें दो माता, दो पिता। सज्जन को शोभे नहीं, उन तीर्थंकर को यह! और द्रौपदी महासती, उसे पाँच पति। अरे प्रभु! यह नहीं शोभता, भाई! वह कौन है द्रौपदी! समझ में आया? और उसके पाँच पति कौन हैं! वह धर्मात्मा है। आहाहा! मोक्षगामी हैं वे तो। भले दो को विकल्प आया और सर्वार्थसिद्धि में गये,

सहदेव और नकुल। बाकी मोक्षगामी जीव हैं। वे धर्मात्मा, एक सति को आज यह भोगे, दूसरे दिन यह भोगे। अरे प्रभु! ज्ञातासूत्र में ऐसा कथन है। मैंने छोटी उम्र में सुना था अन्यमति में। वह माणभट्ट आता है न माण-माण। उसमें सुना था कि द्रौपदी को पाँच पति। तो एक पति के घर में ७२ दिन रहे तो फिर अग्नि में से निकले। अग्नि में से—ज्वाला में से निकले। फिर दूसरे पति के पास जाये। ऐसा सुना था। यह ज्ञातासूत्र श्वेताम्बर का, उसमें तो ऐसा पाठ है... आहाहा! दिन-दिन में पाँच भिन्न-भिन्न भोगते हैं। अरर्र! आज धर्मराजा तो कल भीम और कल अर्जुन और तीसर दिन सहदेव, पश्चात् पाँचवें दिन नकुल। अरर्र! यह वह सती कौन है, बापू! भाई! तुझे खबर नहीं। सती का स्वरूप किसे (कहना)? आहाहा!

सीताजी को ले गये थे वहाँ, रावण। रावण आया तो (कहा), दूर खड़े रहना। मेरे नाथ रामचन्द्रजी मेरे सामने न आवे, तब तक मुझे आंबेल करने का ... भाव है। सामने देखना नहीं। हम ब्रह्मचारिणी बाई सती हैं। आहाहा! ध्यान रख, हमारे सामने देखना नहीं। आहाहा! (उनके जैसी) द्रौपदी को पाँच पति कहना, वह सज्जनता नहीं है। शास्त्र कैसे कहें उसे? शस्त्र है। आहाहा! अमरचन्दभाई! यह भाई वे गुलाबचन्दजी थे न? वे बेचारे गुलाबचन्दजी अकेले रहते और वैरागी मनुष्य। दृष्टि खोटी। वस्तु तो थी नहीं। स्थानकवासी में तो वस्तु होती नहीं, परन्तु वैरागी मनुष्य भुक्तभोगी। क्या कहलाता है वह? यह खेत। सर्विस। अपने तुम्हारे बाप थे हैं। मौजडीदार। दूसरी भाषा क्या है उसकी? वे ऐसे थे गाँधी। पुत्र, स्त्री छोड़कर दीक्षा ली हुई। फिर उससे बोला गया। ६८ का चातुर्मास बोटाद में था। (संवत्) १९६८। मैं दुकान छोड़कर वहाँ गया था। तीन महीने पाळियाद रहे थे। तो उसमें बीच में बोटाद आता था। उसने ऐसा कहा कि पहले कहा उसने, किसी को दो पति होते ही नहीं। तो ऐसा पकड़ लिया उस साधु ने। स्थानकवासी ने। उसे सिद्धान्त की खबर नहीं, वह कहाँ साधु हो गये? वे तो ब्रह्मचर्य में ऐसा कहे दो पति हो किसी सती को? साधारण को दो पति नहीं होते। ऐसा बोला गया उससे। वह बहुत ख्याल नहीं और (उनके) शास्त्र में ऐसा है कि द्रौपदी के पाँच पति हैं। तो मूलचन्दजी वहाँ थे। बहुत विरोध किया। आहाहा! ऐसी बात बहुत सुनी है, बहुत सुनी। आहाहा! ऐसे को शास्त्र कौन कहे?

एक तेरापंथी आया था। वहाँ सहारनपुर ? यह सेठिया का। सरदारशहर। सहारनपुर तो यह तुम्हारा सहारनपुर और वह सरदारशहर। सरदारशहर के एक आये थे हमारे पास यहाँ। कहा, भाई! द्रौपदी को पाँच पति, यह नहीं हो सकते, भाई! नहीं तो पक्का तेरापंथी। परन्तु शंका पड़ गयी उसे। बात सच्ची लगती है। समझ में आया ? अरे! पति। सती को दूसरा पति स्वप्न में नहीं होता विकल्प में। तुझे खबर नहीं, बापू! समझ में आया ? ऐसी सती को पाँच पति ठहराये। कहो, कुकर्म कर डाले। वीतराग की वाणी नहीं, परन्तु समकिती की नहीं। सज्जन पुरुष की ऐसी वाणी होती नहीं। उसे भगवान की वाणी कहकर चलाया, अनर्थ कर डाला। आहाहा! समझ में आया ? ठीक लगे, न लगे, प्रभु! सत्य बात तो यह है। समझ में आया ? ऐई! हसमुखभाई! आहाहा!

(संवत्) १९६८ में यह हुआ था, बोटाद। तुम्हारा तो जन्म बाद में हुआ छोटी उम्र का। चातुर्मास था उसका। वह भोजनशाला है न। उस ओर नहीं सेठ की ? हिम्मतभाई के उसमें भोजनशाला। वहाँ निवास। मैं आया था। तब यह सब बात हुई थी। ६८ की बात परन्तु, बहुत वर्ष हो गये। ६८ अर्थात् ३२ और यह ३१=६३ वर्ष हुए। उस समय यह कहा। नहीं, किसी भी स्त्री को दो पति ? ऐसा भाषण किया। ऐसी भाषा जरा कड़क थी उसकी। एक ओर माता जन्मे, एक ओर बहू जन्मे और एक ओर पुत्री जन्मे। ऐसा कहा था। वह कड़क थे न। ऐसा कहा इकट्ठी यह बात कही गयी उनसे। एक ओर माता जन्मे, एक ओर बहू जन्मे और एक ओर पुत्री जन्मे। यह वह किस प्रकार का मार्ग! ऐसा बोले उसमें यह बोला गया उनसे। स्त्री को दो पति होते ही नहीं। और (उनके) शास्त्र में है। उसे ख्याल में नहीं वाँचन। फिर बहुत गड़बड़ हो गयी थी। क्या करे ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह परमतत्त्व भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! जिसमें शुभ विकल्प का भी अभाव है, ऐसा जयवन्त वर्तता है, जयवन्त वर्तता है। यह मार्ग है। आहाहा! समझ में आया ? ६४ (कलश)।

★ ★ ★

कलश - ६४

(मालिनी)

अनिशमतुलबोधाधीनमात्मानमात्मा,
सहज-गुण-मणीना-माकरं तत्त्वसारम्।
निजपरिणतिशर्माम्भोधिमज्जन्तमेनं,
भजतु भव-विमुक्त्यै भव्यताप्रेरितो यः ॥६४॥

(वीरछन्द)

अहो भव्यता द्वारा प्रेरित होने वाले आत्मन्! जो।
भव विमुक्त होना चाहो तो निज आतम को शीघ्र भजो॥
अनुपम ज्ञानाधीन सदा जो सहज शक्ति मणियों की खान।
सर्व तत्त्व में सारभूत जो निज परिणति सुखसागर मग्न॥६४॥

***श्लोकार्थः*—जो आत्मा, भव्यता द्वारा प्रेरित हो, यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो कि जो (आत्मा) अनुपम ज्ञान के आधीन है, जो सहजगुणमणि की खान है, जो (सर्व) तत्त्वों में सार है और जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है।।६४।।**

श्लोक - ६४ पर प्रवचन

अनिशमतुलबोधाधीनमात्मानमात्मा,
सहज-गुण-मणीना-माकरं तत्त्वसारम्।
निजपरिणतिशर्माम्भोधिमज्जन्तमेनं,
भजतु भव-विमुक्त्यै भव्यताप्रेरितो यः ॥६४॥

आहाहा! **जो आत्मा, भव्यता द्वारा प्रेरित हो,...** आहाहा! मुक्ति होने के योग्य है। समझ में आया? भव्यभाव का विपाक है जिसे। पंचाध्यायी में ऐसा लिया है। आहाहा! भव्य अर्थात् मोक्ष होने की योग्यता। तो मोक्ष होने की योग्यता जिसमें हो गयी, ऐसा कहते हैं। ऐसे भव्य जीव **भव्यता द्वारा प्रेरित...** अपने धर्म की योग्यता द्वारा प्रेरित **यह**

आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु... ऐसे भव्य जीव। अरे आत्माओं! आहाहा! अरे भगवान! तू कौन है, भाई! आहाहा! **भव्यता द्वारा प्रेरित हो, यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो...** आहाहा! भले व्यवहार बीच में आता है, परन्तु वह तो जाननेयोग्य है। भगवान त्रिलोकनाथ को भजो, उसका आदर करो, उसमें एकाग्र होओ। आहाहा! तेरी भव्यजीव की प्रेरिता जो हो गयी अल्पभव में, तो ऐसा कर, प्रभु! आहाहा! धन्नालालजी! आहाहा! कहो, रूपचन्दजी! ऐसा कहते हैं। भाई! तेरी भव्यता मोक्ष के योग्य हो गयी हो (तो आत्मा को भज)। आहाहा!

आत्मा, भव्यता द्वारा... क्या कलश भी कलश! अमृत से भरे हैं यह!! आहाहा! भगवान! तेरी भव्यता मोक्ष के लिये योग्य हो गयी हो... आहाहा! **यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु...** चार गति के भव से विमुक्त होने के लिये **निरन्तर...** सतत् भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसे भजो। आहाहा! उसकी सेवा करो, उसमें एकाग्र होओ। पूर्णानन्द के नाथ का स्वीकार कर ले पर्याय में, प्रभु! आहाहा! आहाहा! ताराचन्दजी! ऐसी चीज़ है। आहाहा! सन्त कैसी करुणा करते हैं! आहाहा! भाई! तू भगवान, भगवान होने की योग्यता तेरी हो गयी हो तो भगवान को भज।

मुमुक्षु : निरन्तर।

पूज्य गुरुदेवश्री : निरन्तर। तेरी दृष्टि में निरन्तर ध्रुव रहना चाहिए। निरन्तर ध्रुव रहना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

भजो कि जो (आत्मा) अनुपम ज्ञान के आधीन है,... आहाहा! यह तो सम्यग्ज्ञान के आधीन है आत्मा। कोई राग के आधीन या पर के आधीन यह प्रगट नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भगवान की वाणी समवसरण में खिरती हो। राजकुमार सुनते हों, चक्रवर्ती के पुत्र सुनते हों। आहाहा! एकदम पुरुषार्थ उठे अन्दर से। भगवान! तू तेरी चीज़ के ऊपर नजर कर। तुझे भव से मुक्त होना हो तो भव बिना की चीज़ है, वहाँ नजर कर। आहाहा! वे राजकुमार सम्यग्दर्शन पाते हैं और वन में चले जाते हैं। संयमसहित मुक्ति है न? यह सवेरे चलता है न! अकेले दर्शन-ज्ञान से नहीं। आहाहा! माता! आज्ञा दे, माता-जनेता! एक बार दुःख लगे तो तू रो ले, माँ! परन्तु मैं

फिर से जनेता नहीं करूँगा। आहाहा! समझ में आया? दूसरी माता नहीं करूँगा। आहाहा!

यह ध्रुव का नाटक सुना था एक बार। प्रहलादजी आये हैं न? गये? मन्दसौर। ध्रुव का नाटक (था)। उसमें ध्रुव और प्रहलाद आते हैं न? दरबार! सुना है न? मैं तो पहले से नाटक भी धर्म के सुनते थे। हम भावनगर आये थे दुकान छोड़कर देश में। तो वहाँ ध्रुव का नाटक था। थियेटर है स्टेशन के पास। तो वहाँ देखने गये। वह ध्रुव था। राजकुमार था। उसकी माता गुजरी गयी थी। उसके पिताजी ने दूसरा विवाह किया था। तो इसने दीक्षा ले ली। बाबा हो गया... अपने नहीं। लकड़ी होती है न! लकड़ी से ऐसे त्रिदण्डी। ऐसे जंगल में बैठा था। खँडाऊ। एक वह और एक लकड़ी। और पर्दा होता है न, पर्दा! हरा पर्दा। तो ऐसे पर्दा खोले तो जंगल दिखाई दे। पर्दा समझे न? नाटक में। ऐसा ही पर्दा रखे। ऐसे जंगल दिखाई दे। तो जंगल में बैठा था। आहाहा!

ऐसे दोनों ओर से ऊपर से इन्द्राणी आयी। वह लकड़ी का होता है न, उसमें पैर रखकर। दोनों ओर से आयी। हे कुंवर! राजकुमार! क्या अकेला रहता है? देख हमारा सुन्दर शरीर, मक्खन जैसा शरीर, मुख चन्द्रमा जैसा, यह केले जैसे हमारा साथळ। साथळ को क्या कहते हैं? जंघा। बहुत महिमा की। एक बार नजर तो कर राजकुमार! हम कौन हैं? इन्द्राणी हैं। पश्चात् बहुत सुनकर ऐसा बोला, माता! आहाहा! मुझे भव करना होगा तो तू जनेतारूप से होयेगी। दूसरा कुछ है नहीं। यदि भव बाकी होंगे तो, माता! तेरे गर्भ में आऊँगा। आहाहा! उस समय, हों! अभी तो नाटक-बाटक, फिल्म-बिल्म कुकर्म कर डाले हैं। रास्ते में एक आदमी हो और एक बाई ऐसे करती हो। अरर! ऐसे दिखाव सज्जन को शोभे? ऐसे तो फिल्म में बतावे। एक बाई को हाथ डालकर वह ऐसे करता हो। अरर्र! यह अनीति है, ऐसी अनीति सम्भवे नहीं। आहाहा!

उस समय वैराग्य के बहुत नाटक (थे)। यह मीराबाई के, नरसिंह मेहता के, अनूसुईया का एक बड़ा नाटक है। अनूसुईया का बड़ा नाटक। हमने तो सब देखे हैं न! सब देखे हैं। बहुत। वहाँ दुकान पर तो निवृत्ति हो शाम को। इसलिए यह कहे कि अरे! माता! यदि इस भव में मोक्ष होगा तो दूसरी बात है, परन्तु मुझे जन्म करना पड़ेगा तो तेरे

गर्भ में आऊँगा, दूसरी बात तो हराम है। आहाहा! ऐसी ब्रह्मचर्य दशा जहाँ प्रगट हुई... आहाहा! उसे इन्द्राणी डिगाने आवे तो क्या हुआ? समझ में आया? उसी प्रकार भगवान आत्मा की जहाँ दृष्टि हुई और उसमें स्थिरता जैसे हुई संयम, पूरा हो गया। आहाहा! मोक्ष के नजदीक हो गया है। एकाध-दो भव में केवलज्ञान पाकर सादि-अनन्त सिद्ध हो जायेगा।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि आत्मा को भजो। आहाहा! **कि जो (आत्मा) अनुपम ज्ञान के आधीन है,...** जिसकी उपमा नहीं, ऐसे सम्यग्ज्ञान के आधीन भगवान है। आहाहा! समझ में आया? **जो सहजगुणमणि की खान है,...** आहाहा! सहजगुणमणिरूपी रत्न की तो खान है, निधान है। जिसमें से अनन्त-अनन्त केवलज्ञान निकालो तो भी वहाँ कमी नहीं आती, अपूर्णता नहीं आती, हीनता नहीं आती। आहाहा! ऐसा सहजगुणमणि। सहजगुणमणि की खान है। आहाहा! भगवान! वहाँ नजर कर न! समझ में आया? दुनिया को जँचे, न जँचे, वस्तु यह है। समझ में आया? बाहर का मुनिपना ले, नग्नपना लेकर साधु माने, सम्यग्दर्शन-ज्ञान का ठिकाना न हो। ऐसा तो अनन्त बार लिया है। समझ में आया? आत्मा अन्दर आनन्द के नाथ के अनुभव बिना ऐसा वैराग्य भी पर से हटकर उदास नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! निर्जरा अधिकार में लिया है न? ज्ञानी को ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति है। निर्जरा अधिकार में (आता है)। समझ में आया? ज्ञान शब्द से वस्तु का भान। इस ज्ञान के आधीन जो कहा वह। और वैराग्य शब्द से राग से विमुक्त। आहाहा! दो शक्ति ज्ञानी को सहज होती है। समझ में आया? आहाहा!

सहजगुणमणि की खान है, जो (सर्व) तत्त्वों में सार है... आहाहा! यह आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, इन सर्व तत्त्वों में सार यह है। यह पहले आ गया है ३८ गाथा (के ५४वें कलश) में। दूसरे सर्व तत्त्व नाशवान हैं। केवलज्ञान, संवर, निर्जरा भी नाशवान है। भगवान एक अविनाशी तत्त्व त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? अरे! वहाँ कर न प्रेम, प्रभु! और पर का प्रेम छोड़ न! जो तूने पर के साथ जोड़ा है, उस जोड़ को तोड़ और यहाँ तोड़ी है, वहाँ जोड़ दे। आहाहा! भले थोड़ा जानपना हो, दुनिया

विशेष माने, न माने, उसके साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! यह दुनिया को समझाना आवे बड़ी सभा में, तो वह ज्ञानी है, ऐसी कोई चीज़ नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह तो भाषा की कला है। यह तो आ गया अपने। भाषा, अक्षर आत्मा में है नहीं। आहाहा! यह अक्षर उठना—अ, आ उठना, क, ख उठना, वह तो जड़ की पर्याय है। समझ में आया? आहाहा!

जो (सर्व) तत्त्वों में सार है और जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है। आहाहा! त्रिकाल निज परिणति में मग्न है और उसका आश्रय करने से निज सुखसागर परिणति में मग्न होता है। आहाहा! आनन्द की लहर में मग्न होता है वह। जहाँ जयवन्त तत्त्व का स्वीकार हुआ, तो स्वीकार की पर्याय में आनन्द आता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : निज परिणति....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय निर्मल। **निजपरिणति के सुखसागर...** सुखसागर आनन्द है। पर्याय में बहुत आनन्द आया, ऐसा कहते हैं। आत्मा मग्न होता है। आहाहा! दोनों अर्थ हैं। निज परिणति त्रिकाल जो स्वरूप है, उसमें वस्तु मग्न है और ऐसा स्वीकार जहाँ किया तो परिणति में आनन्द में वह मग्न हुआ। आहाहा! तीन लोक के नाथ की वाणी यह कहाँ? 'कथा सुनी फूटे कान...' नहीं आता कुछ?

मुमुक्षु : तो भी नहीं आया ब्रह्म ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्रह्म ज्ञान। आहाहा! वह तो कथा सुनने से कहाँ आता है? कथा सुनने में, भगवान की वाणी सुनने में परलक्ष्यी ज्ञान होता है। होता है अपने से, परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान है, वह कहीं सम्यग्ज्ञान नहीं। आहाहा! वाणी जो समवसरण में सुनी और ज्ञान अपनी पर्याय में अपने से हुआ, वह निमित्त तो वाणी है। वह ज्ञान परलक्ष्यी है, वह स्वलक्ष्यी ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपने को पकड़ने में वह परलक्ष्यी ज्ञान काम नहीं करता। यह कहा न, अनुपम ज्ञान के आधीन वह तो है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह ६४ हुआ। ६५ (कलश)।

★ ★ ★

कलश - ६५

(द्रुतविलंबित)

भवभोगपराङ्मुख हे यते पदमिदं भवहेतुविनाशनम्।
भज निजात्मनिमग्नमते पुनस्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया ॥६५॥

(वीरछन्द)

भव भोगों से विमुख यति हे लीन बुद्धि निज आतम में।
भवक्षयकारकपद भज! अध्रुव चिन्ता से क्या लाभ तुम्हें ॥६५॥

***श्लोकार्थः*—निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले तथा भव से और भोग से पराङ्मुख हुए हे यति! तू भवहेतु का विनाश करनेवाले, ऐसे इस (ध्रुव) पद को भज; अध्रुववस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है ?।।६५।।**

कलश - ६५ पर प्रवचन

भवभोगपराङ्मुख हे यते पदमिदं भवहेतुविनाशनम्।
भज निजात्मनिमग्नमते पुनस्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया ॥६५॥

आहाहा! **निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले...** भगवान आत्मा में लीन। अन्तर्मुख दृष्टि करके जो लीन हैं, ऐसे बुद्धिवाले। वे बुद्धिवाले। **तथा भव से और भोग से पराङ्मुख हुए हे यति!...** आहाहा! देखो, यह यति। भव के कारण और भव तथा भव के भोग से परान्मुख है प्रभु तू! व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प से भी तू परान्मुख है। क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय भोगी के भोग का मूल है, उससे पुण्य बँधेगा। '**भोगी के भोग का मूल है**' यह पहले आ गया है। आहाहा! समझ में आया? **पराङ्मुख हुए हे यति!...** आहाहा! वे बाबा यति होते हैं यति वे नहीं, हों! यह तो स्वरूप में यत्न जिसका जगा है, वह यति। पर का यत्न छूट गया है और स्वरूप का यत्न जागृत हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

हे यति! तू भवहेतु का विनाश करनेवाले,... आहाहा! चार गति के भव। स्वर्ग, वह भी दुःखरूप है। वहाँ स्वर्ग में सुख है नहीं; सुख तो भगवान आत्मा में है। आहाहा!

तू भवहेतु का विनाश करनेवाले,... अपने को कहते हैं और यति को दोनों को सम्बोधन करते हैं। आहाहा! परन्तु कोई कहे कि ऐसा साधन करने में कोई साधन होगा या नहीं? यह चार आये थे न? सवेरे नहीं? पण्डित जयचन्द्रजी में चार आचार आये। पहले ऐसे, फिर ऐसे, फिर ऐसे। फिर यह टीका देखी भाई शीतलप्रसाद की दोपहर में। हिन्दी क्या किया है? उसका कुछ ठिकाना नहीं। चार सीढी है और उसका फलाना है। शीतलप्रसाद की टीका है। प्रवचनसार है न, जयसेनाचार्य की टीका का हिन्दी किया है शीतलप्रसाद ने। सभी पुस्तकें यहाँ हैं। बहुत गड़बड़ी। वे तो यहाँ पन्द्रह दिन रहे थे न, शीतलप्रसाद। निमित्ताधीन दृष्टि बहुत थी। आहाहा!

कहते हैं, **हे यति! तू भवहेतु का विनाश करनेवाले, ऐसे इस (ध्रुव)...** भगवान! ध्रुव को **(ध्रुव) पद को भज...** आहाहा! नित्यानन्द के नाथ का स्वीकार करके भजन कर वहाँ। **अध्रुववस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है?** विकल्प आदि अध्रुव है, उनसे तुझे क्या प्रयोजन है? आहाहा! देखो तो 'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है।' ऐसा श्रीमद् ने लिखा है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस ठण्डा होता गया। श्रीमद् में ऐसा शब्द है। भाषा तो देखो दिगम्बर सन्तों की! आहाहा! फाट-फाट प्याला अन्दर कर डाला। एक बार हाँ तो कर, प्रभु! तेरे तत्त्व के सन्मुख जा, आश्रय ले, आदर कर, अंगीकार कर। और अध्रुव की चिन्ता से तुझे क्या काम है? आहाहा! लो, यह ६५ (कलश) हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ६, बुधवार, दिनांक २७-०८-१९७५
कलश-६६ से ६८, प्रवचन - १७

शुद्धभाव अधिकार। शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाली नित्यानन्द, सहजानन्दस्वरूप सुखसागर का नीर, उससे भरपूर प्रभु उसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। यहाँ पर्याय की बात नहीं। यह शुद्धभाव अधिकार त्रिकाली शुद्ध चैतन्य पवित्र पिण्ड। आहाहा! समझ में आया? वह कैसा है? ६६ (कलश)।

कलश - ६६

(द्रुतविलंबित)

समयसारमनाकुलमच्युतं जननमृत्युरुजादिविवर्जितम्।
सहज-निर्मल-शर्म-सुधामयं समरसेन सदा परिपूजये।।६६।।

(वीरछन्द)

अच्युत और अनाकुल जन्म मृत्यु रोगादिक रहित सदा।
निर्मल सहज सुखामृत सार समय समरस से भजूँ सदा॥६६॥

***श्लोकार्थः*—जो अनाकुल है, अच्युत* है, जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है, सहज निर्मल सुखामृतमय है, उस समयसार को मैं समरस (समताभाव) द्वारा सदा पूजता हूँ॥६६॥**

कलश - ६६ पर प्रवचन

समयसारमनाकुलमच्युत्तं जननमृत्युरुजादिविवर्जितम्।
सहजनिर्मलशर्मसुधामयं समरसेन सदा परिपूजये॥६६॥

* अच्युत=अस्खलित; निजस्वरूप से न हटा हुआ।

आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाली **जो अनाकुल है,...** समझ में आया? वह तो आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहाहा! वहाँ दृष्टि करने की है, ऐसा कहते हैं। बाकी सब थोथा है। अनाकुल आनन्द का नाथ है। अनाकुल अर्थात् सुखस्वरूप, आकुलतारहित ऐसा कहा तो वह अनाकुल अर्थात् आनन्दस्वरूप है। जैसे शकरकन्द होता है न, शकरकन्द? शकरकन्द नहीं होता? उसकी छाल, विशेष छालरहित जो पूरी चीज़ है, अकेली मिठास से भरपूर शकरकन्द है। शकरकन्द समझते हो? उस छाल को छोड़कर। आहाहा! छाल को क्या कहते हैं? छिलका। उस छिलका बिना का पूरा दल मिठास से भरपूर है; उसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित जो छाल है और एक समय की पर्याय से भी रहित अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु है। आहाहा! समझ में आया?

जो अनाकुल है, अच्युत है,... अपना निजानन्दस्वरूप से अस्खलित है, कभी स्खलित हुआ नहीं। आहाहा! पर्याय में आया नहीं। नित्यानन्दस्वरूप अपने स्वभाव से अस्खलित। **निजस्वरूप से न हटा हुआ।** आहाहा! वह ध्रुव नित्यानन्दस्वभाव जो आत्मतत्त्व, उसे निश्चय आत्मा कहते हैं। पर्याय को तो व्यवहार आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? क्षायिक समकित की पर्याय या क्षायिक केवलज्ञान की पर्याय, वह भी व्यवहार है। उससे रहित भगवान अपने स्वरूप से कभी च्युत-स्खलित हुआ नहीं। आहाहा! नित्यानन्द वज्र दीवार ऐसी चीज़ अन्दर त्रिकाली है। वहाँ दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से, उसका अवलम्बन करने से धर्म होता है। बाकी सब बात है। समझ में आया? ऐसी चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : आकुलता दूर होगी, तब अनाकुलता प्रगटेगी न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु आकुलता दूर हो कैसे? अनाकुलस्वरूप त्रिकाल है, उसका आश्रय करने से अनाकुलता उत्पन्न हो, तब आकुलता दूर हो जाती है। उसमें है कहाँ आकुलता? आहाहा! अनाकुल आनन्द का नाथ प्रभु पूर्णानन्द से भरपूर उस आनन्द की रक्षा करनेवाली चीज़ है। समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की रक्षा अर्थात् वहाँ से च्युत नहीं होता, उसमें ही भगवान पड़ा है। आहाहा! भारी

सूक्ष्म। लोगों को इस मूल तत्त्व पर आना, वह बहुत कठिन पड़ता है। और इसके बिना किसी प्रकार से धर्म तीन काल में नहीं। वह भक्ति करे और पूजा करे और दान करे, मन्दिर बनावे और हमेशा पूजा करे, वह तो सब जड़ की क्रिया होनेवाली हो तो होती है और उसमें भाव (मन्द) हो तो राग है। यहाँ तो उस राग को घोर संसार का कारण कहते हैं। आहाहा!

कैसा है भगवान आत्मा? **जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है,...** आहाहा! वस्तु कैसे जन्मे? वस्तु में कैसे मृत्यु-अन्त हो? वस्तु में कैसे रोगादि हो? रोगादि, वृद्धावस्था आदि अन्तर में कुछ नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह सुखस्वरूप अच्युत सुख से और जन्म-मृत्यु-रोगादि रहित है।

सहज निर्मल सुखामृतमय है,... आहाहा! वस्तु ऐसी है। स्वाभाविक निर्मल सुख के अमृतस्वरूपमय है। आहाहा! निर्मल सुख अमृत ऐसा लिया है। त्रिकाल वस्तु निर्मल सुख अमृतमयी आत्मा है। ऐसा आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं और उस खबर बिना कुछ व्रत, नियम और तप करे, वह सब संसार भटकने खाते है। आहाहा! भगवान जिसमें भव और भव का भाव नहीं। ऐसी वस्तु अन्दर ध्रुव परमात्मस्वभाव से भरपूर है। आहाहा! उसमें जन्म-मृत्यु-रोगादि नहीं। है क्या तब? यह तो नास्ति से कहा। **सहज (स्वाभाविक) निर्मल सुखामृतमय है,...** सुखामृतवाला है, ऐसा नहीं। जैसे शक्कर मिठासवाली है ऐसा नहीं, मिठासमय ही है। ऐसी वस्तु है, ऐसी बात है। यह दिगम्बर सन्तों की वाणी है। रामबाण वाणी है। आहाहा! वस्तु ऐसी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा का रामबाण है। आत्मा की पर्याय द्रव्य के ऊपर जाये तो रामबाण है। वाणी का तो निमित्त से कथन है। समझ में आया? सन्तों ने,... जैसे राम का बाण फिरता नहीं, एक बाण में सब समाप्त हो जाये। उसी प्रकार सन्तों की वाणी में वाच्य जो है... यह दिगम्बर सन्त, हों! इनके अतिरिक्त नहीं। आहाहा! कहते हैं कि यह भगवान स्वयं निर्मल सुखामृतमय है। आहाहा!

मुमुक्षु : दिगम्बर कहकर आप क्या कहना चाहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर कहकर आत्मा कहना चाहते हैं। दिगम्बर का अर्थ कहीं कोई सम्प्रदाय नहीं। जिसमें विकल्परूपी वस्त्र नहीं, ऐसा भगवान आत्मा है। और मुनि हों तो बाह्य वस्त्र नहीं। समझ में आया? विकल्प की—वृत्ति की लगनरूपी वस्त्र अन्दर में नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह कहते हैं न।

सहजस्वाभाविकस्वरूप निर्मल सुखामृतमय है। सहज निर्मल... आहाहा! सुखामृत—सुखरूपी अमृतमय जो आत्मा है। यह शुद्धभाव अधिकार चलता है न। यह शुद्धभाव कहो या यह कहो। पर्याय के शुद्धभाव की यहाँ बात नहीं। आहाहा! यह कहेंगे, अभी विशेष कहेंगे। आहाहा! **उस समयसार को....** आहाहा! क्या मुनिराज कहते हैं? ऐसे भगवान अमृत के सागर को, आहाहा! **मैं समरस (समताभाव) द्वारा सदा पूजता हूँ।** उसका आश्रय करने से जो वीतराग पर्याय हुई, उस वीतराग पर्याय द्वारा मैं उसे पूजता हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : राग द्वारा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग-बाग तो व्यभिचार राग संसार का कारण, घोर संसार। कहा न सवेरे तो। पाण्डव जैसे धर्मात्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, अनुभव-स्थिरता (सहित ध्यान में थे।) (तथापि) ऐसा एक विकल्प आया, वहाँ दो भव हो गये। आहाहा! मुक्ति नहीं हुई। मुक्ति दूर हो गयी, दूर हो गयी। आहाहा! अभी संसार में हैं, वे सर्वार्थसिद्धि में। तीन तो मुक्ति में पधारे। यहाँ नजदीक है। सात कोस है, चौदह मील। शत्रुंजय, वहाँ से गये थे। समझ में आया? नग्न दिगम्बर मुनि थे, हों! आहाहा! ऐसे ध्यान में थे तो तीन तो मोक्ष में चले गये। यहाँ से चौदह मील दूर वहाँ ऊपर विराजते हैं। समश्रेणी से जाते हैं न। आहाहा! यहाँ से समश्रेणी में गये, ऐसे अनन्त जीव हैं। यहाँ से। यहाँ से केवलज्ञान पाकर मुक्ति में गये, ऐसे अनन्त जीव (ऊपर) हैं। यहाँ से समश्रेणी में गये हैं। समझ में आया? महापुरुष की जो अन्तिम स्थिति, उस नजदीक की बात करते हैं तो कोई पाण्डव वहाँ मोक्ष गये। दो को जरा-थोड़ा विकल्प आ गया। उन साधर्मी के—मुनि के प्रेम से राग आया। अरे! उन्हें क्या होगा! उन्हें तो कुछ नहीं था। वे तो आनन्द में रहते थे तीनों तो। आहाहा! तो एक विकल्प में दो भव हो गये। सम्यग्दृष्टि, अनुभवी

थे तो भी। आहाहा! जो राग से लाभ माननेवाले मिथ्यादृष्टि की तो बात क्या करना!

मुमुक्षु : यह तो सम्यग्दृष्टि की बात है। ३३ सागर....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसी बात है। देखो न संसार... चौथे गुणस्थान में। आहाहा!

जिसने भगवान आत्मा... राग से लाभ माननेवाले वे तो महामिथ्यादृष्टि अनन्त संसारी। आहाहा! वह तो घोरसंसार, बापू! आहाहा!

भगवान! जिन सोही है आत्मा। जिनेन्द्रस्वरूप वह भगवान का, ऐसा ही जिनेन्द्रस्वरूप आत्मा का है। आचार्य मुनिराज कहते हैं... आहाहा! मैं ऐसे आत्मा को समरस—समता, परिणाम शुभाशुभभाव से रहित। आहाहा! देखो, यह पंचम काल के मुनि। और कोई कहे कि पंचम काल में मुनि दूसरे प्रकार के होंगे, पहले चौथे काल के मुनि दूसरे हैं (तो) ऐसा नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' वीतरागस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्वयं विराजता है, उसकी वीतराग पर्याय से पूजा होती है। समझ में आया? आहाहा!

समरस (समताभाव) द्वारा... मेरी चीज़ जो ऐसी है, उस ओर मेरा झुकाव हो गया है, उस झुकाव के समता परिणाम वीतरागी पर्याय है, उससे मैं पूजता हूँ। उसे मैं पूज्य मानता हूँ। इस पर्याय से मैं भगवान को पूज्य मानता हूँ। आहाहा! क्रियाकाण्डी को तो ऐसा कठोर लगे यह। परन्तु साधन नहीं? यह तो सब निश्चय की बात है। साधन ही यह है, साधन दूसरा है ही नहीं। आहाहा! चैतन्य के दल में, बल में आनन्द पड़ा है। आहाहा! ऐसे भगवान को मैं... मुनिराज ऐसा कहते हैं, मैं समतारस अतीन्द्रिय वीतरागी रस, अतीन्द्रिय वीतरागी समता, वीतरागी पर्याय द्वारा आदर करता हूँ, पूजता हूँ। ऐसा मार्ग गजब। आहाहा!

यहाँ तो अभी व्यवहार का ठिकाना नहीं और निश्चय तो कहीं नहीं। आहाहा! यहाँ ऐसा नहीं कहते कि हम नग्न हैं अट्ठाईस मूलगुण है तो उसके द्वारा मैं वीतरागी आत्मा को पूजता हूँ, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! वह तो वस्तुस्थिति नहीं। मैं भगवान आत्मा को... आहाहा! ऐसा होता है और ऐसा होगा, ऐसा नहीं। मैं... आहाहा! पूर्णानन्द

का नाथ जन्म-मृत्युरहित, रोगादिरहित, निरोग आनन्द के गुण से भरपूर, अनन्त गुण का साम्राज्य जिसमें पड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

एक बार यह दिग्विजय है न? जामनगर, दिग्विजय थे। करोड़ का तालुका है करोड़ का। पहले दिग्विजय थे। तो हम उनके बँगले के पास जंगल जाते थे। तो उन्हें खबर पड़ी कि यहाँ महाराज आते हैं। पाँच मिनिट का रास्ता है। तो उनके पास एक रानी के,... स्थानकवासी व्यक्ति था, उनका माननेवाला। तो उसन कहा कि महाराज यहाँ आते हैं। तुम्हारे दर्शन करना हो तो। हें! उस राजा को आँख बहुत दुःखती थी। आँख समझे? बाहर निकल नहीं सकते थे। इसलिए कहे, 'महाराज! मेरे बँगले के पास तो आप जंगल आते हो। पाँच मिनिट का रास्ता है। मेरे बँगले में आओ। मुझे दर्शन करना है।' (हम) गये। रानी बहुत होशियार। है रानी है। एक भाई गुजर गये। दिग्विजय गुजर गये। रानी बहुत होशियार है। बहुत करोड़ों पैसे इकट्ठे किये है। तो उसने रंगोली पूरी। रंगोली समझते हो? ठेठ मकान में। दो मकान थे और उनके दरवाजे तक रंगोली। सवेरे का समय था। सवेरे जंगल जाते थे न। अभी दूध भी पिया नहीं था। सवेरे जंगल गये तब गये। मैंने कहा दरबार! यह राज नहीं। यह साम्राज्य नहीं, हों! भिखारी है यह तो। अनन्त गुण का साम्राज्य अन्दर पड़ा है, प्रभु! उसका राजा यह आत्मा है। समझ में आया? हमारे तो कहाँ उससे कुछ पैसा-बैसा लेना था? रानी बहुत प्रसन्न हुई। आहाहा! यह धूल के राज नहीं, प्रभु! अनन्त गुण का साम्राज्य, अनन्त गुण का देश, उसका नायक आत्मा है। प्रसन्नता से बेचारे सुने न! लोगों को बेचारों को ऐसा सुनने को मिला कहाँ से हो? उसे कौन कहे कि यह नहीं धूल तेरी। इस धूल का राजा वह भिखारी है। भगवान आत्मा एक-एक गुण और ऐसे अनन्त गुण का साम्राज्य ऐसा प्रभु विराजता है अन्दर। बेचारे बहुत प्रसन्न हुए। (हम) दस मिनिट बैठे थे। एक हजार रुपये रखे। वह तो राजा थे। एक हजार ज्ञान खाते दिये। अपने नाम डाला है उनका। एक पुस्तक में नाम डाला है। हजार दिये थे न! आहाहा! यह जामनगर की बात है। राजकोट बाद में।

यह साम्राज्य है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। तेरा राज्य यहाँ अन्दर है। ओहोहो! एक-एक गुण की ईश्वरता, एक-एक गुण का आनन्द, ऐसे साम्राज्य से भरपूर, कहो, सेठ!

यह सेठिया बड़े बादशाह कहलाते हैं वहाँ। है भी वैभव बहुत है। हम गये, तब उस समय देखा, हों! उस समय कम था। भव्य बहुत है। साधारण करोड़पति कहते हैं, परन्तु मुझे तो बहुत लगे। सात-सात तो मोटरें घर में। ऐसे दिखाई दे साधारण मनुष्य।

मुमुक्षु : आप महिमा करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल की बात करते हैं, उलहाना देते हैं। बड़े भाई रहते थे, वह छह लाख का मकान, भाईसाहेब रहते हैं, वह अन्दर में गहरा-गहरा बड़ा मकान है। वह धूल कहाँ आत्मा की थी, प्रभु! वह कहाँ उसका बादशाह है? आहाहा! राग को बाद (निरस्त) करके शाह प्रभु विराजता है, उसे अन्तर में लेना, वह बादशाह है। समझ में आया? आहाहा!

यह श्रीमद् में आता है। भाषा क्या आती है? श्रीमद् में नहीं आता? भाषावाद। ऐई! चेतनजी! आता है न कुछ आता है। 'अबाध्य अनुभव जो रहे वह है जीवस्वरूप।' कम करते-करते, निकालते-निकालते जो रहे, वह आत्मा का स्वरूप है। ऐसा श्लोक आत्मसिद्धि में है। राग निकाले, पर नहीं, पर नहीं, राग नहीं, एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान विराजता है, उसका नाम आत्मा कहते हैं। आहाहा! अरे प्रभु! तुझे पामरता और प्रभुता की परीक्षा नहीं। समझ में आया? आहाहा! एक शुभभाव हो, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। शुभभाव से पुण्य बँधता है और पुण्य से संयोग मिले, वहाँ हर्ष (हो जाता है)। हर्ष सन्निपात है। सन्निपात समझते हो? सन्निपात होता है न! खिलखिलाकर दाँत निकालता है। वह दुःखी है बेचारा। आहाहा! उसी प्रकार यह जरा सुविधा पाँच, पच्चीस, पचास लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच-दस करोड़ (मिले वहाँ प्रसन्न हो जाये)। यह हमारे पोपटभाई बड़े हैं। कहो, समझ में आया? प्रसन्न हो जाये, प्रसन्न हो जाये सब कि आहाहा! क्या है, प्रभु?! आहाहा! तेरे स्वभाव की शरण में जा, नाथ! आहाहा!

गुरु समर्थ आता है न अन्दर? गुरु की पूजा से प्राप्त हुआ, ऐसा आता है। श्लोक आता है। गुरु की पूजा से अर्थात् उसे बहुमान से मैंने सुना, इससे स्वयं से प्राप्त हुआ। ऐसा पाठ है। आगे कलश है। समझ में आया? क्या है? यह तो हिन्दी है, नहीं? क्या

कहा? **गुरुचरणों के समर्चन से उत्पन्न हुई निजमहिमा को जानता हुआ कौन विद्वान यह परद्रव्य मेरा है, ऐसा कहेगा?** १३२ कलश है, १३२ कलश है। है इसमें? देखो, **गुरुचरणों के समर्चन से...** आहाहा! है? निमित्तपना बतलाया न! गुरु ने यह कहा था। गुरु ने ऐसा कहा था, ऐसा सिद्ध करना है। तेरे आनन्द का नाथ, उसका तू अनुभव कर। समझ में आया? तो ऐसा कहा था, वैसा प्रगट किया। कहा था, वैसा कार्य अन्दर प्रगट किया। तो उन गुरु के चरण से, ऐसा कहा (गया है)। समर्चन से है। भाषा देखो, **गुरुचरणों के समर्चन से उत्पन्न हुई निजमहिमा को जानता हुआ कौन विद्वान...** यह और भाषा ली न समयसार की। **यह परद्रव्य मेरा है, ऐसा कौन कहेगा?** आहाहा! समझ में आया? दूसरी जगह भी है कहीं। यह तो नया है।

मुनिराज कहते हैं, हमारा प्रभु विराजता है अन्दर आनन्द का नाथ। मैं उसका आश्रय करके वीतराग पर्याय जो उत्पन्न होती है, उससे मैं भगवान आत्मा को पूजता हूँ, वह मेरी पूजा है। समझ में आया? यह भगवान की पूजा तो शुभभाव है। आहाहा! गुरु ने ऐसा कहा था, ऐसा गुरु को सिद्ध किया है। गुरु उसे कहते हैं कि जो शुद्धात्मा का आश्रय करावे और उसमें धर्म मनावे, वह गुरु। यह गुरु की परिभाषा है। आहाहा! यह आत्मावलोकन में आता है कि गुरु तो वीतरागभाव का ही उपदेश देते हैं। मूहू-मूहू ऐसा पाठ है। आत्मावलोकन में है। मूहू-मूहू। वीतरागी सन्त, वीतरागी भाव का मूहू-मूहू बारम्बार उपदेश देते हैं। पर की उपेक्षा करके, स्व की अपेक्षा कराने का उपदेश है। आहाहा!

मुमुक्षु : देश सेवा कब करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : देश सेवा कौन करता था धूल? यह अभी तो महिमा बहुत करे वे विद्यानन्दजी के। देश सेवा। सबकी महिमा, सबकी महिमा। अरे प्रभु! मार्ग बहुत दूर है। देश सेवा करे, तुमने सेवा की, तुमको भी लाभ होगा। फलाना और... कौन सेवा करे? आहाहा! समझ में आया? वह सेठ था, वह ऐसा बोलता था। शान्तिलाल खुशाल। कहाँ गये पोपटभाई? हैं या नहीं? पोपटभाई का साला। यह पोपटभाई है, इनका साला। दो अरब चालीस करोड़।

मुमुक्षु : आप नाम लेते हो वहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं वहाँ। यहाँ तो अनन्त का... और उसे कहा पोपटभाई ने। उसके यह बहनोई हैं। इन्होंने कहा परन्तु यह अब इतना धन्धा? क्या हम धन्धे के लिये करते हैं? लोगों की आजीविका पूरी हो अनेक लोगों की। इसके लिये करते होंगे? आहाहा! मूर्खता के कहीं गाँव अलग होते हैं? आहाहा! इन्होंने कहा कि भाई! अब तुम किसलिए करते हो? इतने पैसे हैं। क्या हम धन्धे के लिये करते हैं? हजारों लोगों को पोषण-अजीविका मिलती है। ऐसे पागल, वे कहीं पागल है न! ऐई! पोपटभाई! आहाहा!

यहाँ तो तीन लोक का नाथ ऐसा कहे कि हमारी पूजा करने से भी तुझे राग होता है। आहाहा! हमारे सन्मुख देखना छोड़ दे, तेरे सन्मुख देख। आहाहा! तू तीन लोक का नाथ अन्दर है, बापू! तुझमें कुछ कमी नहीं, अपूर्णता नहीं, विकार नहीं, पूर्णता का नाथ भरा है, भाई! एक-एक गुण पूर्ण और एक-एक गुण ईश्वर, ऐसे तो आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे गुण। आहाहा! एक-एक गुण ईश्वर और एक-एक गुण पूर्ण। आहाहा! और एक-एक गुण का आनन्द। ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द, शान्ति का आनन्द, चारित्र का आनन्द, ऐसे अनन्तगुण का आनन्द। आहाहा! समझ में आया? यह दुनिया में कहते हैं न लक्ष्मी का सुख, स्त्री का सुख, मकान का सुख, कीर्ति का सुख। धूल में भी नहीं, सुन न! ऐई! मणिभाई! यह गाँव में तो सेठिया सब वैसे लगे नहीं? तुम्हारे जाम्बुड़ी में नहीं? आहाहा!

भगवान! सुख कहाँ है? भाई! तेरी एक-एक शक्ति में अनन्त सुख है। ऐसी अनन्त शक्ति का भण्डार तेरा निधान पड़ा है। आहाहा! उसके सन्मुख तूने नजर कभी की नहीं। बहिर्मुख दृष्टि को छोड़कर अन्तर्मुख दृष्टि कभी की नहीं। कहते हैं कि **मैं समरस द्वारा सदा पूजता हूँ।** आहाहा! यह ६६ हुआ। ६७ (कलश)।

★ ★ ★

कलश - ६७

(इन्द्रवज्रा)

इत्थं निजज्ञेन निजात्म-तत्त्व-मुक्तं पुरा सूत्रकृता विशुद्धम्।
बुद्ध्वा च यन्मुक्तिमुपैति भव्यस्तद्भावयाम्युत्तमशर्मणेऽहम्॥६७॥

(वीरछन्द)

आत्मज्ञानयुत सूत्रकार ने जिस निजात्म का किया कथन।
जिसे जान भवि मुक्ति लहें उत्तम सुख पाने करूँ भजन॥६७॥

***श्लोकार्थः*—इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने (आत्मज्ञानी सूत्रकर्ता श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) जिस निजात्मतत्त्व का वर्णन किया और जिसे जानकर भव्य जीव, मुक्ति को प्राप्त करते हैं, उस निजात्मतत्त्व को उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु मैं भाता हूँ।॥६७॥**

कलश - ६७ पर प्रवचन

इत्थं निजज्ञेन निजात्म-तत्त्व-मुक्तं पुरा सूत्रकृता विशुद्धम्।
बुद्ध्वा च यन्मुक्तिमुपैति भव्यस्तद्भावयाम्युत्तमशर्मणेऽहम्॥६७॥

इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने... ऐई! चेतनजी! वे कहते थे न, विद्यानन्दजी तुमको पूछते थे न कि 'भाई! कुन्दकुन्दाचार्य ज्ञानी हैं, यह हम कैसे निर्णय कर सकते हैं?' आहाहा! उन्होंने कहा था। मन्दसौर। मन्दसौर में थे न हम। ... किसी ने श्रीमद् का पूछा। परन्तु अपने कुन्दकुन्दाचार्य वे भी समकिती थे या नहीं? आहाहा! प्रभु... प्रभु... प्रभु... प्रभु... यह मुनिराज ९०० वर्ष के अन्तराल में मुनि पके, वे मुनिराज ऐसा कहते हैं। आहाहा! **पहले निजज्ञ सूत्रकार ने...** आहाहा! आत्मा के जाननेवाले अनुभवी सूत्रकार। मुनिराज ९०० वर्ष पहले हुए, उनका निर्णय करते हैं। आहाहा!

इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने... मुनिराज कहते हैं कि पहले जो निजज्ञ अर्थात् आत्मा के जाननेवाले अनुभवी ऐसे सूत्रकार ने **(आत्मज्ञानी सूत्रकर्ता श्रीमद्-**

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) जिस विशुद्ध निजात्मतत्त्व का वर्णन किया... जिस आत्मा के अन्दर क्षायिकभाव नहीं, उपशम नहीं, उदय नहीं। आहाहा! कुल नहीं, योनि नहीं, परिभ्रमण के स्थान नहीं। क्या कहलाता है? मार्गणा। मार्गणा के स्थान नहीं, जीवस्थान के स्थान नहीं। आहाहा! ऐसे जो निजज्ञ सूत्रकार ने। यह मुनि छद्मस्थ केवली को पूछने नहीं गये। स्वयं भाई उसमें परीक्षा अन्दर आये बिना भान नहीं होता। आहाहा! अब वे यह पूछे और दुनिया में लोग दस-दस हजार (सुने)। कुन्दकुन्दाचार्य समकिती थे या नहीं? यह अपने निर्णय किस प्रकार करें परद्रव्य का? आहाहा! अमरचन्दभाई! वह विद्यानन्दजी ऐसा कहे। अरे प्रभु! क्या करता है, भाई!

मुमुक्षु : आपने ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बाद में ... उसे जाने कि उनके माननेवाले हैं, इसलिए पूछो इनको—कानजीस्वामी को। आहाहा!

अरे! यह अनुभवी छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले... समझ में आया? देह छोड़कर अभी तो स्वर्ग में हैं। स्वर्ग में हैं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। वहाँ से निकलकर ऐसी शक्ति-लब्धि है कि एकाध भव में वे केवलज्ञान पाकर मोक्ष में चले जायेंगे। ऐसी सामर्थ्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : निजज्ञ ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निजज्ञ अपने को जाननेवाला कहा। अपने आत्मा को जाननेवाला आत्मज्ञानी हो। ऐसे मुनिराज छद्मस्थ मुनि हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य हुए, उनका निर्णय पंच महाव्रतधारी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने... पूर्व में अर्थात् इसमें। पहले कह गये न? क्षायिकभाव नहीं, उपशमभाव नहीं, उदयभाव नहीं, मार्गणास्थान नहीं, जीवस्थान नहीं। ओहोहो! ऐसा भगवान पूर्णानन्द का नाथ, आत्मज्ञानी भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने **जिस विशुद्ध निजात्मतत्त्व का वर्णन किया...** जो निजात्मतत्त्व का वर्णन किया। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा का ऐसा (वर्णन किया)। **और जिसे जानकर...** आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य आत्मज्ञानी निजज्ञ—अपने अनुभवी जीव, उन्हें जो सूत्र में

पहले कहा, उस प्रकार से जानकर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! यह तो भाई! मोक्षमार्ग... यह नियमसार है न? नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। आहाहा! समझ में आया?

शास्त्र में ऐसा भी चलता है। धवल में आया है। यह जीव कौन है? भव्य है या अभव्य? अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा में उठाया है। अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा होती है न? उसमें... यह लौकिक में ऐसा घटित किया है कि यह दक्षिणी है या काठियावाड़ी है? परन्तु उसमें तो ऐसा घटित किया है कि यह भव्य है या अभव्य? तो ऐसा निर्णय करने जाता है तो उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निर्णय उसे होता है और होता है तो निश्चित करता है कि यह तो भव्य जीव है। समझ में आया? धवल में पाठ है। आहाहा! मति-श्रुतज्ञान में। ओहोहो! अवग्रह लिया कि यह कौन है? इसकी भाषा, इसके भाव क्या हैं? उस भाव को जहाँ समझने विचार करने जाता है, वहाँ निर्णय हो जाता है कि ओहोहो! यह जीव तो सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी, चारित्रवन्त मोक्षमार्गी है। ऐसा निर्णय छद्मस्थ मतिज्ञान की अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा में कर लेता है। ऐसा पाठ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ९०० वर्ष का अन्तर....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हजार, ९०० वर्ष का अन्तर। इन मुनि को। वाणी में से निकाल लिया अन्दर कि यह तो ज्ञानी हैं। आहाहा! समझ में आया? इनको मिले तो है नहीं। परन्तु मिले क्या? उनकी वाणी और भाषा का न्याय देखते हैं। ओहो! स्वयं यह भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक जगह तो ऐसा भी आता है कि भगवान पूर्णानन्द का नाथ, पुद्गल के निमित्त से हुए क्षायिक आदि, वे सब पौद्गलिक हैं, ऐसा कहते हैं एक बार। आगे आयेगा। आहाहा! कर्मकृत कहा न पंचास्तिकाय में? यहाँ कहा आगे, यहाँ आया है। यह तो शुद्धभाव अधिकार है। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान में है। आहाहा!

यह भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप का अनुभवी जीव ऐसा है और उसे अल्प काल में केवलज्ञान होगा—ऐसा अवग्रह, ईहा, अवाय से निर्णय करता है। आहाहा! समझ में आया? यह प्रश्न (संवत्) १९७७ के वर्ष में बहुत हुआ था। ७७। कितने हुए? ५४ वर्ष पहले वे थे भाई! पोरबन्दरवाले देवीदास। देवीदासभाई पोरबन्दरवाले।

उन्होंने प्रश्न किया ७७ में। भगवानभाई थे वे कच्छी। यह श्रीमद् ऐसा कहते हैं कि एक भव करके मोक्ष जाऊँगा। ऐसा कह सकते हैं? ऐसा पूछा था। ७७ का वर्ष है। ५४ वर्ष पहले की बात। अरे भाई! मति और श्रुतज्ञान की इतनी सामर्थ्य है कि सब जान सकता है। ऐसा न्याय करता है अन्दर जहाँ तर्क उठा, वहाँ न्याय से सब जान ले। ऐसा कि श्रीमद् छद्मस्थ हैं, गृहस्थाश्रम में थे और ऐसा निर्णय कर दे, कह दे कि 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे, इसीलिए देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश।' आहाहा! 'हम परदेशी पंखी साधु, इस रे देश के नाही रे, हम परदेशी पंखी साधु, इस रे देश के नाही रे। हम स्वरूप साधन पूर्ण करके जाऊँगा मुक्ति का स्वरूप जो।' यह ज्ञानी ऐसा निर्णय कर सकता है। यह दूसरे करते हैं... आहाहा! लोगों को आत्मा की सामर्थ्य (कितनी है, उसकी खबर नहीं)। आहाहा!

एक जगह आया है कलश में। भगवान आत्मा अनन्त बल सम्पन्न है, अनन्त बल सम्पन्न। कलश में आता है। पीछे कोई एक कलश है। आत्मा अनन्त बल सम्पन्न। उस बलवान को भी अज्ञानपने में राग को अपना मानता है और पामरता हो जाती है। आहाहा! पुरुषार्थ पर्याय में होता है, वह तो अनन्तवें भाग का पुरुषार्थ। भगवान में तो अनन्त बल भरा है। आहाहा! जिसे स्वीकार हो उसे। एक कलश है कहीं। यह क्या है? प्रतिक्रमण में कहीं आया है। ... इतने में है। हाँ यह। कहाँ? २०२? हाँ, यह।

हे भाई! देखो, २०२ पृष्ठ पर। **स्वाभाविक बल सम्पन्न ऐसा तू...** आहाहा! भाषा तो देखो, **स्वाभाविक बल सम्पन्न ऐसा तू...** प्रभु है। आहाहा! तुझमें स्वभाव से अनन्त बल पड़ा है। **स्वाभाविक बल सम्पन्न ऐसा तू आलस तजकर, उत्कृष्ट समतारूपी कुलदेवी को स्मरणकर...** आहाहा! है? १४० ऊपर है। १४० कलश है न? उसके ऊपर है, उसके ऊपर है। आधार का कलश दिया है। आहाहा! देखो, '**मुक्त्वालसत्वमधि-सत्त्वबलोपपन्नः**' लो, यह। आहाहा! प्रभु! तू तो अनन्त बल सम्पन्न है न, नाथ! आहाहा! अनन्त बल तुझमें पड़ा है। अनन्त बल। तुझे कौन जीते? आहाहा! ऐसा अनन्त बल सम्पन्न प्रभु! आलस को छोड़ अब। आहाहा! देखो, पुरुषार्थी। आहाहा! वे कहे, भगवान सर्वज्ञ ने ऐसा कैसे उपदेश किया? यहाँ देखो मुनि कहते हैं कि भगवान कहे, एक ही है। आहाहा!

हे प्रभु! **स्वाभाविक बल सम्पन्न ऐसा...** तुझमें अनन्त बल सम्पन्न प्रभु तू है। आहाहा! पर्याय में पुरुषार्थ तो अनन्तवें भाग पुरुषार्थ आता है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा, तू आलस छोड़ प्रभु अब। आहाहा! तेरे स्वरूप में अनन्त बल पड़ा है, प्रभु! आहाहा! वह अनन्त बल है तो केवली को पर्याय में अनन्त बल प्रगट होता है। वह अनन्त बल वर्तमान में है। आहाहा! अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ का पिण्ड है। यह तो आ गया। भाई ने बताया न! समझ में आया? प्रभु! तू सहजस्वाभाविक अनन्त बल सम्पन्न है न! तेरी स्वीकार करने की सामर्थ्य में वह सब आ जायेगा। 'मैं अनन्त बल सम्पन्न हूँ' उसके स्वीकार में आलस का नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय की सामर्थ्य इतनी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में अनन्त बल सम्पन्न हूँ—ऐसा स्वीकार आया। वह आत्मा अनन्त बलसम्पन्न ही है। अनन्त ईश्वर बलसम्पन्न प्रभु है। आहाहा! उसकी ईश्वरता और उसकी महत्ता की क्या बात? जो वाणी भी पूर्ण काम कर नहीं सकती। आहाहा! भगवान को जो कुछ दिखा, ऐसा अनन्तवाँ भाग वाणी में आया। आहाहा! और जैसा कहा, उसके अनन्तवें भाग में शास्त्र में रचना हुई। आहाहा! गोम्मटसार में है। समझ में आया? आहाहा! प्रभु! तू अनन्त बल सम्पन्न है न! तेरे स्वीकार के आलस्य से यह बात तेरी रह गयी है। अनन्त बल तेरा है। एक क्षण में अज्ञान का नाश करके केवलज्ञान ले सके, इतना तेरा बल है। समझ में आया? परन्तु उसकी प्रतीति आनी चाहिए न? है परन्तु....

मुमुक्षु : आलस में रह गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आलस में रह गयी! समझ में आया? तब तो यह कहाँ वाँचा था, परन्तु यह बात हमारे बहुत चलती थी, दामोदर सेठ के साथ (संवत्) १९८३ में। भगवान की वाणी में अनन्त पुरुषार्थ आता है कहा। वह कहे कि भगवान सर्वज्ञ ने देखा कि इस समय में करेगा, वह ऐसा उपदेश कैसे करे? अरे! सुन तो सही। ऐसी वाणी पामर की। तीन लोक के नाथ के श्रीमुख से (आया)। यह मुनिराज ऐसा कहते हैं। तो

केवली अनुसार ही वाणी है यह। प्रभु! तू अनन्त बल सम्पन्न है, नाथ! आहाहा! तू पामर नहीं, तू नीच नहीं, हल्का नहीं, प्रभु! तुझमें चौदह गुणस्थान के भेद नहीं। अरे! प्रभु! तुझमें क्षायिकपर्याय तुझमें नहीं इतना बल सम्पन्न है तू। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अब इस धूल का तेरा साम्राज्य और राज और... उसकी कहाँ माँडी है तूने यह! यह माँड न यहाँ।

यह देखो, **उत्कृष्ट समतारूपी कुलदेवी...** वीतराग पर्याय। यहाँ पूजित कहा न? यहाँ कहा न वीतराग पर्याय से पूजता हूँ। यह भाषा यहाँ आयी,देखो, **उत्कृष्ट समता...** वीतरागता-वीतरागता... आहाहा! समभाव। त्रिकाल समभाव का आश्रय करने से जो समभाव आया उस **समतारूपी कुलदेवी को स्मरण कर...** आहाहा! उसका स्मरण कर वीतराग पर्याय का। आहाहा! **अज्ञानमन्त्री सहित मोहशत्रु का नाश करनेवाले इस सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को शीघ्र ग्रहण कर।** सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र ग्रहण कर। समझ में आया? अनन्त बल सम्पन्न नाथ, तू सम्यग्ज्ञान के चक्र को पकड़ अब अन्दर में। तेरे आलस-बालस दूर हो जायेंगे। संसार का नाश हो जायेगा और केवलज्ञान तुझे प्राप्त होगा। ऐसी तेरी शक्ति है, तुझे खबर नहीं। समझ में आया? अपने यहाँ चलता है न। यह तो ६७ चलता है न? बराबर है। आहाहा!

इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने... देखो, कितना भरा है! आहाहा! जिसे सर्वज्ञ की उपस्थिति नहीं, सर्वज्ञपना प्रगट हुआ नहीं, वह निजज्ञ आत्मज्ञानी कुन्दकुन्दाचार्य हैं। चेतनजी! खबर नहीं कुछ और यह बाहर के उपदेश से लोग प्रसन्न हों, रंजन। लोकरंजन। उसमें क्या आया? नाथ! तुझे नुकसान होगा, भाई! तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : .... लोकरंजन ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकरंजन में क्या है? वह तो भाई हमारे तारणस्वामी कहते हैं, लोकरंजन करनेवाला नरक और निगोद में जायेगा। ऐसा आता है, ज्ञानसमुच्चयसार में ऐसा आता है। तारणस्वामी की कड़काई बहुत कड़क है।

कहते हैं, अरे! आत्मज्ञानी **जिस विशुद्ध निजात्मतत्त्व का वर्णन किया...** जो कुन्दकुन्दाचार्य ने आत्मतत्त्व का वर्णन किया, वह यथार्थ है, ऐसा कहते हैं। **और जिसे**

जानकर... जिसने ऐसा कहा, वैसा जानकर। आहाहा! **भव्य जीव, मुक्ति को प्राप्त करते हैं,...** ऐसा स्वभाव भगवान क्षायिकभाव से भी दूर है। ऐसे स्वभाव को जो अनुभव करता है। आहाहा! **जिसे जानकर भव्य जीव, मुक्ति को प्राप्त करते हैं, उस निजात्मतत्त्व को...** आहाहा! मुनिराज कहते हैं कि **उस निजात्मतत्त्व को...** मेरा आत्मतत्त्व, ऐसा। भगवान का आत्मतत्त्व भगवान के पास रहा। आहाहा! **निजात्मतत्त्व को उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु...** मैं तो पूर्ण आनन्द की प्राप्ति के लिये **मैं भाता हूँ।** आहाहा! मेरी चीज़ की मैं भावना करता हूँ। आहाहा! ओहोहो! वाणी तो देखो, दिगम्बर सन्तों की शैली तो देखो, आहाहा! मारफाड़ करके दो टुकड़े कर दिये। एक चोट और दो टुकड़े। समझ में आया? आहाहा! ऐसे आत्मा को **उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु मैं भाता हूँ।** आहाहा! क्षायिकभाव भी जिसमें नहीं, ऐसा आत्मा, उसे मैं भाता हूँ। आहाहा! समझ में आया? राग और फाग तो कहीं रहे, संसार तो अन्दर है ही नहीं। आहाहा! यह ६७ हुआ। ६८ (कलश)।

★ ★ ★

कलश - ६८

(वसन्ततिलका)

आद्यन्त-मुक्त-मनघं परमात्म-तत्त्वं,
निर्द्वन्द्वमक्षयविशालवरप्रबोधम्।
तद्भावना-परिणतो भुवि भव्य-लोकः,
सिद्धिं प्रयाति भवसम्भवदुःखदूराम्॥६८॥

(वीरछन्द)

आदि-अन्त से रहित अनघ निर्द्वन्द्व महा अक्षय बुधरूप।
जो भवि उसकी करें भावना, सिद्धि लहें भव दुःख से दूर॥६८॥

***श्लोकार्थः*—परमात्मतत्त्व आदि-अन्तरहित है, दोषरहित है, निर्द्वन्द्व है और अक्षय विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है। जगत में जो भव्यजन उसकी भावनारूप परिणमित होते हैं, वे भवजनित दुःखों से दूर ऐसी सिद्धि को प्राप्त करते हैं।।६८।।**

कलश - ६८ पर प्रवचन

आद्यन्त-मुक्त-मनघं परमात्म-तत्त्वं,
निर्द्वन्द्वमक्षयविशालवरप्रबोधम्।
तद्भावना-परिणतो भुवि भव्य-लोकः,
सिद्धिं प्रयाति भवसम्भवदुःखदूराम्॥६८॥

आहाहा! टीका वह भी टीका! आहाहा! मुनिराज... सच्चे मुनि हैं न। आत्मा के आनन्द के स्वादिया हैं चारित्रसहित के। आहाहा!

श्लोकार्थः—परमात्मतत्त्व आदि-अन्तरहित है,... भगवान जो वस्तु है, वह तो आदि-अन्त रहित है। पर्याय की आदि होती है और पर्याय का अन्त होता है, वस्तु में आदि-अन्त है कहाँ? आहा! **परमात्मतत्त्व...** यह परमात्मतत्त्व अर्थात् यह, हों! वापस परमात्मा अर्थात् भगवान नहीं। आहाहा! **आदि-अन्तरहित है, दोषरहित है,...** है न? निर्द्वन्द्व। अनघ अर्थात् दोषरहित है। **निर्द्वन्द्व है...** द्वन्द्व नहीं। दो प्रकार नहीं, द्वैतपना जिसमें नहीं। आहाहा! अकेला अखण्डानन्द प्रभु ऐसा परमात्मा तेरी चीज़ है। आहाहा! **और अक्षय विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है।** आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा? अक्षय। अक्षय और विशाल। आहाहा! **उत्तम ज्ञानस्वरूप है।** इतने तो विशेषण लिये हैं। समझ में आया?

ऐसे तो चारित्र अधिकार में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को अक्षय अनन्त कहा, नहीं? चारित्र अधिकार (पाहुड़) में, अष्टपाहुड़ में। पर्याय को अक्षय-अनन्त कहा है। अमेय। अमेय—मर्यादारहित। आहाहा! चारित्र अधिकार, अष्टपाहुड़। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो पर्याय है, वह अक्षय-अमेय है। पर्याय। आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय को अक्षय-अमेय कहा है। आहाहा! तीन लोक के नाथ में से जो पर्याय आयी, वह तो अक्षय अनन्त है तो पर्याय अक्षय-अमेय हो गयी। समझ में आया? आहाहा! **अक्षय विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है।** विशेष कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ७, गुरुवार, दिनांक २८-०८-१९७५
कलश-६८, गाथा-४४, प्रवचन - १८

शुद्धभाव अधिकार, ६८वाँ कलश। **परमात्मतत्त्व...** यह स्वरूप भगवान आत्मा जिसे यहाँ शुद्धभाव कहा, वह परमात्मतत्त्व शुद्ध जीवास्तिकाय द्रव्यार्थिकनय का विषय त्रिकाल वह परमात्मतत्त्व। वह परमात्मतत्त्व, हों! भगवान तत्त्व वह नहीं। आहाहा! **परमात्मतत्त्व आदि-अन्तरहित है,...** संसार की अनादि-अन्त, सिद्धपने की सादि-अनन्त। यह वस्तु है, वह तो अनादि-अनन्त है। आहाहा! समझ में आया? संसार पर्याय अनादि-अन्त और सिद्ध सादि-अनन्त, वह तो पर्याय का भेद है। वस्तु है, वह तो आदि-अन्त रहित है। उसकी शुरुआत नहीं, उसका अन्त नहीं। **दोषरहित है...** अत्यन्त पवित्र पिण्ड प्रभु है। आहाहा! जिसमें संसार के उदयभाव का दोष, स्वरूप में नहीं। दोषरहित वह भगवान आत्मा है। **निर्द्वन्द्व है...** उसमें द्वैतपना नहीं। आहाहा! आत्मा और पर्याय, ऐसा द्वैतपना भी द्रव्य में नहीं। समझ में आया? निर्द्वन्द्व—द्वैत नहीं, द्वन्द्व नहीं। संयोगी पर्याय या स्वाभाविक पर्याय, वह द्रव्य और पर्याय दो ऐसी चीज़ नहीं। त्रिकाली चीज़ तो उस द्वन्द्वरहित है।

मुमुक्षु : पर्याय से द्वन्द्व हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य के साथ पर्याय द्वन्द्व हो गया, दो हो गये। सूक्ष्म बात है, बापू! उस चीज़ को समझने के लिये... आहाहा!

द्वन्द्व यह द्रव्य और पर्याय ऐसे भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! निर्द्वन्द्व है। अद्वैत है अन्दर एकरूप वस्तु। आहाहा! वेदान्त कहता है ऐसा अद्वैत नहीं, हों! समझ में आया? वेदान्त तो पर्याय को ही नहीं मानता और एक ही आत्मा मानता है। वह तो वस्तु ही पाखण्ड है। अलिंगग्रहण में आया है। एक अखण्ड, सर्व आत्मा होकर एक अखण्ड आत्मा। वहाँ तो आचार्य, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ (ऐसा कहते हैं कि) अमेहनाकार पाखण्डियों को प्रसिद्ध ऐसा साधन एक आकार लोकव्यापक, वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में

आया ? यह निर्द्वन्द्व तो द्रव्यस्वरूप वस्तु, उसमें पर्याय का भी वास्तव में सम्बन्ध नहीं। पर्याय है सही। राग का तो सम्बन्ध नहीं, कर्म का तो सम्बन्ध नहीं। वस्तु निर्द्वन्द्व एकरूप त्रिकाल परमात्मस्वरूप जिसमें द्वैतपना, द्रव्य और पर्याय, ऐसा दोपना नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा स्वरूप है।

मुमुक्षु : ऐसा निजपरमात्मतत्त्व है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा (स्वयं) निजपरमात्मतत्त्व है। कहा न पहले ? आदि-रहित का वह तत्त्व है। पर्याय में तो आदि और अन्त हो जाता है, उत्पन्न होता है और नाश हो जाता है। आहाहा! भगवान आत्मा में संसार और आस्रव बन्ध तो नहीं, ऐसा द्वन्द्वपना तो नहीं... आहाहा! यह छहढाला में आया न ? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद।' वहाँ जगत द्वन्द्व-फन्द की बात है। यहाँ तो द्वन्द्व अर्थात् एक द्रव्य में पर्याय का सम्बन्ध ऐसा तत्त्व है। आहाहा! प्रभु का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। और उसकी वह स्थिति प्राप्त किये बिना भव के दुःख का अन्त आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

निर्द्वन्द्व है और अक्षय विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव, वह तो अक्षय है—क्षय कभी नहीं होता, ऐसी चीज़ है। **विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है।** विशाल अनन्त ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। **जगत में जो भव्यजन उसकी भावनारूप परिणमित होते हैं,...** भाषा देखो! यह भावनारूप परिणमे, वह तो पर्याय है। समझ में आया ? भगवान नित्यानन्द प्रभु ध्रुव की भावनारूप परिणमित होते हैं। आहाहा! भावना, वह पर्याय हुई। क्योंकि पर्याय में ध्रुव दृष्टि में आता है न ? कहीं ध्रुव ध्रुव में दृष्टि में आता है, ऐसा नहीं। आहाहा! **उसकी भावनारूप से...** उसकी अर्थात् ध्रुव चिदानन्द प्रभु की भावनारूप उस ओर की एकाग्रतारूप, ध्येय बनाकर, ध्यान में ध्येय बनाकर विषय ध्येय का, ध्यान में ध्येय को विषय बनाकर... आहाहा! उसकी भावनारूप से परिणमित होते हैं। वह वीतरागी पर्याय। वह यह नियमसार मोक्षमार्ग की पर्याय। समझ में आया ? यह तो धीर का काम है, भाई! यह कहीं बाहर से चीज़ मिल जाये, ऐसी यह चीज़ नहीं।

भगवान आत्मा एक समय में नित्यानन्द प्रभु सहजानन्दस्वभाव का सागर नाथ,

वह आत्मतत्त्व, उसकी भावनारूप से परिणमित। आहाहा! सम्यग्दर्शन का ध्येय जो द्रव्यस्वभाव है तो सम्यग्दर्शन उसकी भावनारूप परिणति है। ऐसे सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ऐसी भावनारूप परिणमते हैं। **वे भवजनित दुःखों से दूर...** आहाहा! भावना से परिणमते हैं भगवान त्रिलोकनाथ। आहाहा! ध्रुवस्वरूप की भावना ध्येय लगाकर। आहाहा! जो भावनारूप परिणमते हैं, वह भवजनित दुःखों से दूर, आहाहा! **ऐसी सिद्धि को प्राप्त करते हैं।** बहुत संक्षिप्त बात। समझ में आया? ध्रुव की भावनारूप परिणमे, वह निर्मलदशा। भवजनित दुःख, वह मलिनदशा, उससे रहित हो जाते हैं। ध्रुव, उसकी भावना, वह उत्पाद। आहाहा! और भवजनित दुःख अर्थात् व्यय। आहाहा! उत्पाद-व्यय-ध्रुव। आहाहा! समझ में आया?

काम तो पर्याय से लेना है न? कहीं ध्रुव से लेना है? ध्रुव तो कृतकृत्य है। ध्रुवस्वरूप तो कृतकृत्य है। है, ऐसा कृतकृत्य है, है ही ऐसा। परन्तु उसकी भावना परिणमन करनेवाला वह उत्पाद पर्याय है। और उस भावना से परिणमित होने से अशुद्धपने की आकुलता जो भवदुःख, उसका वह नाश करते हैं। आहाहा! ध्रुव का आश्रय लेकर जो शुद्धरूप परिणमते हैं, वह अनित्य ऐसी कर्मजनित सुख-दुःख की कल्पना का नाश कर डालते हैं। वस्तु क्या है? समझ में आया? पोपटभाई! यह बहुत कठिन है, हों! वे पैसे मिल गये झट, वैसे यह मिले, ऐसा नहीं है। वहाँ कहीं मेहनत बुद्धि का कुछ काम नहीं।

मुमुक्षु : ऐसी बात सुनने को मिलती नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची, बात सच्ची। यह तो सब साथ में पण्डित थे न। आहाहा! यह वह बात सुनने को मिलती नहीं। अरेरे! उसे कहाँ जाना? भाई! आहाहा! चौरासी लाख की योनि में भवसिन्धु में डुबकी मारनी है उसे तो। जिसे भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ की भावना नहीं, वह भवसिन्धु में डुबकी मारता है। आहाहा! भाई! भवजनित दुःख क्या है? मिथ्यात्व और आकुलता, वह दुःख है। समझ में आया? मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह आकुलता—दुःख है। उसका नाश मिथ्यात्व का और राग-द्वेष का। देखो, कैसा समाहित कर दिया! ध्रुव की भावना अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की भावनारूप एकाग्र होते हैं। आहाहा! उसके मिथ्यात्व और राग-द्वेष

नाश होता है। आहाहा! कैसी शैली! ओहोहो! भगवान! तू आनन्द का नाथ है न, प्रभु! तू कहाँ सुखबुद्धि में रुक गया? आहाहा! स्त्री में सुख, कीर्ति में सुख, अपनी महिमा बाहर प्रसिद्ध होती है जरा लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति तो सुख। बड़ी भ्रमणा है प्रभु तुझे। आहाहा!

मुमुक्षु : .... पैसेवाले को सम्बन्ध ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। पैसेवाले सब कैसे हैं, यह सब खबर नहीं? यह सेठ रहे। बड़े बादशाह हैं वहाँ सागर में तो। बहुत वैभव परन्तु इनका, हों! सेठ का बहुत वैभव बहुत। लोग साधारण व्यक्ति को तो ऐसे... जिसे घर में ६०-६० तो मोटरें। जिसे घर में ६०-६० मोटरों की मशीन सुधारने के (सर्विस सेन्टर) घर में। छह-छह लाख के तो मकान। यह सेठ रहते हैं वह दो, चार, पाँच लाख का होगा। शोभालाल रहते हैं वह। वहाँ अपने आये थे न? आहार करने आये थे या नहीं? तुम्हारे घर में? चरण किये थे नहीं? आहार करने आये थे। गहरे-गहरे ... ऐसे ... बड़ा मकान। ऐसे तो कितने ही सैंकड़ों। कोई कहे, दो सौ मकान हैं। अपने को भाई खबर नहीं। कोई कहे उसके ऊपर से। बड़े, परन्तु वह दुःखी है आकुलता में, हों! आहाहा! पोपटभाई! आहाहा!

शुद्धस्वभाव को छोड़कर कोई भी विकल्प करना, यहाँ तो शुभविकल्प भी दुःख है, वहाँ अशुभ की क्या बातें करना? आहाहा! उस दुकान को सम्हालने और दुकान के माल और... आहाहा! महा दुःखी है वह। आहाहा! उस दुःख को टालने का उपाय, एक प्रभु त्रिलोकनाथ का इसे विश्वास आकर श्रद्धा होना। पूर्णानन्दस्वरूप मैं पूर्ण शुद्ध ध्रुव, अनन्त आनन्द की खान मैं हूँ। आहाहा! मेरी चीज़ तो अनन्त सुख की खान है। आहाहा! ऐसा दृष्टि को परसन्मुख झुकी हुई है, उसे अन्तर में झुका दे। आहाहा! तब उस द्रव्य का माहात्म्य आया, तब उस द्रव्य की भावनारूप से परिणमित हुआ। मणिभाई! ऐसा गजब, भाई! वह **भवजनित दुःखों से दूर ऐसी सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त करते हैं।** आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव इस कलश के टीकाकार।

मुमुक्षु : अन्तिम कलश है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह अन्तिम है। ४४ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ४४

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को।
णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा॥४४॥

निर्ग्रन्थ है, निराग है, निःशल्य, जीव अमान है।
सब दोष रहित, अक्रोध, निर्मद जीव यह निष्काम है॥४४॥

अन्वयार्थः—[आत्मा] आत्मा [निर्ग्रन्थः] निर्ग्रन्थ [नीरागः] निराग, [निःशल्यः] निःशल्य, [सकलदोषनिर्मुक्त] सर्वदोषविमुक्त, [निःकामः] निष्काम, [निःक्रोधः] निःक्रोध, [निर्मानः] निर्मान और [निर्मदः] निर्मद है।

टीकाः—यहाँ (इस गाथा में) भी शुद्धजीव का स्वरूप कहा है।

शुद्ध जीवास्तिकाय बाह्य-अभ्यंतर चौबीस[१] परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से निर्ग्रन्थ है; सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के कारण निराग है; निदान, माया और मिथ्यात्व—इन तीन शल्यों के अभाव के कारण निःशल्य है; शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीवास्तिकाय को द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने के कारण सर्वदोषविमुक्त है; शुद्ध निश्चयनय से निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से निष्काम है; निश्चयनय से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण निःक्रोध है; निश्चयनय से सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने के कारण निर्मान है; निश्चयनय से निःशेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण निर्मद है। उक्तप्रकार का (ऊपर कहे हुए प्रकार का), विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य-निरावरण निज कारणसमयसार का स्वरूप उपादेय है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री प्रवचनसार की टीका में ८वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

---

१. क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र और बर्तन — ऐसा दसप्रकार का बाह्यपरिग्रह है; एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय — ऐसा चौदहप्रकार का अभ्यन्तरपरिग्रह है।

(मंदाक्रान्ता)

इत्युच्छेदात्पर-परिणतेः कर्तृ-कर्मादि-भेद-
भ्रान्तिध्वन्सादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः।
सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं,
स्थास्यत्युद्यत्सहज-महिमा सर्वदा मुक्त एव॥

(वीरछन्द)

इसप्रकार जिस भव्यजीव ने पर-परिणति का नाश किया।
कर्त्ता कर्म आदि भेदों की भ्रमणा का भी नाश किया॥
शुद्ध आत्मा को पाकर चिन्मात्र तेज में लीन रहें।
स्वाभाविक माहात्म्य प्रकाशस्वरूप सर्वदा मुक्त रहे॥

***श्लोकार्थः*—इस प्रकार परपरिणति के उच्छेद द्वारा (अर्थात् परद्रव्यरूप परिणमन के नाश द्वारा) तथा कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति उसके भी नाश द्वारा अन्त में जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद (निर्मल) तेज में लीन रहता हुआ, अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा मुक्त ही रहेगा।**

गाथा - ४४ पर प्रवचन

यहाँ (इस गाथा में) भी शुद्धजीव का स्वरूप कहा है। द्रव्यार्थिकनय का विषय जो शुद्ध ध्रुव, वह कैसा है, उसका वर्णन इसमें है।

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को।
णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा॥४४॥

आहाहा! कहाँ से शुरु किया देखो न!

निर्ग्रन्थ है, निराग है, निःशल्य, जीव अमान है।
सब दोष रहित, अक्रोध, निर्मद जीव यह निष्काम है॥४४॥

शुद्ध जीवास्तिकाय... भाषा देखो टीका। शुद्ध जीव, ऐसा न लेकर **शुद्ध**

जीवास्तिकाय... शुद्ध जीव, अस्ति और असंख्य प्रदेशरूपी काय। सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसा शुद्ध जीवास्तिकाय के स्वरूप का वर्णन कहीं नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जीवास्तिकाय या पंचास्तिकाय किसी धर्म में ऐसा नाम ही नहीं!

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, होता नहीं। था कहाँ यह वह? सर्वज्ञ के अतिरिक्त यह वस्तु अन्यत्र कहीं होती नहीं। आहाहा! 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन' श्रीमद् में आता है। चैतन्यघन में प्रदेश लिये हैं। असंख्य प्रदेश। शुद्ध-पवित्र, बुद्ध-ज्ञान का पिण्ड प्रभु। चैतन्यघन असंख्य प्रदेशी का पिण्ड काया। वह उसकी काया है। 'स्वयं ज्योति सुखधाम' स्वयं चैतन्यज्योति जलहल ज्योति अन्दर प्रगट है। सुख का धाम। 'कर विचार तो पाम।' आहाहा! 'दूसरा कितना कहे? कर विचार तो पाम।' इस एक गाथा में कितना समाहित कर दिया है! आहाहा! गृहस्थाश्रम में हीरा-माणेक का व्यापार था, परन्तु अन्तर में से भिन्न थे। नारियल का गोला जैसे पृथक् होता है, भले बाहर न निकला हो तो भी गड़गड़ खड़कता है अन्दर। आहाहा! उसी प्रकार राग से, शरीर से भगवान को जब भिन्न किया तो भिन्न गोले की भाँति अन्दर (रहता है)। आहाहा!

यह चीज़ त्रिकाली... कहाँ से उठायी भाषा देखो! निर्ग्रन्थ। पर्याय में जब निर्ग्रन्थपना प्रगट होता है तो कहाँ से होता है? कहते हैं। मुनिपना निर्ग्रन्थदशा जिसे वस्त्र का धागा नहीं, बर्तन का, पात्र का एक टुकड़ा नहीं। लेंगे अन्दर। है न? १४ प्रकार के, १० प्रकार के परिग्रह। **क्षेत्र, मकान...** नीचे (फुटनोट में)। **चाँदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र और बर्तन...** अर्थात् पात्र आदि। जिसकी नग्नदशा और जिसकी मुनिपने की दशा, वह वस्त्र और बर्तनरहित उनकी दशा है। वह दशा प्रगटी कहाँ से? कहते हैं। आहाहा! निर्ग्रन्थस्वरूप भगवान त्रिकाल है। समझ में आया? आहाहा!

यह **जीवास्तिकाय बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रह...** देखो, है न? बाह्य दस प्रकार और अन्दर **एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय...** चौदह प्रकार। आहाहा! जिसमें मिथ्यात्व का परिग्रह स्वरूप में नहीं। आहाहा! जिसमें राग-द्वेष का परिग्रह स्वरूप में नहीं। ऐसा निर्ग्रन्थ भगवान आत्मा, ग्रन्थ अर्थात् राग की एकता जिसमें नहीं। आहाहा! ऐसा निर्ग्रन्थ प्रभु, त्रिकाल निर्ग्रन्थ भगवान आत्मा। आहाहा! **सकल**

मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के कारण निर्ग्रन्थ है... बस इतना। आहाहा! देखो, भाषा वहाँ से उठायी है। मुनि भावलिंगी सन्त निर्ग्रन्थ होते हैं। वहाँ से शुरु किया है। आहाहा! अपनी बात करते हैं। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाल आत्मा का यदि निर्ग्रन्थस्वरूप हो तो पर्याय में निर्ग्रन्थता की दशा प्रगट होती है। समझ में आया? इस निर्ग्रन्थ का अर्थ बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहरहित भगवान आत्मा और उसका आश्रय करनेवाले की पर्याय में बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहरहित दशा। समझ में आया? आहाहा! वस्त्र-पात्रसहित निर्ग्रन्थमुनिपना मानना, उसे आत्मा निर्ग्रन्थ है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अपने स्वरूप को निर्ग्रन्थ तो कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह निर्ग्रन्थ कहे, बड़े पोटला रखे और निर्ग्रन्थ कहे। आहाहा! यहाँ तो एक वस्त्र का टुकड़ा रखे तो वह निर्ग्रन्थदशा उसकी पर्याय में नहीं हो सकती। क्योंकि वस्तु ही स्वयं ऐसी निर्ग्रन्थ है। आहाहा! समझ में आया?

श्रीमद् में एक आता है। अरे! हम आत्मा तो निर्ग्रन्थ हैं और यह क्या? आहाहा! दृष्टि का विषय है, वह अनुभव में आया तो पर्याय में हम निर्ग्रन्थ हैं। भले स्थिरता नहीं। समझ में आया? परन्तु हम रागरहित आत्मा चैतन्य की क्रिया रहित (अर्थात्) जो चैतन्य की क्रिया राग की कही न, उस रहित आत्मा। फिर कहेंगे देखो, तुरन्त ही कहेंगे।

चेतनकर्म के अभाव के कारण निराग है;... देखो, भाषा तो। आहाहा! पहले अभी इतना लेंगे। **बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रह के परित्यागस्वरूप...** परित्याग। परिग्रह के परित्याग। समस्त प्रकार के अभावस्वरूप होने से। आहाहा! यदि ऐसा निर्ग्रन्थ भगवान न हो तो निर्ग्रन्थपर्याय कहाँ से आयेगी? कहीं बाहर से आती है? आहाहा! समझ में आया? निर्ग्रन्थदशा, वह चारित्रदशा और वह मुक्ति का मूलकारण है। चारित्र धर्म, वह मुक्ति का कारण। वह चारित्र निर्ग्रन्थदशा अन्दर में। आहाहा! तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव। अरे! यह वस्त्र और वस्त्र लेने के विकल्प का भी अभाव। आहाहा! ऐसी निर्ग्रन्थदशा, भगवान निर्ग्रन्थस्वरूप है, उसकी एकाग्रता से यह दशा प्रगट होती है। उसमें है, वह पर्याय में आती है। प्राप्त की प्राप्ति है। समझ में आया?

आहाहा! भगवान आत्मा निर्ग्रन्थस्वरूप ही विराजमान है। आहाहा! ऐसे त्रिकाली भगवान को विश्वास, ज्ञानवेदन और स्थिरता में लेने से निर्ग्रन्थदशा जो पर्याय में आती है... आहाहा! बापू! अभी निर्ग्रन्थदशा... आहाहा! समझ में आया? भावलिंगी सन्त ऐसे होते हैं। ऐसी है, वस्तु ऐसी है, ऐसा यहाँ कहते हैं। वस्तु निर्ग्रन्थ है न! समझ में आया?

मुमुक्षु : वस्तु स्वयं निर्ग्रन्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु स्वयं निर्ग्रन्थ है। तो पर्याय में निर्ग्रन्थपना प्रगट होता है, वह वस्तु में से दशा आती है। वह कोई राग की मन्दता और बाहर का छोड़ा, इसलिए आयी है, ऐसा नहीं। आहाहा! आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध जीवास्तिकाय... भगवान पवित्र है, असंख्यप्रदेशी समुदाय, वह जीव त्रिकाली। उसमें बाह्य दस प्रकार और अभ्यन्तर चौदह प्रकार (परिग्रह के नहीं)। देखो, आहाहा! उसमें मिथ्यात्व नहीं तो निर्ग्रन्थदशा में भी मिथ्यात्व नहीं। मिथ्यात्वभाव हो और मुनिपना आवे, (ऐसा तीन काल में नहीं होता)। आहाहा!

मुमुक्षु : पंचम काल में तो आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो बेचारों को। भाई!

कुन्दकुन्दाचार्य तो मूलाचार में ऐसा कहते हैं कि हमारे दुश्मन को भी द्रव्यलिंग न होओ। क्योंकि द्रव्यलिंग धारण किया और अन्तर वस्तु नहीं, अब वह छोड़ा जाये नहीं, पालन किया जाये नहीं। छोड़ा जाये नहीं। नग्न हो गये बाहर में। क्या करे बेचारे? एक यहाँ आये थे न साधु। मुनि नग्न दिगम्बर। ८५ वर्ष की उम्र थी। ऋषभसागर, महाराष्ट्र के थे। चातुर्मास इन्दौर था। फिर यहाँ का परिचय हुआ। नेमिचन्दभाई वहाँ है न! इन्दौर में नेमिचन्द पण्डित। नेमिचन्द। यहाँ की बहुत रुचिवाले हैं। तो उनके संग में उन्होंने सुना और सम्यग्दर्शन पुस्तक है न अपनी? कितना भाग होगा उनके पास? अपने अभी छठवाँ भाग बाहर प्रसिद्ध हुआ। उनके पास होगा कुछ। वाँच कर उन्हें ऐसा बैठा... ओहो! महाराज! तुम कहते हो, ऐसे भावलिंगी सन्त तो हिन्दुस्तान में नहीं। स्वयं दिगम्बर। ऐसा है। भाई! द्रव्यलिंग भी क्या है, उसकी भी कहाँ खबर है? द्रव्यलिंग

भी नहीं। जिन्हें अट्ठाईस मूलगुण चुस्त चाहिए, शास्त्र की व्यवहारश्रद्धा बराबर चाहिए, उसका ठिकाना नहीं। आहाहा! उनके लिये चौका बनावे, वह तो लेते हैं। चौका बनावे, बनाओ चौका, साथ में रखो। अरेरे! यह मार्ग कहाँ? अरे! वीतरागमार्ग से भ्रष्टमार्ग है यह। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! दूसरे को दुःख लगे, क्या हो? प्रभु! मार्ग ऐसा है। क्या करे? आहाहा! निर्ग्रन्थदशा भाव बिना अकेला नग्नपना, वह तो अनन्त बार धारण किया और पंच महाव्रत के परिणाम अभी तो ऐसे हैं नहीं, ऐसे नौवें ग्रैवेयक गया, तब पंच महाव्रत के परिणाम और अट्ठाईस मूलगुण बहुत चुस्त पालन किये थे। उसके लिये आहार और पानी की बूँद बनावे, प्राण जाये तो भी नहीं लेते थे। ऐसे द्रव्यलिंगी था। ऐसा द्रव्यलिंग अभी तो नहीं। आहाहा! कठिन पड़े, बहुत कठिन!

मुमुक्षु : द्रव्यलिंगी भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यलिंगी नहीं। कुछ नहीं। परन्तु तुम्हारी अपेक्षा तो अच्छे हैं या नहीं? ऐसा कहते हैं। अरे! भाई! ऐसा नहीं ... ऐसा बचाव नहीं करना। ओहोहो!

जिसमें मिथ्यात्व और राग-द्वेष का अभाव है, ऐसी चीज़ है वह। ऐसी चीज़ का जब अनुभव हुआ तो उसे मिथ्यात्व, राग का कर्ता और राग का भोक्ता दृष्टिपूर्वक नहीं रहता। समझ में आया? 'यह अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प भी करनेयोग्य है' ऐसा सम्यग्दृष्टि को नहीं रहता। आहाहा! राग का परिणमन ज्ञान जानता है। पर्यायनय से देखो तो राग का परिणमन मेरी पर्याय में है, ऐसा ज्ञान जानता है। दृष्टि की अपेक्षा से द्रव्यार्थिकनय से देखो तो उसमें नहीं। आहाहा! परन्तु पर्यायनय से देखो तो तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव हुआ, साथ में राग जो बाकी है, वह मेरी परिणति है, मेरी है, मेरा कर्तव्य है। कर्तव्य अर्थात् परिणमन, वह कर्ता। कर्तव्य (करने) योग्य है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो वस्त्र-पात्रवाले की तो बात ही क्या करना? ऐई! स्वरूपचन्दभाई! श्वेताम्बर थे या नहीं तुम? यह तो समझने के लिये। जानने के लिये बात है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु निर्ग्रन्थ है। भगवान आत्मा का स्वभाव ही निर्ग्रन्थ है। आहाहा! तो ऐसे स्वभाव का जिसने अवलम्बन लिया, उग्ररूप से, साधारण अवलम्बन

लिया तो सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, स्वरूपाचरण है; उत्कृष्टरूप से नहीं, परन्तु मध्यमरूप से आश्रय लिया, उसे निर्ग्रन्थदशा पर्याय में वीतरागी परिणति हो जाती है। समझ में आया? और अत्यन्त उग्र पुरुषार्थ करे, आश्रय ले तो केवलज्ञान हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा तेरा निधान तुझमें पड़ा है, कहते हैं। उस निर्ग्रन्थपने की पर्याय प्रगट करने का निधान तेरी वस्तु है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह निर्ग्रन्थपना कहीं बाहर से नहीं आता। पंच महाव्रत ले लिये और नग्न हो गये, इसलिए भावलिंग आ गया—निर्ग्रन्थपना, ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा शुद्ध जीवास्तिकाय द्रव्य वस्तु बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ है। आहाहा! क्या कुन्दकुन्दाचार्य के वचन! ऐसा भगवान आत्मा अनादि-अनन्त निर्ग्रन्थ है। आहाहा! ऐसा भगवान अनादि-अनन्त आत्मा निर्ग्रन्थ ही है। उसका आश्रय करने से, अवलम्बन करने से सम्यग्दर्शन होता है, मध्यमरूप से अवलम्बन करने से है अन्दर निर्ग्रन्थदशा, वैसी पर्याय में प्रगट होती है। समझ में आया? यह पंच महाव्रत आये (पालन किये), इसलिए निर्ग्रन्थदशा हुई, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आप कहते हो यह बात बराबर है, परन्तु करना तो पड़ेगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करना पड़ेगा? स्वरूप में करना है नहीं। आहाहा! समझ में आया? झोला खाते थे? यह झोला खाते हैं। यह खाते हैं बहुत समय से। उठे जल्दी यहाँ खाये झोला। समझ में आया? सुनने में ध्यान नहीं, इसलिए झोला खाये। आहाहा! ऐसी बात, है, बापू! सुननेवाला तो... आठवीं गाथा में नहीं कहा? कि टग-टग-टग देखा करे। ऐसा क्या कहते हैं? (समयसार) आठवीं गाथा। आहाहा! उसे झोला (नींद) कहाँ से आवे? आहाहा! बहुत कठिन बात, बापू!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! यहाँ तो निर्ग्रन्थपना शब्द आया न! जिसमें मिथ्यात्व और राग, वह नहीं तो उसमें फिर वस्त्र और बर्तन कहाँ से आया? तो ऐसा निर्ग्रन्थ भगवान त्रिलोकनाथ अनादि-अनन्त निर्ग्रन्थपने से भरा है। आहाहा! उसका जघन्यरूप से आश्रय करने से वह सम्यग्दृष्टि होता है और मध्यमरूप से आश्रय करने से निर्ग्रन्थदशा प्रगट होती है। उसमें है, वह बाहर आती है। पहले प्रतीति में आता है कि मैं आत्मा

निर्ग्रन्थ हूँ। समझ में आया? आत्मा निर्ग्रन्थ है, राग की गाँठ बिना की चीज़ है, पर के परिग्रहरहित है, ऐसा प्रतीति में निर्ग्रन्थपना आता है। फिर स्थिरपने में निर्ग्रन्थपना आता है, वह चारित्रदशा है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले प्रतीति?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतीति में पहले आता है कि यह निर्ग्रन्थ है। अत्यन्त निर्दोष निर्ग्रन्थ, रागरहित, उदयभावरहित, बाह्य परिग्रह तो कहीं दूर रहा, उसका तो अत्यन्त अभाव। समझ में आया? यह तो राग का भी अत्यन्त अभाव। आहाहा! अरे! यह वस्तु के माहात्म्य की दृष्टि हो तो उसकी खबर पड़े। आहाहा! यह चीज़ ऐसी है। आहाहा! निधान त्रिलोकनाथ के निधान पड़े हैं अन्दर। चैतन्यरत्न से मणिरत्न से भरपूर भगवान है। आहाहा! एक बोल हुआ निर्ग्रन्थ का। आहाहा! अरे! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, यह पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं। वे रतनचन्दजी कहते हैं कि मुनि नहीं, आचार्य के वचन लाओ। क्योंकि यह मुनि के मार्ग के साथ मिलाने जाये तो उनकी श्रद्धा खोटी पड़ती है। और आचार्यों के वचन बहुत गम्भीर होते हैं।

मुमुक्षु : मुनि कहो या आचार्य कहो, दोनों....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक का एक है। अरे! समकिती हो न! उसकी श्रद्धा और उपदेश में अन्तर है? आहाहा! तिर्यंच का समकित और सिद्ध का समकित, दोनों एक है। स्थिरता में, चारित्र में अन्तर हो। समझ में आया? चारित्र क्रम-क्रम से होता है और सम्यग्दर्शन में क्रम नहीं। एकसाथ पूर्णानन्द के नाथ के अनुभव में प्रतीति (हो जाती है)। समझ में आया? भले वह क्षयोपशम, उपशम हो, परन्तु उसका विषय तो पूर्ण ही है। समझ में आया? उस समकित में अन्तर नहीं, उसके विषय में अन्तर नहीं। आहाहा!

'मैं पूर्ण निर्ग्रन्थ हूँ, निर्विकल्प चीज़ हूँ, राग के कण बिना की वह मेरी चीज़ है' ऐसा ज्ञान होकर अनुभव में प्रतीति होना, वह तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! पश्चात् स्वरूप का विशेष आश्रय लेकर, विशेष सन्मुख होकर, विशेष अभिमुख होकर... आहाहा! निर्ग्रन्थपना जो स्वभाव में है, वह पर्याय में आता है। आहाहा! उसमें पक्ष किसका है? कि दिगम्बर तुम्हारा पक्ष है। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है

तो ... दिगम्बर धर्म कोई पक्ष नहीं, वस्तु का स्वरूप है। निर्ग्रन्थ कहा न! आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : वस्तु ही निर्ग्रन्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल वस्तु निर्ग्रन्थ है। वह निर्ग्रन्थ है, वही दिगम्बर है। आहाहा! जिसे राग और विकल्प की वृत्ति का जिसमें अभाव है, ऐसी चीज़ ही दिगम्बर है। आहाहा! समझ में आया? यह एक बोल हुआ।

अब कहते हैं कि निराग है। निराग की व्याख्या करते हैं। **सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के कारण...** देखो, भाषा। जड़ कर्म की तो एक ओर रखो, वह तो गयी उसमें। अब यहाँ तो विशेष स्पष्ट करते हुए (कहते हैं कि) **सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के कारण...** जो चैतन्य की परिणति का कार्य। आहाहा! भावकर्म के अभाव के कारण। आहाहा! इस कारण से भगवान निराग है। समझ में आया? साधारण साधन में जिसे बाहर में प्रेम आवे, साधारण बात में जिसका वीर्य रुक जाये वहाँ, उल्लसित हो जाये, कुछ सुन्दर शरीर, सुन्दर मकान, सुन्दर लक्ष्मी, कीर्ति, वह तो मनुष्य को अन्दर जाने की ताकत नहीं उसकी। समझ में आया? आहाहा! और बाहर की महत्ता का जहाँ अन्दर आंशिक भी रस हो, उसे अन्तर की महिमा नहीं सूझती। आहाहा! मुझे बोलना आता है, कहना आता है। ऐसा भी जिसे भाव महिमा का हो... आहाहा! उसे यह बात नहीं बैठती। समझ में आया? क्योंकि वह भगवान निराग है, ऐसा कहते हैं। जिसे निरागता है, जो वस्तु में, उसे पहुँचने के लिये पर के राग का तो उसे त्याग अन्दर करना ही पड़ेगा। आहाहा! विकल्प से लेकर सब चीज़ों के प्रति जिसकी उदासीनता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा भगवान निराग है, तो उसकी पर्याय में भी ऐसी दशा प्रगट होती है। आहाहा! यह तो थोड़ा लिखा बहुत जानना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सकल मोह। परसन्मुख की सावधानी का जरा भी अंश राग-द्वेषस्वरूप चेतनकार्य, वह चेतन का कार्य है परिणमन का। आहाहा!

ऐसे **चेतनकर्म के अभाव के कारण निराग है;...** ऐसे चेतन के विकारी शुभकर्म से भी भगवान भिन्न है, तो ऐसा निराग आत्मा है। आहाहा! यह स्त्री मेरी और यह पुत्र

मेरे, यह मकान, हजीरा... हजीरा कहते हैं इसे। ऐई सेठ! दो-पाँच मंजिल का मकान बड़ा बनावे न। लोटियावोरा में उसे हजीरा कहते हैं। यहाँ जामनगर है न जामनगर? नदी के बाहर बड़े हजीरा हैं। हजीरा अर्थात् वहाँ जलावे और गाढ़े। जलावे तो नहीं, गाढ़े। गाढ़ने के ऊपर मकान बनावे, उसे हजीरा कहते हैं। जामनगर है बड़ा। बड़ी बस्ती है न इसलिए। आहाहा! वहाँ बहुत जगह है। हळवद-हळवद। हळवद में बाहर बड़ा है। लोटियावोरा। हम गये थे न एक बार। वहाँ उनका बड़ा मुल्ला आया, बड़ा वह व्याख्यान में आया था। (संवत्) २०१४ के वर्ष में जामनगर गये तब। जवान था। बहुत लोग आवे न। पहले-पहले गये हम। १४ के वर्ष की बात है। १९ वर्ष हो गये। तो उनका मुल्ला आया था, वह व्याख्यान में आया था। जवान था। मार्ग बापू यह है। आहाहा! वह भी आत्मा है न, प्रभु! वह कहीं आत्मा कोई दूसरा है? आहाहा!

यह राजकोट में मुल्ला है न! जीवाजीभाई मुल्ला। आहाहा! उन्हें इतना वाँचन और मनन प्रथम तो यह सब सुनकर जंगल में जाते ध्यान करने। मुसलमान लोटियावोरा। समझ में आया? अब तो उनका शरीर जीर्ण हो गया। ... कांपते-ध्रुजते हैं। एकबार आवे दर्शन करने लड़के को लेकर। इस बार आये अभी। दस दिन रहे, नौ दिन रहे न नौ दिन। आहाहा! फिर बोले... 'आहाहा! क्या अलिंगग्रहण का १८, १९, २०वाँ बोल!' ताराचन्दजी! वह मुसलमान। अलिंगग्रहण का क्या १८, १९, २०वाँ बोल! जो गुणभेद को स्पर्शे नहीं आत्मा, पर्याय को स्पर्शे नहीं आत्मा, पर्याय द्रव्य को स्पर्शे नहीं। आहाहा! लो! ऐसी बात निकाली उन्होंने। ऐसे के ऐसे बिना भान के नहीं। यह बात वह बात है। ऐई! मणिभाई! यह बनिया को खबर नहीं कितने ही २५-५० वर्ष से हो तो भी। आये थे अभी बेचारे। लड़के को लेकर आवे। शरीर बहुत ध्रुजे न। दर्शन करने आवे दोपहर को।

एक बार तो आये थे गत वर्ष या परार। तब भाई आये थे वे ढेबरभाई। ढेबरभाई आये थे और वह दूसरा साथ में था न, छगन क्या कहलाता है? ज्योतिष। छगन जोशी। वे दो आये थे तब वे बैठे थे फिर दूसरे सुनते थे। उस समय तो बराबर अकेले आये थे। कोई नहीं था। फिर क्या प्रसन्नता बतलाते थे! आहाहा! डालचन्दजी! वोरा मुसलमान।

(संवत्) १९८९ के वर्ष से व्याख्यान में हमेशा आवे, हमेशा आवे। यहाँ भी उसके किसी लड़के को ... हमेशा सुनने मील चलकर आवे मील से। और वापस यह ... कैसी बात! कि अभी जैनों को पकड़ना, समझना कठिन पड़े। आहाहा! क्या बात कहते हैं १८, १९, २० की! अलिंगग्रहण के अन्तिम बोल। अपने यहाँ वाँचन हो गया है शुरुआत में।

यह द्रव्य है, वह गुण को स्पर्शता नहीं। आहाहा! पहले बोल में। अभेद, वह भेद में आता नहीं, भेद को स्पर्शता नहीं। आहाहा! ताराचन्दजी! लोटियावोरा। फिर दूसरे में, द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं। १९वाँ बोल यह है। अभी दो बार चल गया। यह कक्षा के पहले चल गया विस्तार से, फिर कक्षा में थोड़े दिन चला था शुरुआत में। ओहोहो! भगवान द्रव्यस्वरूप, वह तो पहले कहा न निर्द्वन्द्व है। द्रव्य निर्द्वन्द्व है। पर्याय को स्पर्शता नहीं। आहाहा! रतिभाई! यह इनके सेठ हैं वहाँ। गाँव में ऐसे वोरा हैं मण्डल में। आहाहा! अभी है अव्यक्त परन्तु उसे प्रेम बहुत हो गया है। आहाहा! हम मुसलमान उसे यह चीज़! यह क्या चीज़ है यह वह! सेठ! और जैन में जन्मे ५०-५० वर्ष से उसे अभी भान नहीं होता। यह क्या है यह चीज़! आहाहा!

निर्द्वन्द्व द्रव्य है, वह पर्यायसहित है ही नहीं। दो बोल हैं उसमें। आहाहा! तो वहाँ ऐसा कहा १९ बोल में कि द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं, आलिंगन करता नहीं। द्रव्य पर्याय को आलिंगन करता नहीं। आहाहा! यह भगवान की सिंहगर्जना। समझ में आया? सिंह दहाड़ मारता है अन्दर से कि मैं त्रिकाली ध्रुव हूँ, वह पर्याय को स्पर्शता नहीं। आहाहा! अमरचन्दभाई! २०वाँ बोल यह आया २०वाँ, कि द्रव्य-आत्मद्रव्य द्रव्य को स्पर्शता नहीं। १९वाँ द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं और २०वाँ ऐसा आया कि भगवान आत्मा अपना द्रव्य अपने द्रव्य को स्पर्शता नहीं, ऐसी पर्यायरूप है, वह पर्याय को स्पर्शता है। आहाहा! समझ में आया? यह तीन बोल निकालकर प्रसन्न हुए। अमरचन्दभाई! बनिया को शर्म आवे ऐसा है यह सब। उसे परिचय ... (संवत्) १९८९ के वर्ष। ८९। ४२ वर्ष हुए। ८९ से परिचय। व्याख्यान में आवे। ८९ में व्याख्यान में आते थे। फिर तो अब वस्त्र महाराज लो। आमन्त्रण किया था ...८९ के वर्ष, हों! तब से रस बहुत। और

उसे तो इतना हो गया है कि हम तो मोक्ष लेनेवाले, लेनेवाले और लेनेवाले हैं। ऐसा बोले। यह बात रुच गयी न। निवृत्त व्यक्ति। अभी धन्धा कुछ करे नहीं। घर में पड़े रहे और अकेला वाँचन बस। वाँचन और घोलन। धन्धा-बन्धा की बात नहीं। दुकान भी नहीं और कुछ नहीं। आहाहा!

यहाँ कहना है कि आत्मा निराग है। यहाँ तो आत्मा पर्याय बिना का है तो राग बिना का है, वह तो बात कहीं रह गयी। आहाहा! यह तो विशेष स्पष्ट करने के लिये बात करते हैं। आहाहा! पर के साथ कुछ भी प्रेम का विकल्प आना, वह वस्तु में नहीं। आहाहा! वस्तु में नहीं और प्रेम करता है, प्रेम में रुकता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

सकल मोह-राग-द्वेषात्मक... राग-द्वेषात्मक अर्थात् राग-द्वेषस्वरूप। **चेतन कर्म के...** अर्थात् चैतन्य की पर्याय का विकारीभाव शुभ-अशुभ **अभाव के कारण (प्रभु) निराग है;...** आहाहा! पहले निर्ग्रन्थ कहा, फिर निराग कहा। निर्ग्रन्थ में सब आ गया था, परन्तु विशेष स्पष्ट करने के लिये एक-एक बोल में विशेष स्पष्ट करते हैं। आहाहा! देहदेवल में भगवान विराजता है। आहाहा! उसमें राग नहीं, वह तो निराग है। आहाहा! पहली एक व्याख्या आ गयी थी निराग की, हों! पहले आयी थी। निराग। ४३ का पहला बोल। यह ४४ का दूसरा बोल है। है ? निराग। तीसरी लाईन। दूसरी लाईन का पहला बोल। आहाहा! क्या कहा ? निरालम्बन। उसमें यह कहा है देखो, मिथ्यात्व। निरालम्ब फिर व्याख्या है। **मिथ्यात्व, वेद, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, और लोभ नामक चौदह अभ्यन्तर परिग्रहों का अभाव होने से आत्मा, निराग है।** वहाँ ऐसी व्याख्या की थी। वहाँ विस्तार से की थी, यहाँ संक्षिप्त कर दिया। आहाहा! भगवान राग और द्वेष और पुण्य-पाप के विकल्प से खाली है। एकदम खाली है। आहाहा! समझ में आया ? उसे रागसहित मानना मिथ्यात्व, भ्रान्ति, भ्रम है। आहाहा! देखो, वहाँ निराग आया, निराग आया।

नि:शल्य है। भगवान आत्मा त्रिकाली वस्तु नि:शल्य है। नि:शल्य है तो परिणमन में नि:शल्य हो जाती है। आहाहा! नि:शल्योव्रति आता है ? तत्त्वार्थसूत्र। वस्तु नि:शल्य है तो व्रति पर्याय में नि:शल्य हो जाता है। आहाहा! समझ में आया ? व्रती नाम धरावे

और मिथ्यात्व तथा शल्य हो, वह व्रती ही नहीं। आहाहा! उसकी यह शर्त। शर्त यह कि निःशल्योव्रति यह शर्त है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा निःशल्य है, तो जिसका आश्रय लिया, वह परिणति में भी निःशल्य हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! **निदान...** कोई भी रागादि करके हेतु मानना कि यह मुझे कुछ मिले। आहाहा! **माया...** कपट **और मिथ्यात्व—इन तीन शल्यों के अभाव के कारण (भगवान आत्मा) निःशल्य है;...** आहाहा! और उसका आश्रय लिया हो तो पर्याय में निःशल्य हो जाता है। आहाहा! तब व्रती कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... शुरु तो करे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या शुरु करे? शुरु वह अपने द्रव्य का आश्रय करना, वही उसकी शुरुआत है। क्योंकि निःशल्य है इसलिए। समझ में आया? आहाहा! आत्मा का आश्रय तो लिया नहीं और बाह्यक्रिया में व्रती मानना, (वह तो) मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? बहुत बात, बापू!

मुमुक्षु : शुरु करे, वह मिथ्यात्व?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या शुरु हुआ? मिथ्यात्व की शुरुआत है वहाँ। राग का कर्तृत्व और भोक्तृत्वबुद्धि है तो मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! हम देश की सेवा कर सकते हैं, देश की सेवा करे, वह भला काम करता है, यह सब मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : .... जन कल्याण ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जन कल्याण? जन आत्मा नहीं है? जन में आत्मा नहीं है? उसका कल्याण करना है या दूसरे का? यह विशेष कहेंगे, लो....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ७, शुक्रवार, दिनांक २९-०८-१९७५
गाथा-४४, प्रवचन - १९

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार, ४४ गाथा। चौथा बोल। तीन बोल चले हैं। निर्ग्रन्थ, निराग, नि:शल्य—तीन हो गये हैं। क्या कहते हैं? आहाहा! नियमसार में परमस्वभाव का वर्णन जितना स्पष्ट है, उतना वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं। ओहोहो! भगवान आत्मा शुद्ध अर्थात् त्रिकाली पवित्र भावस्वभाव। अभी आया है थोड़ा जैनसन्देश में। पुण्य नहीं करना, पुण्य नहीं (ऐसा नहीं), पहले पाप छोड़कर पुण्य करो, फिर पुण्य छोड़कर (धर्म) होगा। ऐसा है नहीं। यह चारित्र की अपेक्षा से है। दर्शन की अपेक्षा से तो विकल्पमात्र हेय। यहाँ पर्याय हेय है वहाँ और प्रश्न कहाँ आया? समझ में आया? संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय हेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्यायमात्र हेय।

पूज्य गुरुदेवश्री : हेयमात्र है।

मुमुक्षु : किस अपेक्षा से कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : किस अपेक्षा से कहे? गड़बड़ ऐसी चले? सेठ! सर्राफ का धन्धा तो बराबर होता है या नहीं? या घोटाला होता है? (घोटाला) नहीं चलता। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मस्वरूप भगवान पहले दृष्टि में लेने के लिये वही पूर्णानन्द का नाथ उपादेय है। उसके आगे... एक आया था वहाँ। चार भाव भी ऐसे तो आवरणसंयुक्त कहा, परन्तु चार भाव पुद्गलात्मक कहे हैं, पुद्गल। आत्मा के अतिरिक्त पर्याय सब पुद्गल है, ऐसा कहा है। वहाँ निकाला था। गुजराती में चिह्न किया है। यह तो हिन्दी है न! आहाहा! हिन्दी में आज खोजा था वह। वह आया था न, भाई! कल कहा था कि श्रवण करनेवाले को भी सौभाग्य चाहिए। १०८ गाथा में है, नियमसार १०८। है? १०८ है।

भगवान अर्हंत के मुखारविन्द से निकली हुई.... आहाहा! १०८। कल कहा था। परन्तु कहा, याद नहीं। सब कहीं याद रहता है? भाव ख्याल में रहते हैं। **भगवान अर्हंत के मुखारविन्द से...** आहाहा! मुखारविन्द—मुखरूपी अरविन्द-कमल उसमें से निकली हुई, **(श्रवण के लिये आती हुई) सकल जनता को श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हो ऐसी...** आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि जिसे सुनने को मिले, वह उसका सौभाग्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पोपटभाई! यह तुम्हारे पैसा-फैसा मिले, उसमें सौभाग्य नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आपके पास नहीं कहा जाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ नहीं कहा जाता, वहाँ घर में कहा जाता है। मुम्बई में कहा जाता है। आहाहा! देखो न, एक टीका यह सन्तों की!

कहते हैं, **सकल जनता को श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हो ऐसी, सुन्दर-आनन्दास्पंदी (सुन्दर आनन्द झरती), अनक्षरात्मक जो दिव्यध्वनि,...** आहाहा! वाणी में आनन्द झरता है? वह वाणी ऐसा कहती है कि आनन्द का नाथ प्रभु, उसका आश्रय ले तो तुझे आनन्द झरेगा। आहाहा! समझ में आया? तू परमात्मा सच्चिदानन्द प्रभु नित्यानन्द आत्मा जिसमें चार भाव को भी पुद्गल विकार कह दिया है। अन्दर गुजराती में चिह्न किया है मैंने। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि जिसमें पुद्गल का निमित्त और निमित्त का अभाव, वह सब आत्मा नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्दकन्द, उनकी वाणी सुनने के लिये कहते हैं कि सकल जनता को श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हो। आहाहा! समझ में आया? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की वाणी, भाई! यह तो सर्वज्ञ की वाणी है सब। सन्त कहते हैं, वह सर्वज्ञ की वाणी कहते हैं। आहाहा! दिगम्बर सन्त कहते हैं, वह सर्वज्ञ की वाणी कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बात अन्यत्र कहीं है नहीं। जैन सम्प्रदाय में अन्यत्र नहीं है तो दूसरों में तो कहाँ से हो? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि **सौभाग्य प्राप्त हो ऐसी, सुन्दर-आनन्दस्पन्दी (सुन्दर-आनन्द झरती) अनक्षरात्मक जो दिव्यध्वनि...** ॐ ध्वनि अनक्षरात्मक प्रभु की खिरती है। आहाहा!

उसका सार लेकर प्रवचनसार बनाया। आहाहा! समझ में आया? उसका सार यह नियमसार है। सब सार है। प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड़, वह भी अष्टसार है पाहुड़ का अर्थ मूल तो। आहाहा! पंचास्तिकाय को भी पंचास्तिकाय समयसार कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भाई! भगवान की दिव्यध्वनि, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा की निरक्षरी दिव्यध्वनि सुनने के लिये सौभाग्य होता है। वह भाग्यवान प्राणी उसे सुनता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि यहाँ तो सुनने में, वीतराग की वाणी में ऐसा आया कि भगवान! तू त्रिलोक का नाथ परमात्मा पूर्ण प्रभु है, पूर्ण है परमस्वभावभाव, उसका आश्रय ले और पर्याय तथा राग का आश्रय छोड़ दे। आहाहा! तुझे आनन्द झरेगा। तो इस अपेक्षा से दिव्यध्वनि में आनन्द झरता है, ऐसा कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

दूसरी जगह कुछ किया है गुजराती में। वह पुद्गल के भाव नहीं कहीं है। आत्मा के अतिरिक्त सब पुद्गल, ऐसा एक कलश है। यह सवेरे, दोपहर में जरा देखा था। आहाहा! गुजराती है? चिह्न किया होगा कहीं। क्या कहा? पुद्गल। ठीक। पीछे है उस प्रत्याख्यान या इतने में कहीं है। स्वभाव के अतिरिक्त सब पुद्गल विकार है। आहाहा! चार को आवरणसंयुक्त कहा। चार भाव से भगवान त्रिलोकनाथ अगोचर कहा, चार भाव के आश्रय से अगोचर कहा और चार भाव पुद्गलरूप है। त्रिकाल महा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ प्रभु इस अपेक्षा से पर्याय आती है, जाती है, आती है, जाती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा अन्दर है। वह तो कहीं सब याद रहता है।

मुमुक्षु : धवल में भी आत्मा को पुद्गल कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और पुद्गल नाम दिया है। वह तो पुद्गल नाम। यहाँ तो आत्मा के अतिरिक्त की पर्यायें पुद्गल। उसमें तो आत्मा को पुद्गल कहा, वह दूसरी बात। पीछे इतने में है प्रत्याख्यान में कहीं है। मैंने चिह्न किया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : नियमसार में १२९ वें श्लोक में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : १२९? आहाहा! कलश १२९। आहाहा! १८७ (पृष्ठ) ठीक। हाँ, यह १२९, १२९। **आत्मा आत्मा में निज आत्मिक गुणों से समृद्ध आत्मा को—**

एक पंचमभाव को—जानता है... आहाहा! **और देखता है; उस सहज एक पंचमभाव को उसने छोड़ा नहीं ही है तथा अन्य ऐसे परभाव को—कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार है उसे—...** यह अभी हाथ कहीं आता है? यहाँ है। यह तो यहाँ आ गया है। यहाँ गुजराती है। था? चिह्न किया होगा। उसमें चिह्न किया है, हाथ आवे तो। **वास्तव में पौद्गलिक विकार है...** १२९। उसमें चिह्न किया होगा। चिह्न किया है, बड़ी काली लाईन। है? **पंचमभाव को उसने छोड़ा ही नहीं और अन्य ऐसे परभाव को—कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार है उसे—वह ग्रहण ही नहीं करता।** अर्थात् पर्याय को ग्रहण नहीं करता। यह गाथा है न। यह समयसार में आता है, '**णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइं।**' यह ९७ गाथा है। उसमें आता है, अपने समयसार में आता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, वह चार भाव वह पुद्गल का विकार है, उन्हें ग्रहण नहीं करता, पर्याय को ग्रहण नहीं करता। आहाहा! अपने पंचमभाव को छोड़ता नहीं और पर्यायमात्र को ग्रहण नहीं करता। आहाहा! ऐसी बात, देखो, ओहोहो! '**णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइं।**' इतने शब्द। पाठ इतना। '**णियभावं णवि मुच्चइ**' निजभाव पंचमभाव नित्यानन्द प्रभु। आहाहा! अभव्य को भी पंचमभाव है। व्यवहारनिष्ट नहीं। यह आता है न पीछे? व्यवहार में, पर्याय में प्रगट हो, ऐसी योग्यता उसकी नहीं। वह व्यवहार पर्याय, पर्याय व्यवहार हुई न? व्यवहारनिष्ट नहीं। निश्चय तो है ही। आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द का नाथ अपना पंचम स्वभावभाव, ध्रुवभाव, नित्यानन्दभाव, सहजानन्दभाव, स्वभावभाव, अभेदभाव, एकरूपभाव, सादृश्यभाव कभी छोड़ता नहीं। पण्डितजी! आहाहा! कभी छोड़ता नहीं और पर्यायमात्र को कभी ग्रहण नहीं करता। राग को और कर्म को ग्रहण करे, यह तो बात ही कहाँ रही? आहाहा! समझ में आया? यह तो भाई! कायर का काम नहीं। आहाहा! यह तो जिसे वीर्य उछालना है, स्वभावसन्मुख होकर त्रिलोक के नाथ का आदर करना है, उसका यह काम है। समझ में आया? लो, यह पौद्गलिक कहा। पृष्ठ-२१७ में लिखा है। यह चिह्न वह पढ़ा हो न, उसमें से किया हो। २१७। यह। यह भी है, देखो, ११० गाथा, ११०।

भव्य को पारिणामिकभावरूप स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है। वह पंचम भाव औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है। यह तो ठीक। **इसीलिए वह पंचम भाव उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम ऐसे विविध विकारों से रहित है।** है न? विकार अर्थात् विशेषभाव। है? **उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम ऐसे विविध विकारों से रहित है।** आहाहा! वाणी तो देखो, तीसरी लाईन। बाद में बाद में तीसरी लाईन। **विविध विकारों से रहित है।** (चारों ही) प्रकार नहीं, ऐसा वापस, चारों ही प्रकार नहीं, ऐसा। वह विकार नहीं, परन्तु यह तो क्षय भी ऐसे विविध विकार (वाला) है। क्षयभाव वह विविध विकार सहित है। विकार अर्थात् विशेष दशा। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं **शुद्ध निश्चयनय से...** ४४ (गाथा)। **शुद्ध जीवास्तिकाय को...** कैसी टीका! शुद्ध जीव को नहीं लिया, शुद्ध जीवास्तिकाय को। शुद्ध अस्ति और काय, असंख्य प्रदेशी। ऐसी चीज़ सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी स्थान में किसी जगह है नहीं। ऐसे **शुद्ध जीवास्तिकाय को...** भगवान यहाँ शुद्धभाव ऊपर कहा न? वही शुद्ध जीवास्तिकाय। शुद्ध जीव का स्वरूप कहा टीका में पहली लाईन। वही शुद्ध जीवास्तिकाय। उसे **द्रव्यकर्म...** नहीं। **भावकर्म,...** विकृत विकार नहीं **और मोहकर्म का अभाव होने के कारण सर्वदोषविमुक्त है;...** भगवान तो द्रव्य-भावकर्म से रहित विमुक्त निर्दोष है। आहाहा! समझ में अया? परन्तु बात ऐसी है कि उस पर्याय में से लक्ष्य छोड़कर पूर्णानन्द में दृष्टि ले जाना, वही अपूर्व पुरुषार्थ है। आहाहा! पर्याय है, राग है, ऐसा होने पर भी वस्तु में वह है नहीं। आहाहा! वहाँ दृष्टि लगाना। आहाहा! यह जिनेन्द्र के मार्ग की शुरुआत यहाँ से होती है। बातें भी लोगों को कठिन पड़ती है न बेचारों को इसलिए। यह ऐसा है और वैसा है। सब यहाँ का विरुद्ध है थोड़ा। नाम दिया नहीं। जैनसन्देश में लेख आया है। अरे भगवान!

मुमुक्षु : जैनसन्देश में तो ऐसा ही होना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनसन्देश में तो ठीक होना चाहिए। जैनगजट में जरा डालते हैं। आहाहा! जिनेन्द्र का सन्देश वह तो ऐसा होना चाहिए। यह जिनेन्द्र की वाणी यहाँ

कहा न! जिसे दिव्यध्वनि सौभाग्य प्राप्त हो, उसे सुनने को मिलती है। आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ वीतराग जिनेन्द्रदेव... आहाहा! और परम अमृत में तृप्त-तृप्त परमात्मा। आहाहा! भाई! वह क्या चीज़ है? आहाहा! परम अतीन्द्रिय आनन्द से सुखामृत में तृप्त परमात्मा, उनके मुख से निकली हुई वाणी। परम अमृतस्वरूप भगवान आत्मा, वह अमृतस्वरूप से तृप्त-तृप्त पर्याय में है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द से, जो स्वभाव में अतीन्द्रिय अमृत आनन्द पड़ा है, वही पर्याय में प्रगट करके अतीन्द्रिय अमृत आनन्द में तृप्त ऐसे भगवान, उनके मुख से निकली हुई वाणी। व्यवहार से मुख (कहा है)। समझ में आया? उसमें यह कहा। यह वीतराग की वाणी है कि प्रभु! तू तो कर्म, नोकर्म और भावकर्म तीन से तो रहित तू निर्दोष है न! दोष से मुक्त प्रभु तेरी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? दोषसहित और पर्यायसहित की दृष्टि को छोड़कर जो पर्याय में प्रगट नहीं और वस्तुरूप से प्रगट भगवान है। आहाहा! प्रभु बाल-गोपाल सब भगवान पूर्णानन्द से भरपूर हैं। प्रभु! तेरे आनन्द के लिये बाहर में कहीं खोज नहीं... खोज नहीं। अन्तर में खोज, अन्तर भगवान आनन्द पड़ा है। आहाहा!

आहाहा! तुझे अध्रुव से क्या प्रयोजन है? अध्रुव से क्या प्रयोजन है? ध्रुव प्रभु विराजता है न! आहाहा! आनन्द की कातली, अतीन्द्रिय आनन्द की चूसनी पड़ी है। यह आईसक्रीम चूसते हैं न आईसक्रीम, नहीं? क्या? कुल्फी। यह कुल्फी नहीं? यह सब हमने देखा था न वहाँ। माल लेने जाते थे न पालेज से भरूच तो दोपहर में कुल्फी-बुल्फी मिले तो ले लेते वहाँ। पानी पीने कहाँ जायें वहाँ। और फिर बहुत प्यास लगी हो तो एक हलवाई का घर था। कन्दोई समझे? हलवाई। एक भावनगर के हलवाई थे। परन्तु यह तो (संवत्) १९६४-६५ की बात है। संवत् १९६४-६५। वहाँ माल लेने जाते थे। प्यास लगे तो कोई घर तो नहीं। हलवाई वहाँ कन्दोई कहे आओ... आओ... भाई! ऊपर बैठाये और पानी पिलाये। ६४-६५। कितने वर्ष हुए? ६६ वर्ष पहले की बात है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तुझे निर्विकल्प पेय पीना हो तो तुझमें पड़ा है। आहाहा! आनन्द की चूसनी तेरी चीज़ है। आहाहा! चूसनी पर्याय में आती है, परन्तु वह

पर्यायरहित होने पर भी पर्याय में आनन्द का झरता बहता है। ऐसी जिनदेव त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में उस वाणी में आया हुआ सार है। आहाहा! लोगों को कठिन लगता है, इसलिए बहुत लोगों को। स्वस्वभाव का माहात्म्य आता नहीं। स्वस्वभाव क्या है? कितना है? कैसा है? आहाहा! कहते हैं, अरे! तेरे पैसे-फैसे और इज्जत-कीर्ति तो छोड़ एक ओर, धूल भी नहीं तेरी; परन्तु अन्दर में भावकर्म दया, दान, व्रत के विकल्प उठे, उनका लक्ष्य छोड़ दे और उसे जाननेवाली ज्ञान की पर्याय है, उसका भी लक्ष्य छोड़ दे। समझ में आया? आहाहा! इस कारण से भगवान **सर्व दोषविमुक्त है...** अरे! वह तो निष्काम है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ तो निष्काम है।

शुद्ध निश्चयनय से निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से... अपनी वस्तु है, उसकी वांछा, इच्छा उसमें कहाँ है? है, उसकी वाँछा क्या? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर मुनियों की बातें अमृत की धारा बही है। समझ में आया? उन श्रीमद् में कहते हैं न, वे लोग बहुत गाते हैं, 'जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त, समझाया उन पद नमुं श्री सद्गुरु भगवन्त रे। गुणवन्ता रे ज्ञानी, अमृत वरसा रे पंचम काल में।' अब उस वाणी में उसमें तो जरा फेरफारवाली है। यह तो त्रिलोक के नाथ की वाणी। समझ में आया? आहाहा! अभी उसमें केवलज्ञानी गुरु का विनय करे, ऐसे फेरफारवाली है। आहाहा! यह तो पूर्वापरविरोधरहित त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि वही साक्षात् नियमसार और समयसार में उतारी है। प्रवचनसार आदि। आहाहा!

कहते हैं, **शुद्ध निश्चयनय से...** भगवान पूर्णानन्द की दृष्टि करने से **निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से...** मेरी वाँछा मुझमें, ऐसी उसमें नहीं। आहाहा! है, उसकी वाँछा क्या? उसका नाम निष्काम। आहाहा! **शुद्ध निश्चयनय से निज परमतत्त्व की...** परमतत्त्व पूर्णानन्दस्वरूप भगवान आत्मा की भी जिसे वाँछा नहीं। है, उसकी वाँछा क्या? समझ में आया? एक बात। दूसरी, **निःक्रोध है।** भाषा देखो! भगवान नित्यानन्द प्रभु ध्रुवस्वभाव परमपंचमभाव, ज्ञायकभाव, वह **निश्चयनय से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण...** आहाहा! उसमें शुभराग की परिणति भी नहीं, अशुभराग की परिणति भी नहीं। वह समस्त परद्रव्यपरिणति। आहाहा! तो यह लोगों को खटकता है, पुण्य का खटकता है। लोग कहे पुण्य के ऊपर डाँग लेकर बैठे

हैं। ऐसा कहा था न एक बार? कैलाशचन्दजी ने।

मुमुक्षु : शुभभाव को क्रोध कह दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रोध कह दिया। है, कारण है। स्वभाव से विरुद्ध भाव, इसलिए क्रोध। उस क्रोधरहित निःक्रोध आत्मा है। समझ में आया?

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति... वह क्रोध है, विकार है, स्वभाव से विरुद्ध है। ऐसे **भाव का अभाव होने के कारण...** भगवान **निःक्रोध है...** निःक्रोध है। शान्तरस से भरपूर प्रभु आत्मा है। आहाहा! उस शान्तरस का स्वादिया हो एकबार, कहते हैं। समझ में आया? दूसरे रस तो बहुत लिये अज्ञान में। आहाहा! विषय की कामना, भोग की कामना, पैसे की कामना, इज्जत की कामना, महिमा करे इसकी, प्रशंसा करे इसकी कि सुने ऐसा बराबर है। आहाहा! वह प्रशंसा करे और सुने ध्यान रखकर, वह कामना है उसकी। आहाहा!

मुमुक्षु : वह अशुभभाव की कामना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अशुभ है। आहाहा! यहाँ तो प्रशस्त-अप्रशस्त परद्रव्यपरिणति। आहाहा! वह स्वद्रव्यपरिणति नहीं, पंचमभाव भगवान की वह दशा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

उसका **अभाव होने के कारण निःक्रोध है;...** आहाहा! व्याख्या देखो। अब निर्मान। **निश्चयनय से...** सत्यदृष्टि से। सत्य के स्वभाव की वास्तविक दृष्टि से देखो तो **सदा परमसमरसीभावस्वरूप...** सदा परमसमरसीभाव—समरसीभाव उसमें मान नहीं, वह तो निर्मान है। आहाहा! मान होना, 'मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ' वह महाभ्रम है, अज्ञान है। मैं पैसेवाला हूँ, कीर्तिवाला हूँ, परिवारवाला हूँ, मैं लक्ष्मीवाला हूँ, मैं अच्छे धन्धे में व्यवसाय करनेवाला होशियार—चतुर हूँ। यह आता है न अन्दर, नहीं? कवि की बुद्धि ऐसा आता है अन्दर। आता है। आगे आता है। इन सबमें उसे अहं है अहं। यह उसमें आता है। प्रत्याख्यान में आता है। आठ मद और कवि की बुद्धि... वह है। प्रत्याख्यान में होगा कहीं। प्रतिक्रमण में? कहीं है सही। कितना है यह? क्या कहा? ११२। ११२ गाथा है।

'**मदमाणमायलोह**' यह मद आया न, वहाँ यह मद। **तीव्र चारित्रमोह के उदय के कारण पुरुषवेद नामक नोकषाय का विलास, वह मद है। यहाँ मद शब्द का अर्थ मदन अर्थात् कामपरिणाम है। (१) चतुर वचनरचनावाले वैदर्भकवित्व के कारण, आदेयनामकर्म का....** ऐसी वाणी निकले ऐसे कवि की (कि) लोग स्थिर हो जायें। उसका भी अभिमान। वह परचीज़ है। आहाहा! है ? **आदेयनामकर्म का उदय होने पर समस्त जनों द्वारा पूजनीयता से, (२) माता-पिता सम्बन्धी कुल-जाति की विशुद्धि से...** और यहाँ एक लिया है। **(३) प्रधान ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा उपार्जित लक्षकोटि सुभट...** लाख कोटि वीर जैसा जिसका बल हो अन्दर। अच्छा ब्रह्मचर्य पक्का हो, ऐसा शरीर का बल। उसका उसे कहते हैं कि अभिमान होता है। वह आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया ? यह यहाँ कहना है, हों! सुभट समान। समझ में आया ? **दानादि शुभकर्म द्वारा उपार्जित सम्पत्ति की वृद्धि के विलास से,...** ऐसा पुण्य हो कि लक्ष्मी बढ़ती ही जाये। लाखों, करोड़ों-करोड़ों रुपये। देखो न, यह शान्तिलाल खुशाल। ३५ वर्ष पहले कुछ नहीं था। कुछ होगा थोड़ा-बहुत। कहाँ गये पोपटभाई ? वे कहते थे। है न पोपटभाई ? वहाँ बैठे हैं। इनके साला। सब गये ३५ वर्ष में। दो अरब और चालीस करोड़। धूल बढ़ गयी, इसलिए मानो कि हम होशियारी से बढ़े। हमको व्यवसाय करना आता है। तुमको व्यवसाय करना क्या आवे ? आहाहा! ऐसी बुद्धि का अभिमान। आहाहा! है ? है न ?

बुद्धि, तप, विक्रिया, औषध, रस, बल और अक्षीण... आदि का अभिमान। **(६) सुन्दर कामिनीयों के लोचन को आनन्द प्राप्त करानेवाले शरीर लावण्यरस के...** शरीर की ऐसी सुन्दरता कि स्त्रियों के लोचन वहाँ स्थिर हो देखकर। अब वह तो धूल है, मिट्टी है। वह कहाँ... ? आहाहा! कीड़े पड़ेंगे, भाई! उसमें कीड़े पड़ेंगे, भाई! आहाहा! कीड़े। वह तो जड़ है। आहाहा! वह खून के नहीं करते ? उल्टी होती है। खून की उल्टी होती है। भाई को अभी हुआ। जादवजीभाई का पुत्र है न वह अन्दर ? उसे उल्टी हुई थी। और यहाँ कोई उल्टी कहता था। उल्टी हुई। हमारे जीवराजजी को आज ठीक नहीं वापस। सवेरे नहीं आये थे। बहुत सहनशील। परन्तु अभी कहे कि मुझे कुछ होता है। मैं आ नहीं सकता। कहा, कुछ नहीं। सो जाओ। कुछ होता है अन्दर से शरीर

में। क्या कहूँ? ऐसा कि कहा नहीं जा सकता। आज नहीं आ सकूँगा, कहे। बहुत सहनशील। इतने सहनशील हैं कि ऐसी बात बहुत हो तब कहे। आहाहा! यह जड़ का यह दर्द ऐसा है न!

कहते हैं अच्छा शरीर हो और उसके... आहाहा! लब्धि प्रगटी हो। जिसके शरीर में से ऐसा पसीना दूसरे को स्पर्श करे तो रोग मिट जाये। ऐसी लब्धि का भी अभिमान। आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार हुआ, भगवान! आहाहा! केवलज्ञान लब्धि प्राप्त कर, वह चीज़ है। आहाहा! मान और फिर विशेष ले गये हैं। **गुप्त पाप से माया होती है। योग्य स्थल में धनव्यय का अभाव, वह लोभ है;...** ११२ में सब ले लिया। आहाहा!

कहते हैं कि **निश्चयनय से...** भगवान आत्मा **सदा परमसमरसीभाव...** वीतरागभाव। **वीतरागभावरूप होने के कारण निर्मान है;...** किसका मान? वस्तु अपनी पूर्णानन्द का नाथ है, उसका जहाँ भान हुआ, वहाँ मान किसका? आहाहा! समझ में आया? **निश्चयनय से निःशेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण...** प्रभु आत्मा तो अन्तर्मुख है। पर्याय में भी आता नहीं, ऐसी चीज़ अन्दर है। आहाहा! ऐसा उपदेश। जैन में तो व्रत करना, अपवास करना, यह करो, सेवा करना (ऐसा होता है)।

मुमुक्षु : यह तो बहुत वर्ष तक सुना।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत वर्ष। अब वह जैनपना नहीं, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : उपवास इत्यादि जैन में ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपवास जैन में होते हैं, परन्तु उपवास की व्याख्या क्या? आनन्द का नाथ प्रभु में उप अर्थात् समीप में बसना, वह उपवास है। अपने समीप में बसे बिना जो उपवास आदि करता है, वह सब लंघन है। यह अपवास है, यह उपवास नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : लंघन?

पूज्य गुरुदेवश्री : लंघन क्या, लंघन का बाप है। आहाहा! यह पैसेवाले हों, दो-पाँच करोड़ और धूल करोड़ वहाँ तो उसे हो गया मानो आहाहा! सुनने का समय नहीं मिलता, निवृत्ति लेने का समय नहीं मिलता। आहाहा! उसका अन्दर पोषण। मूल तो पोषण अन्दर हो अभिमान कि हमारे इतना करना चाहिए, इतना ऐसा करना चाहिए और हमारे ऐसा करना चाहिए। आहाहा! मर गया ऐसा का ऐसा।

मुमुक्षु : करना क्या, यह समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना, अन्दर स्वरूप है, उसमें जाना यह (करना)। समझ में आया? परमात्मा विराजता है तीन लोक का नाथ देहदेवल में। उस विकल्प के पीछे, पर्याय के पीछे परमात्मा है अन्दर। आहाहा! मनुष्यपना हार जाना है। नहीं कहा? 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये?' सोलह वर्ष में श्रीमद् कहते हैं, लो! 'परिवार और कुटुम्ब क्या बढ़ना...' देवजीभाई! तुम्हारे तो पैसा बहुत पैदा होता है वहाँ कानातलाब। किसान को आमदनी बहुत होती है। भले भरना पड़े, वह भी आमदनी होती है। वह कुछ बोले नहीं। ऐसा करके। हमारे १५-१५ रुपये का क्या कहलाता है तुम्हारे वह? दैनिक मजदूर परन्तु वह सब पाँच-पच्चीस हजार जाये, मिले वापस ३०-४० हजार रहे। उसे और भाणेज इकट्ठा है तो उसके ५० कुछ हैं।

मुमुक्षु : लाख रुपये में .... खेती हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसी? लाख। भाई कहते थे न वह किसी को दो-दो लाख की। हाँ, दो लाख की। वह हो उसमें क्या हुआ? बापू! दो लाख की खेती में दो लाख की आमदनी ऐसी जमीन। यह बनिया को साधारण रीति से दस लाख की आमदनी वर्ष की हो, कोई दो-चार करोड़ रुपये हों तो एक करोड़ में पाँच-पाँच लाख तो हो ही। २०-२५ लाख की आमदनी (होवे तो) मानो कि ओहोहो! मर गया है परन्तु सुन न अब। तेरे चैतन्य के जीवन को जीवित ज्योति का नकार करके उससे जीवुँ, वह तू मर गया है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ कीमत ही न हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : तो वहाँ भी कहाँ पागल कीमत करे। आहाहा! प्रभु यहाँ तो

कहते हैं, पागल पागल की कीमत करे, वह पागल क्या? पागल की कीमत। उसका क्या कहलाता है उसकी रिपोर्ट? सर्टीफिकेट। पागल का प्रमाणपत्र क्या? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तू तो **निःशेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण निर्मद है।** देखा! पहले में मद आया था, उसका अर्थ दूसरा किया था। आया था न? वह दूसरा आया था। वह अन्यत्र कहीं आया है। आया था मस्तिष्क में। वह बाद में आयेगा। यहाँ निःशेष अन्तर्मुख, सर्वथा अन्तर्मुख भगवान है। आहाहा! वह राग में तो आता नहीं, निमित्त में तो आता नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय में प्रभु पूर्णानन्द का नाथ आता नहीं। आहाहा! चिमनभाई! पैसा हो तो वापस ब्लड प्रेशर हो। क्या कहलाता है वह? खून का दबाव और ढींकणा और फींकणा। आहाहा! अरे! परन्तु निरोग शरीर हो तो भी वह तो जड़, मिट्टी, धूल, श्मशान की राख है। आहाहा! ओहोहो! किसका अभिमान, बापू! तुझे किसकी अधिकता दिखती है? आहाहा! प्रभु के समक्ष प्रभुत्व के समक्ष तुझे किसकी अधिकता दिखती है? आहाहा!

तो इस अपेक्षा से भगवान अन्तर्मुख होने से... निःशेषरूप से कहा न? निःशेषरूप से सर्वथा प्रकार, ऐसा। कथंचित् बाह्य और कथंचित् अन्तर्मुख ऐसा नहीं। आहाहा! वीतराग का मार्ग अलौकिक मार्ग है, भाई! जिसका फल अनन्त आनन्द। 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में...' आहाहा! मोक्ष। सादि-अनन्त अनन्त समाधि आनन्द सुख (प्राप्त हो), उसका उपाय भी अलौकिक होगा न! आहाहा! यह लौकिक बातें करे और यह करे और ऐसा करे। ऐसा हम नहीं कहते आचार्य कहते हैं कि तू शुभ छोड़कर अशुभ कर। समझ में आया? परन्तु शुभ है, वह वस्तु नहीं, वह धर्म नहीं, धर्म का कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? अशुभ से बचने के लिये ज्ञानी को भी शुभ तो होता है। '**अशुभ वंचनार्थ**' पंचास्तिकाय में है। '**अशुभ वंचनार्थ**' होता है तो उसमें क्या हुआ? तीव्र ज्वर मिटाने के लिये। आहाहा! परन्तु वह है तो वर्तमान दुःखरूप है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु उसमें तो आता नहीं और उससे आत्मा ज्ञात होता नहीं। वह तो भगवान सर्व प्रकार से अन्तर्मुख है। आहाहा! पर्याय को अन्तर्मुख झुकाने से

उसका पता लगता है। गहरे-गहरे भगवान अन्तर्मुख पड़ा है। समझ में आया? आहाहा! अभी तो यहाँ कर्म से विकार होता है, शुभभाव से धर्म होता है। अरे प्रभु! तू कहाँ अटका? आहाहा! तेरी शक्ति अनन्त-अनन्त बलवान भगवान तू। आहाहा! उसमें लिया है न यह? अकेला मरता है। आहाहा! महा बलवन्त अनन्त आनन्द का, अनन्त पुरुषार्थ के बल का धनी वह मरते... आहाहा! हाय... हाय... हा... हा... ऐसा करके मरे। अरेरे! यह क्या है, प्रभु! यह लिया है। एगो मरे। नहीं? एगो मरे, गाथा है न? उसमें आता है। अकेला मरे, अकेला जीवे और अकेला गुरु की प्रसादी से प्राप्तकर आत्मज्ञान पाकर मोक्ष जाता है। आगे है। आहाहा! समझ में आया? है न, कितनी गाथा है? कितनी गाथा है? यह मद का आया, लो! वह मद कहता था न। वह देखो यह मद का आया न यह मद ११२ में आया। यहाँ मद कहा न, निर्मद **निःशेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण निर्मद है।** यहाँ मद की व्याख्या आयी दूसरी।

११२। **तीव्र चारित्रमोह के उदय के कारण पुरुषवेद नामक नोकषाय का विलास, वह मद है। यहाँ मद शब्द का अर्थ मदन अर्थात् कि कामपरिणाम ऐसा अर्थ है।** यहाँ ऐसा लेना है।

मुमुक्षु : मद और मान दो शब्द पड़े हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दो शब्द पड़े हैं न। आहाहा! क्या कहा अभी पहला?

मुमुक्षु : १०१ गाथा में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह।

'एगो य मरदि जीवो एगो य जीवदि सयं।' यह इसके अर्थ में है देखो, आहाहा! नीचे अर्थ है। **सर्व बन्धुजनों से रक्षण किया जाने पर भी,...** कुटुम्ब, कबीला देह के ढगले सब। आहाहा! कहा था न, एक बार वहाँ नानालालभाई के काका के पुत्र। अमुलखभाई, भाई! आहाहा! दूसरी विवाहित और मरने की तैयारी। कुटुम्ब, कबीला करोड़ोंपति सब नानालालभाई, मोहनलालभाई, बेचरभाई बड़ा परिवार इकट्ठा हुआ। पूरा कमरा भर गया। (संवत्) १९९० का वर्ष। चातुर्मास था न, राजकोट। मांगलिक सुनाने के लिये महाराज को बुलाओ। परन्तु वह तो लिये जाये अन्दर और सब भाई

करोड़ोंपति यह नानालालभाई, बेचरभाई। आँख में आँसू बहते जायें। उसे आँख में से आँसू बहते जायें मरनेवाले को। पीड़ा इतनी कि आँख में से आँसू। कोई शरण? यह कहते हैं, देखो, **सर्व बन्धुजनों से रक्षण किया जाने पर भी,...** पूरे कमरे में सब बड़े-बड़े गृहस्थ। नानालालभाई अर्थात् अमीर व्यक्ति और करोड़ोंपति, आहाहा! जिसे पाँच-पाँच, दस-दस लाख की तो आमदनी।

मुमुक्षु : अमीर व्यक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमीर व्यक्ति। नानालालभाई अर्थात् तो अमीर व्यक्ति। आहाहा! भारी अमीर व्यक्ति।

वह यहाँ कहते हैं, **रक्षण किया जाने पर भी, महाबल-पराक्रमवाले जीव का...** है? महाबल पराक्रमवाला आत्मा तो अन्दर है, तथापि **अकेला का ही, अनिच्छित होने पर भी, स्वयमेव मरण होता है;...** देह छूट जाती है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में गुरु और धर्म। गुरु निमित्त है न सत्।

मुमुक्षु : गुरु की जवाबदारी....

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाबदारी की बात नहीं यहाँ। उसे समझानेवाले सत् ज्ञानी ही होना चाहिए, इतनी बात। अज्ञानी उसे समझानेवाला हो, यह बात नहीं, ऐसा। समझ में आया? उसे देशना सद्गुरु ज्ञानी से मिलना चाहिए। अज्ञानी की देशना, वह देशना नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ठगों की टोली।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठगों की टोली, ऐसा लिखा है। यह सब स्त्री, पुत्र, परिवार सब ठगों की टोली है। स्त्री कहे, मेरे लिये करना पड़ेगा; पुत्र कहे, मेरे लिये करना पड़ेगा। बापू! बहुत नहीं दिया जाता तुम्हारे। हम पुत्र हैं। पीछे हैं या नहीं? आहाहा! ऐसा कहा कि लड़के का पिता किसी को बहुत रुपये दे तो लड़का कहे, तुम इतने अधिक नहीं दे सकते। पीछे हम हैं या नहीं? पाँच-पाँच, दस-दस लाख दे देते हो फिर

हमारे लिये क्या ? यह सब ठगों की टोली है। लिखा है न यह ? कौन सी गाथा ?

मुमुक्षु : इसमें ही है। ११९वाँ श्लोक इसमें ही, इसमें ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ११९ श्लोक। यह तो हिन्दी है। ९६ ? आहाहा! यहाँ लिखा है।

स्वयं किये हुए कर्म के फलानुबन्ध स्वयं भोगने के लिये अकेला जन्मने जाता है। चला जाता है। आहाहा! यह कुटुम्ब, कबीला छोड़कर, देह छोड़कर चला जाता है अकेला नरक और निगोद। यहाँ बनिया बड़ा पैसेवाला तो बहुत तिर्यंच में जानेवाले हैं। क्योंकि माँस न खाते हों... ऐई! धर्म की खबर न हो। आहाहा! बीच के वर्गवाले सब लगभग तिर्यंच में जानेवाले हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच। यहाँ भले करोड़ोंपति हो। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : करना क्या तिर्यंच में न जाया जाये इसके लिये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहते हैं, यह समझो—ऐसा कहते हैं न! आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें कुछ उपाय बताओ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु भगवान त्रिलोकनाथ दृष्टि कर वहाँ, आश्रय कर वहाँ, शरण ले वहाँ, मांगलिक है वहाँ। आहाहा! तेरा मण्डप डलता है। मोक्ष का मण्डप डले, ऐसा है। है ?

'स्त्री, पुत्र, मित्र आदि सुख-दुःख के प्रकार में बिल्कुल सहायभूत नहीं होते।' अकेले हाय... हाय... हाय... करते थे। कहाँ गये तुम्हारे ? ऐई! मलूकचन्दभाई! न्यालभाई की खबर है ? एक बार असाध्य हो गये थे। छोटाभाई कहते थे कि मैं गया तो कुछ नहीं। फिर वापस ऐसे आँख (की), बापू आये हैं ? राणपुर। खबर नहीं। यह भी भूल जाये। उसे कहाँ से खबर हो ? न्यालभाई को। न्यालभाई को रोग हुआ था न पहले। राणपुर कहता हूँ न। यह तो कहा। परन्तु कम सुनते लगते हैं। वे न्यालभाई पड़े थे ऐसे बिना ठिकाने के... ऐसे। छोटाभाई गये तो उन्हें खबर नहीं। वे छोटाभाई कहते थे। फिर थोड़ी देर और आँख ऐसे की, बापू! आये हो ? यह अभी करोड़ों रुपयों में फँस गये हैं।

निवृत्ति नहीं मिलती। देश में आने की निवृत्ति नहीं मिलती। यहाँ आवे तो सुनने की निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! ऐई! स्वरूपचन्दभाई! आहाहा! 'सांगो कहे सळवाणा कंईक चड्या कंईक पाळा।' सांगो समझे? जेल में जाता है न कोई। ऊँट को घुसाया हो और मनुष्य को घुसाया हो। जेल में हो और ऊँट के ऊपर चढ़कर बैठे। परन्तु है तो जेल में न? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अपनी आजीविका के लिये, मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री, पुत्र, मित्र आदि ठगों की टोली तुझे मिली है।** गुजराती में धुतारा है। ठग हैं सब। ऐई! पोपटभाई! 'बापूजी! बापूजी!' करे वहाँ, हों! यह हसमुखभाई और सब आकर। आहाहा! सब ठगारा—ठग हैं। ठीक हो वहाँ तक आवे और फिर खिंचे बहुत, रात्रि जागरण बहुत होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह व्याख्यान तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो हमारे कहाँ... हमने तो बहुत देखे हैं न! हमारे ताराचन्दभाई थे, एई! मलूकचन्दभाई! तुम्हारे ताराचन्दभाई। उनके पुत्र का पुत्र था न सोमचन्द का? मगन। वह मरने पड़ा। छोटी उम्र। विवाह किया हुआ। हम वहाँ थे। आवे हमारे पास। महाराज! लड़का बहुत दुःखी, दुःखी बहुत है। बात तो यह कि हमारे रात्रि जागरण करना पड़ता है। रात्रि में अकेला मर जाये और खबर न हो तो फिर उलहाना मिलेगा। इसलिए जागना पड़ता है। जागना पड़े न। रात्रि में जागना पड़े न। उसके काका। हमारे भाणेज थी न, सन्तोकबा। बुआ की पुत्री की पुत्री थी। वह कहे, आहाहा! यह लड़का ऐसा... हेतु तो यह कि यह बहुत खिंचता है, इसलिए रात्रि में जागरण करना पड़ता है। इसकी अपेक्षा शीघ्र मर जाये। गहरा हेतु ऐसा। यह सब सगे-प्रिय। आहाहा! 'एक रे दिवस ऐसा आयेगा मानो जन्मा नहीं था।' आहाहा! 'सगी नारी रे तेरी कामिनी वह खड़ी टग टग देखेगी, अरे काया में अब कुछ नहीं, ऐसे खड़ी-खड़ी रोयेगी।' हाय... हाय...! अरे रे! कुछ किया नहीं। हुआ नहीं। इतना पूछना था, वह पूछा नहीं गया। इस पैसे का क्या करना? यह किसे देना? पुत्री को देना या इसे देना? ऐई! चिमनभाई!

कहा था न वह (संवत्) १९९० के वर्ष में। यह ठगों की टोली है सब लड़के-बड़के सब। कहा न वहाँ ९० के वर्ष में। वे भाई कौन? म्युनिसिपलिटी का व्यक्ति था न प्रेमचन्द। एक म्युनिसिपलिटी का अधिकारी था मन्दिरमार्गी। वह देखकर बकरे कटाये। बोकड़ा समझे? बकरे। कसाईखाना। म्युनिसिपलिटी का अधिकारी मन्दिरमार्गी था। फिर विवाह में गया हुआ। जलेबी खायी। जलेबी समझे? वह खायी तो डबल निमोनिया हो गया। शरीर लठ्ठ जैसा सोने के उस जैसा शरीर ऐसा और डबल निमोनिया। बुलाओ महाराज को। वहाँ मैं गया। सिर पर स्त्री बैठी थी। मैं पूछ लूँ अब मरने के हैं ये। यह क्या करती हो तुम? अब मर जायेंगे अभी, वहाँ मैं पूछ लूँ। जहाँ मैं थोड़ी देर खड़ा रहा वहाँ तो एक पुलिस आयी। क्या कहलाता है? पट्टावाला साईकिल लेकर। राव साहेब का खिताब है। यह रायसाहेब मरने की तैयारी में हैं। रावसाहेब का... मैं वहाँ खड़ा था न, तब आया। रावसाहेब का खिताब दिया जाता है। परन्तु यह मरने पड़ा है, आँख में से आँसू बहते जायें। शरीर तैयार, कुछ रोग हुआ नहीं। एकदम निमोनिया जम गया। आँसू... आँसू... आँसू... स्त्री सिर पर बैठी हुई रजाई के ऊपर। पूछे इसका ऐसा। अरे! क्या करती हो परन्तु यह? अब यह जाते हैं इन्हें मरने दो न। आहाहा! तुम हैरान करती हो। दरबार! अब चला जाता है, वहाँ अब वापस नहीं आयेगा। अब उसे चैन तो लेने दो। यह पूछने कहाँ बैठे अभी यहाँ? यह सब ऐसे ही करनेवाले हैं, हों! आहाहा! हमने तो देखा है न। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! **निःशेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण निर्मद... प्रभु है।** आहाहा! पर्याय का मैंपना भी कहाँ है, ऐसा कहते हैं। वह तो निर्मद है। **उक्तप्रकार का (ऊपर कहे हुए प्रकार का), विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य-निरावरण निज कारणसमयसार का स्वरूप एक उपादेय है।** आहाहा! बाकी सब धूल धाणी और वा-पाणी है। **विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य-निरावरण निज कारणसमयसार का स्वरूप एक उपादेय है।** आहाहा! यह विशेष प्रवचनसार में कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ८, शनिवार, दिनांक ३०-०८-१९७५
गाथा-४४-४५, कलश-६९, प्रवचन - २०

प्रवचनसार के आधार का कलश है।

इत्युच्छेदात्पर-परिणतेः कर्तृ-कर्मादि-भेद-
भ्रान्तिध्वन्सादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः।
सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं,
स्थास्यत्युद्यत्सहज-महिमा सर्वदा मुक्त एव॥ (प्रवचनसार कलश ८)

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा **इस प्रकार परपरिणति के उच्छेद द्वारा...** शरीर या रागादि के परिणमनरहित। **परपरिणति के उच्छेद द्वारा (अर्थात् परद्रव्यरूप परिणमन के नाश द्वारा)...** अपने अतिरिक्त जो परद्रव्य उनके परिणमन से भिन्न। निश्चय में तो जो आठ कर्म है न आठ कर्म, वे भी अपने ज्ञेय में, उसकी ज्ञानपर्याय में ज्ञेयरूप आकार होता है, वह कर्म की पर्याय नहीं। ज्ञान की पर्याय में सर्व ज्ञेयाकार में आठ कर्म भी आये, तो कर्म है, ऐसा ज्ञेय बनाकर अपनी पर्याय में ज्ञेयाकार ज्ञान हुआ, वह परद्रव्यपरिणति से रहित है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म भाव है, भाई!

इस प्रकार.... यह प्रवचनसार की १२६ गाथा है, उसका यह कलश है। सामान्य द्रव्यस्वरूप का कथन पूरा होता है, उसका यह कलश है। १२७ से विशेष स्पष्टीकरण होता है। यह सामान्य द्रव्य अधिकार पूरा हुआ, उसका कलश किया। भगवान आत्मा परद्रव्य की परिणति का तो नाश करके। आहाहा! **तथा कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति, उसके भी नाश द्वारा...** निश्चय से राग का मैं कर्ता और राग मेरा कार्य... आहाहा! तथा राग का मैं करण-साधन और राग मेरा फल, ऐसे चार बोल हैं वहाँ— कर्ता, कर्म, करण और फल। उनसे रहित यह भगवान है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग होता है, उसका मैं कर्ता, मेरा कार्य, ऐसी परिणति से रहित है। आहाहा! समझ में आया? और अत्यन्त निश्चय अपेक्षा ले तो अपनी पर्याय में षट्कारक का परिणमन

निर्मल में जो होता है, (उससे भी रहित है)। यहाँ यह नहीं कहना, परन्तु यह मूल ७३ गाथा में चलता है। समझ में आया? परद्रव्य की परिणति से रहित, राग के कर्ता, कर्म के भेद से रहित... आहाहा! और अपनी एक समय की ज्ञान और आनन्द की पर्याय जो है, उसके षट्कारक की परिणति जो वस्तु में नहीं। समझ में आया? ओहो! कहाँ है आत्मा? कैसा है आत्मा? कैसे प्राप्त होता है? यह बात है। आहाहा! यह **कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति...** रागादि का कर्ता, यह भ्रान्ति है। आहाहा! पर के कर्ता से तो रहित, यह तो पहले आ गया, अब अन्दर में जो दया, दान, व्रतादि का विकल्प उठता है... आहाहा! उसका कर्ता (मैं), वह मेरा कार्य, उसका मैं करण अर्थात् साधन और वह मेरा फल, उससे रहित है। पण्डितजी!

मुमुक्षु : कर्म के अभाव में शुद्धात्मा की उपलब्धि वीतरागता हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अन्दर में आया। सवेरे जरा यह कर्म नहीं लिया था। नजदीक शरीर, वाणी, मन लिया था, परन्तु वास्तव में तो आठ कर्म जो है, वह भगवान ज्ञान का ज्ञेय है। तो कर्मरूप से तो परिणमता नहीं, परन्तु कर्म ऐसे ज्ञेय का अपने ज्ञानरूप ज्ञेयाकार ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! ऐसे तत्त्व का आश्रय बिना और अनुभव बिना तेरा वनवास और कायक्लेश और तेरे क्रियाकाण्ड क्या करेंगे? ऐसा कहते हैं। आता है न नियमसार में आगे। नियमसार, सामायिक अधिकार में। सामायिक में है न। यह नियमसार है न? १२४।

'**किं काहदि वणवासो**' तू वन में रहे नग्न दिगम्बररूप से और '**कायकिलेसो**' बहुत कायक्लेश से सहन करो '**विचित्तउववासो**' उपवास करो। अनेक प्रकार के अपवास महीने, दो महीने, चार महीने। शास्त्र का पठन करो। आहाहा! और **मौन...** मौन रहो, **समतारहित श्रमण को क्या करते हैं (-क्या लाभ करते हैं?)** है? समतारहित का अर्थ? जो वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा समता का पिण्ड है। चैतन्यमूर्ति वीतराग पिण्ड है, उसके आश्रय से वीतरागी पर्याय प्रगट नहीं की तो तेरा यह क्रियाकाण्ड क्या करेगा तुझे? अमरचन्दभाई! आहाहा! वनवास में रहे जंगल में, तो भी क्या हुआ? कहते हैं। आहाहा! शास्त्र का अध्ययन करे, वाँचन बहुत करे, उसमें क्या हुआ? अपना भगवान

पूर्णानन्दस्वरूप जिसमें अनन्त शान्ति समाधि पड़ी है, उसमें उसके आश्रय से समताभाव जो प्रगट होता है, समताभाव कहो या मोक्ष का मार्ग कहो या वीतरागी पर्याय कहो, ऐसी वीतरागी समता जो शुभाशुभभाव से रहित, जो स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुई ऐसी समाधि, यहाँ सामायिक समाधि... आहाहा! स्व के अवलम्बन से जो समता प्रगट होती है, ऐसी समता बिना तेरे कायक्लेश, वनवास, अपवास क्या करेंगे? शास्त्र का वाँचन भी क्या करेगा? वह तो सब विकल्प है। आहाहा! समझ में आया?

इस समता का अर्थ यह। अन्दर वस्तु जो वीतरागस्वरूप है, उसके अवलम्बन से समता जो वीतरागी पर्याय प्रगट होना, इसके अतिरिक्त तेरा क्रियाकाण्ड क्या करेगा? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! देखो, बारह प्रकार के तप और ऐसे व्रत और पंच महाव्रत और मौन रहे एकदम ऐसे। जंगल में जाकर मौन रहे। आहाहा! कायोत्सर्ग लगा दे शरीर से, क्या तेरी क्रिया करे? भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसका आश्रय तूने लिया नहीं और उसके आश्रय से समता, वीतराग पर्याय प्रगट होनी चाहिए, वह की नहीं। समझ में आया? तो तेरे क्रियाकाण्ड, वनवास, अपवास क्या करेंगे? चार गति में भटकने की चीज़ है सब। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ओहोहो! भगवान आत्मा, परद्रव्यरूप परिणति का तो जिसने अभाव किया और रागादि कर्ता-कर्म की भ्रान्ति भी छूट गयी, अरे! पर्याय में निर्मल पर्याय का षट्कारकरूप परिणमन जो पर्याय में है, वह द्रव्य में नहीं। आहाहा! यह बात! कहा था न कल। दिव्यध्वनि समस्त जन को श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। ऐसा आया था न कल? आहाहा! दिव्यध्वनि भगवान की वाणी यह है। आहाहा! परन्तु लोगों को बाहर के व्यवहार के पक्षवाले (ऐसा कहते हैं), दो नय है न। दो नय (है सही), परन्तु उसका अर्थ क्या? व्यवहारनय का विषय है, इतनी बात है, परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य है और उससे धर्म होता है, (ऐसा बिल्कुल नहीं)। आहाहा!

...भ्रान्ति, उसके भी नाश द्वारा अन्त में जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है... देखो, आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ जिसे पर्याय में प्राप्त हुआ। है? **शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद (निर्मल)**

तेज में लीन रहता हुआ,... आहाहा! चैतन्यमात्ररूप निर्मल तेज जिसका, ऐसे आनन्द और ज्ञान में लीन रहता हुआ **अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा मुक्त ही रहेगा।** ऐसी दशा प्रगट हो तो सदा मुक्त ही रहेगा। यहाँ तक ले गये! आहाहा! समझ में आया? परपरिणति से रहित, समझ में आया? कर्ताकर्म से रहित... आहाहा! समझ में आया? और अन्त में योगफल क्या आया इसमें? भगवान अन्तःतत्त्व जो भगवानस्वरूप, उसकी आत्मप्राप्ति पर्याय में हो गयी। यहाँ तो अन्तिम मोक्ष की पर्याय कहनी है। समझ में आया?

ऐसे **शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध...** तत्त्व को उपलब्ध अर्थात् मोक्षदशा। जो शुद्ध आत्मा है, ऐसी पर्याय जिसे प्राप्त हो गयी। आहाहा! ऐसा यह आत्मा **चैतन्यमात्ररूप विशद (निर्मल) तेज में...** चैतन्यमात्ररूप निर्मल तेज भगवान का, चैतन्यस्वभाव का तेज, चैतन्य का प्रकाश ऐसा आत्मा। आहाहा! अपने में **लीन रहता हुआ, अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमा के...** स्वाभाविक जो चैतन्यस्वभाव की महिमा जो पर्याय में प्रगट हुई। आहाहा! **अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा मुक्त ही रहेगा।** जब से आत्मतत्त्व उपलब्ध—प्राप्त हुआ, उपलब्ध—अनुभव, मोक्ष की दशा सदा ऐसी ही रहेगी। समझ में आया? आहाहा! यह प्रवचनसार की १२६ गाथा, सामान्य द्रव्य का अधिकार पूर्ण होता है, उसका यह आठवाँ कलश है। प्रवचनसार। (गाथा) १२७ से विशेष द्रव्य का अधिकार चलता है। यह सामान्य अधिकार की पूर्णाहुति करते हुए (श्लोक कहा है)। आहाहा!

★ ★ ★

कलश - ६९

और (४४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

(मंदाक्रांता)

ज्ञानज्योतिः प्रहतदुरितध्वान्तसङ्घातकात्मा,
नित्यानन्दाद्यतुलमहिमा सर्वदा मूर्तिमुक्तः।
स्वस्मिन्नुच्चैरविचलतया जातशीलस्य मूलं,
यस्तं वन्दे भवभयहरं मोक्षलक्ष्मीशमीशम् ।।६९।।

(वीरछन्द)

जिसने ज्ञान ज्योति द्वारा अघ अंधकार का नाश किया।
आनन्दादि अतुल महिमाधारी, जो रहे अमूर्त सदा॥
जो अपने में अविचलपन से रहे शील का मूल सदा।
भवभयहारी मुनिश्रीपति ईश्वर को वन्दन करता॥६९॥

***श्लोकार्थः*—जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अन्धकारसमूह का नाश किया है, जो नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला है, जो सर्वदा अमूर्त है, जो अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा उत्तमशील का मूल है, उस भव-भय को हरनेवाले मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान स्वामी को मैं वन्दन करता हूँ॥६९॥**

कलश - ६९ पर प्रवचन

और (४४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)— मुनिराज स्वयं अब श्लोक कहते हैं। वह तो आधार दिया था।

ज्ञानज्योतिः प्रहतदुरितध्वान्तसङ्घातकात्मा,
नित्यानन्दाद्यतुलमहिमा सर्वदा मूर्तिमुक्तः।
स्वस्मिन्नुच्चैरविचलतया जातशीलस्य मूलं,
यस्तं वन्दे भवभयहरं मोक्षलक्ष्मीशमीशम्॥६९॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अन्धकारसमूह का**

नाश किया है,... यह शुभ और अशुभ दोनों को पाप में गिनने में आया है। क्योंकि वह अन्धकार है। आहाहा! शुभ—दया, दान, व्रत, भक्ति, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प अचेतन है, अन्धकार है। ऐसे सर्व **जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अन्धकारसमूह...** ओहोहो! अन्धकार समूह। असंख्य प्रकार के शुभादि, अशुभादि का नाश किया। आहाहा! **जो नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** आहाहा! नित्य आनन्द-नित्यानन्द प्रभु। आनन्द आदि अर्थात् अनन्त गुण **अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** अनन्त गुण के साम्राज्य का वह स्वामी है। आहाहा! समझ में आया? असंख्यप्रदेशी देश, उसके अनन्त गुण उसका गाँव, उसके साम्राज्य का वह राजा है। समझ में आया? आहाहा! कहो, देवजीभाई! तुम्हारी जमीन-फमीन का कहीं रह गया। भाई! हमारे ३० बीघा है और ५० बीघा है, १०० बीघा है। दो लाख पैदा होते हैं।

मुमुक्षु : भक्ति तो राजा राम की भी हुई नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी हो भक्ति धूल? राग इसका नहीं। अरे! राग... पर्याय ही नाशवान है, वहाँ दूसरी चीज़ की क्या बात करना? आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय भी नाशवान है। एक समय ही रहती है। आहाहा! समझ में आया? भगवान उस पर्याय से पार अविनाशी त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु की दृष्टि करके जिसने आत्मा प्राप्त किया। आहाहा! समझ में आया? **पापरूपी अन्धकारसमूह का...** देखो, यह पुण्य-पाप के भाव अन्धकार, इनका समूह वह। **नाश किया है,...** मेरी चीज़ में है नहीं। **जो नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा का...** आनन्द आदि अनन्त गुण की अतुल—जिसकी तुलना न हो सके—जिसकी तुलना न हो सके, ऐसे भगवान के अनन्त आनन्द आदि गुणमहिमा का धरनेवाला है। समझ में आया? यह बात सब अब मूल पाया पड़ा रहा और फिर ऊपर की क्रिया यह करो और यह करो। मन्दिर बनाओ और पूजा करो, भक्ति करो और यात्रा करो। समझ में आया?

मुमुक्षु : नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कर सकता है? वह तो विकल्प आवे तो होता है। विकल्प का कर्ता हो, वह भी चीज़ नहीं। आहाहा! मार्ग बापू! वस्तु का स्वभाव ही ऐसा

है, वहाँ किसके निकट फरियाद करना? (लोग ऐसा कहते हैं), व्यवहार सब अटक जाता है। अब सुन तो सही, प्रभु! व्यवहार-फ्यवहार तुझमें है ही नहीं। आहाहा! वास्तव में तो व्यवहार ज्ञेय है। उस ज्ञेयरूप का ज्ञान अपने में होता है, वह अपनी (अवस्था) है। समझ में आया? बातें बहुत (कठिन)।

मुमुक्षु : व्यवहार अपने में है ही नहीं या थोड़ा-बहुत है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं आत्मा में। उसकी पर्याय में भी व्यवहार है नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय में भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह व्यवहार अपने में ज्ञान की पर्याय है, वह है। आहाहा! अरे! ऐसा परमात्मा जिसकी अतुल महिमा, आहाहा! देखो न, अनन्त गुण की अतुल महिमा को धारण करनेवाला भगवान है। आहाहा! राग को धारण करे और पर को धारण करे, वह तो उसमें नहीं, वास्तव में तो पर्याय को धारण करे, ऐसा वह आत्मा नहीं। वह तो अनन्त ज्ञान, आनन्द आदि गुण की महिमा को धारण करनेवाला है। आहाहा! भाई! तेरा मार्ग प्रभु! अलग है। जिनेन्द्र त्रिलोकनाथ की ध्वनि में यह आया है। ऐसी तेरी चीज़ है। आहाहा! बाहर से लोप हो जाता है, ऐसा हो और वैसा हो, ऐसा कहते हैं। बाह्य जैन सम्प्रदाय होगा तो उसमें कोई निश्चय पायेगा, ऐसा कितने ही कहते हैं, परन्तु वह जैन सम्प्रदाय ही नहीं। आहाहा!

जैन तो जिसने राग और विकल्प से भिन्न ऐसी अपनी अतुल ज्ञान महिमावाली शक्ति प्रभु आत्मा की, अतुल अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ज्ञान आदि अतुल—जिसकी तुलना नहीं, उपमा नहीं, दूसरे के साथ जिसे उपमा दे सके, ऐसी चीज़ नहीं, ऐसा अतुल आत्मा है अनन्त गुण का धारक। आहाहा! नियमसार में आत्मा का कारणपरमात्मा का जो कहा... आहाहा! कारणजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो, ध्रुवस्वभाव कहो, सामान्यरूप कहो। एकरूप त्रिकाल रहनेवाला, ऐसा कहो।

मुमुक्षु : .... कारणसमयसार ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारणसमयसार है, वह तो त्रिकाल कारणसमयसार है, कारणजीव है। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्रुव....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव है। एक कारणसमयसार मोक्षमार्ग की पर्याय है और दूसरा कारणसमयसार उस पर्याय का कारण जो ध्रुव, वह ध्रुव है। समझ में आया? कारणसमयसार के दो प्रकार—एक त्रिकाल कारणसमयसार और उसके आश्रय से उत्पन्न होनेवाली वीतरागी पर्याय जो मोक्ष का कारण, वह पर्यायरूपी कारणसमयसार, परन्तु वह पर्यायरूपी कारणसमयसार त्रिकाल भगवान कारणसमयसार के आश्रय से उत्पन्न होता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसाररूप है ऐसी। समता का पिण्ड प्रभु। आहाहा! समता कुलमन्दिर आता है न, नहीं? पीछे। समतारूपी कुलमन्दिर, कुल का मन्दिर प्रभु तू है। आहाहा! समतारूपी कुल का मन्दिर। आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप वीतराग, परम्परा वीतराग का कुल का परम्परा तेरी चीज़ ऐसी है। आहाहा! समझ में आया? है न पीछे कहीं? कितने में है? २०२ कलश? २०२ कलश। पृष्ठ २५२ हिन्दी।

वास्तव में समतारहित यति को... यही होगा तो वह। वनवास का होगा न वह? हाँ, इसी गाथा का बराबर है। क्या करे उसे वनवास? आहाहा! **वास्तव में समतारहित यति को...** समता अर्थात् वीतरागी समभाव प्रगट हुआ नहीं... आहाहा! वीतरागी संयमदशा प्रगट हुई नहीं... आहाहा! समता ऐसा वीतरागीभावरहित है, ऐसे यति को **अनशनादि तपश्चरणों से फल नहीं है...** तेरे अपवास और अनशन, ऊनोदरी, विनय और भक्ति उनसे आत्मा का कुछ फल तुझे नहीं मिलेगा। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए, हे मुनि! समता का कुलमन्दिर...** है? **ऐसा जो यह अनाकुल निजतत्त्व...** समता का निजघर, समता का वंश परम्परा का घर, समता वीतराग वंश परम्परा का घर, वह भगवान तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? है तो समता वीतरागी पर्याय। समझ में आया? **हे मुनि!** आहाहा! राजकुमार, चक्रवर्ती के राजकुमार, जिनके घर में हजारों रानियाँ, जिनके घर में नीलमणि की... क्या कहलाती है? टाईल्स। नीलमणि की टाईल्स घर में हो। आहाहा! अरे! हम यह नहीं, हमारे में यह नहीं। उस ओर के झुकाव

की वृत्ति उठे, वह हमारी नहीं, हमारे में नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ओहोहो!

सवेरे तो कहा था कि सर्व पदार्थ का ज्ञेयाकार ज्ञान। आहाहा! गजब बात की है! ऐसी भाषा कहाँ.. ? आठ कर्म है, वे सर्व पदार्थ में आ जाते हैं। आहाहा! वह सर्व पदार्थ भी आत्मा के ज्ञान का निश्चय से तो ज्ञेय है, परन्तु वह ज्ञेयरूप हुआ नहीं, परन्तु उस सम्बन्धी अपना जो ज्ञान, अपनी पर्याय में आठ कर्म हैं, १४८ प्रकृति है और ऐसे... ऐसे... आहाहा! अरे! तीर्थंकरप्रकृति पर है आठ कर्म में, तो उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ अपना हुआ, जानने में आया कि यह है ऐसा। उस ज्ञान की पर्यायसहित भगवान है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी श्रद्धा अन्दर में, निर्विकल्प श्रद्धा, हों! आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप कर्म को भिन्न बतलाते हो। कर्म ने तो सर्वघात किया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी घात किया नहीं।

मुमुक्षु : सर्वघातिया.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वघातिया भावकर्म, उनसे घात है। भावघाति है। १६वीं गाथा में आया है प्रवचनसार में। द्रव्य-भावघातिकर्म, ऐसा आया है। कर्म तो निमित्तमात्र है। अपनी पर्याय में हीन दशा भावकर्मरूप होना, वह अपना घात (करती है), परन्तु वह मुझमें नहीं। आहाहा! जिस भाव से अपनी पर्याय घात होती है, अपने भाव से, हों! आहाहा! चेतनकर्म नहीं आया था? आया था। चेतनकर्म आया था। कितने में? चेतनकर्म यह। ४४ में। इस ४४ में आया था। **सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के कारण निराग भगवान है;...** आहाहा! अरे! यह विश्वास अन्दर अनुभव में आना... आहाहा! **सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव...** जड़कर्म की तो बात नहीं, वे तो दूर रहे, निश्चय से वह विकारीभाव जो है अपने में अपना, वह भी निश्चय से ज्ञान का ज्ञेय है। जहाँ आनन्द से, अतुलगुण से भरपूर जिसकी महिमा है। वह महिमा है। किसी का करे और किसी को सहायता करे, यह उसकी महिमा नहीं। समझ में आया? सबके काम कर दे और देशसेवा और व्यापार बहुत अच्छा करे और फिर नौकरों को

बहुत पोषे। पोषे अर्थात् सहायता करे पैसा देकर। लो! यह महिमा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह महिमा भले न हो, परन्तु ऐसी बात हम जान लें तो हम पण्डित तो सही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं पण्डित। लो, यह सेठिया शोभालाल, भगवानदास शोभालाल। तीन-तीन लाख की अभी धर्मशाला बनायी, लो! तीन लाख की धर्मशाला बनायी। हम वहाँ थे तब खोली। अरे! यहाँ तो कहते हैं कि वह धर्मशाला परपदार्थ, उसमें पैसा देने का विकल्प हुआ, वह भी परपदार्थ। सेठ! यह बैठे, सेठ बैठे हैं न। वह परपदार्थ ज्ञेय है, वह अपना नहीं। स्वशक्ति ज्ञेय की, परशक्ति ज्ञेय की, वह अपनी नहीं। आहाहा! वह परज्ञेय है, उसका ज्ञान स्वतः अपने स्व-परप्रकाशक स्वभाव से स्वतः ज्ञान होता है। वह ज्ञेय है तो होता है, ऐसा भी नहीं। ज्ञेय अपना तो नहीं, परन्तु राग और कर्म का ज्ञान यहाँ होता है, वह चीज़ है तो ज्ञान होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा स्व-परप्रकाशकरूप से जब पर्याय होती है। आहाहा! पर में कौन बाकी रह गया? सकल पदार्थ (आ गये)। आहाहा! क्या शैली! क्या वस्तु! ओहोहो! वे समस्त पदार्थ कर्म से लेकर, राग से लेकर सब परज्ञेय हैं। उस ज्ञेय को अपनी पर्याय में जानना, वह अपना स्वभाव है। समझ में आया? ऐसी स्व-परप्रकाशक पर्याय... आहाहा! जिसका एक आकार ऐसा स्वभाव, ऐसा भगवान आत्मा। ज्ञानप्रधान कथन है न, इसलिए पर्यायसहित आत्मा की श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन है। ऐसे आत्मा की श्रद्धा। आहाहा! गजब बात है! वीतराग की दिव्यध्वनि... आहाहा! समझ में आया? यह बात है। कहाँ आया? अपने आया न यहाँ ४४ (गाथा का ६९वाँ) कलश।

नित्य आनन्द आदि... आहाहा! नित्य ज्ञानादि, नित्य शान्ति आदि, नित्य स्वच्छता आदि, नित्य प्रभुता आदि। **अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** आहाहा! समझ में आया? **जो सर्वदा अमूर्त है...** त्रिकाल अमूर्त है, प्रभु। जिसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है नहीं। **जो अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा उत्तमशील का मूल है,...** आहाहा! **अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा उत्तमशील का मूल है,...** आहाहा! उत्तम स्वभाव, उत्तम चारित्र का मूल वह चीज़ है। अपने में ही उत्तम चारित्र है और उसका आश्रय करने से

उत्तम चारित्र प्रगट हो, उसके मूल का वह कारण है। आहाहा! समझ में आया? कितनों का अभी आया है, परन्तु अज्ञानी को यह बात कहना? अज्ञानी को तो अशुभ से छोड़ने की बात शुभ करके। अरे प्रभु! तुझे करना है क्या अब? शुभ हो, परन्तु वह शुभ चीज़ तेरी है? और उससे तुझे कल्याण जन्म-मरण का अन्त आता है? आहाहा! समझ में आया? उसके अभाव-स्वभावरूप तेरी चीज़ है और अनन्त गुण स्वभाव सत्रूप, वह तेरा स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा!

उत्तम शील का... शील अर्थात् चारित्र। स्वभाव। उत्तम वीतरागचारित्र का वह मूल है। आहाहा! वह वस्तु वीतरागचारित्ररूप है और वीतरागचारित्र प्रगट होने का वह मूल है। आहाहा! समझ में आया? संयम और चारित्र तो वीतरागरूप होता है। वह संयम और चारित्र वीतरागभाव है। पंच महाव्रत के विकल्प, वह संयम चारित्र नहीं, वह तो चारित्र का दोष है। आहाहा! अमरचन्दभाई! ऐसा मार्ग! ऐसा लगे कि यह एकान्त-एकान्त ऐसा लगे। कह भाई भगवान को तू। कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव तो ऐसा कहते हैं। वे पंच परमेष्ठी हैं। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो वहाँ तक कहते हैं न, सर्वज्ञ भगवान अति निर्मल उत्तम विज्ञानघन में निमग्न भगवान हैं। आहाहा! वहाँ से हमारे मुनि तक, हमारे गुरु तक... प्रभु! सबका निर्णय कर लिया? आहाहा! ऐई! चेतनजी!

.... तो यह वस्तु के आश्रय से वीतराग पर्याय प्रगट होती है। संयम जो कहा जाता है वीतरागभाव, वह उसके आश्रय से उत्पन्न होता है। कोई निमित्त से और पंच महाव्रत का विकल्प हुआ तो चारित्र हुआ, ऐसा है नहीं। आहाहा! कैसा संयम होता है, उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं। संयम तो नहीं, परन्तु कैसा संयम होता है, उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **जो अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा उत्तमशील का मूल है,...** आहाहा! वीतरागी संयम और वीतरागी चारित्र का वह मूल है। अर्थात् वीतरागीचारित्र से भरपूर प्रभु है त्रिकाल। वीतरागी चारित्र से त्रिकाल भरपूर है। आहाहा! उसके आश्रय से वीतरागीचारित्र जो पर्याय में प्रगट होता है, ऐसे चारित्र का मूल वह भगवान

है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र का अर्थ करने का भी ठिकाना नहीं। अपनी कल्पना से अर्थ करे। प्रभु! ऐसा नहीं चलता। वह तो भगवान तीर्थंकर, उनकी वाणी। आहाहा! इसका अर्थ समझना बहुत दुर्लभ बात है। आहाहा! गम्भीर बात है, भाई! नय का ज्ञान, निश्चय, व्यवहार, उपादान-निमित्त, यह निश्चय-व्यवहार है। आहाहा! क्रमबद्ध, वह व्यवहार है। तो क्रमबद्ध उत्पन्न कहाँ से होता है? उस द्रव्य का ज्ञान। यह निश्चय-व्यवहार हुआ। समझ में आया?

उस भव-भय को हरनेवाले मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान स्वामी को मैं वन्दन करता हूँ। पद्मप्रभमलधारिदेव अपना धर्मानुराग प्रगट करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वामी का मतलब....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षलक्ष्मी का स्वामी ऐश्वर्यवान आत्मा। अपनी मोक्षलक्ष्मी का स्वामी। मोक्ष हो गया न? वह मोक्ष अर्थात् स्वामी आत्मा। आहाहा! **ऐश्वर्यवान स्वामी को...** मोक्षरूपी लक्ष्मी के ऐश्वर्यवान स्वामी को **मैं वन्दन करता हूँ।** आहाहा!! सिद्धाणं। सिद्ध पर्याय ऐसी, परन्तु पहिचानकर मैं वन्दन करता हूँ।

मुमुक्षु : स्वामी शब्द क्यों?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वामी वह अपनी पर्याय का स्वामी है।

मुमुक्षु : स्वामी अर्थात् निजतत्त्व लेना या मोक्षतत्त्व लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; निजतत्त्व। निजतत्त्व लेना। मोक्षरूपी ऐश्वर्यवान स्वामी। मोक्षतत्त्व का स्वामी है वह। आहाहा! समझ में आया? अपनी पर्याय का स्वामी है।

मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान... ऐसा कहा न? मोक्षलक्ष्मी की पर्याय प्रगट हुई, ऐसा ऐश्वर्यवान उसका स्वामी आत्मा है। वह स्वामी, पर्याय का स्वामी है न तो वह भी उस पर्याय का स्वामी है, उसे मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो उसमें स्व-स्वामीसम्बन्ध नाम का एक गुण है। क्या? ४७ शक्ति की अन्तिम शक्ति। ४७ समझे? सैंतालीस, आहाहा! स्व-स्वामीसम्बन्ध यह अन्दर में उसका गुण है। तो उस

गुण की परिणति में मोक्ष की जो निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई तो वह द्रव्य का भी स्वामी, गुण का भी स्वामी और पर्याय का भी स्वामी। तीनों का स्वामी। समझ में आया? यह स्वस्वामी। यह तीनों स्व। शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण, शुद्ध पर्याय तीनों स्व, उनका स्वामी। लो, तीनों का स्वामी हो गया। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उसका स्वरूप है। स्व-स्वामीसम्बन्ध नाम का गुण उसमें है और जब द्रव्य प्रगट हुआ तो उस पर्याय में मोक्षलक्ष्मी जो प्रगट हुई तो वह द्रव्य स्व, गुण स्व, पर्याय स्व। तीनों स्व, उनका स्वामी आत्मा। ऐसी गुण की पर्याय प्रगट हुई। आहाहा! गुण तो गुणरूप है।

मुमुक्षु : स्वामी अर्थात् त्रिकाली?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों का स्वामी है वह। द्रव्य का स्वामी, गुण का स्वामी और पर्याय का स्वामी।

मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान स्वामी को मैं वन्दन करता हूँ। यह द्रव्य का स्वामी कहो, गुण का, पर्याय का तीनों का। आहाहा! वहाँ भेद कहाँ है? स्व-स्वामीसम्बन्ध में द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद नहीं। तीनों का स्वामी है। आहाहा! यह ४४ गाथा पूरी हुई, गाथा पूरी हुई।

★ ★ ★

गाथा - ४५-४६

वण्णरसगंधफासा थीपुंसणउंसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति॥४५॥

अरस-मरूव-मगंधं अव्वत्तं चेदणा-गुण-मसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीव-मणिद्दिट्ठ-संठाणं॥४६॥

(हरिगीत)

नहिं स्पर्श-रस-अरु-गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।
संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं॥४५॥

रस, रूप, गंध न, व्यक्त नहिं, नहिं शब्द, चेतनगुणमयी।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान, होता जीवलिंग-ग्रहण नहीं॥४६॥

अन्वयार्थः—[वर्णरसगंधस्पर्शाः] वर्ण-रस-गंध-स्पर्श, [स्त्रीपुंनपुंसकादि-पर्यायाः] स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि पर्यायें, [संस्थानानि] संस्थान और [संहननानि] संहनन - [सर्वे] यह सब [जीवस्य] जीव को [नो सन्ति] नहीं हैं।

[जीवम्] जीव को [अरसम्] अरस, [अरूपम्] अरूप, [अंगधम्] अगन्ध, [अव्यक्तम्] अव्यक्त, [चेतनागुणम्] चेतनागुणवाला, [अशब्दम्] अशब्द, [अलिंगग्रहणम्] अलिंगग्रहण (लिंग से अग्राह्य) और [अनिर्दिष्टसंस्थानम्] जिसे कोई संस्थान नहीं कहा है ऐसा [जानीहि] जान।

टीकाः—यहाँ (इन दो गाथाओं में) परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप, उसे समस्त पौद्गलिक विकारसमूह नहीं है—ऐसा कहा है।

निश्चय से पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि विजातीय विभावव्यंजनपर्यायें, कुब्जादि संस्थान, वज्रर्षभनाराचादि संहनन पुद्गलों को ही हैं, जीवों को नहीं हैं। संसारदशा में स्थावरनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कर्मफलचेतना होती है, त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्य सहित कर्मफलचेतना

होती है। कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। इसी से कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है। इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा संसारावस्था में या मुक्तावस्था में सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है ऐसा, हे शिष्य! तू जान।

इस प्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दिपंचविंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नामक अधिकार में ७९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(मंदाक्रांता)

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्नं तयोर्या,
प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः साऽपि भिन्ना तथैव।
काल-क्षेत्र-प्रमुख-मपि यत्तच्च भिन्नं मतं मे,
भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालङ्कृतं सर्वमेतत्॥

(वीरछन्द)

मेरा यह मत, जीव पृथक् अरु तत् अनुगामी कर्म पृथक्।
जीव कर्म की अति समीपता से जो हुआ, विकार पृथक्॥
काल क्षेत्र आदिक जो भी हैं इस चेतन से भिन्न रहें।
अपने-अपने गुण-पर्यायों से शोभित सब पृथक् रहें॥

श्लोकार्थः—मेरा ऐसा मन्तव्य है कि आत्मा पृथक् है और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म पृथक् है; आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है, वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् है; और काल-क्षेत्रादि जो हैं वे भी (आत्मा से) पृथक् हैं। निज-निज गुणकला से अलंकृत यह सब पृथक्-पृथक् हैं (अर्थात् अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से युक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं)।''

गाथा - ४५-४६ पर प्रवचन

४५-४६। अब आयी वह ४९ गाथा है न। यहाँ ४६ वीं। समयसार की ४९, वह यहाँ ४६। यह गाथा समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़, धवल सबमें यह गाथा आती है। ४६ है न यहाँ।

वण्णरसगंधफासा थीपुंसणउंसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति॥४५॥

अरस-मरूव-मगंधं अव्वत्तं चेदणा-गुण-मसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीव-मणिद्दिट्ठ-संठाणं॥४६॥

नीचे (हरिगीत)

नहिं स्पर्श-रस-अरु-गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।
संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं॥४५॥

रस, रूप, गंध न, व्यक्त नहिं, नहिं शब्द, चेतनगुणमयी।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान, होता जीवलिंग-ग्रहण नहीं॥४६॥

देखो, क्लीब आया। नपुंसक। संस्कृत क्लीब पड़ा है न बहुत जगह। शुभ का स्वामी हो वह नपुंसक है। यहाँ नपुंसक—नर-नारी नहीं।

आहाहा! **टीका:—यहाँ (इन दो गाथाओं में) परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप,...** ओहोहो! जहाँ हो, वहाँ यह कारणपरमात्मा, परमभाव, परमस्वभाव। यह कारणपरमात्मा कहो या शुद्धभाव कहो। शुद्धभाव अधिकार है न? **परमस्वभावभूत ऐसा...** परमस्वभावभूत ऐसा त्रिकाल **कारणपरमात्मा का स्वरूप, उसे समस्त पौद्गलिक विकारसमूह नहीं है...** समस्त पौद्गलिक का विकार नहीं है। **ऐसा कहा है। निश्चय से पाँच वर्ण,...** नहीं। समझ में आया? एक आर्यिका आयी थी यहाँ। तो उससे पूछा कि आत्मा कैसे रंग का है? सफेद या लाल? कहे, पहले लाल, बाद में सफेद। अरेरे! कुछ खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : कोई अपेक्षा लागू करके....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौनसी अपेक्षा लागू पड़े? पहले ऐसा कि लाल और फिर ऐसा कि सफेद। आहाहा! आँख मींचे तब ऐसा हो न लाल जैसा दिखाई दे, पश्चात् ... ऐसे करते दिखाई दे लाल। वह तो जड़ है। जड़ का भास होता है उसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : जवाब तो दिया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : जवाब नहीं। साधारण बात। आये थे यहाँ पूछा था स्वाध्यायमन्दिर में। आहाहा! ऐसा कि पहले लाल होता है और फिर यह महाव्रत धारे या ... धारे, तब सफेद दिखाई देता है, ऐसा। आहाहा! अरेरे! द्रव्य, गुण और पर्याय की भी खबर नहीं होती और उसे यह प्रतिमा और व्रत हो गये। क्या हो? पंचम काल।

यहाँ कहते हैं, **पाँच वर्ण, नहीं पाँच रस,...** नहीं। खट्टा, मीठा रस आत्मा में नहीं। रस मीठा लगता है न। **दो गन्ध...** नहीं। **आठ स्पर्श,...** नहीं। भगवान कोमल, भारी, ऐसा नहीं। **स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि विजातीय विभावव्यंजनपर्यायें,...** आहाहा! वह नहीं। **कुब्जादि संस्थान,...** कुब्जादि यह देह की क्रिया है न बाहर की। नपुंसक दिखाव, इन्द्रिय, स्त्री के आकार, वह सब विभावपर्याय, विभावव्यंजनपर्याय, वह आत्मा में नहीं। विजातीय लिया न? आत्मा की जाति से वह विजाति है। यह शरीर के अवयवों का आकार, स्त्री का, पुरुष का आदि, नपुंसक-पावैया-हींजड़ा का वह सब विजातीय—आत्मा से दूसरी जाति है। विभावव्यंजनपर्याय आत्मा में नहीं। आहाहा! **कुब्जादि संस्थान...** नहीं। छह संस्थान है न। अन्तिम से लिया, समचतुरस्रसंस्थान से नहीं लेकर। कुब्जादि संस्थान नहीं।

वज्रनाराचारादि... यहाँ से लिया। हड्डियों की मजबुताई वज्रनाराच आदि **संहनन पुद्गलों के ही हैं,...** देखो, है? यह सब पुद्गल की व्याख्या है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, कुब्जादि संस्थान, वज्रनाराचारादि संहनन पुद्गलों के ही हैं **जीवों के नहीं।** आहाहा! इस शरीर के आकार इन्द्रिय का, पुरुष का, स्त्री का, वह सब जड़ का—पुद्गल का है। पुद्गल का है, आत्मा में है नहीं। आहाहा! उस जड़ के आकार को आकृति में फेरफार होने पर मानो मैं फेरफार करता हूँ। समझ में आया? यह मान्यता भ्रम अज्ञान है। आहाहा! उसमें सुखबुद्धि होना, वह तो मिथ्यात्व है ही, परन्तु उस इन्द्रिय के आकार में फेरफार होना, वह मुझसे होता है, यह विभ्रम-अज्ञान है।

मुमुक्षु : .... भ्रमणा तो जीव के ज्ञान की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रमणा मिथ्यात्व की पर्याय है, झूठी श्रद्धा की पर्याय है। आहाहा! यह मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। जहाँ समकित की व्याख्या की है न, वहाँ बहुत

लिया है। शरीर का लिंग आदि कठिन होता है। यह लिया है उसमें। है न, खबर है। वह तो जड़ की पर्याय है। समझ में आया? शरीर के अवयव कठिन हो या नरम हो, वह तो जड़ की पर्याय है। वह अपने से नहीं होती। आहाहा! विषय का राग किया इसलिए यह इन्द्रिय की ऐसी दशा हुई, ऐसा है नहीं। भारी कठिन बात! मूल बात को समझे बिना ऊपर से मान ले कि यह हम समझे हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **पुद्गलों को ही हैं, जीवों को नहीं हैं। संसारदशा में स्थावर-नामकर्मयुक्त संसारी जीव को कर्मफलचेतना होती है,...** पंचास्तिकाय में डाला है न। **संसारदशा में स्थावरनामकर्म...** एकेन्द्रिय पृथ्वी, जल **जीव को कर्मफलचेतना होती है,...** आहाहा! वह आत्मा में नहीं। आहाहा! वह चेतना की व्याख्या की। चेतना के भाग किये, देखा! '**चेदणागुणमसद्दं**' है न पाठ में? यह चेतना के भाग किये। कर्मचेतना। आहाहा! कर्मफलचेतना, राग को भोगना, सुख-दुःख की कल्पना, वह कर्मफलचेतना और **त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्यसहित कर्मफलचेतना होती है।** राग के कर्तापूर्वक राग को भोगना, वह कर्मफलचेतना। आहाहा!

कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। आहाहा! यह चेतना होती नहीं आत्मा की, ऐसा कहते हैं। राग को करना और राग को भोगना यह कार्यचेतना या कारणचेतना, वह आत्मा में नहीं। कर्मचेतना—कर्म का फल। कर्म शब्द से जड़ नहीं, हों! सुख की कल्पना, वह कर्मफलचेतना। जड़ नहीं लेना। उस **कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है।** तीन बोध लिये। राग को करना, वह कर्मचेतना; राग को भोगना, वह कर्मफलचेतना। शुद्ध भगवान **कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है।** यह दो (कर्मचेतना और कर्मफलचेतना) नहीं। आहाहा! समझ में आया? है?

शुद्धज्ञानचेतना होती है। त्रिकाल में कारणपरमात्मा वह शुद्धज्ञानचेतना। देखो, ध्रुव। त्रिकाल ध्रुव ज्ञानचेतना। आहाहा! और पर्याय में ज्ञानचेतना। कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है और कार्यपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। समझ में आया? उन कारण और कार्यपरमात्मा में यह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना नहीं होती। आहाहा!

कहो, समझ में आया? यह व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह कर्मचेतना है। वह कारणस्वभाव भगवान और कार्यस्वभाव पर्याय में यह है नहीं। समझ में आया? उस शुद्धज्ञानचेतना के दो प्रकार—एक कारणपरमात्मा में शुद्धज्ञानचेतना, वह ध्रुव और कार्यपरमात्मा शुद्धज्ञानचेतना, वह पर्याय। आहाहा!

इसी से कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को... भाषा देखो अब वापस। अब वह शुद्धज्ञानचेतना कही, अब फल-फल। कार्यसमयसार भगवान। केवलज्ञानपर्याय कार्यसमयसार। कारणसमयसार त्रिकाल **सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है।** वह त्रिकाल कारणसमयसार त्रिकाल में सहजफलरूप ज्ञानचेतना का अनुभव है वहाँ। आहाहा! ध्रुव-ध्रुव में। समझ में आया? कार्यसमयसार, वह पर्याय; कारणसमयसार, वह त्रिकाली द्रव्य। दोनों में सहजफलरूप ज्ञान। सहज आनन्द के फलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है। त्रिकाल में शुद्धज्ञानचेतना आनन्दफलरूप। आहाहा! यदि अन्दर में न हो तो बाहर में कहाँ से आयेगी? ध्रुव में आनन्दचेतना पड़ी है। ध्रुव में, हों! उस कार्यसमयसार में आनन्दचेतना आती है। वह आनन्द के फलरूप चेतना दोनों में है। ध्रुव में है, पर्याय में है। आहाहा! गजब! शुद्धज्ञानचेतना भी दोनों में और कर्मफल अर्थात् आनन्द का फल-वेदन, वह त्रिकाल में भी है और पर्याय में भी है। समझ में आया? कहो, सुजानमलजी!

यह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना वह नहीं। वह कारणपरमात्मा में नहीं और कार्यपरमात्मा में नहीं। भगवान कारणपरमात्मा में शुद्धज्ञानचेतना ध्रुव और पर्याय में शुद्धज्ञानचेतना का वेदन, वह कार्य। और फल आनन्द का अनुभव ज्ञानचेतना का फल, वह त्रिकाल में आनन्द का अनुभव अन्दर ध्रुव में पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? और कार्य में आनन्द का फल आया पर्याय में तो कार्यसमयसार में भी आनन्द का फल है, राग का फल और राग, वह है नहीं। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १०, रविवार, दिनांक ३१-०८-१९७५
गाथा-४५-४६, प्रवचन - २१

नियमसार, ४५-४६ (गाथा का) बाकी है न थोड़ा? फिर से लेते हैं। **कार्यपरमात्मा को...** चेतनागुण शब्द है न अन्दर? चेतनागुण शब्द पड़ा है न, उसकी व्याख्या करते हैं। एकेन्द्रिय स्थावर जीव जो है, उसे कर्मफलचेतना है। अर्थात्? कि जो राग-द्वेष आदि किये थे, उनके फल को वह भोगता है। एकेन्द्रिय यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति। इन्हें ज्ञानचेतना नहीं, तथा कर्मचेतना मुख्यरूप से नहीं। समझ में आया? एकेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, वे जीव हैं। आहाहा! एक पृथ्वी के टुकड़े में सचेत पृथ्वी जो निकलती है, उसमें असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। ऐसे पानी की बूँद, एक बूँद में असंख्य शरीर हैं। एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। ऐसे अग्नि-दियासलाई से अग्नि करे, बीड़ी पीने के लिए, उतने में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। ऐसे वायु—वह भी यह इतने थोड़े में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में एक जीव है। वनस्पति में दो प्रकार—प्रत्येक और साधारण। जो यह नीम, पीपल ऐसे जो हैं, उसके एक-एक पत्ते में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! वहाँ अनन्त बार गया है।

मुमुक्षु : प्रत्येक पत्ते में जीव?

पूज्य गुरुदेवश्री : पत्ते में असंख्य। मूल जो पीपल, नीम है, उसका मूल एक जीव तो मूल है, वह सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु उसके स्कन्ध में, उसकी एक-एक डाली निकले उसमें एक जीव भिन्न पूरी डाली में व्याप्त होता है और दूसरे असंख्य जीव उसके साथ होते हैं। ऐसे पत्ते में एक जीव होता है पूरे पत्ते में व्याप्त और उसके आश्रय से असंख्य जीव होते हैं। और...

मुमुक्षु : फूल में भी?

पूज्य गुरुदेवश्री : फूल जीव है। फूल में दो प्रकार। नये फूल हों अंकुर, उनमें एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं। और प्रत्येक जरा हो जाये...

मुमुक्षु : एक-एक डाली में एक-एक जीव?

पूज्य गुरुदेवश्री : डाली में एक जीव मूल एक, फिर असंख्य जीव साथ में। जैसे यह शरीर है न, इसमें एक आत्मा है न? परन्तु अन्दर दूसरी जीवाँत होती है न जीवाँत? क्या कहलाता है वह? कीटाणु जीव होते हैं न, वे अलग है अन्दर। इसी प्रकार एक-एक डाली में एक (जीव)। पहले तो पीपल, नीम, पूरा बबूल जो वृक्ष है, उसका मूल जीव एक है। एक जीव पूरे पीपल में व्याप्त है, परन्तु उसके एक-एक स्कन्ध में, उसकी कणी-कणी में असंख्य जीव है। उसकी डाली में एक जीव मूल नया आता है तो पूरी डाली में व्यापक होता है, परन्तु फिर उसके टुकड़े-टुकड़े में असंख्य शरीर में असंख्य जीव होते हैं। आहाहा! सेठ! वहाँ रहा था यह बँगला छोड़कर, ऐसा कहते हैं। ऐई! पोपटभाई!

मुमुक्षु : मूला में मुफ्त बिका।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुफ्त बिका। कुछ गिनती कहाँ है? उसे जीव माने, ऐसा कहाँ है अज्ञानी को? आहाहा! भगवान सच्चिदानन्द प्रभु है वह।

एक शरीर में वनस्पति यह पीपल, नीम, बबूल, वह तो असंख्य उसमें जीव। एक जीव व्यापक होता है, पत्ता एक हो तो उसमें मूल जीव वापस एक आवे, व्यापे और उसमें असंख्य जीव दूसरे आवे। समझ में आया? वे जीव और प्याज, लहसुन, प्याज, लहसुन, कन्दमूल, लील-फूग / काई, एक टुकड़े में असंख्य शरीर हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं। कहाँ इसे खबर नहीं होती कुछ। अनन्त। प्याज, लहसुन, यह मूला का कान्दा। मूला होता है न मूला? उसके पत्ते में प्रत्येक होता है। मूल कान्दा है, उसमें अनन्त हैं। शरीर असंख्य और एक शरीर में अनन्त जीव।

वह यहाँ कहते हैं कि उसे क्या है? कि उसे कर्मफलचेतना है। मात्र विकारीभाव

का फल उसे वेदने में आता है। आहाहा! बहुत दु:खी है। समझ में आया? ऐसे एकदम हरे जैसे लगे, पानी मिले नहीं। दु:खी है। वह कर्मफलचेतना को वेदता है। वह विकार के भाव का फल दु:ख को-कर्मफल को (भोगता है)। कर्म जड़ नहीं, कर्म-भावकर्म का फल जो वेदन-दु:ख उसे वेदता है। आहाहा!

और त्रस जो है एकेन्द्रिय के अतिरिक्त कीड़ी, मकोड़ा, समझ में आया? ईयळ, भँवरा, मक्खी, पतंगा, छोटे जीवाँत, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी, देव, वे सब त्रस जीव, कर्म... देखो, यहाँ आया है। **त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्यसहित...** कर्मचेतना तो उसे है। राग-द्वेष की चेतना, कार्यरूप से चेतना है। वह कर्मसहित कर्मफलचेतना है। वह राग-द्वेष के फल को वेदता है। आहाहा! समझ में आया? यह सब राजा, सेठिया पैसेवाले, कहते हैं कि वे जीव हैं त्रस। वे क्या वेदते हैं? कि विकारी के कार्य के परिणामसहित, विकार के फल के दु:ख को कर्मफलचेतना वेदते हैं।

मुमुक्षु : देवों को भी?

पूज्य गुरुदेवश्री : देवों को भी वह है। देव अर्थात् क्या परन्तु वहाँ? त्रस आया न? उसे विकारी परिणाम के कार्यसहित विकारी फल को वे देव मुख्यरूप से वेदते हैं। आहाहा! धूल में वहाँ कहाँ सुख था? आहाहा! समझ में आया? यह पैसेवाले राजा बड़े, देखो न! आहाहा! अभी तो सुना था वह तुम्हारी ग्वालियर की रानी को ले गये हैं। सुना है? ले गये हैं कोई। वहाँ गये थे न भाई हमारे बाबूभाई, उनकी जवाहरात की कीमत आँकने गये सरकार की ओर से। अपने बाबूभाई यह त्रिभुवनभाई के पुत्र। उसकी कीमत क्या? सरकार की ओर से उसे रखा है। बाबूभाई यहाँ बैठते। हमेशा रहनेवाले। त्रिभुवनभाई के पुत्र, उनके पुत्र हैं। यहाँ है न। कहाँ गये? किरिट। उसके पिता। बहुत शान्त हैं और बहुत अभ्यास है। अपने वहाँ लालभाई की मंजिल में इकट्ठे रहते हैं। लालभाई की मंजिल है न, वहाँ रहते हैं। भाई ऊपर रहते हैं और लालभाई नीचे रहते हैं। इसलिए दोनों का परिचय बहुत है। उन्हें सरकार की ओर से यह कितनी कीमत के यह जवाहरात है, यह (नोंधने के लिये रखे) हैं। पहले जयपुर में नोंधने गये थे। उनके पास से ५० लाख का जवाहरात निकला और ४०-५० लाख बाकी है अभी

नोंधने को और यहाँ ग्वालियर की रानी को पकड़ गये और उसका निश्चित किया, वहाँ उसे ४० लाख का जवाहरात निकला। उसके पुत्र बात करते थे। वह अपने यहाँ आते हैं। ... बहुत है। व्यक्ति बहुत अभ्यासी है। समझ में आया? यह बाबूभाई यहाँ बैठते न! सरकार की ओर से उन्हें नोंधा है। झवेरी हैं न। वरना तो यहाँ थे। तीन बोल चलते थे १८, १९, २० तब उन्हें जाना पड़ा। उनके भागीदार का कोल आया। क्योंकि यह तो दिमागवाला व्यक्ति, उस ... भागीदार को। तुम यहाँ आओ। फिर सरकार ने उसे सौंपा है। देखो न, अभी ग्वालियर गये हैं।

मुमुक्षु : अभी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी ग्वालियर। नहीं भाई? किरिट! झवेरी है। वहाँ ४० लाख का जवाहरात (निकला है)। रानी को पकड़ गये हैं। पकड़ गये हैं, परन्तु उसके पास कितना जवाहरात है, उसे नोंधाये बिना उसकी कीमत करने के लिये सरकार की ओर से गये हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न। समझ में आया? नहीं समझ में आया? अब गुजराती चलेगा। गुजराती का अभ्यास करना पड़ेगा। यह तो कक्षा के दिन थे तो अधिक लोग आवे। समझ में आया? शान्तिभाई! यह भी झवेरी हैं, बड़े झवेरी हैं। आहाहा!

कहते हैं कि एकेन्द्रिय के जीव असंख्य और अनन्त हैं। अनन्त हैं, वे सब विकार के फल को भोगने के लिये यह अवतार है। समझ में आया? ... गौणरूप से है वहाँ। एकेन्द्रिय है न इसलिए... मुख्यरूप से कहा न? मुख्यरूप से कर्मचेतना की मुख्यता न लेकर आचार्य ने वहाँ कर्मफलचेतना की मुख्यता ली। यहाँ आया न? देखो न! देखो अन्दर। **संसारदशा में स्थावरनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कर्मफलचेतना होती है,...** है भाई? है? कर्मचेतना नहीं। मुख्यरूप से नहीं न, मुख्य यह है। क्योंकि मन नहीं, वाणी नहीं। एक काया है। आहाहा! उसमें उसे मिथ्यात्व और राग-द्वेष की करने की मुख्यता न लेकर उसके फल के वेदनवाले, ऐसा कहा न? संसारी जीव को कर्मफलचेतना होती है। यह कल अपने वाँचन हो गया है, परन्तु यह कल हिन्दी में था, यह गुजराती

में आया। समझ में आया? स्पष्ट गुजराती में आता है।

मुमुक्षु : स्पष्टीकरण अधिक होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक होता है। आहाहा!

और **त्रसनामकर्मयुक्त...** है? **त्रसनामकर्मयुक्त...** इसमें ईयळ, कीड़ी, मकोड़ा, नारकी, मनुष्य, तिर्यंच और देव, वे सब त्रस में आते हैं। समझ में आया? यह सेठिया पंचेन्द्रिय सब त्रस में आते हैं, राजा सब त्रस में आते हैं, देव सब त्रस में आते हैं। **त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्यसहित...** कार्य अर्थात् मिथ्यात्व और राग-द्वेष के कार्यसहित, वह कर्मचेतनासहित **कर्मफलचेतना होती है।** समझ में आया? आहाहा! उसकी सीमा की मर्यादा में (वेदन होता है)। पर का तो वेदन है नहीं कुछ। जड़ का, शरीर का, वाणी का, वह तो कुछ है नहीं। किसी को उनका वेदन नहीं होता। वेदन हो तो त्रस को कर्मचेतनापूर्वक विकारी मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेषभाव, वह कर्मचेतना। कर्म अर्थात् कार्य। यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष के कार्यसहित उसके फल को कर्मफलचेतना अर्थात् दुःख को वेदता है। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई!

मुमुक्षु : मनुष्य आ गये इसमें?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था न पहले मनुष्य का। मनुष्य, सेठ, राजा, ऐसा तो कहा था मैंने। वे सब त्रस। देव... आहाहा! जो दो इन्द्रिय ईयळ से लेकर तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय नारकी, मनुष्य, देव आदि, वे सब त्रस कहे जाते हैं। एकेन्द्रिय से आगे बढ़े तो दो इन्द्रिय आदि। वे सब कार्यसहित, विकार के कार्य, हों! पर के कार्य की यहाँ बात है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पर के कार्य कब करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी तीन काल में करता नहीं और करे क्या? आहाहा! कहो, शान्तिभाई! यह जवाहरात में फिराना और फिरना, वह कार्य नहीं। उसमें राग और द्वेष और मिथ्यात्वभावरूपी कार्य, वह कर्मचेतना है। आहाहा! समझ में आया? उस कार्यसहित कहो या कर्मसहित कहो। वह कर्म अर्थात् यह। मिथ्याश्रद्धा। मैं यह करता हूँ, मैंने यह किया और मुझे यह मिला, मैं व्यवस्थित काम करनेवाला, इसलिए यह व्यवस्था होती

है, ऐसा जो यह मिथ्यात्वभाव और उसके साथ राग-द्वेष का भाव, वह कर्मचेतना कही जाती है। अरूपी आत्मा की दशा में (होता भाव)। पर के द्रव्य के साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह जीव को कर्म अर्थात् कार्य अर्थात् कि विकारी परिणाम कार्य है उसका। अज्ञानी का संसार अवस्था में पुण्य और पाप और मिथ्यात्वभाव, वह उसका कर्म है, वह उसका कार्य है। संसार यह कार्य कमाने का और फल, वह उसका कार्य नहीं। स्वरूपचन्दभाई! आहाहा! उस कार्यसहित कर्मफलचेतना। उस कार्यसहित उसे दुःख का फल जो है, उस कर्मफलचेतना को वह वेदता है। आहाहा! समझ में आया?

अब ज्ञानी की बात न लेकर एकदम कार्य और कारणसमयसार की ली है। समझ में आया? यदि ज्ञानी लो, सम्यग्दृष्टि तो उसे ज्ञानचेतना भी है थोड़ी और जरा राग की चेतना भी है और ज्ञान के चेतना के फलरूप से आनन्द का भी वेदन है और राग के फलरूप से दुःख का भी वेदन है। समझ में आया? ज्ञानी को, सम्यग्दृष्टि जो सवेरे व्याख्या की, तत्त्वार्थश्रद्धानं, उसका विषय कहीं जगत की कोई चीज़ बाकी नहीं रही। आहाहा! समझ में आया? यह तो भगवान का दरबार है। आहाहा! गूढ़ भाषा बहुत गम्भीर! ओहोहो! सन्तों की भाषा दिगम्बर मुनियों की साक्षात् दिव्यध्वनि! उसमें कुन्दकुन्दाचार्य, आहाहा!

यह एक आया है नियमसार में भाई! भक्ति का अधिकार आता है न कि निश्चय श्रावक और मुनि दोनों निश्चयभक्ति करते हैं। निश्चयरत्नत्रय वीतरागी भक्ति करते हैं वे। श्रावक और मुनि। श्रावक की ग्यारह प्रतिमा में भी... भाई गये लगते हैं, ब्रह्मचारी। समझ में आया? ग्यारह प्रतिमा में भी सम्यग्दर्शनसहित है न, इसलिए वह भी रत्नत्रय की भक्ति करता है। निश्चयरत्नत्रय की भक्ति करता है श्रावक। और फिर लिया है कि वह श्रावक और मुनि सिद्ध की भक्ति '**कुणइ**'—करते हैं, ऐसा शब्द है। करते हैं। है शुभभाव, परन्तु '**कुणइ**' करते हैं, ऐसा शब्द है वहाँ।

मुमुक्षु : चरणानुयोग में करते हैं, ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो नियमसार में, नियमसार में। यह नियमसार है

न? '**सम्मत्तणाणचरणे जो भंत्ति कुणइ सावगो समणो।**' १३४ गाथा। यह तो पृष्ठ निकालने में देरी न लगे इसमें १३४। है? '**सम्मत्तणाणचरणे**' निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान और निश्चय स्वरूप की रमणतारूप चारित्र '**जो भंत्ति कुणइ सावगो समणो।**' श्रावक और साधु दोनों निश्चयभक्ति करनेवाले हैं। आहाहा! '**तस्स दु णिव्वुदिभत्ती**' वह निवृत्तिभक्ति उन्हें है। निश्चय है न? वह '**होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं**' भगवान ने ऐसा कहा है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने ऐसा कहा है कि जो सच्चे श्रावक हैं, सच्चे श्रावक की बात है न, वे अन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की भक्ति को अनुभव करते हैं, वेदते हैं, उसे वे करते हैं। आहाहा! फिर यहाँ तो अपने यह लेना है। यह १३५, १३५।

मोक्खंगयपुरिसाणं गुणभेदं जाणिऊण तेसिं पि।
जो कुणदि परमभत्तिं ववहारणयेण परिकहियं॥१३५॥

है न भाषा। यह तो नियमसार है। यह व्यवहारभक्ति सिद्ध भगवान के गुणों को देखकर उनकी भक्ति करता है। है शुभविकल्प। समझ में आया? यह व्यवहारभक्ति। परन्तु पाठ ऐसा है कि '**जो कुणदि परमभत्तिं**' ऐसा शब्द है। है न? परमभक्ति करते हैं। भाषा तो ऐसी आवे न, क्या आवे दूसरा? समझ में आया? अर्थात् कि उसे पाँचवें और छठे गुणस्थान में निश्चयभक्तिसहित यह व्यवहारभक्ति का विकल्प होता है। वह होता है, होता है और करते हैं, परन्तु ऐसा कहा यहाँ तो। समझ में आया? आहाहा! है?

जो मुक्तिगत हैं उन पुरुष की भक्ति जो गुणभेद से।
करता, वही व्यवहार से निर्वाणभक्ति वेद रे॥१३५॥

है? 'जो परमभक्ति करे' ऐसा शब्द है। वरना यह तो निश्चयभक्ति के अधिकार की व्याख्या है, परन्तु उसमें यह बात डाली। अन्तर वस्तु भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसे खोजकर अन्दर से, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र आंशिक उसे होते हैं, श्रावक को भी और वह मुनि को भी (होते हैं)। यहाँ तो श्रावक पाँचवें गुणस्थानवाले को वीतरागी चारित्रपर्याय, वीतरागी सम्यग्ज्ञान ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कितने ही उड़ा देते हैं। श्रावक को ऐसा होता नहीं, श्रावक को व्यवहार अकेला होता है। यहाँ तो

निश्चयभक्ति करता है। भगवान त्रिलोकनाथ के स्वभाव को पकड़कर, एकाकार होकर। आहाहा! वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी सम्यग्ज्ञान, वीतरागी स्थिरता का वेदन करता है। आहाहा! उसके साथ सिद्ध की भक्ति भी वह व्यवहार से करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परिणाम है न, शुभभाव आता है न। समझ में आया? आहाहा!

'**कुणइ**' शब्द के ऊपर यहाँ तो जरा जोर है। यह तो चरणानुयोग नहीं, यह कहीं चरणानुयोग नहीं। तथापि इसमें यह भाषा कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं रखते हैं। होता है अवश्य न! छह आवश्यक, समकिती को छह आवश्यक आदि होते हैं, उसे करता है, ऐसा कहा जाता है। बाकी कर्तृत्वरूप से करता है, ऐसा नहीं, परन्तु परिणमन है, इसलिए करता है—ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? इतना बतलाना था बस। यह '**ववहारणयेण परिकहियं।**' यह व्यवहारनय की भक्ति। निश्चयनय की भक्तिसहित ऐसी व्यवहारनय की भक्ति श्रावक को और मुनि को दोनों को होती है। आहाहा! व्यवहारभक्ति का फल पुण्यबन्ध है, निश्चयभक्ति का फल संवर और निर्जरा है, वीतराग। आहाहा! समझ में आया? अब यह हुआ। अब यहाँ अपने यहाँ लेना है।

अब **कार्यपरमात्मा को...** है न? पहली एकेन्द्रिय और त्रस की व्याख्या हो गयी। अब **कार्यपरमात्मा को...** कार्यपरमात्मा अर्थात् सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा तेरहवें गुणस्थान में, वे कार्यपरमात्मा। **और कारणपरमात्मा को...** जो त्रिकाली वस्तु। यह कार्यपरमात्मा, वह पर्याय है और कारणपरमात्मा, वह त्रिकाली द्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है।** देखा, वह कर्मफल और कर्मफलचेतना निकाल दी। सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा सुखामृत, वीतरागी सुखामृत को वेदते हैं। समझ में आया? वह शुद्ध ज्ञानचेतना कहलाती है। यहाँ तो अभी कर्मचेतना है वह। यह ज्ञानचेतना, वह कर्मचेतना है—निर्मल कर्मचेतना। वह राग और राग का फल, वह नहीं। यह प्रवचनसार में आता है। शुद्ध उपयोग को भी कर्मचेतना कही है। निर्मल कार्य है न! समझ में आया? केवलज्ञानी परमात्मा को केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलवीर्य, अनन्त आनन्द, ऐसा उसका कार्य है, वह उसका कर्म है, उसे यहाँ ज्ञानचेतना कहा जाता है। आहाहा! यह शुद्धज्ञानचेतना

सर्वज्ञ परमेश्वर को भी होती है और त्रिकाली परमात्मद्रव्यस्वभाव में वह शुद्धज्ञानचेतना भी होती है। पर्यायरूप से नहीं, द्रव्यरूप से। आहाहा! समझ में आया?

यह भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव... ओहो! यह तो परमात्मस्वभाव। शक्तिरूप स्वभावभावरूप, उसमें भी ज्ञानचेतना, शुद्धज्ञानचेतना ध्रुवरूप से होती है। समझ में आया? और केवलज्ञानी परमात्मा को उत्पादरूप से, पर्यायरूप से शुद्धज्ञानचेतना होती है। आहाहा! ऐसा कहाँ? थोड़ा-बहुत ऊपर से जान ले और मान ले कि हम सब (जानते हैं)। यह तो वस्तु, भाई! आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी का विस्तार अलौकिक है। आहाहा! त्रिकाल स्वभाव में वह शुद्धज्ञानचेतना है। वह शुद्ध है। वह ध्रुव है, वह उत्पाद-व्यय की पर्यायरहित चीज़ है। आहाहा! जैसे कारणशुद्धपर्याय कही १५वीं गाथा में, सब इसमें ही है न नियमसार में, वह जैसे त्रिकाली भगवान ध्रुव है, वैसे उसकी एक कारणपर्याय भी ध्रुव है। ऐसा सब।

मुमुक्षु : पंचम भावपरिणति शब्द है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम भावपरिणति है। उत्पाद-व्ययरहित है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्धज्ञानचेतनासम्पन्न प्रभु की पर्याय में कारणपर्याय भी शुद्ध ज्ञानचेतनारूपी ध्रुव है। आहाहा!

कहते हैं **कार्यपरमात्मा को...** अर्थात् पर्याय में परिणमन पूर्ण हो गया, ऐसे भगवान आत्मा को। केवली को, अरिहन्त को, सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं, वे कार्यपरमात्मा हैं। समझ में आया? आहाहा! उन **कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को...** जो त्रिकाली है। यह तो पर्यायरूप है, ऐसा कहा, कार्य। और वह त्रिकाली कारणपरमात्मा भगवान आत्मा, चाहे तो संसारदशा में हो या मोक्षदशा में हो, परन्तु कारणपरमात्मा में शुद्धज्ञानचेतना अनादि-अनन्त ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया? वह एकेन्द्रिय जीव कर्मफलचेतना को वेदता है। यह पर्याय की अपेक्षा से बात, परन्तु उसका जो आत्मा कारणपरमात्मा ध्रुव है, उसमें शुद्धज्ञानचेतना नित्य उसकी पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे त्रस जीव कार्यसहित, कर्मफलसहित, कर्मचेतनासहित कर्मफल को वेदते हैं, वह जीव की पर्याय की अपेक्षा से बात है, परन्तु वह जीव जो

नित्य ध्रुव कारणप्रभु है, उसमें शुद्धज्ञानचेतना उसे उस काल में भी पड़ी है। आहाहा! शुद्धभाव अधिकार है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। एक को ध्रुवरूप, एक को पर्याय के कार्यरूप। सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव को कार्यरूप है और उसे ही ध्रुव में कारणरूप है। आहाहा! समझ में आया? **इसीलिए...** अब शब्द बदलते हैं। यहाँ कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा लिये थे। अब समयसार लेते हैं। **इसीलिए कार्यसमयसार को...** यह कार्यपरमात्मा कहो या कार्यसमयसार कहो। विशेष स्पष्ट होने के लिये शब्द बदला। समझ में आया? कार्यसमयसार अर्थात् भगवान अरिहन्त परमात्मा केवलज्ञान और अनन्त आनन्द आदि गुण पर्याय में प्रगट हुए, वह कार्यपरमात्मा है। समझ में आया?

और कारणसमयसार को... यह त्रिकाल की बात है। उसी आत्मा को कारणसमयसार ध्रुव जो है, एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय और सिद्ध में भी जो कारणध्रुव जो है... आहाहा! उसे कारणसमयसार कहा जाता है। यह कारणसमयसार मोक्षमार्ग को भी कहा जाता है, वह यहाँ नहीं। मोक्षमार्ग को भी कारणसमयसार और केवलज्ञान को कार्यसमयसार, ऐसा भी कहा जाता है। यह पर्याय के भेद करना हो तब। यहाँ तो द्रव्य और पर्याय की दो की बात करनी है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि कारणप्रभु, कारणसमयसार, कारणपरमात्मा के निधान में शुद्ध ज्ञानचेतना ध्रुव पड़ी है। समझ में आया? उसे **सहजफलरूप...** कार्यपरमात्मा को और कारणपरमात्मा, कारणसमयसार को **सहजफलरूप...** सहज **शुद्धज्ञानचेतना होती है।** आहाहा! सहज फलरूप। पहली शुद्धज्ञानचेतना वह कर्मचेतना ली थी और यह कर्मफलचेतना। कर्मफल भी अन्दर में जो शुद्धज्ञानचेतना है, वह कर्मफलचेतना ध्रुव और कार्यरूप से जो केवलज्ञान प्रगट हुआ, ऐसे भगवान को कार्य में भी सहजज्ञानचेतना फल है। आहाहा! गजब भाई! समझ में आया?

इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा... इससे, ऐसा सिद्ध हुआ कि सहजशुद्धज्ञानचेतनास्वरूप भगवान कारणपरमात्मा। आहाहा! वह **संसारावस्था**

में या मुक्तावस्था में सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है... आहाहा! संसारावस्था हो या सिद्धावस्था हो, कारणसमयसार-कारणपरमात्मा ध्रुव एकरूप है। वह तो अनेकता हो गयी। एकरूप त्रिकाल, वही आत्मा को उपादेय है। अंगीकार करनेयोग्य हो तो वह कारणसमयसार या कारणपरमात्मा। आहाहा! समझ में आया? बहुत महँगा पड़े न, इसलिए लोग बेचारे ऐसी बात को निश्चय एकान्त है, निश्चय एकान्त है करके उड़ा देते हैं। प्रभु! इसे न उड़ा, भाई! यह तेरे स्वरूप की स्थिति की बात है। समझ में आया? यह सोनगढ़ की बात है? यह किसके घर की बात है? आहाहा! इसे करना नहीं, समझना नहीं, इसलिए (ऐसा) करके ऐसी बात को उड़ा देता है। यह निश्चय की बात। (वे लोग ऐसा कहते हैं कि) पहले निश्चय नहीं होता, पहले व्यवहार होता है।

मुमुक्षु : पारमेश्वरी विद्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बापू! अलौकिक, भाई! पहले से शुरु है। कहा न? वहाँ तो पाँचवें गुणस्थान से तीन रत्नत्रयी निश्चय की भक्ति करे, ऐसा कहा है। संयमी है इतना वह। आहाहा! लिये हैं प्रतिमावाले। समझ में आया? भले पहली प्रतिमा हो। वह प्रतिमा विकल्पवाली वह नहीं वहाँ। निश्चय जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, आंशिक चारित्र, उसमें जो शान्ति आंशिक बढ़ी, वीतरागी शान्ति बढ़ी, वह पहली प्रतिमा। आहाहा! दूसरी प्रतिमा में विशेष शान्ति थोड़ी बढ़ी, वह दूसरी प्रतिमा। विकल्प हो वह व्यवहार, यह तो निश्चय की बात है। शान्ति चाहिए। अकषाय परिणमन। आहाहा! अरे! ऐसा सत् है, इसे उसका माहात्म्य नहीं आवे! आहाहा! भाई! तीन लोक का नाथ संसारावस्था में या मुक्तावस्था में, संसारदशा हो एकेन्द्रिय की या त्रस की या मुक्तअवस्था में... आहाहा! सर्वदा एकरूप है। यह तो दो भाग पड़ गये। संसार-अवस्था और मुक्त-अवस्था, परन्तु उसमें वस्तु जो है, वह तो एकरूप त्रिकाल ध्रुव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न आनन्दरूप अन्दर। ध्रुव में भी आनन्दरूप फल है और पर्याय—कार्य में भी है। कहा न! सहज फल अनन्त आनन्दरूप। कारणसमयसार में सहजज्ञानचेतना ध्रुव, उसका फल आनन्द का फल, वह भी अन्दर ध्रुव है।

कारणसमयसार और कारणपरमात्मा में यह कहा न **सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना...** यह त्रिकाल में भी है और कार्यपरमात्मा में भी है। आहाहा! नियमसार की शैली कारणपरमात्मा को साथ में रखकर बात करते हैं। आहाहा! कि जो चीज़ उपादेय है। कार्य और कारण वह उपादेय यहाँ नहीं कहे। भले कार्य है, वह साधक को साध्य हो, परन्तु उपादेय तो त्रिकाली ध्रुव है। उसे फिर सिद्धपना साध्य है, ऐसा निश्चित होता है। आहाहा! समझ में आया?

संसारावस्था में हो, एकेन्द्रिय की अवस्था में हो, त्रस की अवस्था में हो या सिद्ध की अवस्था में हो या मोक्ष के मार्ग की पर्याय की अवस्था में हो। आहाहा! यहाँ अपूर्ण की बात नहीं ली, पूरी पूर्ण की ली है। समझ में आया? उस प्रत्येक अवस्था में त्रिकाल रहनेवाला जो भगवान ध्रुव... आहाहा! वह सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है, ऐसा कहा। सर्वदा शुद्धज्ञानचेतना, शुद्धज्ञानचेतना का फल भी सर्वदा ध्रुवरूप एकरूप होने से। आहाहा! वह उपादेय है। शब्द है न वापस अन्दर। '**जाण**' है। '**जाण अलिंगग्गहणं**' '**जाण चेदणागुणम**' है न? चौथे पद की पहली लाईन। '**जाण**' इस गाथा का अर्थ। यह गाथा तो समयसार में आती है, प्रवचनसार में आती है। 'जाण' ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। भगवान की वाणी लेकर कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, आहाहा! 'हे शिष्य! तू जान।' आहाहा! तीन लोक का नाथ ध्रुव चिदानन्द ध्रुव है। जिसमें शुद्धज्ञानचेतना ध्रुव है, जिसमें सहज आनन्द का ज्ञानचेतना का फल भी ध्रुव है। आहाहा! वह सर्व एकरूप है। उसे एकरूप होने से उपादेय है। आहाहा! एकरूप सदृश्यभाव, ध्रुवभाव, सामान्यभाव... आहाहा! ऐसा जो कारणपरमात्मा या कारणसमयसार सर्वदा एकरूप होने से वह समकित दृष्टि को उपादेय है। समझ में आया? अब तो यहाँ भाई बहुत वर्ष हो गये। सुननेवाले भी बहुत हैं। फिर नहीं समझ में आता, ऐसा कैसे कहे? और भाषा सादी है। कोई ऐसी भाषा संस्कृत और व्याकरण बड़ी-बड़ी नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारे तो परिचय नहीं न! यह तो इन लोगों को तो परिचय है न! और यह ४० वर्ष से। और जन्म भी जैन में हुआ है, इन लोगों का तो। यह लोग जैन

बिना के जन्मे और ऊपर से थोड़ा सा (उल्टा) सुना हो तो उन्हें यह समझना कठिन पड़े। इस पुस्तक की व्याख्या में कठिन पड़े। आहाहा!

मुमुक्षु : ग्रन्थ तो मुनियों के वाँचने के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मुनि अर्थात् ज्ञान। ज्ञानवाला भगवान, उसे जानने के लिये है। यहाँ तो वहाँ तक कहा समयसार में तो कि यह समयसार अबुद्धों के लिये कहता हूँ। अप्रतिबुद्ध अज्ञानी के लिये कहता हूँ। अब उसे समझाने के लिये कहाँ.... ?

मुमुक्षु : महाराज! यह बहुत चलता है तो ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह सच्ची बात। अज्ञानियों को यह तत्त्व अन्दर में रुचता नहीं न, इसलिए कठिन पड़ता है। 'हाथ नहीं लगाना' कहते हैं। आहाहा! परन्तु तब तो फिर यह अज्ञानी पण्डित ने वाँचा किसलिए? वाँचनेवाला कहता है कि नहीं, नहीं, यह नहीं वाँचना, इसका अर्थ क्या?

सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा... सहज स्वाभाविक शुद्धज्ञान स्वभावी चेतनास्वरूपी त्रिकाल ऐसा निजकारणपरमात्मा, वह **संसारावस्था में या मुक्तावस्था में... सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा... सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है....** आहाहा! समझ में आया? स्वाभाविक शुद्धज्ञानचेतना। स्वाभाविक पारिणामिकभाव से। क्षायिकभाव या क्षयोपशमभाव, वह नहीं। पारिणामिक सहज-सहज स्वरूप शुद्धज्ञानचेतना। आहाहा! ऐसा शुद्धज्ञानचेतना, सहजशुद्धज्ञानचेतना ऐसा जो स्वरूप निजकारणपरमात्मा, वह संसारदशा में या मुक्तावस्था में सर्वदा एकरूप होने से, सर्वदा सर्वकाल एकरूप होने से उपादेय है। आहाहा! वह अंगीकार करनेयोग्य है। समझ में आया? अरे! आहाहा!

ऐसा हे शिष्य! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि **हे शिष्य! तू जान।** त्रिकाल संसार और सिद्ध अवस्था में रहनेवाला भगवान त्रिकाल वह उपादेय है, ऐसा हे शिष्य! तू जान। समझ में आया? आहाहा! उसमें और व्यवहार विकल्प और रत्नत्रय, वह आदरणीय है और साधन है, निश्चय का साध्य... आहाहा! कहीं चला गया। आहाहा! यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हुआ, उस काल में भी त्रिकाल कारणपरमात्मा है, एकरूप

रहनेवाला; इसलिए वह उपादेय—आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दिपंचविंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नामक अधिकार में ७९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्नं तयोर्या,
प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः साऽपि भिन्ना तथैव।
काल-क्षेत्र-प्रमुख-मपि यत्तच्च भिन्नं मतं मे,
भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालङ्कृतं सर्वमेतत्॥

आहाहा! देखो न, पद्मनन्दि आचार्य, वे तो दिगम्बर मुनि, जिसे श्रीमद् वनशास्त्र कहते हैं। यह सब वनशास्त्र हैं। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पद्मनन्दि, यह वनशास्त्र हैं। वन में सन्तों को विकल्प आया और रचना हो गयी। जंगल में रहनेवाले मुनियों की यह सब रचना। आहाहा!

कहते हैं, अब पद्मनन्दि का आधार देते हैं कि यह कुन्दकुन्दाचार्य एक ही कहते हैं, ऐसा नहीं, परन्तु पद्मनन्दि आचार्य भी जो कुन्दकुन्दाचार्य के बाद हजार वर्ष में हुए, वे भी ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **मेरा ऐसा मन्तव्य है...** आचार्य कहते हैं। पद्मनन्दि आचार्य। **मेरा ऐसा मन्तव्य है...** मेरी यह विचारणा और सम्यक्श्रद्धा यह है कि **आत्मा पृथक् है...** भगवान आत्मा भिन्न है **और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म...** देखो, आहाहा! आत्मा के कारण कर्म जाता है, ऐसा नहीं। कर्म भी अपने कारण से पीछे-पीछे ऐसे जाता है।

मुमुक्षु : कर्म आत्मा को ले जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह बिल्कुल झूठी बात है, कहते हैं। आहाहा! आत्मा कर्म से भिन्न है और उसके साथ कर्म जो है पीछे-पीछे जानेवाला, वह भिन्न चीज़ है। आहाहा! कर्म नहीं आत्मा को ले जाते, आत्मा नहीं कर्म को ले जाता साथ में। आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म हैरान करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन हैरान करे? मूढ़ मानता है। आहाहा! 'कर्म बिचारे

कौन ? भूल मेरी अधिकाई; अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पायी।' आहाहा! कौन हैरान करे ? तू स्वयं हैरान भावकर्म से होता है और जड़कर्म को तू आरोप देता है।

परनतु यहाँ तो कहते हैं भगवान आत्मा, आहाहा! अत्यन्त भिन्न चैतन्यमूर्ति प्रभु। उसके साथ पीछे-पीछे जानेवाला। आहाहा! **कर्म पृथक् है;...** यह रजकण जो आठ कर्म के हैं, वे स्वयं के कारण से आत्मा के पीछे वहाँ ऐसे जाते हैं। आत्मा उन कर्मों को ले जाता नहीं तथा कर्म उस आत्मा को ले जाते नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आनुपूर्वी कर्म ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आनुपूर्वी कर्म से पंगु है आत्मा कहा नहीं ? यह सब बातें निमित्त का ज्ञान कराने के लिये (कही है)। कौन ले जाये ? आहाहा!

आचार्य महाराज जाति की दृष्टि से कहते हैं **आत्मा पृथक् है और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला...** भाषा तो देखो, उसके साथ जानेवाला वह कर्म भी अत्यन्त भिन्न काम करता है। आहाहा! आत्मा ने कर्म बाँधे, इसलिए साथ आये! बाँधे ही नहीं न, फिर साथ में कहाँ (आवे) ? आहाहा! रजकण की पर्याय को कौन बाँधे ? आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया ?

भगवान आत्मा जाता है स्वयं अपनी योग्यता से, वहाँ कर्म अपने कारण से पीछे-पीछे जाता है, उसके अपने स्वभाव की पर्याय के कारण से। वह भगवान आत्मा ने कर्म बाँधा अर्थात् कि राग उसका निमित्त था, इसलिए आत्मा को कर्म के साथ जाना पड़े, ऐसा नहीं। स्वरूपचन्दभाई! ऐसी बातें! आहाहा! भाई! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा की वाणी और उसका स्वरूप अलौकिक है, बापू! आहाहा! सन्त भी सर्वज्ञ का स्वरूप ही कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : करणानुयोग में नहीं लिखा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सब लिखा है। करणानुयोग में ऐसा है। सबका अर्थ

सार क्या? वीतरागता। चारों ही अनुयोग का सार तो वीतरागता है। वीतरागता कब होगी? कि परनिमित्त मुझे ले जाता है और मैं निमित्त को ले जाता हूँ, यह तो आता नहीं उसमें। आहाहा!

अब तीसरी बात। **आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है, वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् है;...** भगवान आत्मा भिन्न, पीछे-पीछे कर्म के रजकण जायें, वे भिन्न और दोनों के संघर्ष एकत्व से... आहाहा! निकटता से। बहुत अति निकट निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध। नैमित्तिक में कर्म का निमित्त और नैमित्तिक स्वयं से होता है। वह विकृति होती है, वह भी आत्मा से भिन्न है। राग का विकल्प और दया, दान का विकल्प भी भगवान आत्मा से भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? देखो, यह पद्मनन्दि आचार्य। यह तो अभी हजार वर्ष पहले हुए हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो दो हजार वर्ष पहले हुए हैं। सबकी एक ही समान बात? वे कहें कि कुन्दकुन्दाचार्य का मानोगे तो दूसरे आचार्यों का बलिदान होगा। इसमें तो कहीं बलिदान नहीं हुआ। आहाहा! निश्चय की बात सुहाती नहीं, इसलिए व्यवहारनय से कहा, वह ठीक है, ऐसा मानकर उसे बलिदान लगता है। परन्तु आचार्यों ने कहा, वह सब व्यवहार से कहा है। चरणानुयोग की क्रिया में वह आचार्यों ने व्यवहार से कहा है, वह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने निश्चय से उसे उड़ा दिया, परन्तु उन्होंने व्यवहार तो कहा। यहाँ नहीं कहा? सिद्ध भगवान की भक्ति करे। व्यवहार तो कहा। जाननेयोग्य वस्तु नहीं? परिणति उसकी राग की है या नहीं? सम्यग्दृष्टि और मुनि हो जब तक, तब तक वीतरागता (पूर्ण) नहीं, तो राग तो होता है। वह राग करो, ऐसा व्यवहारनय से कहा जाता है। वह व्यवहारभक्ति, ऐसा कहा, लो। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं भगवान आत्मा भिन्न। अत्यन्त भिन्न पर्याय काम करे और कर्म भिन्न स्वतन्त्र उसकी पर्याय से पीछे-पीछे जाये। दोनों की अति निकटता के कारण जो विकृति होती है (अर्थात्) मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम जो होते हैं, वे भी उसी प्रकार से आत्मा से भिन्न हैं। विकृतदशा आत्मा से भिन्न है। आहाहा! भावबन्ध, भावास्रव भगवान आत्मा से भिन्न चीज़ है। समझ में आया?

और काल-क्षेत्रादि जो हैं... यह हुण्डावसर्पिणी और फलाना काल और यह चौथा काल और पाँचवाँ काल, यह महाविदेहक्षेत्र और भरत का क्षेत्र यह **काल-क्षेत्रादि जो हैं...** है सही। **वे भी (आत्मा से) पृथक् हैं।** कहो, उसे काल भी अवरोधक नहीं और क्षेत्र भी उसे अवरोधक नहीं कि भाई! महाविदेहक्षेत्र में जायें तो केवलज्ञान हो। ऐसा इनकार करते हैं। क्षेत्र आत्मा में है नहीं न! समझ में आया? क्षेत्र और कालादि, है न? पाठ है न? '**कालक्षेत्रप्रमुखमपि**' पाठ में है। काल, क्षेत्र प्रमुख आदि सब चीज़। दिन और रात और महीना और दो महीने का.... यह सब आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

काल-क्षेत्रादि जो हैं... आदि शब्द प्रयोग किया है प्रमुख। **वे भी (आत्मा से) पृथक् हैं।** आहाहा! देखो, अब सिद्धान्त। **निज-निज गुणकला से अलंकृत यह सब पृथक्-पृथक् हैं...** अपने गुण और अपनी पर्याय से वह भिन्न-भिन्न चीज़ अपने में पड़ी है। अत्यन्त भिन्न की भिन्न। कर्म भिन्न। अरे! रजकण रजकण भिन्न अन्दर। आहाहा! समझ में आया? **निज-निज गुणकला से...** अपनी गुणकला और उसकी पर्याय, उससे आलंकृत यह सब ही। उससे शोभता यह सब भिन्न-भिन्न है। आहाहा! उसमें फिर स्त्री, पुत्र और परिवार मेरे हो गये। कहाँ से तेरे हो गये वे? आहाहा! ऐई!

मुमुक्षु : भिन्न-भिन्न है तो भेदज्ञान की कहाँ आवश्यकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहता है? भिन्न है, ऐसा जानना, उसका नाम भेदज्ञान। आहाहा! समझ में आया? यह जाना कब कि यह भिन्न-भिन्न है? उसे राग और कर्म और प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और अलंकार से शोभित हो रहे हैं। आहाहा! भिन्न के भिन्न हैं। रजकण-रजकण भिन्न, भगवान आत्मा भिन्न, विकार भिन्न। आहाहा! वह अपनी शक्ति की कला से सब शोभ रहे हैं। पर की कोई अपेक्षा उन्हें है नहीं। आहाहा! है?

अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से... देखा? गुणकला से है न? **अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से युक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं।** भगवान आत्मा और कर्म को कुछ सम्बन्ध नहीं, भिन्न के भिन्न हैं। आहाहा! सर्व सम्बन्ध नास्ति, आता है न?

(समयसार) २०० कलश। वस्तु को क्या? पर के साथ क्या सम्बन्ध है? उसमें फिर यह स्त्री, पुत्र, मकान और गाँव। यह मेरा गाँव और मेरे मकान और यह मेरी स्त्री। कहाँ है परन्तु? क्या हुआ तुझे यह?

मुमुक्षु : चातुर्यता!

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्खता है। आहाहा!

और (इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - ७०

और (इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

(मालिनी)

असति च सति बन्धे शुद्धजीवस्य रूपाद्,
रहित-मखिलमूर्त-द्रव्यजालं विचित्रम्।
इति जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां,
भुवनविदितमेतद्भव्य जानीहि नित्यम्॥७०॥

(वीरछन्द)

बन्धन हो या मुक्त अवस्था विविध मूर्त द्रव्यों का जाल।
शुद्ध जीव के निज स्वरूप से भिन्न सर्वदा मूर्तिक-माल॥
शुद्ध वचन यह श्रीजिनपति का बुधपुरुषों को कहूँ सदा।
अहो भव्य ! त्रिभुवन प्रसिद्ध इस परम सत्य को जान सदा॥७०॥

श्लोकार्थः—''बन्ध हो न हो (अर्थात् बन्धावस्था में या मोक्षावस्था में), समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल (अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है'' ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं। इस भुवनविदित को (इस जगतप्रसिद्ध सत्य को), हे भव्य! तू सदा जान॥७०॥

श्रावण कृष्ण १०, सोमवार, दिनांक ०१-०९-१९७५
कलश-७०, गाथा-४७, प्रवचन - २२

---

७० (कलश)।

असति च सति बन्धे शुद्धजीवस्य रूपाद्,
रहित-मखिलमूर्त-द्रव्यजालं विचित्रम्।

इति जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां,
भुवनविदितमेतद्द्रव्य जानीहि नित्यम्॥७०॥

बन्ध हो या न हो, आत्मा के साथ पर्याय में रजकण जड़ का ''**बन्ध हो, न हो समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल...** समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल, **शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है**'' भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यद्रव्य ज्ञायकभाव, उससे प्रत्येक रजकण भिन्न है। **ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन...** देखो, वीतराग का यह वचन **बुधपुरुषों को कहते हैं।** आहाहा! भगवान आत्मा में यह तो .... लिया परन्तु यह सब चार पर्यायें भी जिसमें, ऐसा भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव, उसका जहाँ आश्रय और अवलम्बन और उसका आधार जहाँ लिया नहीं, वहाँ तक सब क्रियाकाण्ड, सब द्रव्यलिंग अकेले व्यवहाराभास में जाते हैं। आहाहा! यह आया। पर्याय में जो विकल्प है, वह वस्तु में नहीं। वस्तु की दृष्टि बिना... यही कहेंगे अभी ४७ में। यहाँ यही कहा है वहाँ। अवर्ण... गुण चेतना ली थी न। चेतनागुण, उसका यह कलश है।

चेतनागुण जो त्रिकाली भगवान आत्मा में चेतनागुण ध्रुवरूप से पड़ा है और चेतना फल, उसका जो आनन्दरूपी फल, वह भी ध्रुव में त्रिकाल पड़ा है। आहाहा! ऐसे कार्यसमयसार में भी शुद्धचेतना और उसका फल है। यहाँ यह वर्णन किया है। इसका श्लोक है न यह। मूल तो एक समय में द्रव्यस्वभाव है, वह कर्मजाल के किसी कारण से भी रहित है। आहाहा! अकेला चैतन्यपुंज, अनाकुल ज्ञानानन्द के स्वभावस्वरूप ऐसा जो द्रव्य, वह दृष्टि में न आवे और उसका आश्रय न करे, तब तक व्यवहार में... निश्चय आवश्यक में कहा है वहाँ नियमसार में कि व्यवहार के विकल्प में जो परायण है, उसे निश्चय के आत्मा के भान स्वभाव का आश्रय नहीं, वह सब वेशधारी द्रव्यलिंगी हैं। ऐसा काम है, भाई! समझ में आया?

अभी कोई बड़ी सभा भरी थी दिल्ली में या कहीं। सब बड़े-बड़े सब गये थे। दिल्ली नहीं? राजकुमार, सब बड़े-बड़े। बड़ी सभा २०० लोगों की। उसमें बहुत-बहुत अपने नेमिचन्दभाई पाटनी गये थे। उसमें भी आया है कहीं, सोनगढ़ ट्रस्ट को महासमिति में मिलाना, ऐसा कहते थे। वह कुछ है सोनगढ़ का ट्रस्ट। महासमिति कुछ

होगी, अपने को कुछ खबर नहीं। उसमें ऐसा लिखा है। और मक्खनलालजी सब बड़ी सभा में ऐसा कि एकान्त है, उसका जाहिर—प्रसिद्ध होना चाहिए। यहाँ का लिया। सभा में खलबलाहट हो गयी। सभा ने यह बात पसन्द नहीं की। ऐसा कि अभी ऐसा काल है २५०० वर्ष भगवान का, सबको समाधान रहना, उसमें यह क्या? खलबलाहट हो गयी। बहुत अधिक सेठिया थे सब, बड़े-बड़े पण्डित बहुत थे। हाँ, कुछ था महासमिति का। अभी तो शाहूजी सब कहते थे कि वर्तमान व्रतियों का भी आदर होना चाहिए। ऐसी शैली व्यवहार की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह मानते हैं। आहाहा! भाई! व्रती किसे कहना? बापू! आहाहा! जिसे भगवान चिदानन्द की भेंट हुई नहीं अन्दर, परमात्मस्वरूप का चमत्कार पर्याय में आया नहीं, उसे सम्यग्दर्शन भी नहीं, वहाँ फिर चारित्र और व्रत कहाँ से आये? कहाँ गये अमरचन्दभाई गये? राजकोट। कुछ होगा। अमरचन्दभाई गये। आहाहा!

यहाँ तो मूल वस्तु तो, निश्चय परम-आवश्यक में तो यह लिया है कि अकेले क्रियाकाण्ड के जितने प्रकार, उन सबके विकल्प में जो रुका है, वह मिथ्यादृष्टि है, द्रव्यलिंगी वेषधारी है। आहाहा! ऐसा यह कहते हैं न, देखो न! **ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं।** समझ में आया? जिसे जानने की योग्यता है, उस जाननेवाले को भगवान ऐसा कहते हैं। ...लालजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! जिसे यथार्थ जानना है... आहाहा! उसे जिनेश्वरदेव का शुद्ध परमपवित्र यथार्थ वचन बुधपुरुषों को कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भगवान पूर्णानन्द शुद्धस्वरूप में कोई विकारमात्र नहीं, कर्म पुद्गलमात्र नहीं, अरे! उसमें पर्यायमात्र भी नहीं। ऐसा शुद्ध वचन परमपवित्र की यथार्थता का कथन जाननेवाले, यथार्थ जाननेवाले जीवों को परमात्मा ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाषा देखों ने आचार्य ने कैसी प्रयोग की मुनि ने! आहाहा!

मूर्त द्रव्य से रहित है, इसका अर्थ यह पर्याय जिसे मूर्तपने के निमित्त का अभाव, वह भी वस्तु में नहीं। ऐसा शुद्ध ज्ञायकस्वभाव वस्तु द्रव्यस्वभाव उसे वास्तविक आत्मा कहते हैं। उसकी दृष्टिवन्त को वास्तविक समकिती कहते हैं। आहाहा! ऐसा **जिनदेव**

का शुद्ध वचन... यह भाषा प्रयोग की। तीन लोक के नाथ की यह वाणी। आहाहा! समझ में आया? निश्चयनय का वचन, वही यथार्थ, ऐसा कहते हैं। व्यवहारनय का वचन है, वह एक प्रकार से तो नय ही नहीं, नय ही यह है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान सर्वज्ञदेव परमेश्वर जिनेन्द्रदेव के शुद्ध वचन यदि हो तो यह है कि 'भगवान पूर्णानन्द का नाथ राग और पर्याय से भिन्न ऐसी चीज़ है' ऐसा जिसे समझना हो, उसके लिये भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : वचन की क्या शुद्धता?

पूज्य गुरुदेवश्री : वचन का अर्थ उस वचन में यह कहा है, ऐसा। वचन में वह वाच्य यह पदार्थ है, ऐसा। यह वीतराग की वाणी है। वाणी का यह शुद्ध वचन है। व्यवहार की वाणी का वचन, वह शुद्ध नहीं। आहाहा! देखो न, पाठ है या नहीं? '**इति जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां**' है? '**वक्ति शुद्धं बुधानां**' जिसे यह जानने की योग्यता है, ऐसे जीवों को, आहाहा! सभा में भगवान की वाणी यह निकली थी, भगवान ने यह कहा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : क्या कहा था?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ने ऐसा कहा है कि आत्मा अत्यन्त निर्मलानन्द है। जिसमें राग, द्वेष और कर्म है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान की वाणी में यह शुद्ध वचन और यह शुद्ध न्याय (आया है)। आहाहा! समझ में आया? अरेरे! इस बात को गिने नहीं और ऐसा कहे कि यह तो निश्चयाभास है। यह व्यवहार करें तो निश्चय प्रगट हो। आहाहा! यह वीतराग की वाणी नहीं, बापू! समझ में आया? ओहोहो! मुनिराज ने गजब किया है कि वीतराग का उपदेश यह है मुख्य। मुख्य भी लिया नहीं। वह तो जिनवचन ही ऐसा है। जिनवचन ही यह है वीतराग की वाणी। त्रिलोकनाथ परमात्मा पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्यघन है। ऐसा समझनेवाले प्राणी को भगवान ऐसा समझाते थे, कहते हैं। समझ में आया? यह तो मुद्दे की रकम की बात है। आहाहा!

दृष्टि पूर्ण द्रव्य को स्वीकार करती है और वह द्रव्य ऐसा है कि जो दृष्टि उसका

आश्रय लेती है, उसके सन्मुख होती है, वह ऐसे द्रव्य के। समझ में आया? ऐसा भगवान के बारह अंग की वाणी में... आहाहा! भगवान का सार बारह (अंग की) वाणी में वचन ऐसा उनका था। शुद्ध वचन। आहाहा! अर्थात् कि उस शुद्ध वचन में वाच्य जो त्रिकाली भगवान, वही वस्तु है, वह आत्मा है, वह चीज़ है, वह सिद्धस्वरूप स्वयं प्रभु है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा बुधपुरुषों को, मूढ़पुरुषों को नहीं। आहाहा! जिसे समझने की निश्चयतत्त्व के भाव की समझने की जिसे जिज्ञासा है। यहाँ तो जिज्ञासा नहीं, समझने का योग है। आहाहा! उसे भगवान ऐसा कहते थे कि तू परमानन्द का नाथ प्रभु, तुझमें कोई संसार और रागादि त्रिकाल नहीं। आहाहा! यह द्रव्य प्रसिद्ध भगवान की वाणी में आता था। देखो है।

इस भुवनविदित को... देखो, है न शब्द? यह तो जगत्प्रसिद्ध है, कहते हैं। ऐई! आहाहा! ओहोहो! जिनदेव का शुद्ध वचन। तीन न्याय रखे। एक तो वीतराग का वचन वह यह शुद्ध कहलाता है कि जो अकेला द्रव्यस्वभाव पर से रहित है। वह शुद्ध वचन कहलाता है और उस वचन में ऐसा (शुद्ध) द्रव्य को बतलाया है। एक बात। और वह भी बुद्धों को समझाने के लिये यह बात है। जिसे पर्याय का आग्रह है, राग का आग्रह है, उसे यह नहीं समझ में आता, इसलिए उसके लिये यह नहीं कहना। आहाहा! उसे जिसे बुधपुरुषों, तत्त्वज्ञानी पुरुष, जो वास्तविक तत्त्व है, उसका जिसे ज्ञान है, उससे भगवान ने ऐसा कहा है। आहाहा! पोपटभाई! ऐसी बात है। आहाहा! ओहोहो! मुनिराज ने कितना समेट किया है। एक तो वचन शुद्ध, दूसरा बुधपुरुषों को कहा और तीसरा भुवनविदित—जगतप्रसिद्ध यह है, कहते हैं। व्यवहार से कर्मवाला, रागवाला, वह प्रसिद्ध नहीं। आहाहा! जगतप्रसिद्ध है। आहाहा! दुनिया में यही प्रसिद्धि जगत में वर्तती है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह मुनिराज के शब्द तो देखो, अब इनकी टीका उन्हें मान्य नहीं। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते थे, जिनकी शुद्धवाणी में यह आया था। शुद्धनिश्चय जो आया, वह शुद्धवाणी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ अत्यन्त निर्लेप पड़ा है पूरा। समझ में आया? और यही जगत को प्रसिद्ध है और यही भगवान

ने कहा है और यही ज्ञानी को ऐसा कहा है। आहाहा! व्यवहार से ऐसा है और व्यवहार से ऐसा है, यह भगवान का मूल शुद्ध वचन नहीं। आहाहा! और यह जगतप्रसिद्ध नहीं, व्यवहार की बात सत्य की, सत्य तो यह प्रसिद्ध है। आहाहा! डंके की चोट पर बात करते हैं। जगत की दरकार नहीं, जगत कैसे मानेगा या नहीं? समाज समतौल रहेगी या नहीं, ऐसे न्याय से? भगवान तो ऐसा कहते थे, मुनिराज ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे बतलानेवाले, जाननवाले को बतलानेवाला ऐसा शुद्ध वचन भगवान का (यह है)। आहाहा! कि तू अत्यन्त निर्मल आनन्द है, प्रभु! आहाहा! वह तो यह ज्ञान हो, उसे फिर रागादि बाकी है, उसका व्यवहार हो, उसकी बात यहाँ नहीं। वह गर्भित में आ गयी, गौण में आ गयी। आहाहा! गजब किया है। मूल चीज़ की जहाँ अभी खबर नहीं और भगवान को यह कहना है। बारह अंग में कहना है यह। आहाहा! पूर्णानन्द प्रभु, वह विकल्प के जाल से रहित है। और तू अकेले व्यवहार के विकल्प में रुक जा, जो रहित है उसमें रुक जा, प्रभु! यह वचन वीतराग का नहीं। आहाहा! और उसके फल में वीतरागता नहीं आयेगी। शुभ वचन के विकल्प, शुभ के विकल्प की जाल व्यवहार की, उसमें वीतरागता नहीं आयेगी। आहाहा! जिसमें वीतरागता आवे, वह वचन वीतराग का है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : किसमें कौन नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चयनय वह एक ही यथार्थ नय है। (समयसार) आस्रव (अधिकार) में नहीं आया? भाई! '**णयपरिहीणा**'। आस्रव अधिकार में एक गाथा आती है। '**णयपरिहीणा**'। '**णयपरिहीणा**' कही, वह नय अर्थात् शुद्ध निश्चय। इससे रहित उसे नय कहा। समझ में आया? आस्रव अधिकार १८० गाथा, समयसार।

तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं।
बज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा दु ते जीवा॥१८०॥

जो नय से रहित है। नय अर्थात् निश्चयनय। आहाहा! उस निश्चयनय से परिहीण-रहित है, वह कर्म से बँधता है। आहाहा! यहाँ निश्चयनय ऐसा शब्द प्रयोग नहीं किया। '**णयपरिहीणा**' इसका यह अर्थ हो गया, बस। जो यहाँ कहा। आहाहा! समझ में

आया ? और यह याद आ गया। देखो, न्याय तो देखो! एक मार्ग की शैली तो देखो, ओहोहो! कहते हैं कि जिनवचन—शुद्धवचन उसे कहते हैं, आहाहा! बारह अंग में भी शुद्धवचन उसे कहते हैं कि जो अकेला द्रव्यस्वभाव बतलाया है पर से रहित, उसे शुद्धवचन कहते हैं। आहाहा! गजब काम किया है न! और उस नय से रहित है... आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि आस्रवी बन्ध को बाँधता है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा अबन्धस्वभावी... ऐसा कहा था न १४वीं-१५वीं (गाथा) में ? अबद्धस्पृष्ट। अबद्धस्पृष्ट वह शुद्धनय का विषय और शुद्धनय, वह वस्तु पूरी। आहाहा! राग और कर्म के सम्बन्ध बिना की वह चीज़, ऐसे अबद्धस्वभाव को जिसने देखा, माना, वह जैनशासन है। आहाहा! शैली तो देखो यह वीतराग की। चारों ओर से देखो तो ओहोहो!

भगवान का कथन शुद्धनिश्चयनय का, वह उनका वचन है। ऐसे वीतराग हैं, इसलिए उनका वचन यह है। आहाहा! समझ में आया ? कि जो वचन शुद्ध है अर्थात् कि भगवान अबद्धस्पृष्ट वस्तु है, उसे ही वस्तु कहते हैं। वह शुद्धनय का वचन भगवान का ऐसा है। आहाहा! और उसे जो जाने, उसे जो पहिचाने और उसमें जो एकाग्रता हो, वह जैनशासन है। वह पर्याय जैनशासन है। आहाहा! समझ में आया ? ओहोहो! क्या रचना! जैनशासन कहना किसे ? तब कहे, जो आत्मा बद्धरहित—मुक्तस्वरूप है। आहाहा! मुक्तस्वरूप को जो शुद्ध उपयोग से जाने-माने, वह जैनशासन। क्योंकि वीतराग ने शुद्धवचन, वस्तु निर्मलानन्द अबद्ध—मुक्त है, ऐसा कहा है। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! ऐसी बातें वहाँ मुम्बई में नहीं, हों! वहाँ बारम्बार रुक जावे।

मुमुक्षु : आप पधारो तब मुम्बई में....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तो आवे ने, वहाँ तो गाँव में वह भी सम्हाले और यह भी सम्हाले। दोनों हो न। और यहाँ तो वह सम्हाले नहीं कुछ दुकान का। आहाहा! समझ में आया ? ओहोहो! प्रभुता प्रभु तारी तो खरी। तेरी वाणी खरी और तू भी खरा।

मुमुक्षु : ध्रुव में पर्याय का अभाव है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव है, ध्रुव में पर्याय का अभाव है। ऐसा जिन का वचन शुद्ध यह है। आहाहा!

मुमुक्षु : जैसे नीचे की चक्की का पाट और ऊपर की चक्की के पाट में अभाव है, ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं,... नहीं... नहीं... चक्की-फक्की ऐसा नहीं। यहाँ तो वर्तमान ही प्रभु पूर्णानन्द का नाथ जिसमें पर्याय का एक समय का उत्पाद, जिसमें—ध्रुव में अभाव है। आहाहा! क्षायिक समय की पर्याय भी एक समय की उत्पाद है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ सहजात्मस्वरूप में वह है नहीं। ऐसा जिन का वचन शुद्ध है, ऐसा यहाँ मुनिराज पंचमहाव्रतधारी सन्त आगम अनुभवी, मेरे मुख में से आगम झरता है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! आगे कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? देखो न वहाँ '**णयपरिहीणा**' कहा। वह नय अर्थात् निश्चयनय। यह तो व्यवहारनय तो एक है ऐसा सही। जानपना। परन्तु वस्तु जो आदरणीय है... आहाहा! यह अन्त में कहा था न? **मुक्तावस्था में सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है, ऐसा हे शिष्य! तू जान।** है न? **सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है, ऐसा हे शिष्य! तू जान।** आहाहा! '**अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं**' इसमें से निकाला है। '**चेदणागुणमसद्दं**' चेतनागुण में से यह निकाला है। आहाहा! टीका वह भी टीका।

मुनिराज हैं न! भावलिंगी परमेश्वर हैं। आहाहा! उन्होंने तो ऐसा कहा कि सर्वज्ञ से मुनिराज जरा से थोड़े कम हैं। दूसरी जगह कहा कि सर्वज्ञ और मुनि में अन्तर मानता है, वह जड़ है। समझ में आया? आहाहा! तीसरे प्रकार से कहा कि सर्वज्ञ से लेकर मेरे गुरु निर्मल, अति निर्मल ऐसे विज्ञानघन में निमग्न थे। सब एकसरीखी जाति है, कहते हैं। आहाहा! क्या शैली मुनिराज दिगम्बर सन्तों की! केवली के पथानुगामी। आहाहा!

और यहाँ तो तीन बातें ली हैं कि जिनवचन तो वह है कि जिसमें शुद्धता बतावे, वह जिनवचन। एक। और वह भी समझनेवाला जो है, वह समझे इस प्रकार से, शुद्धता को समझे ऐसे जीव के लिए कहा है। आहाहा! ऐई! दो बातें हुई। तीसरी बात, मुनिराज कहते हैं कि यह तो भुवनविदित प्रसिद्ध है न, बापू! आहाहा! अनादि से जिनवचन यह प्रसिद्ध है कि भगवान शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु निर्मलानन्द वस्तु है, वह तो जगतप्रसिद्ध है। आहाहा! यह स्तवन में नहीं आता? सिद्ध प्रसिद्धं। प्रसिद्ध... में आता है। सिद्ध

प्रसिद्ध है, कहते हैं। यहाँ तो कहे वस्तु ऐसी प्रसिद्ध है। आहाहा! प्रभु! ओहोहो! क्या इसमें से निकला? कितना निकला, देखो तो सही! यह भगवान बोलते हैं यहाँ तो। मैं तो उनका दास हूँ। यह भगवान द्वारा ऐसी बात आयी है। आहाहा!

मुमुक्षु : आपमें और भगवान में कुछ अन्तर नहीं!

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ अन्तर नहीं। समझ में आया? ऐई! आहाहा! चाहे जितना सुन और चाहे जितना वाँच, चाहे जितना जानपना कर, परन्तु इस वस्तु बिना सब थोथा है। स्वरूपचन्दजी! यह सब यात्रा-फात्रा भी थोथा है, ऐसा कहते हैं। यद्यपि वह यात्रा दोषवाली थी, परन्तु यह तो यों ही यात्रा... आहाहा! ऐई! तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है, ऐसा वीतराग अनन्त तीर्थंकरों ने उनके जिनवचन शुद्ध ऐसे कहे थे। आहाहा! एक तीर्थंकर ऐसे अनन्त तीर्थंकर आदि-अन्तरहित अनादि के। आहाहा! यह जिनवचन शुद्ध है। आहाहा! इसमें लिखा नहीं, परन्तु अन्यत्र उसमें है। पुराना है न नियमसार। उसमें दो-तीन जगह है। यह तो नया है न। नया है। कितनी आयी? ४७ नहीं? उसमें ऐसा डाला है।

देखो, २०६ पृष्ठ है। नीचे, नीचे का श्लोक है। देखो, इसमें लिखा है हों! दो जगह इसमें ९९... आहाहा! **जो शाश्वत महा आनन्दानन्द जगत में प्रसिद्ध है,...** है? पृष्ठ-२०६। १४६ कलश। है? हिन्दी है? अन्तर होगा। नीचे एकदम नीचे है। **जो शाश्वत महा आनन्दानन्द जगत में प्रसिद्ध है,....** वह तो प्रभु तो। आहाहा! हिन्दी में तुम्हारे १४६ कलश निकालो न! १४६ कलश। क्या है? आहाहा! सिद्ध शाश्वत् प्रसिद्ध है। ऐसा आत्मा भी इस प्रकार से प्रसिद्ध है। आहाहा! दो जगह आधार दिया। देखो, अब यह कहते हैं कि जिसे समझने की योग्यता है बुधपुरुष, उसे यह समझना। यह समझना। सब छोड़कर यह बात समझना, ऐसा कहते हैं। वस्तु पूर्णानन्द द्रव्य शुद्ध है, ऐसा वीतराग का वचन है, और समझनेवाले को भी यह समझना मुख्य। आहाहा! समझ में आया? अब इस चीज़ को भूलकर सब बाहर की अकेले व्यवहार की बातें करे। वह वीतराग का वचन शुद्ध वह वचन है ही नहीं। आहाहा! व्यवहार के वचन कथनमात्र लौकिकवचन हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह लोकोत्तरवचन यह है। समझ में आया?

यह द्रव्यसंग्रह में आता है भाई, नहीं? व्यवहारनय लौकिक है, ऐसा द्रव्यसंग्रह में आता है। लौकिक। आहाहा! कलश (टीका) में कहा है कि व्यवहारनय तो कहनेमात्र, एक कहनेमात्र-कथनमात्र। आहाहा! यह वस्तु वास्तविक है। आहाहा! समझ में आया? दृष्टि में लेना हो तो यह लेनेयोग्य है, जानना हो तो यह जाननेयोग्य है। आहाहा! स्थिर होना हो तो इसमें स्थिर होनेयोग्य है। ऐसे जिनवचन... आहाहा! समझ में आया? वीतराग त्रिलोकनाथ के शुद्ध वचन यह हैं, भाई! और वह भी बुध अर्थात् यथार्थ जानने के जीवों को यह भगवान ने कहा। अरे! दूसरा नहीं कहा, यह सब व्यवहारादि? कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न, हमारे गुरु ऐसे और हमको शुद्ध आत्मा का उपदेश दिया। तो दूसरा कुछ दिया नहीं था? यह एक वस्तु (दी)? हमको शुद्ध आत्मा का उपदेश भगवान ने—हमारे गुरु ने किया। उसमें से हमको निजवैभव आया है। आहाहा! समझ में आया? बहुत समाहित किया परन्तु। वापस '**भव्य जानिही नित्यं**' अन्तिम शब्द है। हे भव्य! तू सदा यह जान। आहाहा! गजब किया है। झांझरीजी! यह सब बाहर के पण्डितों को यह सब खटकता है। जो सत्य वस्तु है, वह खटकती है। आहाहा!

मुमुक्षु : कालदोष ही ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कालदोष नहीं, उनकी विपरीतता है इसलिए। काल क्या करे? काल आत्मा में है ही नहीं न! यह तो पहले आ गया है। (पर) द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आत्मा में नहीं। आत्मा त्रिलोकनाथ सच्चिदानन्द प्रभु जो काल में आता नहीं, काल उसमें नहीं। आहाहा! यह गाथा है न! आहाहा! बहुत अच्छी बात आयी है। आहाहा! परमसत्य यह है। परमसत्य यही भगवान को कहना था और जाननेवाले को भी यह परमसत्य है, वही जाननेवाले को जानना था। आहाहा! समझ में आया?

एक तो वीतरागदेव का शुद्धवचन, सत्यवचन, पवित्रवचन, यथार्थवचन बुधपुरुषों को यह कहते हैं। आहाहा! दूसरा, कि जाननेवाले को जिसे यथार्थ जानना है, ऐसे बुधपुरुषों को यह कहा है। आहाहा! उपदेश में जाननेवाले जीवों के लिये भगवान ने तो यह कहा है। आहाहा! तीसरा, यह भुवनविदित है। आहाहा! यह तो जगतप्रसिद्ध है न प्रभु अनादि का। आहाहा! चौथा, '**हे भव्य!**' आहाहा! हे लायक जीव! तू सदा यह

जान। स्वरूपचन्दभाई! लॉजिक से, न्याय से (बात है)। आहाहा! **'हे भव्य!'** मोक्ष होने के योग्य हे प्राणी! आहाहा! तुझे सदा यह जान, ऐसा। निरन्तर शुद्ध चेतनद्रव्य है, ऐसा तू जानता है। आहाहा! तेरी दृष्टि में निरन्तर शुद्धद्रव्य रहे, ऐसा तू जान। समझ में आया? आहाहा! यह तो गजब कलश आया!

इतना तो पहले ख्याल था कि भुवनविदित ऐसा कहते हैं। जगतप्रसिद्ध इतना। यह तो वापस बहुत अधिक निकला। शुद्धनिश्चय का वचन वह शुद्ध को बतलाता है, वही उसका वचन शुद्ध कहलाता है और उस जाननेवाले को जानना है वही। जाननेवाले को यह ज्ञात होता है कि तू त्रिकाल शुद्ध आनन्द का नाथ प्रभु है। आहाहा! यह तुझे जानना है और जानने के लिये यह हम कहते हैं। तीसरा, वह भुवनविदित यह है, वह कहीं गुप्त बात नहीं। अनादि से यह प्रसिद्ध है न वीतरागमार्ग में। आहाहा! चौथा, **हे भव्य! तू (यह) सदा जान।** दूसरा छोड़ दे। आहाहा! क्या वीतराग की वाणी! ऐसी कहीं नहीं निकलती। वह भी दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त इस बात की कहीं गन्ध नहीं। आहाहा! लोगों को दुःख लगे, परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा! उन्हें ऐसा कि हम ऐसे हैं। अरे बापू! तुमको मूल शास्त्र और मूल देव-गुरु ही मिले नहीं आचार्य इस सम्प्रदाय को, वहाँ यह बात कहाँ से होगी? यह तो उनके शब्दों में यह भाव भरे हैं यहाँ तो। समझ में आया? लो यह ४७ (गाथा का ७०वाँ) कलश पूरा हुआ।

वजन किसे है? कि उस भव्य को और तू सदा यह जान। भगवान पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध है, ऐसा भगवान को कहना है, जाननेवाले को यह जानना है, जगत में यह प्रसिद्ध है कि हे भव्य! तू सदा यह जान। आहाहा! पोपटभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! प्राणभाई! यह ४५-४६ (गाथा) का श्लोक था। ४५-४६ वीं गाथा का यह श्लोक था। गम्भीर, बहुत गम्भीर। लोगों को ऐसा कठिन लगे। जिसे व्यवहार का आग्रह है न, उन लोगों को, यह क्या कहते हैं, इस बात की उन्हें खबर नहीं। वीतराग को क्या कहना है और वीतराग को मुख्यरूप से, मुख्य नहीं, यही कहना है यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! और वीतराग को कहना है और जाननेवाले को यही जानना है। समझ में आया? आहाहा!

और कहा नहीं? वहाँ अपने आया था न! समस्त जीवों को भगवान के... आया

था न? सकल जनता को सुबोध ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो, उसे यह वाणी मिलती है, ऐसा कहते हैं। ऐसी वाणी हो वह। आहाहा! शुद्धवचन। सकल जन को, आहाहा! दिव्यध्वनि आनन्द झरती, ऐसी भाषा है। वाणी में आनन्द झरे? परन्तु यह वस्तु कहनी है न! जो दृष्टि हुई, वहाँ आनन्द झरता है, वह वस्तु भगवान को कहनी है। आहाहा! कहो गिरधरभाई! जहाँ हास्य नहीं, जहाँ राग नहीं, जहाँ विकल्प नहीं, जहाँ संसार की गन्ध नहीं, ऐसा जो भगवान, आहाहा! वह वीतराग त्रिलोकनाथ के शुद्ध वचन, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और श्रोताओं के लिये यह कहा है। श्रोता में भी जो बुधपुरुष हैं उन्हें। आहाहा! मूढ़ जीवों के लिये यह नहीं, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! और जगतप्रसिद्ध है न बापू यह बात। वीतराग देव ने ऐसा कहा है, वह वस्तु प्रसिद्ध है। भगवान सच्चिदानन्द प्रभु निर्मल है, शुद्ध है—ऐसा जगत में प्रसिद्ध है। इसलिए हे भव्य! तू सदा यह जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निरन्तर, तेरी पर्याय में द्रव्य का सदा निरन्तरपना लक्ष्य में रहे, ऐसा जान। आहाहा! समझ में आया?

सदा शब्द रखकर... नित्य शब्द है न? '**जानीहि नित्यम्**' यही नित्य अर्थात् सदा जान। आहाहा! चौबीसों घण्टे। क्योंकि यही वस्तु भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, भगवान ने ऐसा कहा, समझनेवाले को ऐसा कहा, जगतप्रसिद्ध ऐसा कहा और तू भव्यजीव है न, तो सदा ऐसा जान। आहाहा! समझ में आया? बहुत भाव भरा है। मुनिराज ने एक लाईन में तो ओहोहो! कहते हैं न श्रीमद् कि, एक वाक्य में अनन्त आगम भरे हैं। वह यह। कितनी गम्भीरता भरी है! ओहोहो! जिसमें व्यवहार शुद्ध वचन ही कहा नहीं। आहाहा! वह व्यवहार बतलाना नहीं, बतलाना है तो यह। ऐसा जानने से व्यवहार ज्ञात हो जाता है। व्यवहार जानने से निश्चय ज्ञात हो जाता है, ऐसा नहीं। आहाहा!

एक शुद्ध भगवान पूर्ण आनन्द, अरे! उसके अस्तित्व का, है उसका स्वीकार यह वह क्या चीज़ है? यह स्वीकार है, वह जैनशासन है। ओहोहो! लो, पौन घण्टा हुआ इसमें। वस्तु यह तो गम्भीर, बापू! मुनिराज की वाणी अर्थात् वीतरागी सन्तों की वाणी तो वीतराग की वाणी और वीतराग सन्तों की वाणी। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ४७

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जर-मरण-जम्म-मुक्का अट्ठ-गुणालंकिया जेण॥४७॥

है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठ से जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं॥४७॥

अन्वयार्थः—[यादृशाः] जैसे [सिद्धात्मानः] सिद्ध आत्मा हैं [तादृशाः] वैसे [भवम् आलीनाः जीवाः] भवलीन (संसारी) जीव [भवन्ति] हैं, [येन] जिससे (वे संसारी जीव सिद्धात्माओं की भाँति) [जरामरणजन्ममुक्ताः] जन्म-जरा-मरण से रहित और [अष्टगुणालंकृताः] आठ गुणों से अलंकृत हैं।

टीकाः—शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है।

जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए, वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए सहजवैराग्यपरायण होने से द्रव्य-भावलिंग को धारण करके परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए परमागम के अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके अव्याबाध (बाधारहित) सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये कि जो सिद्धात्मा कार्यसमसाररूप हैं, कार्यशुद्ध* हैं। जैसे वे सिद्धात्मा हैं वैसे ही शुद्धनिश्चयनय से भववाले (संसारी) जीव हैं। जिसकारण वे संसारी जीव सिद्धात्मा समान हैं, उस कारण वे संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं (सम्यक्त्व, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु तथा अव्याबाध इन आठ गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है)।

---

१. कार्यशुद्ध=कार्य-अपेक्षा से शुद्ध।

गाथा - ४७ पर प्रवचन

४७ (गाथा)।

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जर-मरण-जम्म-मुक्का अट्ठ-गुणालंकिया जेण॥४७॥
है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठ से जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं॥४७॥

सिद्धि को प्राप्त। जिनके जन्म और मरण जिसमें नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान सिद्ध समान सब आत्मा है, ऐसा कहते हैं। संसारी आत्मा भी सिद्ध समान है। आहाहा! नास्ति कही और फिर अस्ति कही है। आहाहा!

टीका:—शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से... और कहना था भगवान को यह, ऐसा कहते हैं। अरेरे! मुख्य हो गया व्यवहार। जो मुख्य था, वह बात तो चली गयी पूरी। आहाहा! और वीतराग को यह कहना है, वह मूल बात तो रह गयी। यह पंच महाव्रत और उनके विकल्प और यह अतिचार टालना, यह दोष टालना (वह बच गया)। आहाहा! **शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से...** अर्थात्? वस्तु जो द्रव्यार्थिक अर्थात् द्रव्य को जो जाने, वस्तु को जो जाने। आहाहा! ऐसा जो द्रव्यार्थिकनय, शुद्ध त्रिकाली द्रव्य को जाने, ऐसा जो द्रव्यार्थिकनय, उसके अभिप्राय से। आहाहा! **संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है।** अरे! आहाहा! ज्ञान में यह बात बैठना, वही पुरुषार्थ है। पूर्णानन्द का नाथ वर्तमान में भी पूर्ण शुद्ध सिद्ध जैसा है।

मुमुक्षु : आपने कहा वह बराबर सुनते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे सुन ले, ऐसा नहीं। अन्दर में उसका स्वीकार (हो), तब वह ऐसा है, ऐसा इसे ख्याल में आवे। समझ में आया? आहाहा! यह अन्तर नहीं होने का संसारी जीव और सिद्ध जीव में... संसारी और सिद्ध तो पर्याय है। वस्तु में कहाँ अन्तर है? आहाहा! निगोद से लेकर सिद्धपर्याय में जो द्रव्यार्थिकनय का विषय द्रव्य तो जैसा है, वैसा का वैसा पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? अब मक्खनलालजी ने यह

रखा सभा बड़ी। सब राजा वे। बड़े-बड़े सब थे। यह राजकुमारसिंह, देवकुमार सब इकट्ठे हुए थे। एकान्त का कुछ करो, ऐसी कुछ भाषा है। वह तो यहाँ का विरोध करने के लिये। २५०० वर्ष है, इसलिए मुख्य तो यह करना चाहिए, ऐसा। अरे भगवान! तुझे क्या करना है? प्रभु!

मुमुक्षु : एकान्त का खण्डन करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु एकान्त का खण्डन करना चाहिए। कौन इनकार करता है? परन्तु एकान्त किसे कहना? यह तो अकेला भगवान शुद्ध सम्यक् एकान्त है। आहाहा! और ऐसे सम्यक् एकान्त का ज्ञान होने से उसे व्यवहार का ज्ञान उसमें आ जाता है, आहाहा! यह अनेकान्त है। समझ में आया? श्रीमद् ने ऐसा कहा है न, सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की (प्राप्ति के) हेतु सिवाय अनेकान्त किसी प्रकार से सिद्ध नहीं होता। आहाहा! वह यह है। ऐसा तो श्रीमद् को बहुत वह था। मात्र एक यह श्वेताम्बर और दिगम्बर का पहले शुरुआत में भिन्न नहीं आया। बड़ा भाग, यह उन्हें संस्कार थे। बाकी यह तो... आहाहा! यह बात दिगम्बर सिवाय शास्त्र, उनके सन्त और उनके भगवान सबका यह एक ही प्रकार है। समझ में आया? आहाहा!

जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,... देखो, **जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,...** एकदम मोक्ष के नजदीक। **वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए...** अब तो सिद्ध कैसे होते हैं, उसकी व्याख्या करते हैं। फिर सिद्ध जैसे संसारी, ऐसा सिद्ध करेंगे। समझ में आया? आहाहा! अरे! लम्बी बात हो, न हो, संक्षिप्त तो यह है। समझ में आया? अब कहते हैं कि सिद्ध जैसे संसारी हैं तो वे सिद्ध कैसे हुए? सिद्ध कैसे हुए? **पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके...** विकल्प का क्लेश है, उससे थके हुए। आहाहा! विकल्प दुःखरूप लगे, उससे थके। संसार अर्थात् विकल्प, वह संसार। आहाहा! ऐसे **चित्तवाले होते हुए सहजवैराग्यपरायण होने से...** स्वाभाविक पर से उदासरूप प्रभु सहज स्वाभाविक वैराग्यपरायण हुए। पर से उदास हो गये। आहाहा! ओहोहो!

द्रव्य-भावलिंग को धारण करके... देखा! भावलिंग और द्रव्यलिंग है, उसे

इकट्ठा डाला। बतलाया अब यहाँ व्यवहार। आहाहा! भावलिंग, वह तो आत्मा की निर्विकल्पदशा। द्रव्य के आश्रय से होता निर्विकल्पभाव सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित का स्वसंवेदन की उग्र दशा हो, वह भावलिंग और उसके साथ विकल्प और नग्नपना, वह द्रव्यलिंग। समझ में आया? उस समय होता है यह, वह भी इकट्ठा डाला अब। आहाहा! **द्रव्य-भावलिंग को धारण करके...** भाषा तो ऐसी है देखो, भाव को धारण किया, ऐसा विकल्प और नग्नपना भी धारण किया, ऐसा। व्यवहार से भाषा ऐसी ली जाती है न! आहाहा! समझ में आया?

द्रव्य-भावलिंग को धारण करके परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए... आहाहा! अब डाला। परमगुरु ने क्या कहा था? यह वापस आया। **परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए परमागम के अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके...** परमागम अन्दर आनन्द का नाथ भगवान, उसकी दशा। परम आगमभाव के **अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके...** आहाहा! समझ में आया? पहले दस-दस घण्टे वाँचन चलता शास्त्र का। क्यों? कि उसमें यह लोगों का विश्वास मुझे उठ गया सबके ऊपर से। इसलिए अब शास्त्र को क्या कहना है वास्तविकता, उसके ऊपर इसके लिये वाँचन था। अधिक जानपना हो, इसके लिये नहीं था। समझ में आया? क्योंकि उन लोगों ने कहा, वह तो बात बैठी नहीं। कहा, यह बात तो बराबर नहीं। समझ में आया?

एक ओर एकान्त से पूछा, कहा भाई! यह 'जिनप्रतिमा जिन सारखी' कहा है। वीतराग की मूर्ति वीतराग हुए, वैसी जिनप्रतिमा है। तो यह क्या है? वे लोगों को बाहर में तो ऐसा कहते थे कि वह मूर्ति अन्यमति की यक्ष की है, ऐसा कहे। आहाहा! वह दामोदर सेठ भावनगर में यह साक्षी दी थी कि वह यक्ष की मूर्ति है। अरे प्रभु! एकान्त में मैंने पूछा था परन्तु मैंने कहा, मुझे तो भाई यह लगता है। (संवत्) १९७३ के वर्ष की बात है। यह तो वीतराग की मूर्ति है और वीतराग की उपमा। जिनप्रतिमा की उपमा उसे जिन की उपमा दी है। बाकी यक्ष की नहीं। है तो ऐसा। ओय...! मूलचन्दजी ने ऐसा कहा। अरेरे! यह क्या? यह लोग ऐसा माने अन्दर और बाहर यह कहे स्थानकवासी सम्प्रदाय की बनाये रखने के लिये। वीतरागमूर्ति शाश्वत् है। जिनेश्वरदेव की शाश्वत् मूर्ति

है उसे यह यक्ष की बाहर में कहते हैं और अन्दर में कहे कि जिनप्रतिमा। आहाहा! एकान्त में कोई नहीं था। वे एक और मैं दोनों व्यक्ति थे। एकान्त में पूछा था। ७३ की बात है। ५८ वर्ष हुए न? विश्वास उड़ गया अन्दर से। इन लोगों के वचन प्रमाण नहीं यहाँ अब। अब तो शास्त्र क्या कहते हैं? क्या उनका आशय है, यह अपने स्वयं निर्णय करना पड़ेगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **द्रव्य-भावलिंग को धारण करके परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए...** परमगुरु ने उसे कहा कि शुद्ध चैतन्यमूर्ति तू है। आहाहा! उसका उसकी ओर का अभ्यास कर। उसमें रहने का, उसमें एकाग्र होने का अभ्यास कर। आहाहा! ऐसे परम आगम के अभ्यास द्वारा, परम आगम जो ज्ञानदशा, उसका अन्तर में अभ्यास द्वारा। आहाहा! **सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके...** है? **सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके अव्याबाध सकल-विमल (सर्वथा निर्मल)...** आहाहा! **केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये...** इस प्रकार सिद्धात्मा हुए, यह भी विधि है। अब विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक ०२-०९-१९७५
गाथा-४७-४८, कलश-७१, प्रवचन - २३

४७ गाथा। शुद्धद्रव्यार्थिकनय से देखे तो संसारी और सिद्ध दोनों समान हैं। पर्याय में अन्तर है, वह कहीं पर्याय का विषय द्रव्यार्थिक नहीं। जैसे सिद्ध भगवान कार्यसमयसाररूप है, वैसे सब आत्मायें कारणसमयसारस्वरूप ही है। वस्तु कारणसमयसार चिदानन्दस्वरूप, वह कारणसमयसार सिद्धसमान ही जीव है। आहाहा! वहाँ उसे दृष्टि करने की है। संसारी हो या सिद्ध हो, शुद्धद्रव्यार्थिकनय से दोनों समान हैं। यहाँ तक अपने आया है।

अति-आसन्न-भव्यजीव हुए, वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए... आहाहा! विकारमात्र से थके, जिनका चित्त थक गया। आहाहा! ऐसे होते हुए **सहजवैराग्यपरायण होने से...** यह उपाय कहते हैं। सिद्ध कैसे हुए? और ऐसे तीनों काल में सिद्ध इस प्रकार से होते हैं। **द्रव्य-भावलिंग को धारण करके...** आहाहा! भावलिंग, ज्ञानानन्दस्वभाव कहेंगे, ज्ञानानन्दस्वभाव का भावलिंग, उसे धारण करके द्रव्यलिंग नग्नपना और विकल्प आदि धारण करके **परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए...** वह द्रव्य की बात साधारण ... ऐसी भी **परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए परमागम के अभ्यास द्वारा...** आहाहा! परमगुरु ने यह कहा कि तेरा स्वभाव ज्ञान और आनन्द है, उस ज्ञान के स्वभाव द्वारा उसका साधन कर। आहाहा! यह कहा तत्प्रमाण उसने किया, ऐसा कहा यहाँ। भगवान ज्ञानस्वभाव, ज्ञातृतत्त्व तो आया था न! सवेरे आया था। ज्ञेय और ज्ञायकतत्त्व ज्ञातृतत्त्व अर्थात् आत्मा ज्ञातृतत्त्व जाननस्वभाव का पिण्ड, अकेला ज्ञायकस्वभाव चैतन्यबिम्ब का आश्रय करके, उसका अवलम्बन लेकर जो ज्ञान-दर्शन-आनन्द की यह ज्ञानदशा कहलाती है सब, इस ज्ञानदशा द्वारा अर्थात् परमागम के अभ्यास द्वारा, परमागम अर्थात् परम आनन्द और ज्ञान की दशा, वह

परमागम। द्रव्य परमागम नहीं। आहाहा! वस्तु भगवान ज्ञातृतत्त्व अर्थात् ज्ञायकभाव, उसमें से ज्ञान की पर्याय को प्रगट करके ज्ञानस्वभाव द्वारा साधन किया। वह समकित, ज्ञान और चारित्र तीनों ज्ञानस्वभाव कहलाते हैं। रागस्वभाव नहीं, इसलिए ज्ञानस्वभाव। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके...** सिद्धक्षेत्र को प्राप्त हुए, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह तो भावसिद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावसिद्धक्षेत्र अपना उसे प्राप्त हुए। द्रव्यक्षेत्र बतलाया है कि ऊपर गये। आहाहा! दोनों बतलाया है।

अव्याबाध (बाधारहित) सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये... जैसा उसका स्वभाव अनन्त चतुष्टय था, उस प्रकार से परिणमन में अनन्त चतुष्टय आदि अनन्त गुण परिणमन हो गये। आहाहा! देखो, यह यह उपाय यह कहा। कोई विकल्प और व्यवहार सिद्ध होने का उपाय नहीं, ऐसा कहा। ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप ऐसे स्वभाव से भरपूर प्रभु, उसके आश्रय से ज्ञानदशा की जो दशा प्रगट हुई, फिर वह ज्ञान कहो, दर्शन कहो, चारित्र कहो, वह सब ज्ञान की दशायें हैं। आत्मज्ञान की दशाओं का साधन करके सिद्ध हुए। लो! जितने अभी तक सिद्ध हुए (वे इस प्रकार से हुए)। उसमें ऐसा आया था '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः**'। पर से भिन्न करके, ऐसा। यहाँ कहा अपना स्वभावस्वरूप भगवान का साधन करके। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरा उपाय....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एक ही उपाय है। भेदज्ञान पर से भिन्न करके कहा, यहाँ अपने स्वभाव की दशा को अभेद से कहा। दोनों होकर एक ही है। आहाहा!

ज्ञायक चैतन्यस्वभाव का ज्ञान, उसकी प्रतीति और उसकी रमणता, वह सब परमागम अभ्यास कहा जाता है। देखो, यह परमागम है न यह? वह परमागम नहीं, कहते हैं। परमागम में गुरु ने जो कहा कि तेरा स्वभाव भगवान पूर्ण है, वहाँ दृष्टि दे, उसका आश्रय ले, उसमें एकाग्र हो, उससे मुक्ति होगी। आहाहा! हमारे से नहीं और

व्यवहार से नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा गुरु ने उसे कहा था, ऐसा उन्होंने साधन किया और मुक्ति को प्राप्त हुए। आहाहा! वे **कार्यसमयसाररूप है,...** सिद्ध भगवान कार्यसमयसारस्वरूप हैं। पर्याय में कार्य पूर्ण हो गया, इसलिए कार्यसमयसार हैं। **कार्यशुद्ध हैं। कार्य-अपेक्षा से शुद्ध** है। पर्याय की अपेक्षा से अत्यन्त शुद्ध है। द्रव्य से शुद्ध है, वह तो अलग वस्तु। यह तो द्रव्य शुद्ध है, वह कारणसमयसार में जाता है और पर्याय से शुद्ध है, वह कार्यसमयसार में जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जैसे वे सिद्धात्मा हैं, वैसे ही शुद्धनिश्चयनय से भववाले (संसारी) जीव हैं। आहाहा! जैसे वे सिद्धस्वभाव कार्यसमयसाररूप हुए, वैसे ही भगवान आत्मा प्रत्येक संसारी प्राणी कारणसमयसार, वह अत्यन्त शुद्ध और पूर्ण शुद्ध है। वे पर्याय से शुद्ध हैं, यह वस्तु से शुद्ध है। आहाहा! परन्तु वह वस्तु से शुद्ध है, उसका अनुभव करे तब वह वस्तु शुद्ध है, ऐसा इसे दृष्टि में आवे। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो शुद्धनय से ऐसा है, ऐसा कहा है। और संसारी जीव भी अपने को शुद्धनय से 'शुद्ध परमात्मस्वरूप ही कारणसमयसार हूँ' ऐसी दृष्टि और साधन करके वे भी मुक्त होते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यह व्यवहारवालों को भारी कठिन पड़े। अन्यत्र कहा व्यवहार साधन, निश्चय साध्य। लो! पंचास्तिकाय में १७२ (गाथा)। वह तो साधन के दो प्रकार का कथन किया है। साधन दूसरा उसे ज्ञान—बतलाया है कि जहाँ स्वरूप का साधन करता है, वहाँ पूर्ण नहीं, उसे राग की मन्दता का कैसा प्रकार होता है, उसे साधनरूप से आरोप करके कथन किया है। ऐसा है। ऐसा है। उसे अन्दर राग की मन्दता किस प्रकार की होती है, यह बतलाने के लिये उसे साधन का आरोप किया है। आहाहा!

संसारी जीव सिद्धात्मा समान हैं,... आहाहा! **उस कारण वे संसारी जीव...** आहाहा! **जन्म-जरा-मरण से रहित...** यह भगवान आत्मा वस्तुरूप से जो है, वह तो जन्म-जरा-मरणरहित ही है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु जो है द्रव्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, शुद्धस्वभाव, शुद्धभाव है न, यह अधिकार। वह शुद्धभाव जो तत्त्व वस्तु है, वह जरा, मरण और जन्म से रहित है। जन्म नहीं, उसे वृद्धावस्था नहीं। तीन की। उसे

मृत्यु नहीं। आहाहा! इन तीन रहित वह वस्तु है।

मुमुक्षु : यह गुरु का प्रसाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उन्होंने (गुरु ने) कहा था, वैसा इसने किया। आहाहा!

जिसकारण वे संसारी जीव सिद्धात्मा समान हैं, उस कारण वे संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं... समकित आदि गुणों के आनन्द से पुष्ट है स्वभाव उनका। समझ में आया? आहाहा! **सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं (सम्यक्त्व, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु तथा अव्याबाध इन आठ गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है)।** यह जीव स्वयं आठ गुण की समृद्धि से आनन्दमय है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें क्या आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ आया नहीं। उसी वस्तु को अनुभव करे, बस यह आया। वस्तु ऐसी है तो उसमें से कार्यसमयसार होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आठ गुणों की... समृद्धि से, ऐसा है न? **पुष्टि से तुष्ट है...** पुष्टि का अर्थ समृद्धि किया और तुष्ट का अर्थ आनन्द किया। आठ गुणों की समृद्धि से... आहाहा! अर्थात् कि पुष्टि से वह तुष्ट है अर्थात् कि आनन्दमय है। आहाहा! ऐसा ही द्रव्यार्थिकनय का विषय है, वह वस्तु ऐसी है अनादि से। अनादि-अनन्त वह द्रव्य ऐसा ही है, उसे दृष्टि में लेकर अनुभव करके सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं। यह पर्याय से आश्रय लेकर, परन्तु ऐसे द्रव्य का आश्रय लिया, तब उसे मोक्ष के मार्ग की पर्याय प्रगट हुई। आहाहा! 'निश्चयनयाश्रित' आता है न? व्यवहार पराश्रित, निश्चय स्वाश्रित। दोनों शब्द हैं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है ऐसा इसे दृष्टि में, विश्वास में आवे और इसकी ज्ञान की पर्याय में ऐसा आवे, तब उसमें यह स्थिर हो, तब वह मुक्ति को प्राप्त करे। आहाहा! यह अधिकार है। आहाहा!

★ ★ ★

कलश - ७१

(अब ४७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

(अनुष्टुप्)

प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।
नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम्॥७१॥

(वीरछन्द)

जो सुबुद्धि या दुर्बुद्धि हों पहले से ही शुद्ध अहो!
किस नय से फिर भेद करूँ मैं, उन दोनों में तुम्ही कहो॥७१॥

***श्लोकार्थः*—जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है, उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ ? (वास्तव में उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है।)॥७१॥**

कलश - ७१ पर प्रवचन

(अब ४७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।
नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम्॥७१॥

श्लोकार्थः—जिन सुबुद्धिओं को... सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को और **तथा कुबुद्धिओं को...** अज्ञानी को, मिथ्यादृष्टि को **पहले से ही शुद्धता है,...** वस्तु में पहले से ही शुद्धता भरी पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को वह शुद्धता पड़ी है वस्तु। सम्यग्दृष्टि को वह शुद्धता पहले से है। आहाहा! वस्तु अनादि पहले से है, वह नया करे तो होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! आचार्य ने यह मोक्षमार्ग की,... मोक्षमार्ग का अधिकार है न? नियमसार अर्थात् यह। जैसे नियमसार भगवान पूर्ण कार्यसमयसार को प्राप्त हुए, वैसा ही नियमसार वस्तु त्रिकाली द्रव्य है। वह नियमसार द्रव्य त्रिकाली नियमसार है।

आहाहा! अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु, वह नियमसार अर्थात् कि मोक्ष का कारण, वह यह नियमसार ध्रुव नियमसार। आहाहा! समझ में आया? यह पहले आ गया है। नियमसार के दो बोल। कारणनियमसार और कार्यनियमसार। पहले आ गये हैं। यह कारणनियमसार भगवान आत्मा, अरे! परन्तु इसका विश्वास अन्दर स्वसन्मुख हो, तब आवे न! समझ में आया? वस्तु तो है।

एक प्रश्न चला था न कि कारणसमयसार कहते हो तो कार्य तो आना चाहिए? कारणसमयसार यदि कहो उसे तो कारण का कार्य तो आना चाहिए? ऐसा प्रश्न हुआ। त्रिभुवनभाई वारिया-वारिया ने प्रश्न किया था। तो कहा कि 'कारणसमयसार' है, ऐसा जिसे बैठे, उसे कार्य आवे। परन्तु है, इसकी खबर ही नहीं वहाँ (कार्य क्या आवे?) ऐसा भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनन्त आनन्द बल से सम्पन्न... आहाहा! जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल, अनन्त पुरुषार्थ से भरपूर भगवान... आहाहा! यह है, उसे जाने-माने बिना, है कहाँ से आया? समझ में आया?

मुमुक्षु : हमको क्यों नहीं बैठता?

पूज्य गुरुदेवश्री : माना नहीं इसलिए।

मुमुक्षु : क्यों नहीं माना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी दृष्टि है इसलिए, पर्यायबुद्धि है इसलिए।

मुमुक्षु : उल्टी क्यों है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी क्यों, वह स्वयं ने की है।

मुमुक्षु : स्वयं ने क्यों की?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं ने पर्यायबुद्धि की, इसलिए की है। आहाहा! 'अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' किसी ने भूल करायी है, ऐसा है नहीं। आहाहा! कान्तिभाई! यह तुम्हारे भाई का यह प्रश्न था, त्रिभुवनभाई का, कि यह कारणपरमात्मा आप कहते हो आत्मा को कारणपरमात्मा (कहो) तो कारण का तो कार्य आना चाहिए? ऐसा प्रश्न किया था। तब उससे कहा कि भाई! कारणपरमात्मा ऐसा है, उसकी अस्ति

है, ऐसा जिसे मानने में आवे, उसे कारणपरमात्मा है। तो उसे मानने में आया तो कार्य तो हो गया उसका। सम्यग्दर्शन-ज्ञान कार्य हो गया। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! यह वस्तु है, ऐसी उसकी दृष्टि में आये बिना वह है, यह किसने जाना? समझ में आया? है वह कहाँ है? कैसे है? उसकी तो खबर नहीं। फिर उसके लिये है, यह कहाँ आया? आहाहा! वह वस्तु महाप्रभु... ज्ञातृतत्त्व आया था न सवेरे? ज्ञेय और ज्ञातृतत्त्व। आहाहा! ऐसा जो ज्ञायकतत्त्व, वह कारणपरमात्मा, उसका जिसे स्वीकार और जिसे अन्तर में से अनुभूति होकर जिसे जानने में आया कि यह है, उसे कार्य सम्यग्दर्शन का हुए बिना रहता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह यहाँ द्रव्यार्थिकनय कहकर ऐसा कहते हैं कि जिसकी द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि हुई 'वह द्रव्य तो ऐसा है' ऐसी जिसकी दृष्टि हुई, वह भी सिद्ध जैसी ही अन्दर वस्तु है, वह सिद्ध होने की अब तैयारी है उसकी। आहाहा! पर्याय में सिद्ध होने की उसकी तैयारी है अब। समझ में आया? जिसने द्रव्यार्थिकनय से द्रव्य की दृष्टि से पूर्ण शुद्ध सिद्ध समान है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है? 'चेतनरूप में...' आता है। ऐसा जिसे अन्तर में उसका ज्ञान होकर श्रद्धा में यह वस्तु आयी, ज्ञान होकर कि यह चीज़ ऐसी है, उसे मोक्ष के मार्ग की दशा प्रगट हुई। वह कार्य शुरु हो गया। पूर्ण कार्य बाद में होगा। समझ में आया? ऐसी भारी बातें भाई!

मुमुक्षु : यह द्रव्यार्थिक से कहा तो निश्चय से क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यार्थिक कहो या निश्चय कहो, एक ही बात है। यह शुद्धभाव ऊपर नहीं आया था? यह शुद्धभाव ऊपर है, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है। एक ही बात है। आहाहा! द्रव्य जिसका प्रयोजन है। शुद्धद्रव्यार्थिक शब्द है न! शुद्ध द्रव्य जिसका प्रयोजन है, उसे शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहा जाता है। आहाहा! जिस ज्ञान की पर्याय को शुद्धद्रव्य जिसका प्रयोजन है, उस नय को शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : हमको तो कठिन लगे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन वह तो भाई करे तब लगे न! अन्दर माने तब यह किया कहलाये। अनुभव में आवे, तब वह कारणपरमात्मा है, ऐसा उसने माना कहलाये।

आहाहा! क्योंकि जो अस्तित्व इतना और इतना है... वह तो सवेरे बहुत सादी भाषा से आया था कि जिसे धर्म करना है, उसे वर्तमानदशा में धर्म नहीं, अधर्म है पर्याय में। लोग भले अन्यमति ऐसा न समझे, परन्तु उसकी वर्तमानदशा में अधर्म है। अब उसे धर्म करना हो तो? वह धर्म की दशा कहाँ से आयेगी? वह धर्म की दशा जिसमें धर्म है, वहाँ से आयेगी। इसलिए उसे द्रव्यदृष्टि करनी पड़ेगी।

मुमुक्षु : तो अरिहन्त-सिद्ध को धर्म है, वहाँ से आयेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में वहाँ कहाँ धर्म है? यहाँ है या वहाँ है? वह तो उनका धर्म वहाँ रहा। इस जीव का-धर्मी का धर्म वह अन्दर में सामान्यरूप से त्रिकाल है। आहाहा! ऐसे धर्मी को धर्म से भरपूर तत्त्व को द्रव्य से देखने पर... उसे धर्म करना है न तो वह धर्म की दशा कहाँ से आवे? कि वह धर्म की पर्यायों का समूह पिण्ड धर्म गुण-धर्म पड़ा है। आहाहा! उस पिण्ड का अन्दर आश्रय लक्ष्य में ले, तब उसे धर्म की पर्याय आती है। यह तो समकित हो गया, ज्ञान हो गया। आहाहा! ऐसा मार्ग, बापू! यहाँ तो कहा न कि भगवान का वचन ही ऐसा है। शुद्ध वचन। आहाहा!

यहाँ तो अभी यह कहेंगे, देखो, कि **जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है,...** वस्तु शुद्ध तो अनादि से है। आहाहा! **उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** भाषा देखो! **उनमें कुछ भी भेद मैं किस...** व्यवहारनय से, वह नय ही नहीं, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! उड़ा दिया न। किस नय से सिद्ध और कारणसमयसार में भेद कहूँ? आहाहा! व्यवहारनय अर्थात् तो उपचारिक नय, वह कहीं वास्तविक नय नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्धनिश्चयनय से जान?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही वस्तु यह नय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहारनय उपचारिक-आरोपित नय है। और यह नय है, वह यथार्थ, अनारोपित जैसा है, वैसा उसे बतलानेवाला यह नय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! देखो, वहाँ कहाँ था न उसमें? कि ऐसा जिनदेव का शुद्धवचन बुधपुरुषों को कहते हैं। आया था न? और वह भुवनविदित है। आहाहा! **हे भव्य! तू सदा जान।** ऐसा कहा वापस।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात यहाँ किस नय से मैं भेद कहूँ? यह वास्तविक नय है, उसमें तो भेद है नहीं। आहाहा! जो यथार्थ नय है, जो भूतार्थनय है। आहाहा! वस्तु तो भूतार्थ है, परन्तु नय भूतार्थ है। आहाहा! बन्ध में नहीं आता? भूतार्थधर्म और अभूतार्थधर्म। आता है, बन्ध अधिकार में आता है। पर्याय को भूतार्थधर्म कहा है। द्रव्य का... भूतार्थ जो वस्तु है द्रव्य, उसे जिसने जाना, अनुभव किया और प्रतीति में लिया, उसे पर्याय में भूतार्थधर्म प्रगट होता है। आहाहा! क्या शैली! भूतार्थ अर्थात् विद्यमान स्वभाव—विद्यमान स्वभाव, त्रिकाली शुद्ध भगवान पूर्णानन्द का नाथ ऐसी चीज़ जो विद्यमान... विद्यमान... विद्यमान... सत्यार्थ, भूतार्थ है... आहाहा! उसका आश्रय करने से पर्याय में भूतार्थ धर्म प्रगट होता है। पर्याय को भूतार्थधर्म कहा है। बन्ध अधिकार में है। समझ में आया? और रागादि जो है, वह तो अभूतार्थ धर्म, झूठा धर्म है। व्यवहाररत्नत्रय, वह तो अभूतार्थ है। अभूतार्थ धर्म है। आहाहा! समझ में आया? बन्ध अधिकार में है, समयसार में। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ऐसा जो शुद्धपना, ध्रुवपना, शुद्धपना वस्तु का, वह कुबुद्धि को और सुबुद्धि को किस नय से (भेद जानूँ)? जो यथार्थ नय है, उसमें तो भेद है नहीं। आहाहा! यथार्थ, भूतार्थ, सत्यार्थ, द्रव्यार्थिकनय। इस नय से देखें तो उसमें कुछ भेद है नहीं और वही यथार्थनय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या शैली! गजब शैली! भारी शैली! ओहोहो! पूर्वापरविरोधरहित वस्तु की स्थिति कैसे सिद्ध करते हैं। आहाहा! कहते हैं, भाई! तेरी खान जो है, निधान जो है, ध्रुव जो निधान है, ऐसे निधान को और प्रगट हुई पर्याय .... उसे नय के किस नय से उसमें भेद जानूँ? कहते हैं। आहाहा! जो कुबुद्धि मिथ्यादृष्टि है और सुबुद्धि सम्यग्दृष्टि है, उन दोनों में प्रथम से ही शुद्धता पड़ी है अन्दर ध्रुवता। आहाहा! पूर्णानन्द की खान तो खान पड़ी है बड़ी। आहाहा! उस लक्ष्मी की तो खबर नहीं होती और यह लक्ष्मी धूल में प्राप्त करने में मर जाता है। पोपटभाई! यह धूल की लक्ष्मी तुम्हारी। आहाहा! जिन्दगी कितनी व्यतीत करता है वहाँ? वह वहाँ चिड़िया का मकान दस बार गिर गया तो भी अभी तिनका लाती है। तब

अब क्या करती है यह ? रहने का स्थान हीं नहीं वहाँ। और जो अब तो तिनका छोटा लावे छोटा। गिर जाये। रखे और गिरे तुरन्त। पहले जरा लम्बा हो और वह दाँत होंगे तो ऐसे बल खाया हो तो उसके आश्रय से और दूसरा रहे, परन्तु छोटे-छोटे तिनके लाती है, इसलिए जैसा रखे (वैसा गिर जाये)। ... यही नय यथार्थ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! ऐसी भाषा सन्तों दिगम्बर के अतिरिक्त कहीं नहीं। वह व्यवहार को लगे पड़े हैं पूरे। श्वेताम्बर पंथ पूरा व्यवहारनय की प्रधानता से चला है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं। वे वापस भ्रष्ट होकर निकले हुए, इसलिए यह चलाया। बहुत कठिन काम, हों! आहाहा!

मुनिराज कहते हैं, जब भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं शुद्धनय से, द्रव्यार्थिकनय से कहो या शुद्धनय से कहो, द्रव्य जिसका प्रयोजन है अर्थात् त्रिकाली शुद्ध जिसका प्रयोजन है, आहाहा! उस नय से तो कुबुद्धि और सुबुद्धि में कुछ भेद है नहीं। आहाहा! पर्याय का भेद वह वास्तविक वस्तु नहीं। आहाहा! फू होकर उड़ जाये। समझ में आया ? कहा नहीं था उसमें ? '**णयपरिहीणा**' आस्रव (अधिकार) में यह आता है। कहा नहीं था ? '**णयपरिहीणा**' यह निश्चयनय से '**परिहीण**' वही नय से '**परिहीणा**' है। समझ में आया ?

और पुरुषार्थसिद्धि (उपाय) में ऐसा आया कि यह अकेले व्यवहार को माननेवाले को उपदेश नहीं बैठता। आहाहा! समझ में आया ? योग नहीं। आहाहा! कैसी शैली है! व्यवहार के उपदेश को, व्यवहार के जो पक्षकार, उन्हें यह उपदेश नहीं बैठता। आहाहा! चेतनजी! आहाहा! जिसे सत्यार्थनय का जो विषय है, वह पूर्ण शुद्ध है, और वही नय है। त्रिकाल को सिद्ध करनेवाला वह नय है और वह शुद्धनय, वही नय है। आहाहा! समझ में आया ? पर्यायनय अर्थात् क्या है ? आहाहा! वस्तु एक समय में, आहाहा! ध्रुव त्रिकाल वस्तु पिण्ड पड़ा है पूरा। आहाहा! वह कुबुद्धि हो या सुबुद्धि हो। आहाहा! सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि हो। आहाहा!

सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को... ओहोहो! **पहले से ही शुद्धता है,...** वस्तु ही शुद्ध त्रिकाल पड़ी है। आहाहा! **उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** ऐसा कहते हैं कि मैंने मेरे ज्ञान के नय से, मैंने ऐसा है, यह मैंने जाना है। इसलिए फिर कुबुद्धि या सुबुद्धि को यह विषयवस्तु है, उसमें भेद कहाँ रहा? आहाहा! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' परन्तु यह जाननेवाले को जाना, उसकी बात है। समझ में आया? यह तो कहे, मैं किस नय से कहूँ? अज्ञानी भले कहे नय से भेद। आहाहा! जहाँ वस्तु ही नित्य ध्रुव आनन्दकन्द प्रभु... यहाँ ऊपर कहा था न? जो आठ गुण से पुष्ट-पुष्ट समृद्धि से आनन्दमय है। वस्तु अनादि ऐसी है। सिद्ध को प्रगट पर्याय है, इसको शक्तिरूप स्वभाव ऐसा ही है। आहाहा! आठ गुण पर्याय प्रगट हुए हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहना। वह वस्तु जिसमें से प्रगट होनेवाली वह वस्तु ही ऐसी है। उस वस्तु का यहाँ जोर है। आहाहा! समझ में आया?

त्रिकाल भगवान आत्मा परिपूर्ण शुद्ध, वह निश्चयनय से समकिती को या अज्ञानी को परिपूर्ण शुद्ध एकरूप है, उस नय से कोई भेद नहीं हो सकता। आहाहा! पर्यायनय से भेद, वह पर्यायनय वास्तविक नय नहीं, जा। ऐई! कान्तिभाई! यह देखो, सन्तों की वाणी की मस्ती! मस्तों की मस्ती है यह! आहाहा!... अन्दर से प्याला फट गया है न। हम भी यह शुद्ध ध्रुव हैं, वही हमने पकड़ा है और शुद्धनय का विषय वह है और वह अनादि है। अज्ञानी को भी ऐसा है। उसे भले बैठे नहीं। अज्ञानी को यह बात भले बैठे नहीं, परन्तु इससे हम कहते हैं न! ऐसा कहते हैं न, देखो न! **मैं किस नय से जानूँ?** ऐसा कहते हैं। बुद्धि भले ऐसा माने कि शुद्धता नहीं, परन्तु मैं किस नय से जानूँ? आहाहा! आहाहा! मस्तों की बस्ती है यह। आहाहा!

कुबुद्धि निन्दा करे तो करो। ऐसा नहीं आता? उसमें आगे आयेगा। अन्त में आयेगा। दो बार आयेगा। करे तो करो, परन्तु जैनमार्ग तो निश्चय का जो यह है, वह मार्ग है। आहाहा! उसके आश्रय से प्रतिक्रमण आदि सब क्रिया हो, वह सत्क्रिया है और वहाँ तो ऐसा भी कहा, आगे कहेंगे कि कदाचित् वह सत्क्रिया तुझसे न हो सके, पंचमकाल है, हल्का काल है, पुरुषार्थ कम है, परन्तु वस्तु जो है तत्प्रमाण में श्रद्धा में

फेरफार करना नहीं। ... श्रद्धा बराबर करना। आहाहा! बहुत शैली वस्तु की स्थिति है। आहाहा! क्योंकि जो उग्र पर्याय चारित्र की कदाचित् ऐसी निर्मल न हो सके, क्योंकि जिस पर्याय से केवलज्ञान हो... आहाहा! ऐसी पर्याय तुझे ऐसा पंचम काल, हल्का काल, मोक्ष अभी नहीं, ऐसे काल में भले वह पूर्ण पर्याय जिससे मोक्ष हो, वह न हो, परन्तु श्रद्धा में बराबर रखना कि वस्तु शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु है और उसके आश्रय से सत्क्रिया हो, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! कितना जोर दिया श्रद्धा का देखा! कुन्दकुन्दाचार्य मुनिराज (ने) मुनि को कहा। मुनिराज ने मुनि को कहा आचार्य ने। मुनि! है न?

१५४, १५४ गाथा। ओहोहो! १५४ गाथा। '**जदि सक्कदि कादुं जे**' यदि करने की शक्ति हो तो करना। '**पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।**' '**झाणमयं**' सत्क्रिया को करना। समझ में आया? निर्विकल्प ध्यान द्वारा वह क्रिया करना, कहते हैं। आहाहा! '**सत्तिविहीणो जा जइ**' आहाहा! यह आया टीका में। **इस दग्धकालरूप (हीनकालरूप) अकाल में तू शक्तिहीन हो तो तुझे केवल निजपरमात्मतत्त्व का श्रद्धान ही कर्तव्य है।** ऐसी पर्याय की कचास हो कि जिससे केवल (ज्ञान) हो... है न यह आया न। वाँचा न! समझ में आया? शक्तिहीन, अकाल है, अभी केवलज्ञान का काल नहीं। आहाहा! जिस पर्याय से केवलज्ञान हो, ऐसी पर्याय की तेरी सामर्थ्य न हो तो, ऐसा। समझ में आया? तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव का परिणमन तो मुनि को है, परन्तु वह एकदम पर्याय स्थिर होकर जो केवल (ज्ञान) हो, वह कला इस पंचम काल में, दग्धकाल में नहीं तो श्रद्धा ऐसी रखना कि पूर्ण निर्मल पर्याय हो, उससे मुक्त होगा। समझ में आया? आहाहा! नियमसार तो रत्न का ढ़ेर है!!

(वास्तव में उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है।) आहाहा! मैं किस नय से कहूँ? आहाहा! मैं तो भूतार्थनय का आश्रय लेनेवाला, एकरूप त्रिकाल द्रव्य है, उस दृष्टिवाला। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **(वास्तव में उनमें कुछ भी भेद...)** वापस भाषा क्या है, देखा? कुछ भी भेद। है? '**कामपि**' है न? '**कामपि**' '**कामपि वेद्म्यहम्**' '**भिदां कामपि वेद्म्यहम्**' **कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** आहाहा!

भगवान पूर्णानन्दस्वरूप है। संसारी जीव की पर्याय में भी पूर्ण है। सिद्ध को भी पूर्ण पर्याय प्रगट हुई, परन्तु वह वस्तु तो वह की वह है। आहाहा! जो वस्तुस्वभाव, द्रव्यस्वभाव, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा, उस आत्मा को जहाँ भूतार्थनय से जाना... आहाहा!

सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है,... यह तो जानी हुई... जिसे उस वस्तु का भान हुआ है कि मैं... आहाहा! किस नय से कहूँ? किस नय से जानूँ? कहना है कहाँ? समझ में आया? ओहोहो! सन्तों ने तो अकेला अमृत प्रवाहित किया है! आहाहा! वाणी के पीछे उसका वाच्य कितना जोरवाला है! **कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** फिर कोष्ठक में स्पष्टीकरण करना पड़ा। **(वास्तव में उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है।)** आहाहा! द्रव्यार्थिकनय का विषय दृष्टि में लिवाने को... उसका आश्रय लेने के लिये यह सब बात है। जिसे प्रयोजन सिद्ध करना है, (उसके लिये बात है)। आहाहा! यह ७१ कलश हुआ और ४७ गाथा हुई। ४८ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ४८

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया॥४८॥

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

अन्वयार्थ :— [यथा] जिस प्रकार [लोकाग्रे] लोकाग्र में [सिद्धाः] सिद्धभगवन्त [अशरीराः] अशरीरी, [अविनाशाः] अविनाशी, [अतीन्द्रियाः] अतीन्द्रिय, [निर्मलाः] निर्मल और [विशुद्धात्मानः] विशुद्धात्मा (विशुद्धस्वरूपी) हैं, [तथा] उसी प्रकार [संसृतौ] संसार में [जीवाः] (सर्व) जीव [ज्ञेयाः] जानना।

टीका :— और यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है।

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं, निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं, परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं, मलजनक क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण 'निर्मल' हैं और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के अभाव के कारण 'विशुद्धात्मा' हैं; उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव किसी नय के बल से (किसी नय से) शुद्ध है।

गाथा - ४८ पर प्रवचन

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया॥४८॥

४७ में यह कहा था। 'जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।'

जन्म, जरा, मरण। एकाक्षरी है पाँचों ही शब्द। जरमरण। आहाहा! तन, मन और वचन से भगवान रहित है। त्रिकाल वस्तु उनसे रहित है। आहाहा! '**अट्ठगुणालंकिया**' आठ गुण से तो शोभित है, अलंकारित है। आहाहा! पहले आ गया था। सब पदार्थ निजगुण-पर्याय से अलंकृत है। प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्याय से शोभित है। पर का कोई आश्रय-फाश्रय किसी को है नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं, सिद्ध में और संसारी में कुछ भेद नहीं। इसका विशेष स्पष्टीकरण किया कि सिद्ध कैसे हैं? समझ में आया?

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

देखा! पहली भाषा सिद्ध करके... आहाहा! लोगों को यह बात बैठे नहीं न, इसलिए कितने ही उड़ाना चाहते हैं। और यह ऐसा कि कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी है, ऐसा निर्णय करने जाऊँगा उसके प्रमाण में तो दूसरे आचार्यों ने कहा हुआ, उसका बलिदान होगा। अरे भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! ऐसा नहीं होता। आहाहा! अरे बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! यह प्रत्येक अनन्त आचार्यों का एक ही अभिप्राय है। आहाहा! यह मुनिराज हैं, देखो न, क्या कहते हैं यह।

टीका :— और यह, कार्यसमयसार... यह, कार्यसमयसार में '**अयं च कार्यकारणसमयसार**' टीका सीधी है। **यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में...** यह कार्यसमयसार में और कारणसमयसार में **अन्तर न होने का कथन है।** आहाहा! यह तो पहले आ गया था, भगवान का शुद्धवचन बुधपुरुषों को ऐसा कहते हैं। आहाहा! बुधपुरुष हैं, जाननेवाले यथार्थ हैं, उन्हें तो भगवान कहते हैं कि यह शुद्धनय का विषय, वही वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? भाषा गुजराती यह तो सादी है। इसमें कहीं बहुत कठिन पड़े, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : भाव बहुत सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भाव भी ख्याल में आ सकते हैं न! भाषा अत्यन्त सादी है। आहाहा!

मुमुक्षु : चित्त न लगे तो नहीं समझ में आये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : न लगे तो न समझ में आये, इसका अर्थ क्या? आहाहा! इसके ज्ञान में यह पद्धति है, ऐसा ख्याल में बराबर आना चाहिए। आहाहा!

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त... सिद्ध परमेश्वर अशरीरी परमात्मा। आहाहा! अरे! भाग्यहीन को न मिले ऐसी बात। आहाहा! उसमें कहा जाता है न, 'भाग्यहीन को नहीं मिले, भली वस्तु का भोग, द्राक्ष पके जब बाग में, काग मुख आवत रोग।' भाई! द्राक्ष पके न द्राक्ष? तब कौवे का मुख पक जाता है। उस समय खा नहीं सकता। आहाहा!

मुमुक्षु : द्राक्ष खाये तो मर जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह खा नहीं सकता। इतना अन्दर वह हो। 'काग मुख आवत रोग' यह तालुवा ऐसा अन्दर (हो जाये) कि उसे ऐसे द्राक्ष जरा वह होती है न रसवाली और मीठी, वह लगे तो उसे दाह उठे। आहाहा! 'भाग्यहीन को नहीं मिले भली वस्तु का भोग, भली वस्तु का योग। द्राक्ष पके जब बाग में काग मुख आवत रोग।' कुछ न कुछ पक्ष करे, उसका पक्ष करे, ऐसा नहीं... ऐसा नहीं... ऐसा नहीं। मुश्किल से परमार्थ वस्तु बाहर आयी, वहाँ कहे ऐसा नहीं... ऐसा नहीं... ऐसा नहीं... बापू! तुझे रोग आया है। यह सत्य बात ऐसी नहीं रुचे। तुझे एकान्त लगेगा। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण...** पाँच शरीर का विस्तार उन्हें नहीं। **अशरीरी हैं,...** ऐसा यह भगवान आत्मा भी द्रव्यस्वभाव से अशरीरी है। आहाहा! शुद्धनय के विषयरूप से आत्मा अशरीरी है। अभी अशरीरी है, हों! आहाहा! त्रिकाल वस्तु शुद्ध ध्रुव, उसे शरीर कैसा? आहाहा! जैसे सिद्ध भगवान को शरीर नहीं और अशरीरी हैं, वैसे भगवान आत्मा भी अशरीरी है, ऐसा कहते हैं। **निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** एक गति आवे और दूसरी गति जाये, ऐसा त्याग-ग्रहण गति का, मनुष्यगति जाये और देवगति मिले, देवगति जाये और मनुष्यगति मिले—ऐसे **त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,...** वह अविनाशी वस्तु कोई गति जाये और

गति आवे, ऐसा उसमें है नहीं। आहाहा! यह वस्तु में, हों! यह कहते हैं। गति जाये और हो, ऐसा उसमें कुछ नहीं, वह वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! उसने नरकगति, मनुष्यगति को ग्रहण नहीं किया और पूर्व की मनुष्य की गति को छोड़ा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आाय? आहाहा! वह तो त्यागग्रहण रहित ही वस्तु है। गति के त्यागग्रहण। एक गति हो और दूसरी गति मिले, यह गति जाकर, ऐसा कुछ वस्तु में नहीं। आहाहा! समझ में आया? **अविनाशी है।** आहाहा!

परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ... यह तो सिद्ध की बात चलती है, हों! यह अभी। **परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा...** सिद्ध भगवान को **जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण...** ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण **अतीन्द्रिय हैं,...** अतीन्द्रिय सिद्ध करने के लिये। आहाहा! **परमतत्त्व में स्थित...** जो अनन्त गुण कारणशुद्धस्वरूप, उन्हें जानने में, सिद्ध की पर्याय, हों! त्रिकाल को जानने में संशय दूर किये गये हैं। **ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,...** आहाहा! ऐसा यह जीव भी अतीन्द्रिय है, ऐसा कहना है। आहाहा! संशय कैसे? इतना बड़ा चेतन संशय कैसा? समझ में आया? आहाहा! इन्द्रिय से जानने का ज्ञान, वह ज्ञान कैसा? वे—सिद्ध तो अतीन्द्रिय ज्ञान से जानते हैं, ऐसे भगवान आत्मा भी अतीन्द्रिय ज्ञान से जानने की शक्तिवाला तत्त्व है। समझ में आया? आहाहा! विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक ०३-०९-१९७५
गाथा-४८-४९, कलश-७२, प्रवचन - २४

तीन बोल चले हैं। सिद्ध भगवान अशरीरी हैं, इसी प्रकार निश्चयनय के बल से आत्मा-संसारी जीव भी अशरीरी हैं। आहाहा! समझ में आया? सिद्ध भगवान लोकाग्र में जैसे सिद्ध में अशरीरी हैं, वैसे संसार में निश्चयनय के बल से अशरीरी आत्मा है, वर्तमान। निश्चय से व्यंजनपर्याय के त्याग-ग्रहण... वैसे आत्मा में भी निश्चय से संसारी को एक गति का त्याग और एक गति का ग्रहण, उसका उसे अभाव है। आहाहा! वस्तु जो भगवान आत्मा द्रव्य, उसे निश्चय के जोर से नरकगति का ग्रहण और मनुष्य का छोड़ना, वह उसमें ग्रहण-त्याग है नहीं। किसे? संसारी जीव को। स्वरूपचन्दभाई! आहाहा! दो (बोल हुए)।

तीसरा, **अतीन्द्रिय है...** है न? **परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,...** उसी प्रकार आत्मा भी संसार में भी निश्चय के बल से अर्थात् अतीन्द्रिय है। आहाहा! यह तो जिसे जाननेवाला है, उसकी बात कहनी है, हों! अतीन्द्रिय है, अतीन्द्रिय है, अशरीरी है, यह कोई धारणा करे उसकी बात नहीं यह। अन्दर में यह दृष्टि में जिसने लिया है और लेना है, उसे कहते हैं कि तू प्रभु! यहाँ अशरीरी है, अतीन्द्रिय है, अविनाशी है। तीन बोल आये।

अब चौथा। **'निर्मल' हैं... मलजनक क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण...** चार विभावस्वभाव, उनके अभाव के कारण सिद्ध परमेश्वर निर्मल हैं। सिद्ध परमेश्वर निर्मल हुए। इसी प्रकार चार विभाव के स्वभाव का संसारी जीव को भी

परमपारिणामिकस्वभाव की दृष्टि से वह निर्मल है, विभावभाव उसमें है ही नहीं। आहाहा! एक लिया है न आगे कि आत्मा है, वह आनन्द का मन्दिर है। त्रिकाल, हों! आहाहा! वह आनन्द का घर है। आता है न भाई पीछे? तो यह शरीर, यह यातना शरीर है। यह यातना अर्थात् पीड़ा और वेदना की मूर्ति शरीर है। भगवान आत्मा आनन्द का मन्दिर, आनन्द का मन्दिर। आहाहा! अभी, हों! आहाहा! ज्ञानमन्दिर, आनन्दमन्दिर, तब यह शरीर, पाठ है आगे, यातना शरीर—ऐसा पाठ है, यातना शरीर। यातना अर्थात् पीड़ा, वेदना की मूर्ति यह शरीर है। देखो न, यह रोग फटते हैं केन्सर को क्या कहते हैं, देखो न! किसी को यहाँ होता है और यहाँ होता है और यहाँ होता है। आहाहा! कांख में हुआ था भाई को। विमलचन्दजी पण्डित थे न अपने। विमलचन्दजी जानते थे तुम? मुम्बईवाले। जानपना वाँचन बहुत था। छोटी उम्र में उनके प्रमाण में उन्हें वाँचन बहुत था।

मुमुक्षु : यादशक्ति बहुत थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यादशक्ति बहुत थी, भले छोटी उम्र थी परन्तु। आहाहा! दो लड़के और स्त्री यहाँ रहते हैं न। उन्हें यहाँ कांख में कैंसर या कुछ क्षय हुआ या ऐसा हुआ। यहाँ से हुआ। आहाहा!

भगवान आत्मा जब आनन्द का मन्दिर जिसके घर में आनन्द ही है, जिसके घर में। आहाहा! जिसे घर में आनन्द है और शरीर के घर में वेदना है। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! ऐसा है। चाहे जैसा शरीर तुझे लागू अच्छा, परन्तु है वह रोग की मूर्ति। आहाहा! क्षय हो, यह कैंसर हो, देखो न! यह तुम्हारे हार्ट का और यह बहुत अभी चला है न। हार्टअटेक। हृदय का हमला। आहाहा! यह शरीर हृदय के हमले का घर ही है। आहाहा! भगवान अनाकुल आनन्द की मूर्ति प्रभु है। नय के बल से, निश्चयनय के बल से त्रिकाल आनन्दमूर्ति प्रभु है। ऐसा जिसे त्रिकाली देखने का ज्ञान हुआ है, उसके नय से तो उसे यह ज्ञानमन्दिर ही है। आहाहा!

मलजनक... भाषा देखो! चारों ही भावों को मलजनक कहा। अर्थात् कि उनका आश्रय करे तो मल उत्पन्न होता है। आहाहा! **मलजनक क्षायोपशमिकादि...** चारों ही।

विभावस्वभावों के अभाव के कारण (सिद्ध) 'निर्मल' हैं और द्रव्यकर्मों... ऐसा आत्मा यहाँ परमपारिणामिकस्वभाव का कारणपरमात्मा का स्वरूप वह चार विभाव से रहित अभी है। आहाहा! समझ में आया? **और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के अभाव के कारण 'विशुद्धात्मा' हैं;...** सिद्ध-सिद्ध। जिसे जड़कर्म नहीं और विकारी भावकर्म भी नहीं, इसलिए वह विशुद्धात्मा है। **उसी प्रकार संसार में भी...** आहाहा! **यह संसारी जीव...** हैं? संसार में भी विकारी अवस्था में रहे हुए संसारी जीव भी **किसी नय के बल से...** भाषा ऐसी। पाठ है न। '**केनचिन्नयबलेन**' यह '**केनचिन**' नय ही यह है। आहाहा! निश्चय वस्तु की स्थिति देखने पर उसके नय के बल से वह स्वयं संसारी जीव विकारी पर्याय में होने पर भी वस्तु तो उसकी ऐसी है। आहाहा! समझ में आया?

किसी नय के बल से... आहाहा! किसी नय का अर्थ यह। वास्तविक जो शुद्ध निश्चयनय भूतार्थनय है, द्रव्यार्थिकनय है, शुद्धनय है, इस अपेक्षा से तो यहाँ आत्मा भी उन सबसे रहित है। आहाहा! यह बात बैठनी चाहिए, हों! ऐसा कहते हैं। ज्ञान की पर्याय में संसार काल में भी व्यवहारनय का निषेध करके मानो व्यवहारनय है ही नहीं —(ऐसा जानकर वर्तमान में आत्मा ऐसा ही है, ऐसा जानना)। बाद में कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! शुद्ध है। आहाहा!

★ ★ ★

कलश - ७२

(अब ४८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-)

(शार्दूलविक्रीडित)

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
शुद्धं कारण-कार्य-तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं,
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्॥७२॥

(वीरछन्द)

मिथ्यादृष्टि को सदैव ये शुद्ध-अशुद्ध विकल्प रहें।
ज्ञानी को तो सदा कार्य अरु कारणत्व भी शुद्ध रहें॥
परमागम का अतुल अर्थ जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जाने।
सारासार विचारक धी से, उनको हम वन्दन करते॥७२॥

श्लोकार्थः—शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना * वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है; सम्यग्दृष्टि को तो सदा (ऐसी मान्यता होती है कि) कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है, उसे हम वन्दन करते हैं॥७२॥

कलश - ७२ पर प्रवचन

(अब ४८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-)

(शार्दूलविक्रीडित)

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
शुद्धं कारण-कार्य-तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं,
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्॥७२॥

ओहोहो! **श्लोकार्थः—शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... विपरीत कल्पना...** आहाहा! वस्तु तो द्रव्य से भी शुद्ध और पर्याय से भी शुद्ध, वह शुद्ध ही है दोनों। कारणभगवान और कार्यभगवान दोनों शुद्ध हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, पर्याय अशुद्ध की बात गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय अशुद्ध यहाँ नहीं। वह व्यवहारनय का विषय यह कहेंगे बाद में, आगे कहेंगे। प्रमाणज्ञान में व्यवहारनय का मलिनपना जिसे नहीं मानता, उसे तो शुद्ध द्रव्य का ज्ञान ही नहीं। भाई ने लिखा है न नीचे? वस्तुस्थिति ऐसी है। ऐसी

* विकल्पना=विपरीत कल्पना; मिथ्यामान्यता; अनिश्चय, शंका; भेद करना।

ही एक ही माने कि शुद्ध है... शुद्ध है... शुद्ध है... और पर्याय में विभाव है, दु:ख है, उसे न जाने तो उसने शुद्ध द्रव्य को भी नहीं जाना। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि वस्तु ऐसी होने पर भी उसका ज्ञान और दर्शन होने पर भी, उसकी अपूर्णता में उसे विभावभाव अर्थात् दु:खरूप दशा है। ऐसी दु:खरूप दशा का जहाँ स्वीकार नहीं, उसे शुद्ध द्रव्य का भी ज्ञान सच्चा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह कहेंगे।

शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना... विपरीत मान्यता। आहाहा! **वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है; सम्यग्दृष्टि को तो सदा...** भाषा देखो ऐसी। **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।** वस्तुस्वभाव अकेला ज्ञानरस और आनन्दरसस्वरूप है। चैतन्यद्रव्य का स्वभाव अकेला ज्ञायक और आनन्दरस तत्त्व है और कार्यसिद्धभगवान भी ऐसे ही हैं। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् लिखते हैं न 'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बरों की शिथिलता के कारण रस ठण्डा होता गया।' ऐसा लिखा है। यह भाषा है एक। यथार्थ सन्तों, मुनियों की वाणी का रहस्य क्या कहना चाहते हैं, वह समझ में आता है और श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण, शिथिलता अर्थात् विपरीतता है।

मुमुक्षु : मोळाश अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोळाश समझते हो? ढीलापन, शिथिलपन। अपने आता है न शिथिल। प्रवचनसार के अन्तिम भाग में। यह सब शब्द शास्त्र में है। शिथिलपने के कारण, नहीं? प्रवचनसार में पीछे आता है। 'ज्ञप्ति व्यक्तियों के निमित्तरूप होने से ज्ञेयभूत है, ऐसी बाह्य पदार्थ के प्रति उसे मैत्री। इसलिए आत्मविवेक शिथिल हुआ होने के कारण...' समझ में आया? शुरुआत है न? ... संस्कृत है।

मुमुक्षु : शिथिल का अभाव किया है, वह यह स्थानकवासी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह शिथिल कहो या विपरीतता कहो या अभाव (कहो), वह सब शिथिल है।

यहाँ कहते हैं। आहाहा! **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली...** क्या कहते हैं अब? इस प्रकार

से परम आगम में कहना है जो सार और जिसने परमागम के सारासार का वाँचन करके विचार निकाला है ऐसा, उस **परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली...** परमागम का अतुल अर्थ यह है। आहाहा! समझ में आया? **अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! **सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...** आहाहा! परमागम में यह कहना है, ऐसा कहते हैं। त्रिकाल द्रव्य शुद्ध है, कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा शुद्ध है। यह परमागम में कहने का यह रहस्य है। आहाहा! समझ में आया?

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चैतन्यमूर्ति अभी है संसार में भी। ऐसा जिसने परमागम के अतुल अर्थ का, तुलना बिना का, उपमा बिना का अर्थ निकाला जिसने। आहाहा! **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि...** आहाहा! **जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...** कि यह कारण शुद्ध है और कार्य भी शुद्ध है। आहाहा! कहो, विमलचन्दजी! यह विमल आया, कहते हैं। आहाहा! निर्मल है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसका नाम चाहे जब ले, वह तो निर्मल की ही बात होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल कहो या विमल कहो, सब एक ही है। समझ में आया? तत्त्व की रुचि है, रसिक है, है जवान परन्तु। आहाहा! यह वस्तु भी कहाँ नहीं रुचे ऐसी? आहाहा! उसकी इसे दरकार नहीं। यह वस्तु स्वयं परमात्मस्वरूप। आहाहा! उसे सम्यग्दृष्टि जीव स्वयं जानते हैं कि यह त्रिकाली द्रव्य शुद्ध है और कार्यपरमात्मा सिद्ध, वे भी शुद्ध हैं। आहाहा! अशुद्धता को गौण करके अकेला शुद्ध ही द्रव्य है, ऐसा सिद्ध किया है। यह ४९ में वापस इसे डालेंगे। समझ में आया?

उसे हम वन्दन करते हैं, कहते हैं। यह मुनिराज। आहाहा! जिसे अन्तर दृष्टि में कारणद्रव्य शुद्ध जिसने जाना और जिसे सिद्ध परमात्मा कार्यसमयसार शुद्ध है, ऐसा जाना, उसे वन्दन करते हैं कि आहाहा! समझ में आया? पर्याय में एक समय में पूरी चीज़ अन्दर आती नहीं, परन्तु जिसने पर्याय द्वारा पूरी चीज़ शुद्ध ध्रुव है, ऐसा जाना है। आहाहा! क्योंकि पर्यायदृष्टि में तो पर्याय ही लक्ष्य में आती है, परन्तु पर्याय में होने पर भी उस पर्याय ने शुद्ध कारण त्रिकाल है, ऐसा जिसने अन्दर में स्वीकार किया है... आहाहा! इन दोनों को शुद्ध जाना। उसने यथार्थ शुद्ध जाना, ऐसा। समझ में आया? ऐसे तो शुद्ध है, वह तो है परन्तु, किसे? किसे? किस नय के बल से? किसे? आहाहा! जिसने अन्तर

में राग से, पर्याय से भिन्न वस्तु शुद्ध त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा जिसने जाना है... आहाहा! सम्यक् प्रतीति में त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा जो भासित हुआ है... आहाहा! उसे त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा अनुभव में आया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और परमागम में यह कहना है। आहाहा! भगवान के श्रीमुख से निकली हुई वाणी को यह कहना है। आहाहा!

वह आया था न, नहीं क्या? दिव्यवाणी नहीं था? सौभाग्य। अन्यत्र कहीं है न वापस? मुखारविन्द से निकली हुई। ओहोहो! परमागम के अतुल अर्थ को... आहाहा! सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो। आहाहा! ३१०। **श्रीमद् अर्हत् के मुखारविन्द से निकले हुए समस्त पदार्थ जिसके अन्दर समाहित हैं, ऐसी चतुरशब्द-रचनारूप द्रव्यश्रुत को...** वह तो है। इससे कुछ दूसरा शब्द है। मस्तिष्क में आया था कहीं। दिव्यध्वनि की महिमा। कहते हैं, यहाँ तो एक तो ऐसा ज्ञान सम्यग्दृष्टि को होता है कि जिसे त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा दृष्टि में आया है, उसे कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा शुद्ध है, ऐसा उसे भासित हुआ है। आहाहा! एक बात। और परमागम में भी सारासार का भरा हुआ तत्त्व है, उसमें से जिसका अतुल अर्थ निकालना है जिसे। आहाहा! वह कहीं दूसरी जगह है।

मुमुक्षु : १०८ गाथा में।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वह है। यह खबर है, वह नहीं। यह तो अलग ही है। पीछे है कहीं। वह पुस्तक थी, उसमें लिखा है। वह पुस्तक यहाँ नहीं। नियमसार।

कहते हैं, **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** विपरीतता। यह शुद्ध है और यह अशुद्ध है, यह किसलिए? आहाहा! त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा जहाँ अन्दर भास हुआ, उसे शुद्ध-अशुद्ध के भेद की कल्पना का क्या काम है? आहाहा! समझ में आया? यह नियमसार की टीका अद्भुत टीका है! **परमागम के अतुल अर्थ को...** उपमारहित ऐसे भाव को **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...** यहाँ मुनि को लिया है, मुनि को लिया है, हों! **उसे हम वन्दन करते हैं।** मूल तो मुनि को प्रधान कथन है। आहाहा! वन्दन करते हैं, ऐसा कहा है न! ४९ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ४९

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्ध-सहावा सुद्ध-णया संसिदी जीवा॥४९॥

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये।
है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से॥४९॥

गाथार्थः—[एते] यह (पूर्वोक्त) [सर्वे भावाः] सब भाव [खलु] वास्तव में [व्यवहारनयं प्रतीत्य] व्यवहारनय का आश्रय करके [भणिताः] (संसारी जीवों में विद्यमान) कहे गये हैं; [शुद्धनयात्] शुद्धनय से [संसृतौ] संसार में रहनेवाले [सर्वे जीवाः] सर्व जीव, [सिद्धस्वभावाः] सिद्धस्वभावी हैं।

टीकाः—यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता* का प्रकाशन (कथन) है।

पहले जो विभावपर्यायें ''विद्यमान नहीं हैं'' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं, वे सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं। और जो (व्यवहारनय के कथन से) चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं। (अर्थात् जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं)।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की

---

* प्रमाणभूत ज्ञान में शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों का — दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। ''स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान हैं'' ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए ''व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है, ''उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से नहीं। व्यवहारनय के विषयों का आश्रय (आलम्बन, झुकाव, सन्मुखता, भावना) तो छोड़नेयोग्य है ही ऐसा समझने के लिए ५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा।
जिस जीव के अभिप्राय में शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण और पर्यायों के आश्रय का त्याग हो, उसी जीव को द्रव्य तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है ऐसा समझना, अन्य को नहीं।

आत्मख्याति नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहित-पदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परम-मर्थं चिच्चमत्कार-मात्रं,
परविरहित-मन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥

(वीरछन्द)

प्रथम भूमिका में ही जिनने अपना कदम बढ़ाया है।
अरे अरे रे ! उन जीवों को यह व्यवहार सहारा है॥
मात्र एक चित् चमत्कारमय पर से भिन्न परमपद को।
निज अन्तर में लखें जीव जो उन्हें न किञ्चित् यह नय हो॥

श्लोकार्थः—यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है— ऐसे जीवों को, अरे रे! हस्तावलम्बनरूप भले हो, तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित ऐसे परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं, उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है।

गाथा - ४९ पर प्रवचन

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्ध-सहावा सुद्ध-णया संसिदी जीवा॥४९॥

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये।
है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से॥४९॥

टीकाः—यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन (कथन) है। भाषा देखो! एक ही नय उपादेय है, वहाँ दूसरा नय बराबर जाननेयोग्य है, इस अपेक्षा से उपादेय कहा है। समझ में आया ? नीचे स्पष्टीकरण है, देखो, स्पष्टीकरण नीचे (फुटनोट में) स्पष्टीकरण **प्रमाणभूत ज्ञान में...** त्रिकाल शुद्ध है और पर्याय में विभाव है, ऐसा प्रमाणज्ञान में... आहाहा! **शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों का — दोनों का**

सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। आहाहा! **स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान हैं...** आहाहा! साधु हो या समकिती हो, जिसे त्रिकाल शुद्धद्रव्य है, ऐसा भान में आया, उसे भी व्यवहारनय से उसका विभावभाव पर्याय में है, उतनी दुःखरूप दशा है, ऐसा जिसे स्वीकार नहीं, उसे शुद्धद्रव्य का भी ज्ञान सच्चा नहीं। ऐई! चेतनजी! कहो, शुद्धद्रव्य का ज्ञान उसे... शास्त्र में ऐसा आता है न, शुद्ध द्रव्य का भान हुआ, पश्चात् उसे आस्रव, बन्ध नहीं। परन्तु वह तो निश्चय के स्वभाव की अपेक्षा से कथन है। परन्तु जब तक पूर्णता नहीं, उसकी पर्याय में विभावभाव व्यवहारनय का विषय है। आहाहा!

स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान हैं... समकिती को, मुनि को भी। व्यवहारनय के ज्ञान में भूल नहीं होनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। 'शुद्ध हूँ-शुद्ध हूँ' यह जिस अपेक्षा से है, वह निश्चयनय की अपेक्षा है। परन्तु वापस पर्याय रह जाती है अन्दर। विभावरूप पर्याय है, दुःखरूप दशा है। विभाव कहो या दुःख कहो। आहाहा! ऐसा जिसे ज्ञान नहीं। उसे शुद्धद्रव्य का ज्ञान सच्चा नहीं। है? देखो, **ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो, उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।** आहाहा! उपादेय शब्द प्रयोग किया है न कि यह जानने के लिये। जानना, बराबर जानना चाहिए। वस्तु से शुद्ध है, ऐसा भान हुआ, निर्मलता भी हुई, परन्तु अभी अन्दर विभावभाव रहा है, दुःखदशा रही है, ऐसा जिसे व्यवहार का ज्ञान नहीं, उसे निश्चय का ज्ञान भी खोटा होता है। आहाहा! समझ में आया?

वह पत्र आया था न सेठिया का अन्तिम? कि कुछ दुःख है ज्ञानी को, ऐसा कोई आगमप्रमाण है? ऐसा कहते हैं। वजुभाई! वह सेठिया नहीं? सरदारशहर। उनका पत्र आया था। उनके पुत्र की पुत्री का। लिखाया था स्वयं ने। अन्तिम पत्र आया था। आहाहा! ऐसा कि आगमबल से ऐसा कहा जाता है कि ज्ञानी को दोष होते हैं, वे घटते जाते हैं, ऐसा आगमप्रमाण है तो आगमप्रमाण ऐसा कोई है कि उसे दोष है? आहाहा! परन्तु घटते जाते हैं, इसका अर्थ क्या हुआ? है। बाकी रहते हैं। आहाहा! खबर नहीं, पूरी चीज़ को भूल गये।

भाई ने जब निहालभाई ने ऐसा कहा कि हमको तो शुभविकल्प उठता है, वह

दु:ख लगता है, दु:ख भठ्ठी लगता है। स्वरूपभाई! मिला है या नहीं तुमको वह द्रव्यदृष्टिप्रकाश? कहाँ से? है न तब भी। पहले वाँचा तो है न परन्तु घर में? तीसरा-तीसरा। ले! यह मिला नहीं? ऐई! चन्दुभाई! तीसरा भाग देना। बहुत अच्छा है। भाई को तो दिया है न ...भाई को तीसरा भाग। इन्हें देना तुरन्त, हों! बहुत सरस बात है उसमें। उसमें ऐसा लिखा है कि हमको राग होता है, विभाव दु:ख लगता है। यह बात सेठिया को नहीं बैठी। दु:ख जिसे अनुभव में आवे, वह तो तीव्र कषायवाला जीव है, ऐसा वे कहते हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि दु:ख का अनुभव जिसे न हो, उसे शुद्धद्रव्य का ही ज्ञान नहीं। ऐसा आया या नहीं? चेतनजी! आहाहा!

जिस **प्रमाणभूत ज्ञान में...** प्रमाण अर्थात् द्रव्य और पर्याय दो का। ऐसे ज्ञान में **शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों का — दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए।** अर्थात् कि अपने को किसी प्रकार से अभी विभावपर्यायें हैं। चारित्रदोष ऐसे विकारी पर्याय है, मुनि को भी है। आहाहा! गणधरों को भी छद्मस्थ अवस्था में विभावपर्याय दु:ख है। आहाहा! ऐसा कथन। समय-समय का, हों! नाड़ी पकड़ी है। कोई ऐसा ही मान ले कि बस, अपने द्रव्य से शुद्ध है न। शास्त्र में ऐसा कहा है। द्रव्य से शुद्ध हैं, फिर उसे पर्याय भी अत्यन्त शुद्ध ही होती है अकेली। तो वह पर्याय में दु:ख और विभाव है, उसकी विद्यमानता को वह स्वीकार नहीं करता। उसे स्वीकारता नहीं तो उसे शुद्धद्रव्य आनन्दस्वरूप है, उसका भी ज्ञान सच्चा नहीं; झूठा है। आहाहा! क्योंकि जिसे दु:ख की दशा पर्याय में विद्यमान वर्तमान है, विभाव कहो या दु:ख कहो, वह जिसे अन्दर ज्ञान में भासित नहीं होता, उसका ज्ञान तो द्रव्य का भी झूठा है, कहते हैं।

दूसरे प्रकार से कहें तो त्रिकाल शुद्धद्रव्य का जिसे भान हुआ, उसे पर्याय में दु:ख है, उसका ज्ञान साथ में होता ही है। प्रमाणज्ञान करने पर, उसे विभावभाव रहा है, दु:ख रहा है। समकिती को, मुनि को भी। आहाहा! अब भाषा तो समझ में आती है न? सहारनपुर। ठीक है, अब इन्हें प्रेम लगा है। बहिन तो मनोकान्ताबहिन है, उन्हें प्रेम है, रस है। आहाहा! अरे... भाई! ऐसा मार्ग कहाँ है? बापू!

मुमुक्षु : उनको बहुत रुचि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, रुचि रहती है न। यह तो और गुजराती भाषा इसलिए... वह तो गुजराती में... आहाहा! एक तो ननिहाल में विवाह और माँ परोसे। ऐसा आता है? झांझरीजी! क्या आता है वह?

मुमुक्षु : ननिहाल में विवाह और माँ परोसनेवाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। एक तो वीतराग की वाणी और उसमें सन्तों द्वारा परोसी जाती है। आहाहा! उसमें भरा है। आहाहा! यह बात समझ में आती है? ननिहाल में विवाह हो और एक तो उसकी माँ वहाँ प्रमुख हो? वह दूल्हा को-वर को जो पकवान दिये जायें... तुम्हारे हिन्दी में नहीं होगा? वह पंचोळा बैठे। वर बैठे उसके साथ बैठे। ऐसा है या नहीं? कुछ खबर नहीं। यह तो दूल्हे को जिमावे न, बारात में आये हों उसे, तो उसके साथ दो-चार दूसरे हों। एक थाली में बैठे। इकट्ठे बैठे। कहो, उसकी भी खबर नहीं सेठ को। वह पंचोळा कहलाता है हमारे काठियावाड़ में। एक वर जीमे, उसके साथ दूसरे चार हों। तो दूसरी बारात को जो दे, उसकी अपेक्षा इन्हें ऊँची चीज़ें दे। बर्फी, ऊँचे ऐसे क्या कहलाते हैं तुम्हारे? रसगुल्ला। वर का थाल बड़ा होता है। समझ में आया? उन्हें दे साथ में। ऐसे यहाँ माँ परोसनेवाली हो जहाँ सन्त त्रिलोक के नाथ की बात करे वहाँ... आहाहा! बापू! मार्ग यह है। आनन्द परोसते हैं तुझे, प्रभु! आहाहा!

ज्ञान, आनन्द मन्दिर प्रभु होने पर भी, जहाँ आगे पूर्ण दशा प्रगट नहीं हुई, उसे साथ में दुःख की दशा भी है। आहाहा! उस दशा को यदि भूल जाये कि नहीं ही हमारे दुःख और दुःख वेदे, वह अज्ञानी तीव्र कषाय है, उसे शुद्धद्रव्य का भी ज्ञान नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्या नाड़ी पकड़ी है न! अकेला शुद्ध है... शुद्ध है। यदि शुद्धता का तुझे ख्याल आया हो तो व्यवहारनय की दुःख दशा है, उसका ख्याल होता ही है। दो के प्रमाणज्ञान में। निश्चय का ज्ञान और व्यवहार का ज्ञान। वह व्यवहार का ज्ञान यदि न हो तो उसे निश्चय का ज्ञान भी सच्चा है नहीं। आहाहा!

इस अपेक्षा से उपादेय कहा है न, देखो! **ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो...** दुःखदशा है, भाई! मुनि को और समकिती को भी दुःखदशा है। विभावदशा या दुःख। इसके बाद ऐसा तो वह (सेठिया) कहते हैं कि दोष होता है, परन्तु दुःख नहीं।

ले, गजब बात करते हैं न! दोष कहो या दु:ख कहो। विभावभाव कहो या दु:ख कहो। जब तक पूर्ण आनन्द परमात्मदशा नहीं, वहाँ तक उसे आनन्द भी है और दु:ख भी है। आहाहा! ओहोहो! क्या सन्तों की वाणी! दिगम्बर मुनि केवलज्ञानी के अलमारी में जाकर खोलकर बातें करते हैं। भगवान को ऐसा कहना है। आहाहा! भाई! तू यह ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप सही, त्रिकाल शुद्धस्वरूप सही। ऐई! लड़के वहाँ खेलते हैं, (उन्हें) बाहर निकालो। किसका है यह? यहाँ खेलते हैं। समझ में आया? आहाहा!

उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए 'व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है'.... यह उपादेय की व्याख्या करते हैं। व्यवहारनय उपादेय है अर्थात् कि जानने के लिये ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! **ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है,...** ऐसे कथन की अपेक्षा से यहाँ व्यवहार को उपादेय कहा है। **'उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है' ऐसी विवक्षा से कहा नहीं।** आहाहा! **ऐसी विवक्षा से नहीं।** व्यवहारनय का विषय है, वह ग्रहण करनेयोग्य है या आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं, परन्तु उसे ज्ञान में बराबर जाननेयोग्य है, उसका नाम ग्रहण करनेयोग्य कहा गया है।

मुमुक्षु : फुटनोट सोनगढ़ ने लिखा.....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में नहीं? मोक्षमार्ग(प्रकाशक) में नहीं? कि व्यवहारनय को ग्रहण करने का कहा है न! ऐई! है या नहीं? ... जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है न? यह प्रश्न है। टोडरमलजी ने तो शास्त्र के भावों को स्पष्ट किया है। उन्होंने घर का कुछ कहा नहीं। समझ में आया? आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक तो उन्होंने सादी भाषा में, हिन्दी भाषा में (रचा है)। शिष्य का प्रश्न है कि यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है। व्यवहारनय का ग्रहण करना कहा है। उपादेय कहा है या नहीं?

'उत्तर—जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है। उसे तो 'सत्यार्थ ऐसा ही है'—ऐसा जानना। कहीं व्यवहारनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है, उसे 'परमार्थ से ऐसा नहीं परन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से'... निमित्तादि की अपेक्षा से

पर्याय में हीनदशा है, उसकी अपेक्षा से 'यह उपचार किया है, ऐसा जानना।' ऐसा जानना। इसका नाम ग्रहण किया कहलाता है। समझ में आया? आहाहा! अशुद्धता है, दु:ख है, वह व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य है, ग्रहण करने का अर्थ कि जानना। आहाहा! 'और इस प्रकार जानने का नाम दोनों नयों का ग्रहण है।' है? 'परन्तु दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर ऐसा भी है और ऐसा भी है, ऐसे भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नय ग्रहण करनेयोग्य कहे नहीं।'

व्यवहारनय को उपादेय कहा है, 'उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है' ऐसी विवक्षा से नहीं। ऐसा कहना नहीं चाहते। **व्यवहारनय के विषयों का आश्रय, देखो! (आलम्बन, झुकाव, सन्मुखता,...)** पहले आश्रय लेकर फिर उसे विशेष कहते हैं। **(भावना) तो छोड़नेयोग्य है ही....** परन्तु जाने उसे छोड़नेयोग्य या नहीं उसे छोड़ना क्या? **ऐसा समझने के लिए ५०वीं गाथा में...** आयेगा आगे। **व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा।** इसलिए यहाँ उपादेय कहा अर्थात् वह ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसा नहीं यहाँ, जाननेयोग्य है। आहाहा! है पुस्तक? शान्तिभाई! फिर घर-बर में वाँचते हो या नहीं वहाँ? ठीक। आहाहा! कहते हैं, **ऐसा समझाने के लिए...** आगे कहेंगे। **जिस जीव के अभिप्राय में शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण और पर्यायों के आश्रय का त्याग हो,...** जानने के लिये, तथापि उसका त्याग **उसी जीव को द्रव्य तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है—ऐसा समझना,...** समझ में आया? आहाहा!

यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का... उपादेय की व्याख्या की है यह। उपादेय अर्थात् कि नय को जाननेरूप ग्रहण करना। आहाहा! इतना प्रयोजन। व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान आता है न? इसका अर्थ हो गया यह कि व्यवहार है अशुद्ध। अशुद्ध है, शुद्धता पूरी नहीं। ऐसे सम्यग्दर्शन भूतार्थ के आश्रय से होने पर भी, दृष्टि वहाँ होने पर भी ज्ञान में कमी है, अशुद्धता है, ऐसे व्यवहारनय को जाना हुआ प्रयोजवान है। आहाहा! कितनी मेलवाली बात देखो तो सही! कड़ी-कड़ी में सत्य बैठ जाता है।

पहले जो विभावपर्यायें 'विद्यमान नहीं हैं' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं, वे सब

विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं। यह तो निश्चयनय से विद्यमान नहीं, ऐसा कहा था। समझ में आया? ऐसे स्वच्छन्दी हो जाये कि हमारे कहीं अशुद्धता है ही नहीं, दुःख है ही नहीं, वह तो स्वच्छन्दी है। फिर हम चाहे जो करें, ऐसा। क्या करे तू? आहाहा! देखो न, कितना स्पष्टीकरण करते हैं! **वे सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** विद्यमान नहीं जो कहा था, (वह व्यवहारनय के कथन से विद्यमान है)। (समयसार) ११वीं गाथा में ऐसा कहा था **'ववहारोऽभूदत्थो'** असत्यार्थ है, झूठा है। सत्यार्थदृष्टि की अपेक्षा से व्यवहारनय झूठा है। परन्तु झूठा है, वह जाननेयोग्य है या नहीं? और इस अपेक्षा से वहाँ ऐसा भी कहा है कि व्यवहारनय अविद्यमान है, असत्यार्थ है। ऐसा कहा है वहाँ। आहाहा! तब इसका अर्थ यह कि अभेद की दृष्टि में भेद दिखता नहीं, इसलिए उसे असत्यार्थ कहा, परन्तु पर्याय को जहाँ देखने जाये तो विकार है, दुःख है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा होता है कहीं? यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! अनन्त सन्तों ने, गणधरों ने जिस मार्ग को सेवन किया है और वही मार्ग सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

और जो (व्यवहारनय के कथन से) चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं,... देखो! **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** इस अपेक्षा से। व्यवहारनय के कथन से विद्यमान है, परन्तु **जो (व्यवहारनय के कथन से) चार विभावभावरूप परिणत होने से...** चार विभावभाव से परिणत होने से **संसार में भी विद्यमान हैं,...** वह विभाव परिणाम है, ऐसा ज्ञानी को— ऐसा कहते हैं। **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** दृष्टि में उसे शुद्धगुणपर्यायवाला है, ऐसा उसकी दृष्टि की अपेक्षा से है। समझ में आया? आहाहा! **(अर्थात् जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं,...** है उदयभाववाला, ऐसा कहते हैं। **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं)।** आहाहा! समझ में आया? ऐसा सब ज्ञान। कुछ करो... करो... व्रत करो, तप करो, अपवास करो। वह केशुभाई आये थे न? उन्होंने ऐसा कहा कि यह क्या कहा कुछ

समझ में नहीं आया। मानो अभी आयेगा मूर्ति और मूर्ति की पूजा, परन्तु वह तो बात आयी नहीं कहीं। अरेरे! यहाँ तो निश्चय का जहाँ जोर है दृष्टि में, उसे भी व्यवहार का अशुद्धता और विभाव जाननेयोग्य है। भगवान की पूजा, भक्ति, ऐसा भाव तो आवे, परन्तु वह विभाव है, अशुद्ध है। आहाहा! ऐसा उसे जानना चाहिए। आहाहा!

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा) कहा है कि — देखो!

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहित-पदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परम-मर्थं चिच्चमत्कार-मात्रं,
परविरहित-मन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥

आहाहा! यह आया। उसमें आता है न भाई! वह अब याद आया। मैंने कहा कुछ दो दिन पहले मस्तिष्क में आयी थी बात अब। आ गया। '**उभयनयविरोधध्वंसिनि**'। है न भाई! क्या कहा, देखो, '**जिनवचसि रमन्ते**'। 'हे आसन्न भव्य जीवों दिव्यध्वनि द्वारा कही है।' क्या? 'कि उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु।' आहाहा! मस्तिष्क में आयी थी कहा एक बात दो दिन पहले। वह वापस मस्तिष्क में से चली गयी। यह नय आये न इसके। वह आयी थी कि जिनवचन... आहाहा! 'उपादेयरूप शुद्ध जीववस्तु...' यह पाठ ऐसा है न कि '**जिनवचसि रमन्ते**'। तो '**जिनवचसि रमन्ते**' तो जिनवचन में रमना है? परन्तु जिनवचन में भाव जो त्रिकाल है, वह शुद्ध उपादेय है। जीव वह शुद्ध है, वह उपादेय है, ऐसा जिनवचन में है। ऐसे शुद्ध में रमना, ऐसा कहा है। आहाहा! वह जिनवचन में रमा कहा जाता है। आहाहा! देखो, चारों ओर से बात। वह कहा न, शुद्धनय ही आदरणीय है। और वीतराग का वचन शुद्धवचन उसे कहते हैं। ऐसा आया था न? शुद्धवचन बुधजीवों को वह कहते हैं। तो वह यह कि जिनवचन में रमना अर्थात् जिनवचन ने जीव को शुद्ध कहा है। आहाहा! वह शुद्ध जीववस्तु, उसमें सावधानरूप से रुचि, श्रद्धा, प्रतीति करे, वह रमा कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? कलश टीका में कितनी... आहाहा! दो-तीन दिन से मस्तिष्क में एक आया था कि भगवान की

वाणी यह कहती है। वह बुधपुरुष आया था न? शुद्धवचन आया था न? उसमें याद आया था यह।

भगवान का शुद्धवचन यह है। आहाहा! और समझनेवाले बुधपुरुष को यह कहते हैं। आहाहा! भुवनविदित है, जगतप्रसिद्ध है। हे भव्य! उसे सदा जान। आहाहा! देखो न! यह निश्चय का विषय जो ज्ञान में आया, वह सदा ऐसा का ऐसा रखना। आहाहा! व्यवहार की पर्याय हो, लक्ष्य जाये, परन्तु यह उपादेय है यह, वह सदा लक्ष्य रखना। आहाहा! समझ में आया?

अहो! जिनेन्द्र के दरबार में... आहाहा! वह सभा भरती होगी। बाघ और सिंह और नाग, राजा और इन्द्र, आहाहा! और वह वीतराग की दिव्यध्वनि, आहाहा! उसके भाव का क्या कहना! राजा बड़े इन्द्र, महाविदेह में है न अभी भगवान, ऐसे हाथ जोड़कर अर्धलोक के स्वामी शकेन्द्र और ईशानेन्द्र (वाणी सुनते हैं)। आहाहा! सिंह, बाघ और नाग, जंगल में से सिंह चले आते हैं सुनने के लिये। बड़े नाग फूँफकार मारे नहीं। चले आवे जंगल में से काले नाग। आहाहा! २५-२५, ५० हाथ के लम्बे, दो-चार हाथ के चौड़े। सभा में आते हैं और बैठ जाते हैं। साथ चूहा हो, सिंह बैठा हो, उसके साथ हिरण हो। सब तल्लीनता सुनने में है। आहाहा! वैर-विरोध जिन्हें उल्लसित नहीं होता। आहाहा! ऐसी तो सभा में बैठे हुए की योग्यता होती है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! चक्रवर्ती राजा हो, एक ओर चूहा बैठा हो तिर्यंच, तिर्यंच के उसमें और मनुष्य सभा में चक्रवर्ती बैठा हो। आहाहा! देव की सभा में इन्द्र बैठे हों। सब एक चित्त से भगवान की दिव्यध्वनि क्या (कहती) है, उसे सुनते हैं, वह मौजूद है। वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में वह मौजूद है। आहाहा! समझ में आया? यह कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये और आठ दिन रहे। उस सभा में गये भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! वहाँ से आकर यह रचना है सब। उसमें और यह नियमसार तो कहते हैं (कि) निजभावना, मेरी भावना के लिये मैंने तो बनाया है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक ०४-०९-१९७५
गाथा-४९-५०, कलश-७३, प्रवचन - २५

टीका। **पहले जो विभावपर्यायें 'विद्यमान नहीं हैं' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं,....** कि आत्मा में कब वह पर्याय नहीं? ... क्षयोपशम भी नहीं ... **वे सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** उसकी पर्याय में किसी को क्षयोपशमभाव है, क्षायिक है, उपशम है और उदय है रागादि विभाव, सब विभाव है। वह विभावपर्याय उसकी अवस्था में नहीं, ऐसा जो जाने, उसे वास्तव में त्रिकाली निश्चयस्वरूप का ही ज्ञान नहीं।

मुमुक्षु : ध्रुव का आश्रय.... पर्याय ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय तो निमित्त का कथन है। उसे गुरु ने क्या कहा था अभेद करने का, इसके लिये वहाँ निमित्त से कथन है। यहाँ कहते हैं कि वह अत्यन्त आत्मा में क्षायिक नहीं, उपशम नहीं, क्षयोपशम नहीं, उदय नहीं—ऐसा जो कहा था, वह तो वस्तु की त्रिकाल स्वभाव की अपेक्षा से कहा था, परन्तु वह भाव पर्याय में विद्यमान है। जिसे जिसे ... प्रमाण राग, क्षयोपशम, वह पर्याय उसमें है, ऐसा इसे जानना चाहिए। दूसरा जानने में व्यवहारनय का स्वरूप जिसका विषय है, वह यदि जानने में न रहे और नहीं, ऐसा कहे तो उसने वास्तव में त्रिकाली द्रव्य को (ही जाना नहीं)। आहाहा! ऐसा है। एक ओर निषेध किया और यहाँ फिर स्थापित किया। समझ में आया?

वे सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं। और जो (व्यवहारनय के कथन से) चार विभावभावरूप परिणत होने से... चार विभावभाव। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, वे **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** तब शुद्धनय से यदि देखें तो वे संसारी प्राणी भी सिद्ध समान हैं।

मुमुक्षु : पर्याय में भी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय अर्थात् अन्दर शक्ति। पर्याय प्रगट कहाँ है ? परन्तु वह पर्याय है ऐसा। समझ में आया ? आहाहा ! निश्चय और व्यवहार। जहाँ जैसा है, वैसा न जाने, गड़बड़ उठे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग। वह दूसरी बात। पर्याय में, यह तो पर्याय है न। कार्य शुद्ध हो गया केवली को। कारणशुद्ध त्रिकाल द्रव्य को, परन्तु यह पर्याय में विकार और भाव भिन्न है या नहीं ? क्षयोपशम है, समकित और क्षायिक पर्याय है। सुनो ! सूक्ष्म तुम्हारे पकड़ने में देरी लगे ऐसा है। यह तो सूक्ष्म बातें, बापू !

कहते हैं कि वस्तु कारण द्रव्यस्वभाव में वह (विकार) कुछ नहीं तथा कार्य जो है पूर्ण वह सब शुद्ध है, ऐसा कहा। परन्तु अब वापस व्यवहारनय से ? उसकी पर्याय में जितना जो भाव उपशम, क्षयोपशम, उदय जैसा हो, वैसा विद्यमान है, ऐसा उसे जानना चाहिए। पर्याय की बात है न ! कारणपरमात्मा त्रिकाल और कार्य तो शुद्ध है, वह तो पूर्ण की अपेक्षा से। समझ में आया ? परन्तु पर्याय में वे भाव हैं। जिन-जिन जीवों की योग्यता प्रमाण, उनका यदि ज्ञान विद्यमान नहीं माने, उसे शुद्धात्मद्रव्य का उसके सच्चा ज्ञान नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

दूसरी बात। **चार विभावभावरूप परिणत होने से...** शुद्धनय के कथन से वे सब सिद्ध भगवान समान हैं। शुद्धगुणपर्याय अर्थात् वह, हों ! गुण की पर्याय उसे शक्ति है, प्रगट कहाँ है ? सिद्ध को प्रगट है। उसरूप से वह शुद्ध है। उसमें आया न समयसार नाटक में ? 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' तो सिद्ध समान वहाँ पर्याय की अपेक्षा से है वहाँ ? जीवद्रव्य की अपेक्षा से है। अर्थ किया है वहाँ। जीवद्रव्य की अपेक्षा से सिद्ध समान हैं। उनकी पर्याय प्रगट है सिद्ध को और यहाँ शुद्धनय में प्रगट पर्याय है, उसे, ऐसा नहीं। गजब यह। **(अर्थात् जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं,...** अर्थात् पर्याय में विभावभाव है। **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं)। इसी प्रकार....** क्या कहा ?

मुमुक्षु : .... एकमेक है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में एकमेक है, द्रव्य में एकमेक नहीं। राग उपशम, क्षयोपशम आदि पर्याय में एकमेक है। आहाहा! ऐसी बात! अनेकान्त मार्ग वीतराग का। एकदम इनकार करे कि आत्मा में क्षायिकभाव नहीं, उपशम नहीं, क्षयोपशम नहीं, उदय नहीं, जाओ। यहाँ वापस लिया, भाई! वह तो कहा था त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से, परन्तु ऐसे द्रव्य का जिसे ज्ञान हो, उसे पर्याय में ऐसे भाव पर्यायवाले अशुद्ध, क्षयोपशम इत्यादि है, ऐसा यदि उसे ज्ञान न हो तो वह त्रिकाली द्रव्य का ज्ञान खोटा है। समझ में आया ?

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा) कहा है कि — देखो!

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहित-पदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परम-मर्थं चिच्चमत्कार-मात्रं,
परविरहित-मन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥

श्लोकार्थः—यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है— ऐसे जीवों को, अरे रे! हस्तावलम्बनरूप भले हो,... पर्याय में भेद आदि, रागादि हो। **तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र,...** निर्विकल्प अनुभव में स्थित हैं अभेद में। आहाहा! **चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित ऐसे परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं (अनुभवते हैं),...** निर्विकल्पसमाधि में जिसे अभेद अनुभव है। आहाहा! **उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है।** समझ में आया ? यह तो समयसार का (श्लोक)है।

★ ★ ★

कलश - ७३

और (इस ४९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) —

(स्वागता)

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ सन्सृतावपि च नास्ति विशेषः।
एवमेव खलु तत्त्व-विचारे शुद्ध-तत्त्व-रसिकाः प्रवदन्ति॥७३॥

(वीरछन्द)

शुद्धतत्त्व के रसिक, तत्त्व का चिन्तवन करके यही कहें।
मुक्त और संसार दशा में अन्तर नहीं शुद्धनय से॥७३॥

श्लोकार्थः—''शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;'' ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर (परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर), शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।॥७३॥

कलश - ७३ पर प्रवचन

और (इस ४९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) —

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ सन्सृतावपि च नास्ति विशेषः।
एवमेव खलु तत्त्व-विचारे शुद्ध-तत्त्व-रसिकाः प्रवदन्ति॥७३॥

श्लोकार्थः—'शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;'... यह द्रव्यदृष्टि से, द्रव्यार्थिकनय से, शुद्धनय से। समझ में आया? आहाहा! उस प्रवचनसार में तो यह आया नहीं १८९ गाथा में? विकार शुद्धनय जीव में है। वह क्या अपेक्षा? उसे वह शुद्धनय से अर्थात् स्व में है, ऐसा। पर्याय में स्व में है। विकार पर्याय में स्व में है, उसे स्व की अपेक्षा से शुद्धनय कहा और उस अशुद्धता में निमित्त कर्म का है। इसलिए अशुद्धनय से कर्म से, ऐसा कहा। अब यहाँ उससे दूसरा प्रकार है। यहाँ तो शुद्धनय से त्रिकाली, संसारी या मुक्ति एकरूप त्रिकाल शुद्ध है। समझ में आया? और पर्याय में जो

विकार के क्षयोपशमभाव आदि हैं, वह व्यवहारनय का विषय है, परन्तु त्रिकाल में जहाँ अनुभव में ऐसा आया, तब उसे व्यवहार का विषय उड़ जाता है। आहाहा! वहाँ ऐसा कहा था कि भाई! विकार है, वह शुद्धनय से ही तुझमें है। शुद्धनय से अर्थात्? तुझमें तेरे कारण से स्व-आश्रय से विकार है। आहाहा! अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : अलग-अलग समय में अलग-अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलग-अलग ऐसा नहीं। वह क्या अपेक्षा है। यह हमारे फावाभाई कहते थे। यह सवेरे कुछ धारते हैं, तब दूसरी और दूसरी बात आवे दोपहर में। बुद्धि स्थूल।

यहाँ वहाँ जो प्रवचनसार के जिस भाग में कहा है, वह आत्मा की पर्याय में शुद्धनय अर्थात् जिसमें पर की अपेक्षा नहीं। ऐसा विकार स्वयं से अपने में है, ऐसा इसे निर्णय करना पड़ेगा। आहाहा! वहाँ शुद्धनय अर्थात् त्रिकाली द्रव्य, वह नहीं। वहाँ आगे पर्याय में अशुद्धता है, वह अपने में है, स्व-आश्रित है तो निश्चय है इसलिए शुद्धनय से है। आहाहा! और अशुद्धनय से कर्म के निमित्त से है, निमित्तपना उसे अशुद्धनय कहा। निमित्त जहाँ शुद्धनय से विकार कहा था, उसे यहाँ व्यवहारनय का विकल्प व्यवहारनय के विषय में जाता है। आहाहा! समझ में आया? हल्दी की गाँठ से पंसारी नहीं हुआ जाता, ऐसा कहते हैं। एकाध बात पकड़े और हो जाये वहाँ। कहो, समझ में आया? सेठ! तुम्हारे बात तो होगी वहाँ कुछ। हल्दी की गाँठ से पंसारी नहीं हुआ जाता। तुम्हारे क्या भाषा है, ऐई?

मुमुक्षु : सोंठ की गाँठ से पंसारी नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। भाषा तो सब, कहावतें तो सब एक ही होती है न। चूल्हे में राख ही होती है न सर्वत्र। कहावत दूसरी भाषा में हो। यहाँ ऐसा कहते हैं हमारे। गाँधी हुआ। एक हल्दी की-सोंठ की गाँठ रखकर पंसारी हो गया, ऐसा नहीं हुआ जाता। ऐसा एक नय से एक न्याय जहाँ जाना, उसमें सब जाना, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! वहाँ आगे तो पर्याय में वर्तमान में पर की अपेक्षा बिना अपने स्वतः पर्याय में विकार जितना है, उतना शुद्धनय से है। शुद्धनय अर्थात् स्व-आश्रय है,

जिसमें पर की अपेक्षा नहीं। आहाहा! शुद्धनय से विकार है, ऐसा कहा। उसमें कहीं एक पकड़े तो। वह पर की अपेक्षा नहीं, इसलिए स्व-आश्रय का उसे शुद्ध कहा। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, वह अभी यहाँ बात नहीं।

यहाँ तो एकदम त्रिकाल जो शुद्ध है, उसमें वह व्यवहार की पर्याय जो वर्तमान उदय या क्षायिक, वह है नहीं, परन्तु व्यवहारनय से है, यदि ऐसा न जाने... समझ में आया? पर्याय में जितनी दशा जैसी है, उस दशा को ऐसा न जाने, तब तो उसे द्रव्य का सच्चा ज्ञान है नहीं। आहाहा! भाई! यह वीतरागमार्ग बहुत गम्भीर। सर्वज्ञ का अनेकान्तमार्ग बहुत गम्भीर और गहरा है। अगाध गम्भीर वस्तु। जिसे वहाँ शुद्धनय कहते हैं, उसे यहाँ व्यवहारनय कहते हैं। जिसे वहाँ अशुद्धनय कहते हैं, उसकी तो यहाँ बात ली ही नहीं जाती। वहाँ विकार होता है, उसमें कर्म निमित्त है न? अर्थात् निमित्त है, इसलिए उसे अशुद्धनय कहा। स्व की अपेक्षा बिना दूसरी अपेक्षा रह गयी, इसलिए अशुद्ध कहा। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ त्रिकाल जो है वस्तु ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान, उसमें वह अशुद्धता अर्थात् वे भेद नहीं। उसे जब शुद्ध कहा, तब चार भेद को अशुद्ध कहा इस अपेक्षा से। परन्तु जो अकेली अशुद्धता द्रव्य में नहीं, इसलिए पर्याय में भी नहीं। आहाहा! गजब बातें, भाई! पर्याय का यथार्थ ज्ञान जो क्षयोपशम खण्ड आदि ज्ञान, वह खण्ड आदि, रागादि, वह नहीं ही, ऐसा तूने जाना तो तुझे अभी द्रव्य का ज्ञान भी सच्चा नहीं। क्योंकि प्रमाणज्ञान अर्थात् त्रिकाली द्रव्य की शुद्धता के ज्ञान के साथ वह तो निश्चय हुआ, परन्तु उसके साथ रागादि या क्षयोपशम आदि की दशा है, ऐसा यदि व्यवहारज्ञान उसमें मिलाया न जाये तो वह प्रमाणज्ञान नहीं होगा। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, दरबार! यह ऊपर का थोड़ा बहुत सुने और हो जाये। ऐसा नहीं यह तो बहुत सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा!

यह तो सर्वज्ञ अर्थात् क्या, भाई! आहाहा! भगवान आत्मा का ही स्वभाव सर्वज्ञ है। स्वभाव, हों! ज्ञ स्वभाव कहो, ज्ञायकभाव कहो, सर्वज्ञस्वभाव कहो, ऐसा जो सर्वज्ञस्वभाव है, वह तो निश्चय हुआ त्रिकाल। अब पर्याय में सर्वज्ञपना प्रगटे या अपूर्णता की ज्ञान की पर्याय प्रगटे, वह सब व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया?

आहाहा! इसलिए यहाँ कहा। ओहोहो! मुनिराज श्लोक कहते हैं न!

'शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;'... भाई! यह तो विशाल बुद्धि चाहिए। संकुचित बुद्धि से यह तत्त्व नहीं पकड़ में आता। वहाँ अंश-अंश का पकड़ना है, वह स्वयं से है, पर से नहीं। अंश-अंश की मजबूताई या निर्मलता जो प्रगटी, वह स्वयं से है, अपने में है, ऐसा जिसे पर्याय का ज्ञान नहीं, उसे द्रव्य का ज्ञान सच्चा है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह वही विवाद उठा है न यह सरदारशहर का। इन सेठ के मित्र का उसमें साथ में था राजमल। राजमल की दृष्टि अत्यन्त विरोध। अत्यन्त दृष्टि विरोध। सेठ को बेचारे को उसने यह बात सुनी हुई नहीं। सुनी हो तो किसी समय आये हों तो यह पकड़ में न आया हो और उसमें वह निहालभाई का जहाँ आया। आहाहा! निहालभाई का पुकार आया कि शुभभाव भी हमको तो भठ्ठी लगता है। आहाहा! एक बार पत्र आया था भाई रामजीभाई को वहाँ से। सरदारशहर से, कि तुम्हारे सोनगढ़ के जाननेवालों को यह बात समझने जैसी है, तुमको समझनी पड़ेगी। यह बात नहीं थी तुम्हारे में, ऐसा कहते हैं। ऐसा पत्र आया था। निहालभाई ने जो कहा, वह बात तुम्हारी नयी जानने की है उस द्वारा। ऐसा पत्र आया था। बहुत पत्र आये थे।

मुमुक्षु : निमित्त को जानने जैसा है क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने जैसा सब है। सब जानने जैसा सम्यग्दर्शन में। त्रिकाल जानने जैसा है, पर्याय जानने जैसी है, विकार है वह जानने जैसा है। वह तो ऐसा कहते हैं। जब वह अधिकार आवे न! सम्यग्दर्शन का विषय जो है शुद्ध निर्मल और दृष्टि निर्विकल्प अभेद अर्थात् अभेद की अपेक्षा से जो स्वभाव है, उसमें तो विकार होने की योग्यतावाला कोई गुण नहीं और उसमें शुद्धद्रव्य में निश्चय में तो पर्याय आती नहीं। समझ में आया? इसलिए वहाँ ऐसा आवे कि पर्याय में उस समकिती को भी शुद्ध का ही परिणमन है। ऐसा आवे वहाँ। उसे वह दृष्टि को शुद्ध विषयवस्तु इस अपेक्षा से कहा है। सम्यग्दृष्टि को आस्रव-बन्ध नहीं, ऐसा आता है। क्योंकि आस्रव विकार और बन्ध विकार भावबन्ध ऐसा कोई गुण नहीं, ऐसी कोई शक्ति नहीं। इसलिए शक्ति को ही गुण और शक्तिवान को दृष्टि में लेनेवाला, उसे तो शुद्धरूप ही परिणमन है पर्याय में भी, ऐसा

कहा है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसे अकेला मान बैठे कि उसे शुद्ध ही परिणमन है और अशुद्ध नहीं। मूढ़ है!

पर्यायनय से देखें तो सम्यग्दृष्टि को, मुनि को भी अशुद्धता और उस जाति का भाव होता है वहाँ। समझ में आया? नहीं कहा भाई ने? अमृतचन्द्राचार्य ने। अरे! हम द्रव्यदृष्टि से तो शुद्ध हैं, परन्तु पर्याय में मोह के निमित्त के अनुभाग के अवसर में हमारी दृष्टि जाती है, इसलिए कल्माषिता। हमको कलुषितता भाव हमारे में भासित होता है। मुनि आचार्य जिनकी टीका करनेवाले गणधर जैसी टीका है। आहाहा! वे अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं कि हमारी पर्याय में कल्माषित—मैली है। आहाहा!

श्रीमद् में भी यह आ गया है न, 'गुरु रहे छद्मस्थ पण विनय करे...' यह श्वेताम्बर की झलक है। यह खोटी झलक है। पूरा सिद्धान्त विरुद्ध हो जाता है इसमें। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ उन्हें कहाँ गुण कम था कि विशेष गुण का विनय करे? वह विनय और विनय करनेयोग्य और विनय करनेवाले, यह दो का भेद छठवें गुणस्थान तक होता है। विकल्प है, वहाँ तक होता है। वह केवली का विनय करे, अपने गुरु का विनय करे। उस विनय को भी प्रवचनसार में उपकरण कहा है। उपकरण कहा है। विकल्प है न उस जाति का? आहाहा!

यह केवली उसे विनय करे गुरु का यह भक्ति? आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो भाई! मार्ग ऐसा है। किसी का पक्ष करके उल्टी बात सिद्ध करना, वह इसमें नहीं चलता। समझ में आया? वह तो कहा नहीं था? समाधितन्त्र में कि जिसके आगम में लिंग का आग्रह है, यह बात झूठी है। अर्थात् कि लिंग जो नग्नमुनिपना है और अट्ठाईस मूलगुण जो हैं, उनसे मुक्ति माने, वह निषेधने योग्य है, परन्तु लिंग तो अट्ठाईस मूलगुण और नग्नदशा ही जिसे आत्मा के आनन्द का नाथ जगा है और अमृत की जहाँ बाढ़ आयी है अन्दर। आहाहा! मुनि को तो अमृत की भरती समझते हो? बाढ़। बाढ़ आती है न बाढ़? छठवें गुणस्थान में मुनि को तो अमृत की बाढ़ आयी है। आहाहा! उन्हें विकल्प होता है। वह सर्वज्ञ का अपने गुरु का विनय करते हैं, वह विकल्प है तब तक। सातवें में चला गया, सब समाप्त हो गया। यह ध्यान में ... हैं, वहाँ विनय करनेयोग्य

केवली का विनय करना, (ऐसा) विकल्प कहाँ है? वह द्रव्यसंग्रह में आता है। परन्तु वह ... रह गया, वह रह गया। फिर यह पीछे से निकला नहीं। इसलिए उनके माननेवाले लोग वहाँ पकड़ा गये हैं। एक भी वह वाडा हो गया फिर। वस्तु का स्वरूप वह है, ऐसा नहीं और व्यक्तिगत पूजा और दूसरे पूजनेयोग्य नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! इस मार्ग को समझना, वह साधारण बात नहीं। आहाहा!

कहते हैं, आहाहा! '**शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;**'... परन्तु शुद्धनय से अन्तर नहीं, परन्तु पर्यायनय से देखे तो? पर्यायनय से देखे संसार की पर्याय और सिद्ध की पर्याय में बड़ा अन्तर। समझ में आया? आहाहा! उसमें एक देवचन्दजी को? वह लल्लूजी और देवचन्दजी थे। फिर देवचन्दजी को ऐसा हो गया कि आत्मा परमात्मा समान है, अब उसे क्या कुछ करना। ऐसा लिखा है ... बतलाया। तब उसे कहा कि यदि अकेला परमात्मस्वभाव है, वह हो तब। नहीं हुआ, वहाँ तक परमात्मा शक्तिरूप से है, उसे व्यक्तिरूप से माने, (वह भूल है)। (श्रीमद् ने) लिखा था। समझ में आया? उन्हें ऐसा हो गया था। स्थानकवासी के साधु थे देवचन्दजी थे। लल्लूजी और वे सब। वे लल्लूजी बेचारे साधारण बुद्धिवाले। एक देवचन्दजी बुद्धिवाला था। इसलिए आत्मा परमात्मा समान है, परमात्मा समान है। ऐसा बहुत जब कहने लगा उसे। ऐसा (श्रीमद्) को जानने में आया तो (कहा कि) भाई! परमात्मस्वरूप है, वह तो द्रव्यस्वरूप से परमात्मस्वरूप है। तू ऐसा ही मान ले कि पर्याय में भी परमात्मस्वरूप है वह। एकान्त मिथ्यात्व होगा। आहाहा! अरे! किसे पड़ी इतनी यह? सत्य में कहाँ भूल होती है और भूल किस प्रकार की रही है? उसका जिसे ज्ञान ही नहीं, वह सब ज्ञान खोटे हैं। आहाहा!

ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर... तत्त्व विचारने पर। **(परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर), शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** 'त्रिकाल की अपेक्षा से मुक्ति और संसार में अन्तर नहीं' ऐसा तत्त्वरसिकजन कहते हैं, परन्तु पर्याय की अपेक्षा से अन्तर है, वह भी तत्त्वरसिकजन कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें अब। किसे खबर यह। करो न धर्म! ध्यान करो ध्यान। परन्तु क्या

ध्यान करे? अभी सत्य वस्तु कौनसी और उसमें असत्य तो उसकी दशा आदि कौन सी? इन दो का ज्ञान यथार्थ न हो तो किसका ध्यान करना? समझ में आया? यह समयसार में लिया है कि जिसे ज्ञान में अशुद्धता है और पर्याय है, ऐसा ज्ञान हुआ नहीं, वह द्रव्य का स्वभाव नहीं कह सकता। उसके ज्ञान में बराबर बात पहले आनी चाहिए कि पर्याय है, राग है, ऐसा ज्ञान ने जाना है, वह फिर उसमें से हटकर अन्दर में जाता है। समझ में आया? पर्याय में अपूर्णता और राग ही नहीं, ऐसा यदि उसका ज्ञान हो तो सब खोटा है। इतनी सब बातें! ऐसा जैनधर्म। ऐसा दिगम्बर धर्म कहो या जैनधर्म कहो। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्तु का स्वरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु का स्वयं ऐसा है। दिगम्बर अर्थात् ऐसा नहीं कि यह वाड़ा है और पक्ष है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! इस बात की इतनी निर्मलता और स्पष्टता अन्यत्र कहीं नहीं है। समझ में आया? कहते हैं, **(परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार...** करते हों परमार्थ से। **अथवा निरूपण करने पर), शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** आहाहा! यह ४९ (गाथा) हुई। अब, ५० बहुत ऊँची गाथा आयी। ५०। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ५०

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा॥५०॥

(हरिगीत)

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

गाथार्थः—[पूर्वोक्तसकलभावाः] पूर्वोक्त सर्व भाव [परस्वभावाः] परस्वभाव हैं, [परद्रव्यम्] परद्रव्य हैं, [इति] इसलिए [हेयाः] हेय हैं, [अन्तस्तत्त्वं] अन्तःतत्त्व [स्वकद्रव्यम्] ऐसा स्वद्रव्य—[आत्मा]आत्मा—[उपादेयम्] उपादेय [भवेत्] है।

टीकाः—यह, हेय-उपादेय अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।

जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं, वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं। किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं। सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। वास्तव में सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र-सहजपरमवीतरागसुखात्मक शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण (सहज परम पारिणामिक भाव जिसका लक्षण है — ऐसा) कारणसमयसार है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १८५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽय-मुदात्त-चित्त-चरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि॥

(वीरछन्द)

हे उदात्तचित् चरित् मुमुक्षु ! यह सिद्धान्त करो सेवन।
शुद्ध एक चैतन्यमात्र घन हूँ सदैव मैं ज्योति परम॥
यह जो मुझसे सदा विलक्षण विविध विभाव प्रगट होते।
इन स्वरूप मैं नहीं कभी भी मेरे लिए सभी पर ये॥

श्लोकार्थ :— जिनके चित्त का चरित्र उदात्त (उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं — ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, वह मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं।

गाथा - ५० पर प्रवचन

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा॥५०॥

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

है न? तब हेय कहते हैं न?

टीका: —यह, हेय-उपादेय अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है। त्याग-ग्रहण अर्थात्? कि विकार का त्याग और स्वरूप का ग्रहण यह। वह परद्रव्य का त्याग-ग्रहण, वह तो वस्तु में है ही नहीं। वह तो व्यवहारनय का विषय जो हेय है, वह त्याग और त्रिकाल विषय जो पूर्ण है, वह उपादेय, वह ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? त्याग-ग्रहण के दो प्रकार—परद्रव्य का त्याग और परद्रव्य का ग्रहण, वह तो वस्तु में है ही नहीं। परन्तु यहाँ द्रव्य त्रिकाली, वह उपादेय—ग्रहण करनेयोग्य है और पर्याय है, वह हेय करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सब बातें अब। साधारण बेचारे सामायिक करे और प्रौषध करे। यह पोपटभाई बहुत करते थे वहाँ। हिम्मत के साथ करते थे। इकट्ठे होंगे तब कहा न। वह तो भी सब। हम भी थे न। हम

पालेज में बहुत करते थे। और मैं स्वयं प्रतिक्रमण कराता था। पर्यूषण के चार अपवास कायम चतुर्विध आहारत्याग, हों! तब, हों! २० वर्ष की उम्र में। ६५ वर्ष पहले की बात है। चार अपवास बराबर। एक अपवास, पारणा, एक अपवास, पारणा। फिर दो दिन बीच में खाना पड़े। आठ दिन सही न? अन्तिम अपवास और पारणा। प्रतिक्रमण करें सब इकट्ठे होकर। दूसरे को नहीं आता था, मुझे आता था, इसलिए मैं प्रतिक्रमण कराता था। वह सब माने कि हमने कुछ प्रतिक्रमण किया और धर्म किया, लो! फिर रात्रि में निवृत्त होकर बैठें। फिर सुनें। 'देखो रे देखो, जैनों कैसे व्रतधारी!' उन जम्बूस्वामी में आता है। 'कैसे व्रतधारी उन्होंने तजे नर-नारी।' ऐसी बातें। वहाँ दूसरा क्या था? पोपटभाई! वहाँ कहाँ यह वस्तु थी? वह तो अन्तर में से आया, दूसरी चीज़ तब ओय! मेरा यह तो सब अन्तर। समझ में आया? भाई ने दीक्षा तो बहुत धूमधाम से दी। घर में तब ६२ वर्ष पहले १८०० रुपये तब घर से खर्च किये। दीक्षा घर से दी थी उमराला में। ... समय कहा मैंने (संवत्) १९८७ के वर्ष। वींछिया। भाई यह सब खोटा है, मैं इसमें रहनेवाला नहीं, कहा। यह साधुपना नहीं, यह मार्ग नहीं। आहाहा! (भाई ने कहा)— धीरे-धीरे छोड़ना, महाराज! बाहर में कीर्ति बड़ी है। कीर्ति बड़ी हो गयी न तब, हों! यह तो (संवत्) १९७६ के वर्ष से बड़ी कीर्ति हो गयी थी बाहर। उसमें से तो निकलना धीरे-धीरे जाना। फिर उनकी उपस्थिति में छोड़ा यहाँ हीराभाई के मकान में। .... हम स्थानकवासी के साधु नहीं। हम साधु नहीं। हम तो आत्मा के आराधक सम्यग्दृष्टि हैं। हम यह साधु नहीं और हम व्रतधारी नहीं। आहाहा! भाई थे तब। ... उमराला से आये न। उमराला गये थे। १६ दिन रहे। और वहाँ आये हुए। फिर यहाँ आये तो आये इसलिए आये थे। बापू! मार्ग अलग, भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं, वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं,...** उपादेय अर्थात् जानने में कही गयी थी। **किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से...** आहाहा! परन्तु स्वभाव की दृष्टि के बल से, त्रिकाल स्वभाव की जहाँ दृष्टि हुई और उसके बल से **वे हेय हैं।** एक क्षायिकपर्याय भी परद्रव्य है और हेय है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्षायिकसमकित की पर्याय, क्षयोपशमसमकित की पर्याय, चारित्र की पर्याय। समझ में आया? वह परद्रव्य

है। आहाहा! है? देखो, आयेगा। **शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** पाठ में पहला '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' कहा, परन्तु इसका मेल करने के लिये टीकाकार ने पहला परस्वभाव लिया। **वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं।** ऐसा। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव का जो स्वद्रव्य, उसकी अपेक्षा से जो पर्याय समकित की, चारित्र की, शान्ति की, आनन्द की और मलिनता की, वे सभी पर्यायें परद्रव्य कही गयी है। आहाहा! समझ में आया?

जिसे शुद्धनय से विकार अपना है, ऐसा कहा प्रवचनसार में पहला? यहाँ कहते हैं कि शुद्धपर्याय प्रगट हुई ही है, वह परद्रव्य है। आहाहा! एक पकड़े और दूसरा... आहाहा! क्योंकि आत्मा जो त्रिकाली स्वद्रव्य है, उसमें से नयी पर्याय प्रगट होती है, परन्तु क्षायिक पर्याय हो समकित की या चारित्र की, उस पर्याय में से नयी पर्याय नहीं होती। जैसे परद्रव्य में से अपनी पर्याय नहीं होती, उसी प्रकार अपनी पर्याय में से नयी पर्याय नहीं होती। इसलिए जैसे परद्रव्य है, वैसे पर्याय भी परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें हैं। सुजानमलजी! मुम्बई में होता है न वह सादड़ी। ऐसा सादड़ी में था। बात सच्ची। सेठ! समझते हो? मुम्बई में जो मर जाये न, उसकी सादड़ी होती है। सादड़ी समझते हो? सब इकट्ठे होकर उसे सादड़ी कहते हैं। सुजानमलजी का गाँव सादड़ी है। वह तो बात ही।

यहाँ कहते हैं कि एक बार सुन तो सही, प्रभु! हम क्या कहना चाहते हैं और किस अपेक्षा से कहना चाहते हैं? कहते हैं कि **वे परस्वभाव हैं...** आत्मा में चारित्र पर्याय, वीतरागी पर्याय, क्षायिकसमकित की पर्याय, एक समय ज्ञान का चौदह पूर्व का उघाड़, बारह अंग का उघाड़, बारह अंग का उघाड़ परद्रव्य है। आहाहा! भगवान आत्मा एक समय में स्वद्रव्य, पूर्ण चैतन्यधाम, सुखधाम। आहाहा! जगतभानु। जगत का सूर्य चैतन्य प्रभु। आहाहा! वस्तु वह चैतन्यसूर्य जगत का भानु। ऐसी दृष्टि की अपेक्षा से उसकी जो वर्तमान पर्याय में निर्मलता हुई, चारित्र प्रगट हुआ, क्षयोपशमज्ञान बारह अंग का हुआ। समझ में आया? उन सब पर्यायों को परद्रव्य कहा गया है।

वास्तव में केवलज्ञान की पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहा है। वह साधक को

नहीं, परन्तु यह तो पर्यायमात्र परद्रव्य है। पहले आ गया है कि पर्यायमात्र नाशवान है। यह संवर, निर्जरा, मोक्ष की पर्याय भी नाशवान, एक समय में रहनेवाली, दूसरे समय में नाश हो। अविनाशी हो तो भगवान त्रिकाली आनन्द का नाथ अविनाशी है। आहाहा! समझ में आया? एक ओर प्रवचनसार में ऐसा कहे कि आत्मा में विकार हो, दया, दान, व्रत, काम, भोग, मिथ्यात्व, राग-द्वेष, वह सब शुद्धनय का स्वरूप है। अर्थात् कि तेरे स्वद्रव्य में तुझसे, तेरे कारण से हुआ है। यहाँ कहते हैं कि वह अशुद्धता तो कहीं दूर रही, परन्तु शुद्धता की पर्यायों को भी हम परभाव, परस्वभाव कहते हैं। धर्मचन्दजी! बहुत सूक्ष्म बातें हैं। दो-चार पकड़कर मान ले कि अपने को समझ में आ गया (यह नहीं चलता)। जब तक पूर्ण पकड़ में न आवे, वहाँ तक उसका अभ्यास करना। समझ में आया? अन्तर-अन्तर अभ्यास। आहाहा!

व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं,... पहले कहा न ४९ में कि व्यवहारनय से विद्यमान है। व्यवहारनय से समकिती को, ज्ञानी को भी पर्याय का जो भेद है, स्वसन्मुख, उदय आदि है, विद्यमान है। वह यहाँ कहा कि जिस पर्याय को हमने विद्यमान कही थी, वे परस्वभाव हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात! हमारे फावाभाई थे न बेचारे सुनने के लिये रहते यहाँ। यहाँ उनका मकान है न? यहाँ रहते थे। तो सवेरे कुछ सुनें और दोपहर में कुछ आवे। उसमें हमारे निर्णय क्या करना? किस अपेक्षा का कथन है, उसकी खबर नहीं। यह नहीं अपने मनहर आता है न? यह उसमें नहीं था? फाल्गुन शुक्ल ११। इन्द्र हुए न? पहले इन्द्र हुए थे अपने भाई गोदिका, एक लाख पन्द्रह हजार। १६ इन्द्र हुए थे न उसमें—पंचकल्याणक में। दूसरा इन्द्र हुआ था हमारे मनहर, फावाभाई का पुत्र। ८० हजार देकर। ... उसके पास अभी ६० लाख रुपये हैं। फावाभाई को कुछ ठिकाना नहीं था। यह तो पुण्य... है। ८० हजार दिये थे और दो-तीन (हजार) दूसरे हाथी का खर्च। दो-चार हजार दूसरे दिये। वह हाथी निकालते हैं न, क्या कहलाता है? शोभायात्रा। उसमें हाथी थे न हाथी। आहाहा! एक लाख अस्सी हजार और दूसरा वह हुआ था मनहर। अभी आया है।

परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि ८० हजार देने का भाव। दे सकता हूँ, यह नहीं, परन्तु

भाव वह शुभ है, वह परद्रव्य है। आहाहा! लक्ष्मी परद्रव्य और देने का भाव जो शुभ हुआ, वह परद्रव्य। वह तो ठीक, परन्तु जो शुद्धता प्रगटी है, आहाहा! उसे हम परस्वभाव कहते हैं। भगवान अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य में है न? '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**' है न? टीका इसका स्पष्टीकरण किया है। वह तो वास्तव में तो अन्वयार्थ में यह स्पष्टीकरण किया है, अन्वयार्थ में। '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं**' पाठ में '**परसहावमिदि हेयं।**' अर्थ में '**परस्वभावाः परद्रव्यम् इति हेयाः**' अन्वयार्थ में। समझ में आया? इस प्रकार से फिर टीका की। टीका को अनुसरकर अन्वयार्थ किया।

जो व्यवहारनय से जाननेयोग्य है, ऐसा जो कहा था, **किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से...** त्रिकाली ज्ञायकभाव के ज्ञान की अपेक्षा से **वे (सब) हेय हैं।** आहाहा! अभी यहाँ तो व्यवहाररत्नत्रय का राग, व्यवहार हेय है, यह गले उतरना कठिन पड़ता है। यह तो शुद्धपर्याय हेय है, परस्वभाव है, उसका त्रिकाली स्वभाव नहीं और उससे कहीं नयी पर्याय आती नहीं। जिसमें से नयी पर्याय आवे, वह मेरा स्वद्रव्य। आहाहा! ऐसी बात भाई, लो! साधारण व्यक्ति को बेचारे को सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण और वह क्या कहलाता है? वर्षीतप न! किया था वर्षीतप? नहीं किया होगा।

मुमुक्षु : प्रौषध अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रौषध, यह चौदश और अष्टमी को चौबीस घण्टे तक आहार और पानी नहीं और एकान्त मन्दिर में या उपाश्रय में रहना, उसका नाम प्रौषध। वास्तव में तो आत्मा को पोषने का समय। राग से रहित होकर आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसे पोषण का काल। जैसे वह चना पानी में रखते हैं न, फिर चौड़ा होता है न, चौड़ा? उसी प्रकार आत्मा को यह अष्टमी, चौदश का अपवास करके, निवृत्ति लेकर अन्दर में आत्मा की ओर का पोषण करना, वह प्रौषध है। अभी तो प्रौषध वे सब समझने जैसे। यह सब प्रौषध किये थे तुमने? प्रौषध किये थे या नहीं? ... किये हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं। ऊँचे में ऊँचे तत्त्व की यह गाथा है। सर्व विभाव जो कहे थे विद्यमान हैं, वे परस्वभाव हैं। **और इसीलिए परद्रव्य हैं।** आहाहा! **इसीलिए परद्रव्य हैं।** क्योंकि त्रिकाली स्वभाव की एकता-ध्रुवता में वे हैं नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो भाई! मोक्ष के दरवाजे में जाना है। उसका मार्ग कोई अलौकिक होगा न! नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसे भाव भी अनन्तबार आये हैं। नौ ग्रैवेयक। ३१ सागर की स्थिति में। नग्नदिगम्बर नग्न होकर शुक्ललेश्यावाला जीव, चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे। ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि। समझ में आया? और जिसे ग्यारह अंग का ज्ञान, नौ पूर्व की लब्धि, ऐसा जीव नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया है। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन नहीं था। सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन। सत्यदर्शन। आहाहा! सम्यक् अर्थात् सत्। सत्यदर्शन। त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह सत् है, वह उसका दर्शन। समझ में आया? यह पर्याय का दर्शन-देखना, वह भी नहीं, ऐसा कहते हैं। सत् वस्तु त्रिकाली। सम्यक् अर्थात् सत्। सम्यक् अर्थात् सत्। दर्शन अर्थात् श्रद्धान। देखना भले कहा। सत्य को सत्य को सत्यरूप से श्रद्धान करना। आहाहा! एक समय में भगवान आत्मा पूर्ण ध्रुव चैतन्य सत्। यह सत् वह है। उसकी अपेक्षा से तो पर्याय भी असत् है। समझ में आया? कहो, पोपटभाई! कहो, इसमें समझ में आता है या नहीं? आहाहा!

तीन लोक का नाथ पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु, जिसमें आनन्द और ज्ञायकभाव ठसाठस भाव पड़ा है जिसमें, जिसे भगवान ने ज्ञायकभाव कहा, ऐसा ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, पारिणामिकभाव, सामान्यभाव, सदृश्यभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, एकरूप भाव। आहाहा! उसे स्वद्रव्य कहा। और पर्यायमात्र की दशा को परभाव कहकर परद्रव्य कहा। यह (त्रिकाली) भाव नहीं, इस अपेक्षा से परभाव। ज्ञायकभाव त्रिकाल है, वह भाव नहीं। और वह भाव स्वद्रव्य और उसे वह भाव नहीं, इसलिए परद्रव्य। वह परभाव कहकर परद्रव्य कहा। आहाहा! समझ में आया? ज्ञायकभाव अकेला चिदानन्दरस। पूर्णानन्द का साहेबा। आहाहा! पूर्ण स्वभाव की एकता एकरूप से भरपूर, जिसमें भेद नहीं। उसे जब स्वद्रव्य कहा, अर्थात् स्वभाव कहा। वह स्वभाव, इसलिए स्वद्रव्य कहा। उससे पर्याय में चाहे तो निर्मल हो या विकारी हो, उसे परभाव गिनकर इस भाव से परभाव गिना। तब परभाव और धारक द्रव्य। स्वभाव और धारक द्रव्य और परभाव, उसे पर्याय में परद्रव्य कहा। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

स्वभाव, वह स्वद्रव्य। त्रिकाली स्वभाव ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव। भाव, हों! यह

भाव, वह भाववान अर्थात् द्रव्य। आहाहा! वह त्रिकाली भाव की अपेक्षा से जो त्रिकाली भाव, वह स्वद्रव्य, तब त्रिकाली भाव की अपेक्षा से पर्याय, वह परभाव। भाव को द्रव्य कहा है न, भाई! ज्ञायकभाव वह वस्तु द्रव्य, ऐसा कहा। आहाहा! उसमें लिया है न सहजज्ञान, सहजदर्शन आदि, नहीं चार? उनका आधार वह द्रव्य। ऐसा आता है। द्रव्य कहा है वहाँ। किसमें? कितने में? यह यहाँ ले, लो। इसमें ही आता है, लो। आहाहा! उसका कहने का आशय ऐसा है। जो स्व अन्तःतत्त्व। अन्तःतत्त्व अर्थात् अन्तरभाव। तत्त्वार्थ है न? अर्थ तो द्रव्य, गुण और पर्याय तथा तत्त्व उसका भाव। उसमें भगवान आत्मा का भाव अन्तःतत्त्वरूप भाव। देखो, स्वद्रव्य का आधार उसे इस स्वद्रव्य का आधार। आहाहा! अन्तःतत्त्व वह भाव, वह स्वद्रव्य। समझ में आया? ओहोहो! क्या श्लोक और क्या टीका! ऐसा वर्णन! आहाहा!

कितना मेलवाला (कि) जब इसे परभाव कहा, तब इसका अर्थ कि स्वभाव जो भाव है त्रिकाल। उस त्रिकाल स्वभावभाव का धारक द्रव्य, वह स्वद्रव्य। आहाहा! तब इस पर्याय को जब इसके भाव से भिन्न भाव अर्थात् परभाव। परभाव इसलिए परद्रव्य। आहाहा! टीकाकार ने देखो न बदल दिया है। कहने का आशय तो यही है। देखो, अब आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १५, शुक्रवार, दिनांक ०५-०९-१९७५
गाथा-५०, प्रवचन - २६

... ५०वीं गाथा। फिर से। **यह, हेय-उपादेय...** छोड़नेयोग्य और आदरनेयोग्य कौन है, उसका यह कथन है। ... **त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है। जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,...** अर्थात्? आत्मा की पर्याय में—अवस्था में जो कुछ क्षायिकभाव की पर्याय है या क्षयोपशम। वह सब क्षायिक और क्षयोपशम समझते न हों। पर्याय समझते न हों। आहाहा! वह आत्मा में क्षायिकभाव हो केवलज्ञानादि, क्षयोपशम हो मति-श्रुतज्ञानादि, क्षायिक, समकित और चारित्र तथा उदय हो पुण्य-पाप, राग-द्वेष, मिथ्यात्व आदि का। वे सब भाव विभावगुणपर्यायें हैं, आत्मा का त्रिकाली स्वभाव नहीं। यह **(४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा...** वर्तमान पर्याय में है, कथन द्वारा उन्हें जाननेयोग्यरूप से उपादेय कहा था। समझ में आया? आहाहा!

शुद्धनिश्चयनय के बल से... जैसे त्रिकाली भगवान परमानन्दस्वरूप, उसकी दृष्टि और उसके ओर के ज्ञान के बल से वे सब हेय हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत के भाव तो हेय है परन्तु संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी हेय है। आहाहा! पोपटभाई! आहाहा! वह शुद्धनिश्चयनय। शुद्धनिश्चय—यथार्थ नय अर्थात् ज्ञान। **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** त्रिकाली भगवान परमानन्दस्वरूप ध्रुवतत्त्व पूरा, उसकी दृष्टि और उसके ज्ञान के बल से **वे हेय हैं।** संवर-निर्जरा की पर्याय भी हेय है। आहाहा! धर्म की पर्याय भी हेय है। पर्याय है न, एक समय की अवस्था है। आहाहा! यहाँ तो अभी बाहर में सब... अभ्यन्तर... गाँधी कहे यह धर्म ... चरखा चलाना है। ऐसा सब आया है। आहाहा! उसके पीछे दूसरे महिमा करे। यह ... धर्म के कहनेवाले कि अहिंसा का विचार किया हो तो इन्होंने बहुत किया है। धूल भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! समभाव का लेख है। वह सब लौकिक लाईन आ गयी। सुधार करना, ऐसा करना। दूसरों को दुःखी

देखकर... उसे दु:ख टालने का प्रयत्न न करे तो वह हिंसक है। ऐसे लेख जैनप्रकाश (में)। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! जैनधर्म वीतरागमार्ग क्या है। यहाँ तो कहते हैं पर्याय में—अवस्था—हालत—दशा में दया, दान के भाव हों, अरे! उपशमरूप भाव हो, क्षयोपशम हो, क्षणिक विकास और क्षणिक विघ्न, क्षायिकभाव अत्यन्त निर्विघ्नदशा हो। वह भी त्रिकाली द्रव्य का आश्रय करने की अपेक्षा से लक्ष्य छोड़नेयोग्य है। लक्ष्य छोड़नेयोग्य अर्थात् हेय है। समझ में आया? ऐसी बातें!

किस कारण से? हेय है? उसका कारण दो। वे छोड़नेयोग्य हैं, इसका कारण क्या? **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** वे परस्वभाव हैं। एक समय की दशा, वह त्रिकाल अन्त:तत्त्व के स्वभाव की अपेक्षा से; त्रिकाल अन्त:तत्त्व अर्थात् अन्तरस्वभावभाव की अपेक्षा से वे पर्याय के भाव सब परस्वभाव है। आहाहा! **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! **और इसीलिए परद्रव्य हैं।** इसीलिए परद्रव्य है। पर्याय अर्थात् अवस्था की—हालत की दशाओं के जो भाव वे हेय-छोड़नेयोग्य है। क्यों? कि वे परस्वभाव हैं। आहाहा! भगवान आनन्द का स्वभाव त्रिकाल सहजज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि अन्त:तत्त्व जो स्वभाव, उससे भिन्न जाति है, इसलिए परस्वभाव है। और इसीलिए उसे परद्रव्य कहते हैं, ऐसा कहते हैं। सेठ! सूक्ष्म बहुत सूक्ष्म! आहाहा! अरे भाई! वस्तु पूरी पड़ी है प्रभु! ली है बात, हों! कि अन्त:तत्त्व जो है अर्थात् भाव। अन्त:तत्त्व जो त्रिकाली स्वभावभाव ऐसे स्वभाव की अपेक्षा से पर्याय के भावों को परभाव कहा जाता है। और इसीलिए परद्रव्य है। आहाहा! यह शरीर, वाणी, कर्म, देव-गुरु-शास्त्र, वे आत्मा की अपेक्षा से तो परद्रव्य है। वह तो कहीं रह गये। यहाँ तो उसकी पर्याय—अवस्था में, उससे हुए। उसकी दशा में हुए। वे स्वभावभाव नहीं, त्रिकाली स्वभाव अन्त:तत्त्व उसका स्वभाव। आहाहा! वह अन्तरभाव, तत्त्व अर्थात् भाव। अन्तरस्वभावभाव त्रिकालभाव की अपेक्षा से वर्तमान एक समय के भाव, वे सब परस्वभाव, इसलिए परद्रव्य हैं। समझ में आया? आहाहा!

क्षायिकसमकित की पर्याय, वीतरागीचारित्र की पर्याय, यथाख्यातपर्याय सामायिक की वर्तमान निर्मल पर्याय सामायिक अर्थात्। वीतरागी पर्याय। वह भी एक समय की

अवस्था होने से त्रिकालस्वभाव की अपेक्षा से उसे परस्वभाव कहा जाता है। आहाहा! जिसमें आत्मा की अपेक्षा से दूसरे सब द्रव्य अद्रव्य कहे। देखो न लोगों को... तब त्रिकाली भगवान आत्मा का स्वभाव महाप्रभु, उसके स्वभाव की अपेक्षा से एक समय की दशा, पलटती दशा, नाशवान दशा, परभाव है। और इसीलिए वह परद्रव्य है। समझ में आया? गजब बातें ऐसी! यह तो इच्छामि पडिकमणुं, तस्सउत्तरी करण। जाओ जीविया वहोरविया तस्स मिच्छामि दुक्कडम। उसमें कुछ समझ में आये ऐसा है? जादवजीभाई! किया है या नहीं इच्छामि पडिकमणं इरिया... नहीं किया हो नये हैं इसलिए। यह सामायिक का पाठ नहीं आता? णमो अरिहंताणं ... ... तस्सउत्तरी करणे... लोगस्स... यह सामायिक पाठ।

कहते हैं कि पाठ की वाणी तो परद्रव्य है, परन्तु पाठ को बोलने का विकल्प जो उठा है, वह परद्रव्य है। वह तो परद्रव्य है, परन्तु जिसे आत्मा के आनन्द के स्वभाव से आनन्द के स्वभाव स्वद्रव्य ऐसा जो आत्मा। प्रभु आत्मा ... दृष्टान्त। ऐसा जो त्रिकाली परमस्वभावभाव, उसकी अपेक्षा से सामायिक की पर्याय जो निर्मल प्रगटी हो। यह तो सम्प्रदाय में तो सामायिक है ही कहाँ? समझ में आया? वह तो राग की मन्दता और णमो अरिहंताणं... सामायिक की, ऐसा माने। आहाहा! परन्तु सच्ची सामायिक अन्दर समता वीतराग पिण्ड प्रभु के अन्दर में जाने से, शक्ति में से समता अर्थात् वीतरागी आनन्दसहित की दशा प्रगट हो, वह भी त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से परभाव कहकर उसे परद्रव्य कहा है। आहाहा! कहाँ जाना है लोगों को? वह तो कहे कि बस, पर का करो यह ... धर्म है। पर का न करो तो तुम हिंसक हो। आहाहा! जैनप्रकाश के नाम से यह लेख! अरर! खीमचन्द मगनलाल वोरा है न। उनने... है न। ... वह। ऐसे लिखे हैं। जैनप्रकाश में। ओहोहो! अरे प्रभु! यह क्या किया? जैनप्रकाश के नाम से अजैनप्रकाश है अन्दर।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं कि भगवान! तू एक वस्तु स्वभाव का पिण्ड है, ध्रुव है, अनन्त गुण की खान है, अनन्त शान्ति का भण्डार है... आहाहा! ध्रुव, हों! उसकी अपेक्षा से परवस्तु का तू कुछ कर सकता है, यह तो है ही

नहीं वस्तु में, परन्तु पर्याय में राग होता है, उसका कर्ता तू, यह वस्तु में नहीं। और पर्याय में जो धर्म की पर्याय हो, उसका कर्ता व्यवहार से द्रव्य है, परन्तु वह पर्याय है, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! धर्म की पर्याय क्षायिकसमकित की पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं। स्वरूपचन्दभाई! ... बिना पहले किया होगा सामायिक और सब किया होगा। आहाहा! कहाँ मार्ग है और कहाँ लोग भटककर मरते हैं बेचारे। आहाहा!

कहते हैं, वे परस्वभाव हैं। किस अपेक्षा से? त्रिकाली अन्तःतत्त्व के स्वभाव अर्थात् ध्रुवस्वभाव की अपेक्षा से क्षणिक पर्याय का भाव, वह परस्वभाव, इसलिए उसे परद्रव्य कहा। आहाहा! अब? **सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित...** ऊपर जो कहे सहित और हेय। उन सब विभावगुणपर्यायों से रहित। आहाहा! मतिज्ञान, श्रुतज्ञान चार ज्ञान भी विभाविकगुण है और क्षायिक आदि वह सब विभाविकभाव है। आहाहा! विशेषभाव वह विभाविक भाव। आहाहा! उन **विभाव-गुणपर्यायों से रहित शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** शुद्ध अन्तःतत्त्व अर्थात् भावस्वरूप। त्रिकाली अन्तर स्वभावभावस्वरूप। तत्त्वार्थ आता है या नहीं? '**तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं**' आहाहा! तीन लोक के नाथ इन्द्रों और गणधर की समक्ष में भगवान की वाणी—दिव्यध्वनि इच्छा बिना निकलती थी। आहाहा! परमात्मा विराजते हैं महाविदेहक्षेत्र में। सीमन्धर भगवान बीस तीर्थंकर विराजते हैं। उनके मुख से निकली हुई वाणी यह कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे आठ दिन और फिर यह बनाये हैं। आहाहा! समझ में आया? गाथा कही न यह? '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं**' यह तो पद्य की शैली है। कहना है तो यह '**परसहावमिदि परदव्वं**' परन्तु यहाँ '**हेयं**' पहले लिया। '**हेय परसहाव परदव्वं**' ऐसा लिया। क्योंकि वे परस्वभाव हैं, इसलिए परद्रव्य हैं, इसलिए हेय हैं। आहाहा! स्वरूपभाई! आहाहा!

और **सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित...** अर्थात् पर्यायों के जितने भाव हैं। मतिज्ञानादि, केवलज्ञानादि, क्षायिकसमकित आदि, रागादि। आहाहा! उनसे प्रभु आत्मा का स्वभावभाव अन्तःतत्त्व अन्तःभाव वह **सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित है...** आहाहा! **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** विभावगुणपर्यायों से रहित, यह नास्ति से बात की। अब

अस्ति क्या है वह ? कि **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** शुद्धभावस्वरूप। भावस्वरूप। आहाहा! ऐसी व्याख्या और ऐसा धर्म-उपदेश! यह सब खबर नहीं कि हम कहाँ कहते हैं और क्या कहते हैं ? अभी तो सम्प्रदाय में धर्म की बात ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर, गणधर और एकावतारी इन्द्रों के समक्ष में सभा में भगवान की वाणी ऐसे निकलती थी। आहाहा! उस वाणी में यह कहा कि कुन्दकुन्दाचार्य ने जो जाना, अनुभव किया और यहाँ कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये यह शास्त्र रचा है और प्रवचन की भक्ति... आहाहा! समझ में आया ?

पर्याय के-अवस्था के जितने भाव हैं। वस्तु जो भगवान, उसकी जो दशा—हालत—अवस्था, उसके जितने भाव हैं, वे सब हेय हैं और वह आत्मा उनसे रहित है। समझ में आया ? आहाहा! वह जब परस्वभाव को परद्रव्य कहा, तब अन्तःस्वभाव को स्वद्रव्य कहा। अन्तःतत्त्व अर्थात् अन्तर के भाव त्रिकाली आनन्द, ज्ञान, शान्ति पूर्ण-पूर्ण भण्डार आनन्दभाव का, ऐसा जो अन्तःभाव स्वरूप उसे स्वद्रव्य कहा। समझ में आया ? अब एक इसमें बाकी रह जाता है। उसमें बाकी नहीं रहता। उसमें तो हेय, परस्वभाव, इसलिए परद्रव्य बस। परन्तु यहाँ कि परभाव, विभावपर्याय से रहित प्रभु है, उसका भाव। वह अन्तःतत्त्व जो भाव है, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त सुख, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसे वह... आहाहा! अरेरे! क्या करें! ऐसा आया है यह जैनप्रकाश में... तत्त्व की बात है।... वह कपूरचन्दजी थे न कपूरचन्दजी ? मन्दिरमार्गी साधु थे। १९०० के वर्ष। वह भावनगर में मन्दिर नहीं उनका ? कैसा मन्दिर कहलाता है ? दादासाहेब का... उस सड़क की दादासाहेब का मन्दिर। खबर है न। वह वहाँ दुकान से ... आया है यहाँ देश में।... यह तो (संवत्) १९६९ और ६८ की बात है। यह तो ... चला था न ७० में अर्थात् ६२ वर्ष हुए। उसके पहले की बात है। वे कपूरजी थे। थे तो निवृत्तिवाले, पुस्तकें बनायीं। उनके साथ गाँधीजी को चर्चा हुई। इसलिए यह कहे कि भाई कि हमारे साधु को तो ऐसा... हिंसा हो, वह नहीं होता। गाँधीजी कहे ... धर्म न करे तो वह साधु नहीं। ऐई!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा का धर्म यह है कि आहाहा! उसमें जो हुई पर्यायें। पर

का तो करना है ही नहीं। पर की दया पाल सकता हूँ, यह तो आत्मा में है ही नहीं। क्योंकि परद्रव्य की अवस्था का टिकना और रहना, वह उसके कारण से है। उसके बदले दूसरा कहे कि मैं दया पाल दूँ, वह तो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। वह तो है, परन्तु पर की दया पालने का भाव उठे, विकल्प वृत्ति (उत्पन्न हो), वह हिंसा है। वीतराग की अहिंसा अलग प्रकार की है। ऐई! समझ में आया? यह गाँधी के साथ मिलाने जाये तो कहीं पूर्व-पश्चिम का मिले, ऐसा नहीं। महावीर की अहिंसा उन्होंने कही, ऐसा कहते हैं लोग। बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! त्रिलोकनाथ की हिंसा किसे कहते हैं वह? वह परजीव की दया का विकल्प उठे, वह पर का कुछ भला करूँ, कुछ सुविधा दूँ, यह वृत्ति जो उठती है, उसे भगवान हिंसा कहते हैं। आहाहा! अरेरे! जैन में जन्मे परन्तु परमेश्वर क्या है, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? अरेरे! ऐसा वीतराग उज्ज्वल मार्ग! तीन लोक के नाथ ने प्रकाशित किया, इन्द्र और गणधरों के समक्ष में, ऐसी परम्परा का सत्यमार्ग अनादि से चला आता है। उसमें घोटाला उठा।

कहते हैं, जब आत्मा की पर्याय में विभाव अर्थात् विशेषभाव और विभाव रागादि और मतिज्ञानादि गुणपर्यायें, उनसे भगवान आत्मा का स्वरूप, उनसे रहित है। है कैसा? शुद्ध अन्तः, शुद्ध पवित्र अन्तःभावस्वरूप। शुद्ध अन्तःभावस्वरूप। आहाहा! इसलिए वह स्वद्रव्य है। अन्तःतत्त्व के स्वभावस्वरूप है, इसलिए स्वद्रव्य है। पर्याय के परभावस्वरूप है, इसलिए परद्रव्यस्वरूप है। आहाहा! अब? अभी एक बात बाकी रखते हैं। वह शब्द है न देखो, '**अंतरतच्चं सगदव्वमुवादेयं**' अब '**अप्पा**' शब्द पड़ा है न वापस? आहाहा! टीका तो देखो, ...स्वभावदर्शन अनन्त है, सहज है, स्वाभाविक है। स्वाभाविक चारित्र। अन्तर, हों त्रिकाल चारित्र, वीतरागता। अन्तर में स्वाभाविक वीतरागता पड़ी है ध्रुव में। आहाहा! और **सहजपरमवीतरागसुखात्मक...** स्वाभाविक परमवीतरागस्वरूप ऐसा सुखस्वरूप। वीतराग सुखस्वरूप। आहाहा! भगवान आत्मा में स्वाभाविक परमवीतराग सुखात्मक। सुख परम आनन्द। परमवीतरागी अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप। ऐसा जो शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप। आहाहा! ऐसा जो शुद्धभावस्वरूप। जिसे स्वद्रव्य कहा। समझ में आया?

इस स्वद्रव्य का आधार... जो अन्तःतत्त्व के भाव जो है त्रिकाली शुद्ध आनन्द

पवित्र। उसे स्वभाव कहकर स्वद्रव्य कहा। अब उस द्रव्य का आधार अभेद लेना है। यहाँ यह भेद हुआ न इतना? आहाहा! देखो न, यह मुम्बई में ऐसा चले तो आगे चलने न दे। ऐई...! भाई! दस-दस हजार लोग ... उसमें अपने नहीं, उसमें जाते न मन्दिर। सर्वोदय ...कान्तिभाई का सर्वोदय। लींबड़ीवाला नहीं कान्तिभाई करोड़पति है न! बनाता है पैसा। पति-पत्नी दो ही है। एक लड़की। पैसे करोड़ रुपये। ... सब। बड़ा सर्वोदय क्या कहलाता है वह? अस्पताल बहुत... वहाँ ... बेचारा सुनने आया। क्या कहते हैं यह भी? इतने वर्ष से ४० वर्ष से चलता है। यह क्या कहते हैं सुनो तो सही! उसमें ऐसी बात रखे तो वे भागे। यह क्या कहते हैं?

यहाँ कहते हैं, प्रभु! यह तो सोनगढ़ है। यहाँ तो सुननेवाले हमेशा रहनेवाले होते हैं।... भगवान आत्मा के जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि भाव, उन्हें शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप भाव कहकर उसे स्वद्रव्य कहा। अब उस स्वद्रव्य का परिणाम... आहाहा! यह हल्दी की गाँठ से पंसारी नहीं हुआ जाता। थोड़ा-बहुत समझ में आये तो अपने को ज्ञात हो गया। बापू! यह तो वीतराग तीन लोक के नाथ की बात है। आहाहा! अरेरे! वस्तु का केवलज्ञान क्या है, बापू! उसे खबर नहीं। केवलज्ञान क्या और और केवलज्ञान का विषय तीन काल—तीन लोक जाने। आहाहा! अरे! इससे अनन्तगुणा काल और क्षेत्र हो तो भी ज्ञान की पर्याय जाने। जिसका—पर्याय का स्वतः ज्ञानस्वभाव, उसकी मर्यादा क्या? ऐसा जो तीन काल—तीन लोक को जाने और उससे अनन्तगुणा हो तो जाने। ऐसे केवली के मुख से इच्छा बिना वाणी निकली, यह उसे शास्त्र और आगम कहते हैं। समझ में आया? यह सब आगम वह है यह। यह उत्कीर्ण है। वीतराग की सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी है यह। मुनियों की वाणी अर्थात् मुनियों ने उनकी ही वाणी कही। आहाहा! समझ में आया? और श्वेताम्बर के जो आगम हैं, वे यहाँ नीचे हैं पालीताणा में, वह वीतराग की वाणी नहीं। अपनी दृष्टि से स्वच्छन्द से उसे नाम दिये भगवान के शास्त्र। लोग बेचारे उलझ गये। अब यह जो वाडा में पड़े, वे माने भगवान की वाणी अपने सुनो। आहाहा! गजब काम! आहाहा! क्या परन्तु गाथा? सौ के दो टुकड़े, वे पचास। पचासवीं है न? उसी प्रकार पर और स्व के टुकड़े, यह ५०वीं गाथा में है। समझ में आया? पर्याय का भाव और द्रव्यभाव दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! समझ

में आया? एक समय की पर्याय के जितने भाव... समझ में आया? प्रवीणभाई!

वास्तव में... अब देखो, स्वद्रव्य अन्तःतत्त्व कैसा है, इसका स्पष्टीकरण करते हैं और पश्चात् उसका आधार कौन, इसका स्पष्टीकरण करेंगे। पहला सावधानी कहा था। वह विभावगुणपर्यायों से रहित, वह नास्ति। **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य...** ऐसी बात की है। परन्तु वह स्वद्रव्य अन्तःतत्त्वस्वरूप क्या? वह तो सामान्य भाषा की है। समझ में आया? तब कहा कि **वास्तव में...** रामजीभाई ने सब कानून निकाले होंगे परन्तु ऐसा तो नहीं आया होगा उसमें। देखो, रामजीभाई कहते हैं, हम पढ़े तो कुज्ञान है, ऐसा कहते हैं। महीने में दो सौ रुपये का प्रतिदिन लेते। वर्ष में एक दिन जाये और दो सौ लेते, पहले सौ थे। यह सब पढ़ा हुआ कुज्ञान। कान्तिभाई! ... ज्ञान मिथ्याज्ञान कहा यह। आत्मा को परिभ्रमण का कारण है यह। समझ में आया? यह तो एक-एक भाव में देखो न, यह भरा है। आहाहा! आनन्द का नाथ भाव, आनन्दस्वभावभाव, वीतरागस्वभावभाव, ज्ञानस्वभावभाव, दर्शनस्वभावभाव, बलस्वभावभाव, शान्तिस्वभावभाव, प्रभुतास्वभावभाव, स्वच्छतास्वभावभाव, कर्तास्वभावभाव, कर्मस्वभावभाव, करणस्वभावभाव, अपादानस्वभावभाव, अधिकरणस्वभावभाव, ऐसे-ऐसे अनन्त भाव हैं अन्दर। समझ में आया? ४७ शक्तियों में आता है न? ४७ में आता है ज्ञेय-ज्ञायक का। जीवत्वशक्तिभाव, शक्तिभाव। वह इस भाव की व्याख्या है। चितिशक्तिभाव, दर्शनशक्तिभाव, ज्ञानशक्तिभाव। आहाहा! है न? जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुखशक्तिभाव, वीर्यशक्तिभाव, प्रभुत्वशक्तिभाव, विभुत्वशक्तिभाव, सर्वदर्शी-शक्तिभाव, सर्वज्ञशक्तिभाव, स्वच्छत्वशक्तिभाव, प्रकाशशक्तिभाव, असंकोचविकास-शक्तिभाव। आहाहा! समझ में आया? साधारण शक्तिवाला, अनन्तधर्मशक्तिभाव, विरोधधर्मशक्तिभाव, तत्शक्तिभाव, अतत्शक्तिभाव, एकशक्तिभाव, अनेकशक्तिभाव। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भावशक्ति, भावशक्तिभाव, अभावशक्तिभाव, भाव-अभावशक्तिभाव, अभावभावशक्तिभाव, भावभावशक्तिभाव, अभावअभावशक्तिभाव, भावशक्ति, क्रियाशक्ति, कर्मशक्ति, कर्ताशक्ति, करणशक्ति, सम्प्रदानशक्ति, अपादानशक्ति, ध्रुवशक्ति, अधिकरणशक्ति और स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति। इतने ४७ नाम भगवान ने दिये हैं। अनन्त तो कहाँ से दे? भाषा में ऐसा आता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह सवेरे कहा था। शक्ति कही है, उसे यहाँ स्वभाव कहा। जिसे शक्ति कही थी, उसे यहाँ स्वभाव कहा। वह गुण न कहकर स्वभाव को शक्ति कही। किसी जगह गुण भी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान की कोठी में अनन्त गुण भरे हैं। उन्हें यह गुणस्वभाव, उसका आधार वह जैसे दाना भाव का गुण का आधार वह कोठी है, वह परद्रव्य है। परद्रव्य वह नहीं यहाँ तो वह का वह। आहाहा!

शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप... भगवान ध्रुव महाप्रभु जिसके स्वभावभाव अनन्त। यह ४७ तो नाम दिये। ऐसे अनन्त स्वभावभाव ऐसा जो स्वद्रव्य। ऐसा जो स्वद्रव्य। उसका आधार। आहाहा! **सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण...** स्वाभाविकपरम-पारिणामिकभाव अभेद ऐसे लक्षणवाला **कारणसमयसार है।** आहाहा! यह ... ऐसा उपदेश कैसा! पागल कहे लोग तो, भाई! अरे बापू! वस्तु ऐसी है, भाई! तुझे न बैठे और (तू) न समझे, इसलिए कहीं दूसरी हो जाये? आहाहा! परद्रव्य से तो प्रभु भिन्न है। शरीर, वाणी, मन, कर्म, देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, इज्जत, कीर्ति, वह तो सब धूल और पर। उससे तो भिन्न, परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप के विकल्प हों, उनसे प्रभु भिन्न है। उनसे तो भिन्न, परन्तु धर्म की पर्याय क्षयोपशम, क्षायिक समकित (आदि) हो, उससे भगवान भिन्न है अन्दर। उसका स्वभावभाव भिन्न है, इतना अभी सिद्ध करना है, हों! परन्तु उस स्वभावभाव का '**अप्पा**' अन्तिम शब्द है न? '**अंतरतच्चं हवे अप्पा**' आहाहा! उससे टीकाकार ने यहाँ पारिणामिकभाव निकाला है। आहाहा!

क्या कहा यह? कि जो परभाव हैं, उन्हें परद्रव्य गिनकर, हेय कहकर परस्वभाव को परद्रव्य कहा। हेय—छोड़नेयोग्य है, उसे परभाव कहकर परद्रव्य कहा। भले आदरणीय योग्य है, उसे अन्तःतत्त्व वह तो स्वद्रव्य अथवा अन्तःतत्त्व वह उपादेय। परन्तु वह अन्तःतत्त्व अर्थात् क्या? कि स्वद्रव्य। जैसे परभाव, वह परद्रव्य, वैसे स्वभावभाव, हों! आहाहा! वह स्वद्रव्य, वह उपादेय। तब कहते हैं कि अब ऐसा स्वद्रव्य जो उपादेय है। आहाहा! उसका आधार ही स्वरूप एकरूप ऐसा कारणपरमात्मा, कारणसमयसार, वह एकरूप आधार है। आहाहा! अन्तःतत्त्वस्वभावरूप स्वद्रव्य का

ऐसे एकरूप परमस्वभावभाव कारणसमयसार, वह आधार है।

वे भाव तो बहुत है न? वह पर्याय के भाव, वे बहुत, तब भाव बहुत हैं, उन्हें परद्रव्य कहकर हेय कहकर परभाव को परद्रव्य कहा। अब यहाँ उपादेय कहकर स्वस्वभाव को स्वद्रव्य कहा। अब स्वद्रव्य है, वह त्रिकाली भाव को अन्तःतत्त्व कहकर स्वद्रव्य कहा। उस ऐसे भाव का वह आधार है। समझ में आया? आहाहा! कहो, गिरधरभाई! यह तुम्हारे बापू ने भी सुना नहीं होगा ऐसा किसी दिन। रामजीभाई के पिता ने भी कहाँ सुना है! आहाहा! यह हीरा-माणेक, इसकी कीमत तो क्या धूल की! यह हीरा-माणेक भरे हैं अन्दर। आहाहा! एक-एक शक्ति हीरा। गुण अनन्त-अनन्त कीमत जिसकी है। उसकी अनन्त शक्तिरूप भाव, वह अन्तःतत्त्वरूपभाव, उस द्रव्य का आधार एकरूप पारिणामिक कारणसमयसार। समझ में आया? आहाहा! यह तो वीतराग का मक्खन है!

और द्रव्य अन्तःतत्त्वभावस्वभाव, वह स्वद्रव्य। अब वे भाव बहुत, उन्हें स्वद्रव्य कहा। इसलिए उनका एकरूप कारणसमयसार त्रिकाल। पारिणामिकभाव, परमपारिणामिकभाव। आहाहा! भाषा अलग बात। स्वाभाविकपरमपारिणामिकभाव त्रिकाल एकरूप वह जिसका लक्षण। ऐसा **कारणसमयसार है।** आहाहा! ऐसा कारण आत्मा है, ऐसा कारणपरमात्मा आत्मा है। आहाहा! ...भाई! यह सब थोड़ा सुनो समझ में आ जाये, ऐसा नहीं। यह तो सब अलग चीज़ है। आहाहा! ... समझने की बात है यह तो। ... ... उस समय ... उस सम्प्रदाय में नहीं, अन्यत्र किसी पंथ में नहीं। आहाहा! इसमें यह बात है। चन्दुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ... क्या कहे? आहाहा!

कारणसमयसार है। यहाँ योगफल लाये। क्योंकि वह '**अप्पा**' है न '**अप्पा**'? '**अंतरतच्चं सगदव्वमुवादेयं हवे अप्पा**' ऐसा वह वहाँ से निकाला मूल पाठ है न अन्दर? ऐसा कारणसमयसार आत्मा, ऐसा कहते हैं। मणिलालजी! आहाहा! ऐसी चीज़ है, बापू! तुझे खबर नहीं। यह ऐसी चीज़ का आश्रय लिये बिना ... उसका अवलम्बन ले।

वहाँ जाना है। बाकी धर्मबर्म बातें हैं। मन्दिर में धर्म नहीं और उपाश्रय में नहीं और सम्मेदशिखर में नहीं और शत्रुंजय में भी धर्म नहीं, लो! ऐसा कहते हैं। ... परमागम में यह बतलाया है। ... वह भी मशीन सेठ लाये। हिन्दुस्तान में पहली। मशीन नहीं थी यहाँ हिन्दुस्तान में। हमारे पोपटभाई है न, यह उनका पुत्र। बड़ा पुत्र हसमुख क्या कहलाता है वह? इटली। २९ हजार रुपये की मशीन, १९ हजार की पाट, २० हजार का खर्च। १९७०, ६९ हजार की मशीन है यह। ... इसमें यह उत्कीर्ण है। हिन्दुस्तान में मशीन नहीं थी। समझ में आया? यहाँ तो मशीन उसके घर में रही। परन्तु मशीन से उत्कीर्ण शास्त्र... समझ में आया? इस गाथा का अर्थ यह लिया। आहाहा!

इसी प्रकार.... अब दूसरे शास्त्र का आधार देते हैं। **(आचार्यदेव) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति-आत्मप्रसिद्धि नामक टीका में १८५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —**

सिद्धान्तोऽय-मुदात्त-चित्त-चरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि॥

शार्दूलविक्रीडित है। इस गाथा का मेलवाला है, यह श्लोक लिया समयसार का।

श्लोकार्थः—जिनके चित्त का चरित्र उदात्त (उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं... आहाहा! जिसका ज्ञान निर्मल और सम्यग्दर्शन है। आहाहा! **ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो...** यह भाव कहे हैं, उनका सेवन करो। आहाहा! यह तो पर की सेवा करे और उससे यह। धूल भी करता नहीं। पर की सेवा कोई करता नहीं। ... पर की सेवा करो, भूखे को आहार दो, प्यासे को पानी, रोगी को औषध, ...के लिये मकान, ... पंखा। कौन दे और कौन ले? एक रजकण भी ... कौन दे? है न? खानेवाले का नाम दाने-दाने पर है। तुम्हारे है न भाषा? दाने-दाने पर नाम लिखा है। नाम का अर्थ जो रजकण यहाँ आनेवाले हैं, वे आनेवाले है। किसी से आते नहीं। ... एक दाने-दाने पर नाम है कि जो रजकण-परमाणु मिट्टी, धूल यह शरीर भी यहाँ आनेवाला हो, वाणी उस

समय में आनेवाली हो,... वह सब निश्चित हो गया है। उसे कोई दे और ले, (यह) मिथ्या अभिमान है। समझ में आया?

जिनके चित्त का चरित्र... अर्थात् अभिप्राय। जिसके ज्ञान की परिणति का भाव। आहाहा! **उदात्त (उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं—ऐसे मोक्षार्थी...** परमानन्द के स्वामी को। मोक्ष अर्थात् परम आनन्द। मोक्ष अर्थात् परम अतीन्द्रिय आनन्द। आहाहा! मोक्ष अर्थात् पवित्र आनन्द का लाभ, उसका नाम मोक्ष। आहाहा! ऊपर... जाना मोक्ष में जाना, ऐसा नहीं। परम अतीन्द्रिय आनन्द जो अन्दर है, उसकी वर्तमान दशा में उपलब्ध परम आनन्द की प्राप्ति होना, लाभ मिलना अन्दर में से, उसका नाम मोक्ष कहा जाता है। ... **ऐसे मोक्षार्थी...** आहाहा! ऐसे मोक्ष के प्रयोजनवाले जीव। कड़क कहा है। ... अर्थी, स्वर्ग का अर्थी, ... अर्थी वह नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मोक्षार्थी... यह जिसे परम आनन्द की प्राप्ति का प्रयोजन है। आहाहा! जिसे सूक्ष्म सागर पर्याय में प्रगट हो। उसका नाम मोक्ष। उस मोक्ष का जिसे प्रयोजन है, वे जीव **इस सिद्धान्त का सेवन करो...** क्या? **मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ;...** आहाहा! समझ में आया? **मैं तो...** मैं भगवान आत्मा तो। शुद्ध चैतन्य अकेला पवित्र ज्ञानमय (हूँ), ... स्वभाव नहीं। आहाहा! एक परमज्योति। ... अर्थात् एक परमज्योति। **ज्योति ही सदैव हूँ;...** यही मैं सदा ही हूँ। आहाहा! राग नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं, पर्याय में भेद नहीं। समझ में आया?

धर्मी जिसके चित्त का (चरित्र) उज्ज्वल है, उदात्त है और उच्च है। आहाहा! ऐसी वस्तु को टिक सकता है। आहाहा! महान प्रभु की शक्तियों का संग्रह किया हुआ भगवान आत्मा उसे जो पचा सकता है। आहाहा! पचास सकता है ऐसा क्यों आया? सम्यग्दर्शन का स्वभाव... जैसे अग्नि का स्वभाव पाचक, प्रकाश, दाह। अग्नि ... समागम ... का है। तो अग्नि प्रकाश करती है, अग्नि लकड़ी को जलाती है, पाचक, प्रकाशक, दाहक। उसी प्रकार भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन, वह पाचकशक्ति है; सम्यग्ज्ञान, वह प्रकाशकशक्ति है और सम्यक्चारित्र, वह राग को जला डालने की शक्ति है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा कहते हैं कि **जिनके चित्त का चरित्र उदात्त...** है ऐसा। अर्थात् जिसकी परिणति में वह उदात्त है कि ऐसी चीज़ को पचा सकती है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय में मलिन नहीं होने पर भी ऐसी चीज़ को जो पचा सकती है, प्रसिद्ध कर सकती है, उसका चित्त उदात है। ... **मैं...** .... **मैं यह शुद्ध चैतन्यमय...** पवित्र धाम मेरा ... चैतन्यसूर्य मैं हूँ। आहाहा! चैतन्य के नूर के तेज से भरपूर मैं हूँ। चैतन्य के जानने-देखने के स्वभावरूप नूर। जिसमें नूर के पूर से भरपूर हूँ। वह शुद्ध अन्तःतत्त्व। ... ऐसी बात है। ... शुद्ध चैतन्यमय कहा न। अकेल शुद्ध चैतन्य, शुद्ध चैतन्य, ... चैतन्यतेज। आहाहा! **परम ज्योति ही सदैव हूँ;...** अकेला ज्योति मैं और परमज्योति। परद्रव्य को ज्योति कहो, दूसरे को ज्योति कहे वह नहीं। यह तो परमज्योतिस्वरूप भगवान। जलहल ज्योति समान ... भगवान, वही मैं सदा ही हूँ। आहाहा! ... सदा ही हूँ। जानने में आवे, तब आता है, ऐसा नहीं। ऐसा जानने में आता है, है और सदा ही ... हूँ। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है?

और यह जो भिन्न लक्षणवाले... मेरे चैतन्यमय सिद्ध के लक्षण से जो भिन्न पर्याय के लक्षणवाले **विविध प्रकार के...** ... वह एक परमज्योति था। ... एक ही... भगवान पूर्णानन्द एक ... छोड़कर अनेक अग्र को लक्ष्य में लेता है। आहाहा! **वह मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं।** ....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश - ७४

और (इस ५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) —

(शालिनी)

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकायादन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः।
इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम्॥७४॥

(वीरछन्द)

शुद्ध जीव से अन्य सभी पुद्गलमय भाव नहीं मेरे।
तत्त्वविज्ञ जो यह कहते वे अति अपूर्व सिद्धि पाते॥७४॥

श्लोकार्थः—'शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं'—ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं, वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं॥७४॥

भाद्र शुक्ल १, शनिवार, दिनांक ०६-०९-१९७५
गाथा-५१ से ५५, कलश- ७४, प्रवचन - २७

५०वीं गाथा पूरी हुई। **और (इस ५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं) —**

(शालिनी)

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकायादन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः।
इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम्॥७४॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—शुद्ध जीवास्तिकाय से...** पवित्र निर्मल जीव अस्तिकाय। अर्थात् जिसका द्रव्यस्वभाव। आहाहा! **शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव,...** हैं। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप शुद्ध, जीव और अस्ति

अर्थात् है और काय—असंख्यप्रदेशी। ऐसा शुद्ध जीवास्तिकाय वस्तु, उससे अन्य ऐसे विकल्प हो या पर्याय, वह सब पुद्गल की पर्याय यहाँ तो कह दिया है। आहाहा! वस्तु जो वस्तु है, शुद्ध ध्रुव आनन्दकन्द प्रभु, वीतरागी सुखामृत के पिण्ड से भरपूर... आहाहा! ऐसा जो जीवास्तिकाय, उससे अन्य जितने भाव, वे सब हमारे नहीं, वे पुद्गल के हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो तात्त्विक बात मक्खन है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, पर, देश, परिवार वह तो आत्मा में है ही नहीं, परन्तु कर्म और कर्म के निमित्त से हुआ भाव या कर्म के अभाव से हुआ भाव, वे सब मेरे नहीं। आहाहा! समझ में आया?

एक शुद्ध जीव अस्ति सत्ता ईश्वरता, प्रभुता के स्वभाव से भरपूर जीव-अस्तिकाय... आहाहा! वह मैं। इसके अतिरिक्त के दूसरे विकल्प आदि दया, दान, व्रत, भक्ति, अरे! यहाँ तो क्षायिकभाव और उपशमभाव भी सब मेरे नहीं। आहाहा! कठिन बात, बापू! आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि का विषय शुद्ध जीवास्तिकाय है। समझ में आया? यह कहते हैं कि हमको इस वस्तु के अतिरिक्त दूसरी बात वह हमारे में है ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा अनुभव कब होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि करे तब। कब हो क्या? ऐसा का ऐसा मेरे पुत्र और मेरा धन्धा किया करे, वहाँ कहाँ समझ में आये उसमें? सुनने की निवृत्ति का समय न मिले, महिमा के कारण। ऐई सेठ! हमारे से नहीं कहा जाता। बड़े भाई को नहीं कहा जाता न। सवेरे कहा, भाईसाहेब आये हैं। यहाँ मिले थे न। आहाहा! कितनी उसे धीरज की निवृत्ति चाहिए। जिसे संग-परसंग दूसरा उसके लिये मैं रुकूँ, वह चीज़ मैं नहीं। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं धर्मी जीव की दृष्टि शुद्ध जीवास्तिकाय पर है। आहाहा! इससे धर्मी ऐसा कहते हैं कि **शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव,...** हैं सही। सब पुद्गलद्रव्य के भाव हैं तो सही। **वे वास्तव में हमारे नहीं हैं...** आहाहा! अभी तो यह पैसे हमारे, इज्जत हमारी, कीर्ति हमारी, महत्ता हमारी। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही एक बार। आहाहा! बहुत न्याय देंगे इसमें, हों! इसमें बहुत न्याय है जरा सुनना। हम यह नहीं। ऐसा जो तत्त्व... एक बार लालचन्दभाई ने यह श्लोक कहा था कि यह तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहता है, वह अति अपूर्व सिद्धि

को प्राप्त करता है, परन्तु उसका अर्थ कहा सूक्ष्म है। कहे, ऐसा नहीं। इस गाथा के अन्दर।

यहाँ तो तीन बातें रखते हैं—एक तो **ऐसा जो तत्त्ववेदी...** वेदता है। अन्तर तत्त्व को जीवास्तिकाय वही मैं, दूसरे नहीं, ऐसा जिसे अन्तर में वेदन है... आहाहा! उसका वह तत्त्व का वह जाननेवाला है। आहाहा! वह स्पष्टरूप से कहता है। **स्पष्टरूप से कहता है...** इसके दो अर्थ हैं—एक तो स्पष्टरूप से अन्दर जानता है और कथन में यह स्पष्टरूप से कहता है कि मार्ग यह है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। समझ में आया? आहाहा! जिसे धर्मी जीव ऐसा आत्मा शुद्ध जीवास्तिकाय, शुद्ध जीव का पवित्र के भाव से भरपूर मौजूदगी चैतन्य की मौजूद चीज़ उसकी जिसे अन्तर दृष्टि, अनुभव हुआ, वह ऐसा कहता है कि इसके अतिरिक्त मेरी चीज़ पुद्गल या विकल्प, वह मेरी चीज़ ही नहीं। आहाहा! देखो, यह सम्यग्दृष्टि का तत्त्व का कथन और तत्त्व का वेदन। दो बातें रखते हैं यहाँ। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई!

भगवान आत्मा शुद्ध जीवास्तिकाय। आहाहा! कितना समाहित कर दिया है! एक तो शुद्ध अस्ति जीव और काय। अर्थात् जो बात सर्वज्ञ के सिवाय अन्यत्र होती नहीं। असंख्यप्रदेशी, उसे काय कहते हैं। जीव असंख्यप्रदेशी है, यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरे किसी पंथ में सर्वज्ञ नहीं, इसलिए किसी ने कहा नहीं और जाना नहीं। समझ में आया? अमरचन्दभाई! आहाहा! कैसी शैली है मुनिराज की! आहाहा! शुद्धजीव-है-काय। असंख्यप्रदेशी पिण्ड प्रभु निर्मलानन्द है। आहाहा! अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु जीवास्तिकाय है। अरे! जिसे सुनने को मिले नहीं, वह कब पहिचाने, कब श्रद्धा करे? आहाहा! ऐसी की ऐसी जिन्दगियाँ चली जाती हैं, भाई! आहाहा! सिर पर चौरासी के अवतार की डांग ऊपर पड़ी है। जिसे परवस्तु मेरी, राग मेरा, यह चीज़ मेरी —ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसमें उसे चौरासी के अवतार की डांग सिर पर है। लकड़ी। चौरासी के अवतार, यह मेरे अर्थात् इसमें से हटेगा नहीं अब वह। आहाहा! समझ में आया? यह कहेंगे अभी। क्या कहेंगे?

शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव,... आहाहा!

कहो, यह हसमुख आदि पुद्गल के भाव, आत्मा के नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ। यह डालचन्दजी आदि आत्मा का भाव नहीं, ऐसा कहते हैं। और उनकी ओर से होता विकल्प, वह मेरा नहीं। आहाहा! हम जो हैं, वह तो शुद्ध जीवास्तिकाय हैं। आहाहा! भगवान देह में विराजमान सबमें शुद्ध जीवास्तिकाय ही रहा हुआ है। निश्चयनय का विषय, वही वहाँ पड़ा है अन्दर, कहते हैं। आहाहा! तेरी नजर के आलस्य से उसके अस्तित्व की स्वीकृति तुझे आयी नहीं। समझ में आया? वह है, ऐसा उसकी तूने नजर की नहीं अन्दर। इस कारण से वह वस्तु तुझे प्राप्त नहीं हुई और बाहर की चीज़ जो उसमें नहीं, वह मुझमें मानकर उसकी प्राप्ति अनन्त बार चौरासी के अवतार की हुई। आहाहा! समझ में आया?

इसका अर्थ यह कि मैं एक शुद्ध जीवास्तिकाय सुख का सागर भण्डार हूँ। मेरे सुख के लिये बाहर की कोई चीज़ है नहीं। समझ में आया? सुख का साधन हो तो वह मैं आत्मा हूँ। आहाहा! वहाँ वीणा बजती है आनन्द की, वह मैं हूँ। आहाहा! ऐसा जो शुद्ध जीव है असंख्यप्रदेश का पिण्ड, मेरा देश असंख्यप्रदेश है और मेरा गाँव अनन्त गुण, वे मेरे गाँव हैं। उनका मैं राजा हूँ। समझ में आया? आहाहा! एक बात।

ऐसा जो तत्त्ववेदी... वह तत्त्व का जाननेवाला। अकेली भाषा कहे ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तत्त्ववेदी—तत्त्व का जाननेवाला अथवा तत्त्व का वेदन करनेवाला। आहाहा! क्या शैली! और वह आत्मा भगवान पूर्णानन्द शुद्ध जीवास्तिकाय, ऐसा जिसकी दृष्टि में आया और जिसका ज्ञान और वेदन हुआ, **स्पष्टरूप से कहता है...** ऐसी भाषा तो है, परन्तु इसका अर्थ स्पष्टपने के दो अर्थ हैं—एक तो अपने को स्पष्टरूप से आत्मा ज्ञात हुआ है और स्पष्टरूप से कहता है। प्ररूपणा भी यदि उसकी हो तो ऐसा स्पष्ट कथन है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो धर्मकथा है, बापू! यह कोई वाता नहीं। यह तो हरिकथा है। आहाहा! हरि ऐसा जो भगवान आत्मा परमानन्द के असंख्यप्रदेश से भरपूर, प्रभु! ओहोहो! उसके क्षेत्र में अर्थात् कि उसके देश में अनन्तगुण का आनन्द भरपूर है, बापू! आहाहा! वह सागर उसका नहीं, ऐसा कहते हैं। यहाँ सागर है, कहते हैं। आहाहा! अनन्त गुण

का सागर प्रभु! आहाहा! जिसमें आनन्द के झूले में झूले। अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में सम्यग्दृष्टि झूला झूलता है। ऐसा यह तत्त्व है, कहते हैं। आहाहा! हींचके समझते हो न? झूले। आहाहा! इसीलिए तत्त्ववेदी कहा है न? आहाहा!

आचार्य ने—मुनिराज ने बहुत संक्षिप्त किया है। दिगम्बर सन्त हैं। भावलिंगी परमेश्वर के पद में सम्मिलित हैं। आहाहा! भाई! पाँच पद किसे कहना, यह अभी जानना मुश्किल है। समझ में आया? उन पाँच पद में सम्मिलित मुनिराज हैं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं के अन्दर वे आये हैं। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं 'हम' ऐसा शब्द है न '**ह्यस्माकं**' '**ह्यस्माकं**' हम। दूसरे ऐसे हैं, ऐसा नहीं, हम ऐसे हैं। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यघन, यह मेरी मौजूदगी और यह मेरा अस्तित्व और यह मेरा अस्तित्व, ऐसे मुझे, आहाहा! इस वस्तु के अतिरिक्त जितने भाव हैं, वे सब पुद्गल के हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं,... इन तीन शब्द में तो बहुत गहरा है। ऐसा जो तत्त्व का जाननेवाला जीव और जागृतरूप से उसे वेदन करनेवाला जीव। आहाहा! और स्पष्टरूप से जाननेवाला ऐसा अर्थात् कि प्रत्यक्ष ऐसा तत्त्व है, वैसा जाननेवाला। मति और श्रुतज्ञान द्वारा भगवान शुद्ध जीवास्तिकाय है, ऐसा स्व के आश्रय से प्रत्यक्ष जानता है। आहाहा! समझ में आया? करने का हो तो यह है, बाकी थोथा है, कहते हैं। फिर भक्ति करे और व्रत करे, पूजा करे और अपवास करो, वह सब थोथा थोथा है। आहाहा! वह सब क्या कहलाये? तीर्थ की रक्षा करे। झांझरीजी! तीर्थ के मन्त्री हैं न ये? मक्षी। वह सब थोथा है, कहते हैं। वे सब विकल्प हैं, वे मुझमें नहीं। आहाहा! ऐई! स्वरूपचन्दभाई! मेरा जीवास्तिकाय स्वरूप, उसमें मैं यह हूँ, इसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ मुझमें है नहीं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी मुझमें नहीं। आहाहा! जिस भाव से पंच महाव्रत के विकल्प उठें, वह मुझमें नहीं, वह मेरे नहीं। आहाहा! समझ में आया? बापू! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्र का मार्ग है। वह जिनेन्द्र किसे कहना? आहाहा!

ऐसा जो तत्त्ववेदी... ओहोहो! सहजानन्द की मूर्ति प्रभु, उसका जिसे ज्ञान होकर

उसका जाननेवाला होकर उसका वेदनेवाला हुआ। आहाहा! वह जब स्पष्टरूप से कहे दुनिया को (कि) मार्ग यह है। जैसा जाना और अनुभव किया, वैसा मार्ग दुनिया को कहता है। तुमको पुण्य से धर्म होगा और यात्रा से होगा, व्रत से धर्म होगा, ऐसा धर्मी कभी कहता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दान से धर्म होगा पाँच-पच्चीस लाख खर्च करे तो। ऐई! शान्तिभाई! आहाहा! यह तत्त्व ऐसा है, ऐसा जाना है, जाना है स्पष्ट और वही बात उसके कथन में यह आती है, कहते हैं। चाहे जो बात करता हो, परन्तु उसके अन्दर में यह बात है, यह बात मुख्यरूप से आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ मुख्यरूप से कहा नहीं। यह तो तत्त्व की ऐसी ही बात करे, बस। समझ में आया? आहाहा! यह तत्त्व ऐसा है, ऐसा जाना, ऐसा वेदन किया, ऐसा कहा। कहने की बात प्ररूपणा में भी यही प्ररूपणा उसे आती है। आहाहा! देश की सेवा करो तो ऐसा होगा, भगवान की सेवा करने से कल्याण होगा, यह बात धर्मी के मुख में से यह कथन हो नहीं सकता। आहाहा! कितना समेटा है मुनिराज ने तो!

दो जगह तो आता है कि हमारे मुख में से परमागम झरता है। आहाहा! इसका अर्थ कि हम परमागम के जाननेवाले और वेदन—भानेवाले हैं। यह आया था न अन्दर, नहीं? परम आगम के अभ्यास द्वारा सिद्धि को पाते हैं, यह आया था। यह परम आगम अर्थात् यह अन्दर। भावज्ञान जो आत्मा का जो वह परम आगम। वाणी और अक्षर और पुस्तक, वह परमागम तो पर है। आहाहा! आया था न कहीं, नहीं? किसमें? इसमें ही आया था न? इसमें ही आया। यह रहा। आया। परमागम के अभ्यास द्वारा। यह ४७ में। ४७ गाथा, पृष्ठ - १००। १००-१०० पृष्ठ। दूसरा पैराग्राफ, तीसरी लाईन। निकला? बोलो देखकर, पोपटभाई!

मुमुक्षु : परमागम के....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, बस, आ गया। वे बहियाँ देखते हैं न वहाँ... यह है? **परमागम के अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को पाकर...** भाषा देखो, आहाहा! परम आगम, भावसूत्र जो है, इससे आत्मा को जाना और वेदन किया और उसके भावश्रुत के, भावज्ञान के अभ्यास द्वारा सिद्धपद को पाते हैं। समझ में आया? वे मुक्ति को पाते हैं। यह अपने आया था ४७ गाथा में।

ऐसा जो तत्त्ववेदी... ओहोहो! शब्द है न! '**व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी**' ऐसा शब्द है। '**इत्थं व्यक्तं वक्ति**' ऐसा प्रगटरूप से, स्पष्टरूप से '**वक्ति**' अर्थात् कहता है। परन्तु कहता है, उसके साथ जानता है और वेदता है, यह कहता है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग परमानन्द की प्राप्ति का उपाय। परमानन्द, मोक्ष अर्थात् परम आनन्द। 'अनन्त दर्शन, ज्ञान, अनन्त समाधि सुख' आहाहा! ऐसा परमआनन्द के लाभरूपी मोक्ष का जो उपाय, वह यह है। आहाहा! ऐसे जहाँ-तहाँ भटका करे न, सम्मेदशिखर से मिलेगा, शत्रुंजय से मिलेगा।

मुमुक्षु : यह तो एक बार गये हो तो मिले, यह तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मिले नहीं, लाख बार जा न वहाँ। 'एक बार वंदे जो कोई...' नहीं आता? अब नरक में एकाध गति में न जाये, उसमें क्या भला हुआ? फिर निगोद जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें तो आता है कि.... मोक्ष जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं मोक्ष। वह तो यहाँ महावीरकीर्ति आये थे न, तब उन्होंने कहा था। यहाँ चार दिन रहे थे। फिर कहे ऐसा कहा है। मेरे पास एक पुस्तक है सम्मेदशिखर की। जैसे उसमें है न उन्हें, शत्रुंजय माहात्म्य श्वेताम्बर में, उसी प्रकार यह सम्मेदशिखर का माहात्म्य है। क्या है कहा इसमें? इसमें ऐसा कहा है कि सम्मेदशिखर की यात्रा करे, वह ४९ भव में मोक्ष जाता है। (हमने कहा) यह वाणी वीतराग की नहीं, कहा। तब कहे नहीं... नहीं... नहीं... नहीं... बात तो,... परन्तु तुमने कहा कि ४९ भव में मोक्ष जाता है। पर के दर्शन से ४९ भव में मोक्ष जाये? अनन्त बार दर्शन किये सम्मेदशिखर के, अरे! समवसरण में भव भव पूजियो अनन्त तीर्थंकरों को, उससे क्या है? वह तो एक शुभभाव है। वह तो मुक्ति को विघ्न करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? पहले तो यह जाने कि इसमें... वीतराग की वाणी नहीं। जो, आत्मा-आश्रय के अतिरिक्त लाभ होता है और पर के आश्रय से आत्मा को लाभ होता है, (ऐसा कहे), वह वीतराग की वाणी नहीं। समझ में आया? आहाहा! अरे भाई! मूल चीज़ की प्राप्ति और उस मूल चीज़ का कथन अलौकिक बात है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आहाहा! उसे ऐसा कहा भाई उन लालचन्दभाई से, उसे स्पष्टरूप से जो कहे न। कहा, कहे नहीं अकेला। कहे अर्थात्... कहना अर्थात् क्या परन्तु वह तो? वह जाने, वेदन करे और कहे।

वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं। वह आत्मा **वह अति अपूर्व...** अति अपूर्व। सिद्धपद अभूत, भूत पर्याय में कभी हुई नहीं। ऐसी सिद्ध की, मोक्ष की पर्याय को (पाता है)। आहाहा! **वह अति अपूर्व...** अति अपूर्व। कभी मोक्ष हुआ है? आहाहा! ऐसा तत्त्व का वेदी, स्पष्ट वेदी और तत्त्व का स्पष्टरूप से कथन करनेवाला ऐसा वाचक वह होता है, ऐसा कहना है। समझ में आया? उसकी प्ररूपणा में भाषा ऐसी होती है। आहाहा! यह उसमें कहा है न आत्मावलोकन में मूहू-मूहू। मुनि तो वीतरागभाव को बारम्बार वीतरागभाव-वीतरागभाव का वर्णन करे। आहाहा! वह यह। जो आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी अस्ति का वेदन ज्ञान में आया, उसकी वाणी में भी यह वीतरागभाव ऐसे प्रगटे स्व के आश्रय से और उस वीतरागभाव से ही मुक्ति होगी, यह बात वह करे। आहाहा! कहो, समझ में आया? **वह अति अपूर्व...** ओहोहो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय तो बहुत बार पावे। वह प्राप्त है और ऐसा का ऐसा भी बहुत भव में रहे, परन्तु सिद्धपद तो कभी अपूर्वपद पाया ही नहीं। **वह अति अपूर्व सिद्धि (पद) को प्राप्त करता है।** कहो, समझ में आया? आहाहा! लो, यह एक श्लोक हुआ (गाथा) ५० का। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ५१ से ५५

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं॥५१॥

चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं॥५२॥

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी॥५३॥

सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि॥५४॥

ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं।
णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो॥५५॥

मिथ्याभ्रिपाय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है॥५१॥

चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है॥५२॥

जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो।
वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो॥५३॥

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है।
व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है॥५४॥

व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये।
चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये॥५५॥

गाथार्थः—[विपरीताभिनिवेशविवर्जितश्रद्धानम् एव] विपरीत अभिनिवेश * रहित श्रद्धान ही [सम्यक्त्वम्] सम्यक्त्व है; [संशयविमोहविभ्रमविवर्जितम्] संशय, विमोह और विभ्रम रहित (ज्ञान) वह [संज्ञानम् भवति] सम्यग्ज्ञान है।

[चलमलिनगाढत्वविवर्जितश्रद्धानम्] चलता, मलिनता और अगाढ़तारहित श्रद्धान ही [सम्यक्त्वम्] सम्यक्त्व है; [हेयोपादेयतत्त्वानाम्] हेय और उपादेय तत्त्वों को [अधिगमभावः] जाननेरूप भाव वह [ज्ञानम्] (सम्यक्) ज्ञान है।

[सम्यक्त्वस्य निमित्तं] सम्यक्त्व का निमित्त [जिनसूत्रं] जिनसूत्र है; [तस्य ज्ञायकाः पुरुषाः] जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को [अन्तर्हेतवः] (सम्यक्त्व के) अंतरंग हेतु [भणिताः] कहे हैं, [दर्शनमोहस्य क्षयप्रभृतेः] क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं।

[शृणु] सुन, [मोक्षस्य] मोक्ष के लिए [सम्यक्त्वं] सम्यक्त्व होता है, [संज्ञानं] सम्यग्ज्ञान [विद्यते] होता है, [चरणम्] चारित्र (भी) [भवति] होता है; [तस्मात्] इसलिए [व्यवहारनिश्चयेन तु] मैं व्यवहार और निश्चय से [चरणं प्रवक्ष्यामि] चारित्र कहूँगा।

[व्यवहारनयचरित्रे] व्यवहारनय के चारित्र में [व्यवहारनयस्य] व्यवहारनय का [तपश्चरणम्] तपश्चरण [भवति] होता है; [निश्चयनयचारित्रे] निश्चयनय के चारित्र में [निश्चयतः] निश्चय से [तपश्चरणम्] तपश्चरण [भवति] होता है।

टीकाः—यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।

प्रथम, भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है—विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप —ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति उत्पन्न हुआ चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित निश्चल भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है। विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव ही सम्यक्त्व है—ऐसा अर्थ है। संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। वहाँ, जिन देव होंगे या शिव देव होंगे (ऐसा शंकारूप), वह संशय है; शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय (अर्थात् बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय), वह विमोह है; अज्ञानपना (अर्थात् वस्तु क्या है

* अभिनिवेश=अभिप्राय; आग्रह।

तत्सम्बन्धी अजानपना) ही विभ्रम है। पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है। ऐसी भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है। उसमें, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। जो मुमुक्षु हैं उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण (सम्यक्त्वपरिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा, तद्ज्ञानमात्र (उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप) ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा और उसरूप से (अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से) अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र द्वारा अभूतपूर्व* सिद्धपर्याय होती है। जो परमजिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है। सहजनिश्चयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है; निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है।

इसी प्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दिपंच-विंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नाम के अधिकार में १४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

(अनुष्टुप्)

दर्शनं निश्चयः पुन्सि बोधस्तद्बोध इष्यते।
स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः॥

(दोहा)

आतम निश्चय दर्श है आत्मबोध ही ज्ञान।
आत्मलीनता चरित - इन त्रय मिल शिवपथ जान॥

श्लोकार्थः—आत्मा का निश्चय वह दर्शन है, आत्मा का बोध वह ज्ञान है,

* अभूतपूर्व=पहले कभी न हुआ हो; अपूर्व।

आत्मा में ही स्थिति वह चारित्र है—ऐसा योग (अर्थात् इन तीनों की एकता) शिवपद का कारण है।

गाथा - ५१ से ५५ पर प्रवचन

अब पाँच गाथायें आयीं। पाँच गाथायें हैं न?

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं॥५१॥

चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं॥५२॥

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी॥५३॥

सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि॥५४॥

ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं।
णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो॥५५॥

नीचे हरिगीत —

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है॥५१॥

चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है॥५२॥

यह सब व्यवहार की बात है।

जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो।
वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो॥५३॥

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है।
व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है॥५४॥

व्यवहारचारित्र और निश्चयचारित्र दोनों को मैं कहूँगा। आहाहा!

व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये।
चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये॥५५॥

आहाहा! **टीका** इसकी। टीका लेनी है न?

मुमुक्षु : गाथा का शब्दार्थ लिया जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा का शब्दार्थ लेते हैं, देखो, यह अन्वयार्थ लो, अन्वयार्थ। है न अन्वयार्थ?

विपरीत अभिनिवेश... अर्थात् अभिप्राय, उल्टा आग्रह, उससे **रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है;...** यह व्यवहारसमकित की बात है। यह किसे होता है? जिसे निश्चय हो उसे। निश्चय की बात बाद में करेंगे। विपरीत अभिप्राय। यह मोक्षमार्ग में यही आता है न बहुत? विपरीत अभिप्रायरहित ऐसा तत्त्वार्थश्रद्धान, व्याख्या में ऐसा आता है।

मुमुक्षु : तत्त्व की व्याख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह व्याख्या ही आती है उसमें।

विपरीत... उल्टे **अभिनिवेशरहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है;...** टीका में इसका स्पष्टीकरण करेंगे। **संशय, विमोह और विभ्रम रहित (ज्ञान) वह...** ज्ञान कैसा होता है उसका? संशय, विमोह और विभ्रमरहित, यह भी अभी व्यवहारज्ञान है। आहाहा! परन्तु जिसे निश्चयसम्यग्ज्ञान हो, उसे ऐसा ज्ञान होता है, ऐसा कहना है। आहाहा! और **वह सम्यग्ज्ञान है।** और **चलता, मलिनता और अगाढ़तारहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है;...** स्पष्टीकरण करेंगे टीका में। **हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव वह (सम्यक्) ज्ञान है।** व्यवहारज्ञान है। यह भी अभी व्यवहार। हेय-उपादेय दो प्रकार पड़े इसमें। उसे अभी व्यवहारसम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! ऐसे निश्चयसमकिती को ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा बतलाते हैं। आहाहा!

सम्यक्त्व का निमित्त... व्यवहार साथ में बतलाते हैं। यह व्यवहारसमकित का नहीं। अब यहाँ निश्चयसमकित है। उसका जो निमित्त **जिनसूत्र है...** व्यवहार बताते हैं न

वह उसके साथ यह जिनसूत्र। व्यवहारसमकित का आ गया। अब निश्चयसम्यग्दर्शन जहाँ है, उसे निमित्तरूप से जिनसूत्र होता है। वीतराग की वाणी, परमागम की वाणी उसे निमित्तरूप होती है। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ के अतिरिक्त, जिनेन्द्रदेव की वाणी के अतिरिक्त जितने दूसरे आगम नाम धराये या कहे, वे निश्चयसमकिती जीव को उनका निमित्त नहीं होता। आहाहा! परमेश्वर वीतराग जिनेन्द्रदेव के जो आगम, उनके श्रीमुख से निकली हुई वाणी, वह निश्चयसमकिती जीव को जिनसूत्र निमित्त होते हैं। आहाहा!

अब **जिनसूत्र है; जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को...** अर्थात् कि जो जिनसूत्र के जाननेवाले समकिती ज्ञानी हैं, वे **(सम्यक्त्व के) अंतरंग हेतु कहे हैं,...** आत्मज्ञान पानेवाले को, सम्यग्दर्शन पानेवाले को सम्यग्दृष्टि जीव को अन्तरंग हेतु, उसे उनका अभिप्राय जानना है तो अन्तरंग हेतु कहा है। आहाहा! है तो वह बाह्य, परन्तु उसके दो प्रकार करना है, इसलिए उन्हें अन्तरंग हेतु कहा है। आहाहा! लोगों को निवृत्ति से यह वाँचना, वह कहाँ है? बहियाँ जाँचना शाम-सवेरे देखना हो तो देखा करे। इतनी तम्बाकू आयी और इतनी तम्बाकू गयी, फलाना-ढींकणा। यह तो सेठ के नाम से कहा अभी। दूसरे को क्या कहे? सामने हो उसे कहे न! क्यों मलूकचन्दभाई! तुम्हारे क्या वह लड़कों को? घड़ी का। यह है और धूल है और वा है। आहाहा! एक दुकान में गये थे घड़ी में तुम्हारे था। कौन था वह? पूनमचन्द की बहू थी? घड़ी का बड़ा। पूनमचन्द की बहू खड़ी थी। वह वहाँ देखरेख (रखती है), दुकान में देखरेख वह रखती है। चरण करने गये थे। फिर १०० रुपये रखे थे। उसकी हैसियत कितनी? पूनमचन्द हो तो... यह तो जानने जैसी बात है। देखरेख पूरी दुकान की देखरेख। घड़ी सब बड़ी दुकान। दुकान है न? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जिनसूत्र त्रिलोक के नाथ की वाणी परमेश्वर की। दूसरे जो वाणी करे परमेश्वर के अतिरिक्त यह श्वेताम्बर के आगम, वह जिनसूत्र की वाणी नहीं। सम्यग्दृष्टि पानेवाले को उस वाणी का निमित्त नहीं होता। आहाहा! यह तो स्पष्ट है, बापू! बात ऐसी है। ऐसा स्वरूप है। बापू! किसी को—सम्प्रदाय को दुःख लगे... यह तो तत्त्व

ऐसा है। आहाहा! पुकार करके तो कहते हैं। पहले श्लोक रखा, उसकी यह बात अब वर्णन करते हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव को अन्तर आनन्द के अनुभव की दृष्टि में समकित हुआ। आहाहा! ऐसे भव के अन्त आये जहाँ, ऐसे सम्यग्दृष्टि को वीतराग परमेश्वर जिनेन्द्रदेव के मुख से निकले हुए आगम वे निमित्त होते हैं। समझ में आया? आहाहा! मुनि या समकिती कहे, वे उनका कहते हैं। वह सब जिनवाणी है। आहाहा! समझ में आया? और वह समकित प्राप्त जीव, धर्म को प्राप्त जीव, वे समकित प्राप्त करनेवाले को अन्तरंग हेतु कहे जाते हैं। है तो निमित्त बाह्य, परन्तु उन्हें अन्तरंग कहा।

क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं। जो निमित्त कहे समकिती, जो सम्यग्दृष्टि प्राप्त करनेवाले को समकिती निमित्त कहे, उस जीव को **दर्शनमोह का क्षयादिक है।** उसे या क्षायिक समकित है या उपशम है और या क्षयोपशम है। इसमें भी विवाद है सबको। ऐसा कि यह समकित पानेवाले की यह बात की है, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं है। हमारे हिम्मतभाई ने यह स्पष्टीकरण बहुत किया था तब। यह चलता था न! (संवत्) १९९९-९९ के वर्ष नहीं? ९९ में यह नियमसार चलता था। १५वीं गाथा नहीं? कारणपर्याय की। भाई थे तब, वे भिण्डवाले नन्दलालजी। ९९ में पौष महीने में थे और यह चलती थी वह १५वीं गाथा का न्याय। उसमें फिर यह गाथा आयी थी। उसमें दूसरे ऐसा अर्थ करते हैं कि सम्यक्त्व पानेवाले को जिनसूत्र निमित्त, परन्तु समकित पानेवाले को अन्तरंग में अन्तर हेतु दर्शनमोह का क्षय, क्षयोपशम और क्षायिक, ऐसा वे लोग कहते हैं। पानेवाले को, ऐसा कहते हैं। ऐसा यहाँ नहीं। पानेवाला तो समकित पाता है, उसका निमित्त कौन? कि जिनसूत्र। और उसका अन्तरंग हेतु निमित्त कौन? कि जिसे क्षायिकसमकित, उपशम और क्षयोपशम है, वह जीव इस समकित पानेवाले को अन्तरंग हेतु कहा जाता है। समझ में आया? यह बहुत अभ्यास करना पड़ेगा। ऊपर-ऊपर से कुछ हाथ आवे, ऐसा नहीं। आहाहा! अरे! ऐसा अवसर कब आवे, भाई? आहाहा! मनुष्यपने के एक-एक समय की कीमत धर्म के लिये, उसकी कीमत बहुत है। धर्म के लिये, हों! आहाहा!

श्रीमद् कहते हैं न कुछ, नहीं? भाषा कुछ कही है। मणि। मणिरत्न कुछ कहा

है। वह नहीं... कौस्तुभमणि, वह। यह कहा है उन्होंने। आहाहा! कौस्तुभमणि की कीमत की अपेक्षा... बहुत ऊँची चक्रवर्ती को वह होती है, उसकी कीमत की अपेक्षा मनुष्यपने का एक समय धर्म के लिये दुर्लभ है। आहाहा! संसारी के भोग और व्यापार के लिये नहीं। आहाहा! कौस्तुभमणि का दृष्टान्त दिया है। कौस्तुभमणि अलौकिक रत्न है। जिसकी अरबों की कीमत होती है। वह चक्रवर्ती के घर में होता है और वासुदेव को होता है।

जब श्रीकृष्ण कौसुम्बी वन में बाण लगा है न, तब उन्हें कौस्तुभमणि थी। वासुदेव, जिनके घर में हजारों देव सेवा करते। अन्त में स्थिति ऐसी हुई और उनके भाई थे, बड़े भाई ओरमान। वे जंगल में रहते थे। क्योंकि भगवान ने कहा हुआ नेमिनाथ भगवान ने कि यह... क्या नाम उसका? जरतकुमार। यह जरतकुमार के हाथ से इस प्रमाण देह छूटेगी। इसलिए बेचारा (जरतकुमार) जंगल में चला गया। अरर्र! आहाहा! जंगल में चला और भील के कपड़े ऐसे, जंगल में शिकार करे और उसमें जिन्दगी व्यतीत करे। आहाहा! उसमें कृष्णजी पधारे, वहाँ बलभद्र और वे दोनों, हों! आहाहा! उसमें वह जरासंघ (जरतकुमार) का बाण (लगा)। क्योंकि उत्तम पुरुष न, ऐसे पैर रखकर सोते थे। चकमक रत्न पैर में। ... पुरुष को। इसलिए रत्न जैसी आँख लगी कि यह कोई हिरण है। इसलिए उसने बाण मारा। सगे भाई हैं, पुरुषोत्तम पुरुष है। आहाहा! इसलिए फिर ऐसे नजदीक आते हैं वहाँ, अरे भाई! तुम कौन हो? हाय... हाय... जिसके लिये मैंने वन सेवन किया, वह यहाँ कहाँ मेरे अभाग्य से आ गया। आहाहा! फिर कहे, भाई! तू उलझ नहीं, बापू! तू पाण्डवों के पास जा। कौस्तुभमणि की बात है, इसलिए कहता हूँ। उनके पास ऊँचे में ऊँची कौस्तुभमणि बहुत ऊँची। वासुदेव और चक्रवर्ती को होती है, दूसरे को नहीं होती। तू यह ले जा। और पाण्डवों से कहना कि मैं इस प्रकार से आया हूँ, तुम मुझे सहायता करो। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि उस कौस्तुम्भमणि की कीमत की अपेक्षा भी मनुष्य के देह की एक समय की कीमत (अधिक है)। आहाहा! परन्तु वह धर्म के लिये, हों! कमाने के लिये और भोग के लिये और कीर्ति प्राप्त करने के लिये और बड़े मकान के हजीरा चिनाकर, बाहर में प्रसिद्ध होने के लिये... वह मनुष्य की कीमत नहीं। आहाहा!

कहते हैं, यहाँ तो सम्यग्दर्शन, आत्मा का दर्शन, अनुभव, उसमें निमित्त कौन होता है ? उपादान तो उसका है। निमित्त वीतराग की वाणी होती है। तीन लोक के नाथ परमागम की वाणी जिसे अर्थरूप निकली है और जिसे गणधर ने सूत्ररूप से गूँथी है। आहाहा! अपने यहाँ रखा नहीं था वह ? वाणी आयी है, सौभाग्य जिसे प्राप्त (हो)।

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि का....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दिव्यध्वनि का सौभाग्य प्राप्त हो समस्त जीवों को। दूसरा भी कुछ निकाला था, दो। आह्लाद। तीसरा वापस निकला आज। उस गाथा में आता है न ? जिनेन्द्र वाणी खिरती है। अमृतवाणी। उस कलश में। पहला कलश नहीं वह कान्ति ऐव। पहले कलश हैं न ? समयसार के पहले (प्रारम्भिक) कलश, उसमें आता है न! कितना है वह ? २६-२७।

भगवान कैसे हैं ? जो कान्ति से दसों दिशाओं को धोते हैं। ऐसी तो शरीर की कान्ति है भगवान की। सूर्य भी जिनके समक्ष गिनती में नहीं, ऐसा तो तेज है। **निर्मल करते हैं, अपने तेज द्वारा उत्कृष्ट तेजवाले सूर्यादिक के तेज को ढँक देते हैं। अपने रूप से लोगों का मन हर लेते हैं,...** यह तो ठीक। अब कहना है यह। जो, **दिव्यध्वनि-वाणी से (भव्यों के) कानों में (मानो कि) साक्षात् सुख-अमृत बरसाते हैं।** भाषा। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा लिखा है। देखो, २४ वें श्लोक में है। २४ में है। समझ में आया ? दिव्यध्वनि वीतराग की, जिनेन्द्रदेव की वाणी। कहते हैं कि **दिव्यध्वनि-वाणी से (भव्यों के) कानों में...** भव्य जो पात्र है, उसके कान में भगवान की वाणी पड़ती है। आहाहा! मानो कि **साक्षात् सुख-अमृत बरसाते हैं...** आहाहा! क्योंकि अमृत के भाव को कहते हैं, इसलिए वाणी मानो अमृतमय हो, ऐसा यहाँ कहा है। ऐसा कहा न ? 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरसमूल... वह वाणी तो वाणी है, परन्तु वाणी में वीतरागता की वर्षा बरसती है। आहाहा! अमृतमय भगवान आत्मा की दशा का वर्णन और वह कैसे प्राप्त हो, यह दिव्यध्वनि में आता है, कहते हैं। आहाहा! कानों में मानो साक्षात् अमृत हो, ऐसा सुख उत्पन्न करते हैं। देखो, यहाँ तो कहते हैं।

वाणी भव्यजीव को दिव्यध्वनि सुनते हुए... ऐसे तो अनन्त बार गया, परन्तु यह

तो ऐसा जीव लिया है कि जिसे सुनना सफल हुआ है। आहाहा! जिसने दिव्यध्वनि सुनी, मानो अमृत आता हो कान में। अमृत प्रवाहित होता हो, ऐसी वाणी है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह यहाँ अपने कहना है, देखो!

(सम्यक्त्व के) अंतरंग हेतु... पहला तो **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों...** अर्थात् जिनसूत्र। निमित्त तो एक जिनसूत्र, परन्तु जिनसूत्र यह। दिव्यध्वनि से आया हुआ उपदेश सूत्र आगम, वह निमित्त है। आहाहा! और **जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों...** अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव, वे **(सम्यक्त्व के) अंतरंग हेतु कहे हैं,...** समकित पानेवाले को समकिती जीव अन्तरंग हेतु कहे हैं। अन्तरंग निमित्त। समझ में आया? आहाहा! **क्योंकि...** सम्यग्दृष्टि जीव जिसे यहाँ समकित पानेवाले को अन्तरंग निमित्त कहा, वह जीव। दर्शनमोह आदि है न? **उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं।** इसका अर्थ वे बदलते हैं कि वह तो समकित पानेवाले को दर्शनमोह के क्षयादि की बात है। वे अन्तरंगहेतु कहे हैं सही न, और ऐसा दूसरी जगह आता है। अन्तरंग हेतु। परन्तु यहाँ यह बात नहीं। यहाँ तो पूर्णानन्द का नाथ जहाँ समकित पाता है, उसे जिनसूत्र बाह्यनिमित्त है और समकिती जीव, वे अन्तरंगनिमित्त हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? दो बातें ली—वीतराग की वाणी शब्द जो हैं, वह जो समकिती कहता है, वह बाह्यनिमित्त है और ज्ञानी का जो अभिप्राय है, उसे यहाँ अन्तरंगनिमित्त कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा सब। कितनी अटपटी बात है!

सुन, मोक्ष के लिए सम्यक्त्व होता है,... है न? शब्दार्थ। मोक्ष के लिये समकित होता है। **सम्यग्ज्ञान होता है, चारित्र (भी) होता है; इसलिए मैं व्यवहार और निश्चय से चारित्र कहूँगा।** व्यवहारचारित्र कैसा, उसे कहूँगा; निश्चयचारित्र कैसा, उसे मैं कहूँगा। **व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण होता है;...** अर्थात् छठवें गुणस्थान में व्यवहार विकल्प पंच महाव्रतादि का भाव, वह व्यवहारनय का तपश्चरण अर्थात् मुनिपना, वह व्यवहार से होता है। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहितवाले को, उसकी बात है। जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए हैं उसे, उसका व्यवहार ऐसा होता है। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के परिणाम ऐसा उसे

व्यवहारनय का व्यवहारचारित्र होता है। आहाहा! इसलिए ऐसा नहीं समझना कि यह व्यवहारचारित्र है, वह समकित बिना भी होता है। ऐसा अर्थ नहीं है। आहाहा! मात्र निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवन्त को निश्चयमुनिपना है, वह निश्चयचारित्र है और उस भूमिका में जो व्यवहारचारित्र है तो व्यवहारनय से वह (व्यवहारचारित्र) है। आहाहा! अरेरे! ऐसा। है?

व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण... तपश्चरण अर्थात् मुनिपना। और **निश्चयनय के चारित्र में निश्चय से तपश्चरण होता है।** वह मुनिपना उसकी दोनों की व्याख्या करेंगे नीचे। जिसे भगवान आत्मा के अन्तर में निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयज्ञान और निश्चयचारित्र, वह निश्चयमुनिपना और निश्चयसाधुपना। और उस भूमिका में पंच महाव्रतादि के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान, नौ तत्त्व आदि की श्रद्धा, वह व्यवहारचारित्र है। पंच महाव्रत के परिणाम आदि व्यवहारचारित्र। उसे परन्तु, हों! सच्चे मुनि को। अज्ञानी को व्यवहार कैसा? जिसे अभी पुण्य से धर्म होता है, देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ, ऐसा माननेवाले मिथ्यादृष्टि को तो व्यवहार और निश्चय एक भी नहीं।

मुमुक्षु : निश्चय हो तो व्यवहार हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। यह कहेंगे। दोनों कहेंगे।

टीका:—यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है। है? दोनों। निश्चय स्वाश्रय, व्यवहार पराश्रय, दोनों का कथन इसमें है। आहाहा! अब पहले व्यवहार की व्याख्या करते हैं। **प्रथम, भेदोपचार-रत्नत्रय...** भेद-उपचार अर्थात् व्यवहार। अभेद-अनुपचार, वह निश्चय। समझ में आया? वस्तु की अन्तर वस्तु का, यह पहले कहा न जीवास्तिकाय पूर्ण, उसके अन्तर में अन्तर्मुख होकर उसकी प्रतीति सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान और उसमें स्थिरता, वह अभेद अनुपचार मोक्षमार्ग है अर्थात् कि वह निश्चयमोक्षमार्ग है अर्थात् कि वह निश्चयमुनिपना है और उसे यह भेदोपचार अर्थात् व्यवहार (होता है)।

प्रथम, भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है—विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत... व्यवहार है सही न। निश्चय साक्षात् हेतु।

व्यवहार परम्परा हेतु समकिती को कहा जाता है। आहाहा! **विपरीत अभिनिवेश...** अर्थात् अभिप्राय **रहित...** अभी तो यह व्यवहारश्रद्धा की बात चलती है, हों! उसमें भी विपरीत अभिनिवेशरहित होता है उसे। आहाहा! **ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत...** मुक्ति का परम्परा कारण। सिद्धपद, मोक्षपद आनन्द का नाथ पूर्ण दशा की प्राप्ति, उसका यह व्यवहार समकित परम्परा हेतु कहा जाता है। क्योंकि उसे टालकर फिर स्थिर होगा। यह **परम्पराहेतुभूत भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति...** तीन लोक के नाथ और परमेश्वर पाँच—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। यह वे कौन हैं, यह पाँच पद! आहाहा! जो निश्चयरत्नत्रय प्राप्त है और छद्मस्थ आचार्य आदि को व्यवहार भी है। केवली को, सिद्ध को तो अकेला निश्चयस्वरूप है। आहाहा!

भगवन्त पंच परमेष्ठी... व्यवहारसमकिती को क्या होता है? कहते हैं। निश्चयसमकितवन्त को व्यवहारसमकित में **भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित...** यह तीन दोष हैं चल, मलिन आदि, यह स्पष्टीकरण करेंगे। **उत्पन्न हुआ निश्चल भक्तियुक्तपना,...** निश्चल, चलित नहीं ऐसी परमात्मा पंच परमेष्ठी की भक्ति, ऐसा शुभराग। आहाहा! समझ में आया? **वही सम्यक्त्व है।** व्यवहार **विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव...** जगत में सर्वव्यापक है और कोई कर्ता है, ऐसा माननेवाले और ब्रह्मादि के माननेवाले, जगत को ब्रह्म उत्पन्न करता है ऐसा। उनके कथित जो पदार्थ **विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश (-आग्रह) का अभाव...** है। व्यवहारसमकित में उसकी श्रद्धा का अभाव है। आहाहा! **वही सम्यक्त्व है—ऐसा अर्थ है।**

निश्चय सत्य मुनिपना है, स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई दर्शन, ज्ञान और चारित्रदशा है, उसे पराश्रय का व्यवहारसमकित ऐसा होता है। है तो पराश्रय, परन्तु पराश्रय में परमेष्ठी की, भगवन्त पंच परमेष्ठी भगवन्तों का आश्रय, वह शुभभाव है। आहाहा! समझ में आया? उसे व्यवहार ऐसा होता है। समकिती कहे, हम समकिती हैं और माने फिर दूसरे चाहे जिसे। ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान)...** इसका स्पष्टीकरण करेंगे, हों! **संशय, विमोह और**

विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। व्यवहार। **वहाँ, जिन देव होंगे या शिव देव होंगे, (ऐसा शंकारूप), वह संशय है;...** आहाहा! यह जिसे नहीं होता। वह व्यवहारसमकित कहा जाता है। आहाहा!

शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय... बुद्धि। शाक्य अर्थात् बौद्ध। बौद्ध आदि के कहे हुए में। आहाहा! देखो, वह अभी चिमन चकु ने डाला है। दोनों मोक्ष में गये। बौद्ध मोक्ष में गये हैं और महावीर मोक्ष में गये हैं। गजब करते हैं! कोई सामने देखनेवाला है? यह उसके प्रमुख स्थानकवासी के। है न भाई! तुम पहिचानते हो न? चिमनलाल चकु है न? उसका बड़ा लेख आया है। पहला लेख आया था वेदान्त का। वेदान्त, वह सत्य है। जैन को मान्य नहीं। ऐसा करके आया था। फिर इस बार यह आया है कि बौद्ध और महावीर दोनों मोक्ष पधारे हैं। यहाँ कहते हैं कि बौद्ध के कहे हुए वस्तु में निर्णय, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? उसे वह नहीं होता। व्यवहारसमकित, निश्चयसमकितवाले को व्यवहारसमकित में बौद्ध आदि के कहे हुए की श्रद्धा नहीं होती। आहाहा! ऐसा कि बौद्ध ने भी धर्म कहा है न! समकिती कहा, समाधि कही। ऐसे शब्द आवे। शब्द आवे तो क्या हुआ?

मुमुक्षु : णमो अरिहंताणं....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे बोलते हैं। उसमें क्या है? भाषा बोले तो क्या हो गया?

शाक्यादि... सर्वज्ञ के अतिरिक्त जितने मत के कहे हुए शास्त्र, उनका निर्णय, वह संशय है। वह व्यवहारसमकित में नहीं होता। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल २, रविवार, दिनांक ०७-०९-१९७५
गाथा-५१ से ५५, प्रवचन - २८

सम्यग्दर्शन होना, वह प्रथम धर्म की पहली सीढ़ी। आहाहा! इसके बिना ज्ञान भी सच्चा नहीं होता और इसके बिना चारित्र भी नहीं हो सकता। आहाहा! ऐसा जो निश्चयसम्यग्दर्शन स्व के अनुभव में प्रतीति, उसके साथ व्यवहारसमकित कैसा होता है, उसकी बात चलती है। ऐसा निश्चयस्वसंवेदनज्ञान, उसके साथ व्यवहाररूप ज्ञान कैसा होता है, उसकी बात चलती है। निश्चय अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र चरना-रमना आनन्द में रमे, ऐसा निश्चयचारित्र उसके साथ व्यवहारचारित्र कैसा होता है, उसकी व्याख्या है। समझ में आया? कितनी शर्तें और कितने बोल इसमें किसे याद रखना? इसकी अपेक्षा व्रत पालना और अपवास करना, हो गया जाओ। व्रत पाले तो संवर हो और अपवास करे तो निर्जरा हो। अज्ञानी ऐसा मानता है। आहाहा! यह तो अज्ञान में अनादि से ऐसा तो इसने माना है। आहाहा! यह आत्मा, वह व्रत और अव्रत या पुण्य-पाप के भाव से रहित स्वरूप उसका है। उसकी जब तब दृष्टि सम्यक् अन्तर अनुभव से न हो, तब तक उसे व्रत और चारित्र एक भी होता नहीं। बिना एक के शून्य हैं सब। आहाहा! गजब बात यह तो, भाई! इसलिए यहाँ कहते हैं कि यह रत्नत्रय का स्वरूप अर्थात् निश्चय और व्यवहार। उसमें पहले भेदरत्नत्रय अर्थात् व्यवहार **इस प्रकार है—विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप —ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत...** व्यवहारसमकित, वह शुभराग है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु निश्चय...

मुमुक्षु : बात तो करो....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म नहीं। निश्चय जो आत्मा का निर्विकल्प अनुभव उसमें जो प्रतीति आनन्द का स्वाद... मुक्ति के परम्परा हेतु। व्यवहार है न?

भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति... परमात्मा पंच परमेष्ठी—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य,

उपाध्याय, साधु सच्चे, ऐसे **पंच परमेष्ठी के प्रति चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित निश्चल भक्तियुक्तपना...** चलित नहीं, ऐसी व्यवहार से भक्ति भगवान की भी। आहाहा! उसे यहाँ व्यवहारसमकित अर्थात् रागभाव कहा जाता है। आहाहा! **निश्चल भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है।** यह व्यवहार अर्थात् शुभराग। आहाहा! **विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह...** विष्णु तथा ब्रह्मा आदि से कहे हुए तत्त्व, उनके **अभिनिवेश का अभाव...** उनका जिसे आग्रह छूट गया है। आहाहा! **वही सम्यक्त्व है—ऐसा अर्थ है।** इस ओर अस्ति से लिया, यहाँ नास्ति से लिया। अभी व्यवहार में यह, हों! आहाहा! कहाँ निवृत्ति लोगों को। दो घड़ी निवृत्ति घण्टे भर हो, सुनने जाये, उसमें ऊपर बात करे, उसे जय नारायण। अरेरे! जिन्दगी जाती है, भाई! मनुष्यपना ऐसे चला जाता है और आँख मिचेगी तो कहीं उड़कर जायेगा भटकता हुआ। आहाहा! जैसे आँधी में तिनका। वंटोळियो समझते हो? बबूला। आँधी का तिनका उड़कर कहाँ जाये? उसी प्रकार जिसे अभी सम्यग्दर्शन नहीं, उसकी श्रद्धा का भान नहीं, ऐसे भले व्रत पालते हों, तपस्या करते हों, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव भटककर कहाँ पड़ेगा चार गति में? आहाहा! समझ में आया?

उसे यहाँ भटकने के बन्द का उपाय बताते हैं कि जिसे भगवान आत्मा... कहेंगे, अभेद का बाद में कहेंगे। अभेद अनुपचार है न? यह ज्ञायक जिसका स्वभाव। भगवान आत्मा का तो जानना-देखना, यही स्वभाव, बस। राग का करना या राग का छोड़ना, वह वस्तु में है नहीं। आहाहा! ऐसा ज्ञान का पिण्ड प्रभु, ज्ञान की गाँठ आत्मा है। आहाहा! इसकी खबर नहीं होती। ऐसा जो ज्ञायकस्वभाव, उसके अन्तर में स्वसन्मुख होकर सम्यक् प्रतीति, सम्यक् होना, उसे सच्चा सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसे व्यवहारसमकित कैसा होता है, उसकी बात चलती है। समझ में आया?

कहते हैं, **भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है। विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह...** उन्होंने कहे हुए अभिनिवेश का जिसे अभाव हो तो वह सम्यक् व्यवहारसमकित है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! परन्तु यह भी सच्चा और यह भी सच्चा (-ऐसा मानता हो) उसे तो मिथ्यात्वभाव है। व्यवहारमिथ्यात्वभाव, हों! निश्चय (मिथ्यात्व) तो है, परन्तु व्यवहार (मिथ्यात्वभाव है)। आहाहा! समझ में आया? अब ज्ञान की बात करते हैं।

संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। यह व्यवहारज्ञान अभी, हों! निश्चय जिसे आत्मा वेदन सम्यग्दर्शनसहित ज्ञान में से ज्ञान का वेदन आया हो, ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें से ज्ञान की दशा आयी हो, वह सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! (ऐसे) जीव को व्यवहारज्ञान कैसा होता है? ऐसे जीव को, हों! आहाहा! **जिन देव होंगे या शिव देव होंगे...** भगवान सर्वज्ञ परमात्मा वे देव होंगे? या यह शंकर, ब्रह्मा और विष्णु, वे देव होंगे? आहाहा! **(-ऐसा शंकारूप भाव)...** उससे रहितभाव, वह व्यवहारज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? यह अम्बाजी और जहाँ-तहाँ सिर फोड़ते हैं न, नहीं वहाँ? ऐई! आहाहा! कुछ भान नहीं होता। बुत कौन और माता कौन? अम्बाजी कौन? सब अज्ञानी की भ्रमणा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे की गिनती यहाँ है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिन परमेश्वर तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव जिसके ज्ञान में ज्ञात हुए हैं कि ऐसे देव होते हैं। व्यवहार की बात है अभी यह, हों! यह शिव देव होंगे या भगवान सच्चे होंगे? **यह संशय है...** वह सम्यग्दृष्टि निश्चयवन्त को व्यवहार में ऐसा संशय उसे नहीं होता। आहाहा! **शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय (अर्थात् बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय), वह विमोह है;...** वि-मोह, विशेष मोह मिथ्याभ्रम है। बौद्ध ने कहे हुए। आहाहा! समझ में आया? यह कहा था। कल आया था न! जैनप्रकाश में आया था। चिमन चकु ने (लिखा था) कि बौद्ध और महावीर दोनों मोक्ष पधारे हैं। अरर्र! यह क्या करते हैं? आहाहा! बौद्ध भी मोक्ष गये हैं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि उन बौद्ध की कही हुई वस्तु का निर्णय, वह मूढ़ता है। आहाहा! समझ में आया? बुद्ध आदि कहा है न? फिर वह बौद्ध आदि जो अज्ञानी सब। जिसे देव, वेदान्त आदि के कहे हुए तत्त्वों का निर्णय अन्दर जिसे रहे, वह विमोह-मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

अज्ञानपना। वस्तु क्या है, उस सम्बन्धी अनजान। अपने को कुछ खबर पड़ती नहीं। आहाहा! एक ऐसा कहे, एक ऐसा कहे, उसमें किसका मानना हमारे? अपने को कुछ खबर पड़ती नहीं। ऐसे जो अज्ञानी। आहाहा! विभ्रम है। विभ्रम अध्यवसाय।

आहाहा! कुछ अपना मस्तिष्क काम करता नहीं, बापू! यह सच्चा होगा या यह सच्चा होगा, ऐसा जो विभ्रमभाव, उससे रहित व्यवहारज्ञान उसका सच्चा होता है। आहाहा! सर्वज्ञ कथित शास्त्र, वे दिगम्बर शास्त्र, वे शास्त्र भगवान के कहे हुए हैं। इसके अतिरिक्त दूसरे शास्त्र वे भगवान के कहे हुए नहीं।

मुमुक्षु : शास्त्र का ही अर्थ पण्डित भी करते हैं और आप भी करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ करते हैं। भान बिना के अर्थ करे, उसमें क्या? निश्चय उसका अर्थ क्या है, उसके (ज्ञान) बिना अर्थ करे अर्थात्? अंग्रेजी और गुजराती में लिखा हो और बालक दूसरा अ, आ, उ ऐसा वाँचे। उसे तो कोई शब्द के साथ सन्धि कैसे करना, उसकी भी खबर उसे नहीं होती। कहा था न, बा-ज-रो। यहाँ पालीताणा में दरबार गुजर गये। फिर एक गोरा आया। क्या कहलाता है? अंग्रेज, उसकी व्यवस्था करने। गुजर गये थे मानसिंहजी। मानसिंहजी बाद में थे। पहले... यह हमने देखा है अंग्रेज को। गारियाधार आया था घोड़े पर चढ़कर। मैं गारियाधार था। यह तो १२-१३ वर्ष की उम्र की बात है। तब उस अंग्रेज को कुछ खबर नहीं। बा...ज...रो... के...वो... पाक्यो छे? ऐसा बोलता। बा...ज...रो... ऐसा बोलता। बा-जरो। उसे यह भाषा गुजराती की क्या खबर? व्यवस्था करने आया था। वह दरबार गुजर गये न। बहादुरसिंहजी छोटे थे तब। ... वहाँ देखा था। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अज्ञानी जो गुरु जो बुद्ध आदि, उनके कहे हुए पदार्थ कैसे होंगे? अपने को कुछ खबर पड़ती नहीं। उनकी बात सच्ची होगी? या यह जिनेन्द्र कहे वह सच्ची होगी? और उन्हें माननेवाला लाखों-करोड़ों लोग हैं न! तो कुछ होगा या नहीं उसमें? ऐसे अज्ञानी को अजानपना, वह विभ्रम है। आहाहा! अज्ञान है। वह ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? और **पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है।** व्यवहार। सावद्ययोग के परिणाम, अशुभ परिणाम का त्याग और शुभ परिणाम का होना, उसे व्यवहारचारित्र का आरोप कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभ का नम्बर आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका नम्बर उसमें है, ऐसा बतलावे नहीं? निश्चय हो, वहाँ

व्यवहार ऐसा होता है, दूसरा व्यवहार होता नहीं। कुदेव, कुशास्त्र की श्रद्धा नहीं होती। सेठ! बड़े हो वहाँ बैठावे जहाँ-तहाँ। जय नारायण करना पड़े वहाँ। व्यवहार में गड़बड़ है, ऐसा कहते हैं। निश्चय तो उसे होता ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मुख्य नहीं, यह तो यहाँ बड़े सेठ इसलिए... ऐसा सुना था कोई अन्यमति में सामने बैठाया था। ऐसा सुना था। क्या होगा वह तो उसे खबर है। पैसेवाले व्यक्ति और कुछ पैसा देंगे महत्तारूप से। जय नारायण तो करना पड़े। जाकर ऐसे के ऐसे बैठा रहा जाता है? समझ में आया? पोपटभाई! यह मार्ग नहीं। आहाहा! अरे! जन्म-जरा-मरणरहित होने का मार्ग, अन्तर का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह। और उसके साथ बहिर् श्रद्धा, बहिर ज्ञान ऐसा होता है, उसके साथ अशुभ परिणाम के त्याग के शुभभाव का व्यवहारचारित्र ऐसा होता है, यह बात बतलाते हैं। आहाहा! वह आदरणीय नहीं, परन्तु आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

ऐसी भेदोपचार- अर्थात् व्यवहार। **रत्नत्रय...** अर्थात् व्यवहारसमकित, व्यवहारज्ञान और व्यवहारचारित्र, वह शुभभाव की **परिणति है।** उसकी पर्याय में दशा ऐसी है शुभभाव की। आहाहा! **उसमें, जिनप्रणीत....** वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ ने जो **हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान कहा...** यह हेय-उपादेय का ज्ञान है, वह भी व्यवहारज्ञान है। आहाहा! वह छोड़नेयोग्य है, यह आदरनेयोग्य है, वह सब व्यवहार है, कहते हैं। आहाहा!

इस सम्यक्त्वपरिणाम का... यह अर्थात् अब तो निश्चयसमकित की बात है इसमें। यह रत्नत्रय है न, ऊपर कहा था। अब उस रत्नत्रय में से **सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव वीतराग सुखामृत के पूर्ण अनुभवी। आहाहा! उनके मुख से निकली हुई जो वाणी, उसे सूत्र कहा जाता है। **प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप...** उसे द्रव्यश्रुत कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मुख से निकली हुई वाणी, उसे द्रव्यश्रुत कहा जाता है। अज्ञानी ने कल्पित करके आगम बनाये, उसे द्रव्यश्रुत भी नहीं कहा जाता। आहाहा!

भारी कठिन बात, बापू! आहाहा! हित की बात तो ऐसी है, भाई, बापू! आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मुख से निकली हुई वाणी, उसे यहाँ द्रव्यश्रुत कहा जाता है। आहाहा! वह **द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** बाह्यसहकारीकारण। सम्यग्दृष्टि जीव को, धर्मी को वीतराग की वाणी जो है, वह बाह्यनिमित्तरूप होती है। आहाहा! वीतराग की वाणी के अतिरिक्त बाह्यनिमित्त दूसरा हो नहीं सकता। आहाहा! अनजाने व्यक्ति को तो भारी कठिन पड़े, ऐसा लगे। परिचय नहीं होता सत्य का, कुछ अभ्यास नहीं होता। ऐसी की ऐसी जिन्दगी जगत के पाप की मजदूरी करके जिन्दगी व्यतीत करे। स्त्री, पुत्र सम्हालना, व्यापार करना, धन्धा करना, वह सब मजदूरी पाप की करके जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

आत्मा में मेरा क्या करना? मेरा कैसे होगा? इसकी दरकार नहीं। आहाहा! मैं कहाँ जाऊँगा मरकर? क्योंकि आत्मा तो नित्य है। शरीर नाश होगा तो आत्मा नाश होगा? वह आत्मा तो कहीं जायेगा। कहाँ जायेगा? तो जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व में है तो वह मिथ्यात्व में रहेगा भविष्य में। आहाहा! और ऐसे भावसहित नरक और तिर्यंच में निगोद में रहेगा वह। आहाहा! मनुष्य के भव उसे स्वप्न जैसे हो जायें, बापू! आहाहा! यह तो पाँच-पचास वर्ष की जिन्दगी। बहुत तो पिचहत्तर, अस्सी, लो न! आहाहा!

जिसे वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी किसे कहना, उसकी जिसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो सम्यग्दृष्टि जीव को, धर्म अन्तर में सम्यक् अनुभव प्रतीति हुई है, उसे बाह्यसहकारी निमित्त हो तो वीतराग सर्वज्ञ के मुख से निकली हुई वाणी निमित्त होती है। आहाहा! समझ में आया? बहुत गड़बड़ चली है न! पहले समझना कठिन पड़े ऐसा है, क्या हो? भगवान के श्रीमुख से निकली हुई यह वाणी है। आहाहा! परमात्मा विराजते हैं सीमन्धर भगवान। पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। महाविदेह है ऐसा। आहाहा! समवसरण है। इन्द्र, नाग और बाघ और इन्द्र आते हैं उनकी सभा में। वह वर्तमान मनुष्यक्षेत्र में परमात्मा विराजते हैं। जिन्हें जीवन्तस्वामी कहते हैं, जीवते स्वामी। महावीर भगवान आदि तो सिद्ध में गये, मोक्ष गये, वे तो मोक्ष पधारे। वे कहीं अब यहाँ मनुष्यपने में हैं नहीं। वे तो सिद्धपद णमो सिद्धाणं

हो गये। ऐसे यह णमो अरिहंताणं में हैं। आहाहा! जीवते स्वामी उन्हें कहते हैं। जीवन्तस्वामी।

कहा था न एक बार? हम गये थे बयाना में। बयाना है न हिन्दुस्तान? यहाँ की सीमन्धर भगवान की प्रतिमा स्थापित की। यहाँ हुआ वह बाहर बात आयी कि यहाँ सीमन्धर भगवान नहीं न? चौबीस तीर्थंकर में से नहीं और सीमन्धर भगवान की क्यों स्थापित की? इसलिए फिर ऐसा का ऐसा पूजा करते। बयाना है वहाँ। साथ में सब थे। भाई थे। प्रभुभाई घीया-घीया करोड़पति साथ में थे। बहुत अधिक लोग पाँच सौ लोग थे। सीमन्धर भगवान की प्रतिमा के नीचे नाम लिखा था जीवन्तस्वामी। परन्तु आड़ी दूसरी प्रतिमायें थीं, इसलिए वाँचा नहीं जा सकता था। फिर एक व्यक्ति ने वह निकालकर वाँचा कि यह तो जीवन्तस्वामी। ये कौन? सीमन्धर भगवान की पाँच सौ वर्ष पहले की प्रतिष्ठा की हुई। जीवन्तस्वामी कौन? अरे! जीवन्तस्वामी बापू जीवते प्रभु हैं। तीर्थंकरदेव महाविदेहक्षेत्र में पाँच सौ धनुष का देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। चिल्लाहट मचा जाये ऐसा है लोग। एक पूर्व में ७० लाख करोड़ और ५६ हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व। ऐसे करोड़ पूर्व का आयुष्य प्रभु का है। आहाहा! समझ में आया? उन भगवान की वाणी ऐसी है। वह ऐसा कहते हैं, प्रभु! कि जिन की वाणी के अतिरिक्त समकिती को बाह्यसहकारीकारण दूसरा नहीं हो सकता। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! यह सब क्या करने गये काल का? आहाहा!

द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। देखा! वह द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान व्यवहार। बाह्यसहकारी। भगवान की वाणी वह अन्दर, मुख से नहीं बोलते वे। भगवान तीर्थंकर पूर्ण परमात्मा हैं। उन्हें ऐसे बोलते हैं, वैसे उन्हें नहीं होता। उन्हें कण्ठ काँपता नहीं, होंठ हिलते नहीं और पूरे शरीर में से ॐ ध्वनि उठती है। उसमें सब शास्त्र आ जाये। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे' भगवान की ॐ ध्वनि सुनकर जहाँ सन्त-गणधर मुनि जो चार ज्ञान के धनी, वे उनके अर्थ को सूत्ररूप गूँथते हैं। आहाहा! ऐसे सूत्र को समकिती सच्चे जीव को बाह्यसहकारी निमित्त हो तो यह सूत्र निमित्त होते हैं।

समझ में आया? आहाहा! श्वेताम्बर के शास्त्र, वे भगवान के कहे हुए नहीं। वे तो उन्होंने सब कल्पित बनाये हैं। भाई! कठिन पड़े, प्रभु! वाडा में कितने ही भव व्यतीत किये हों। आहाहा! उसे ऐसा लगे कि यह क्या है? भाई! मार्ग तो ऐसा है, बापू! आहाहा! जिनेश्वरदेव के कहे हुए सूत्र का ज्ञानी, धर्मी जीव का बाह्यनिमित्त उसे होते हैं। उन्हें बाह्य दूसरा निमित्त हो वीतराग की वाणी के अतिरिक्त, ऐसा हो नहीं सकता। आहाहा! एक बात।

जो मुमुक्षु हैं... अब कहते हैं कि जो जीव दूसरे समकिती हैं, ज्ञानी हैं, सन्त हैं, मुमुक्षु हैं। **उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** आहाहा! सूक्ष्म बात है थोड़ी, भाई! वीतराग की वाणी बाह्यसहकारी कहा। और इन धर्मात्मा का जो अभिप्राय उन्हें है तो वे बाह्य, इसलिए कहा न देखो, जो मुमुक्षु हैं, **उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के...** है तो वह व्यवहार और बाह्यनिमित्त, परन्तु उन ज्ञानी को जो कहना है, शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा है, उसका भान वह समकितदर्शन है। उसमें स्थिरता, वह चारित्र ऐसा जो भगवान की वाणी का अभिप्राय, जिसे अन्दर परिणमा है, ऐसे जीव समकित पानेवाले को, समकिती जीव को अन्तरंग हेतु कहे गये हैं। आहाहा! है तो बहिर हेतु, परन्तु उपचार से अन्तरंगहेतु कहे हैं। है न? देखो, **उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** क्योंकि जो समकिती जिस पदार्थ की बात करे, वह यथार्थ करते हैं। आहाहा! ऐसे **पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** समकिती जीव, ज्ञानी जीव, दूसरे को समकिती जीव को भगवान की वाणी बाह्यसहकारी निमित्त और धर्मात्मा जो है, उस समकिती जीव को अन्तरंग हेतु उपचार से कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? बापू! मार्ग वीतराग का जिनेन्द्रदेव का मार्ग कोई अपूर्व है! उसे एक सेकेण्ड भी अनन्त काल में कभी इसने रुचिपूर्वक सुना नहीं। आहाहा! भगवान को क्या कहना है और उनकी वाणी में सार क्या आता है, वह इसने सुना नहीं। अरेरे!

यहाँ कहते हैं। यह मुमुक्षु है अर्थात् वह समकिती, समकितवाला यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो समकिती दूसरा जीव। मुमुक्षु अर्थात् दूसरा जीव समकिती, ज्ञानी,

चारित्रवन्त हो, वह मुमुक्षु है, उनको भी उपचार से समकिती जीव के पदार्थ के निर्णय के निमित्तभूत होने से उपचार से अन्तरंग हेतु कहा गया है।

मुमुक्षु : भगवान की वाणी और ज्ञानी का अभिप्राय।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिप्राय दो हैं। उसका जोर यहाँ दिया है। अभिप्राय क्या है? उसका आशय क्या है? हार्द क्या है? हृदय क्या है? मर्म क्या है? आहाहा! ऐसा जो ज्ञानी का अभिप्राय, वह समकिती जीव को अन्तर हेतु उपचार से-व्यवहार से कहा गया है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं। किसे? जो समकिती जीव दूसरा है, समकिती जीव को अन्तरंग हेतु दूसरा जीव है, उस जीव को दर्शनमोह का क्षयोपशम, क्षय होता है। ऐसे जीव का अभिप्राय अन्तर हेतु समकिती को कहा जाता है। आहाहा! ऐई! जयन्तीभाई! सुना न हो, ऐसा का ऐसा दिये रखे। पोषण करो, सामायिक करो और प्रतिक्रमण करो... आहाहा! वह धर्म और दानादि करना, वह पुण्य। आहाहा! धूल भी धर्म नहीं, सुन न! तेरे सामायिक और प्रौषध और प्रतिक्रमण में तो राग की मन्दता हो तो मिथ्यात्वसहित पुण्य शुभभाव है। आहाहा! मार्ग ऐसा, बापू! यह तो भगवान के मार्ग का रहस्य यह है और सन्तों-ज्ञानियों ने ऐसा कहा है। ऐसे अभिप्राय को, सम्यग्दृष्टि, धर्मी जीव को उसका अभिप्राय उपचार से अन्तरंग हेतु है; है तो वह भी बाह्य, परन्तु अधिक जोर देने के लिये, उसे अन्तरंग हेतु उपचार से कहा है। आहाहा!

जहाँ जन्म-मरण का अन्त लाना है। आहाहा! भवसिन्धु चौरासी के समुद्र में भटकता है अनादि से, भाई! इसे खबर नहीं। आहाहा! यह चौरासी के अवतार निगोद के आलू, शकरकन्द, लीलफूग (अर्थात्) काई, एक श्वास में अठारह भव करे, ऐसे तो अनन्त बार किये वहाँ। आहाहा! भूल गया। कुछ मनुष्य हुआ और पंचेन्द्रिय ठीक मिली। उसमें स्त्री, पुत्र कुछ ठीक मिले और उसमें पाँच-पचास लाख पैसे मिले और हजीरा (बँगला) हो दो-चार बड़े। हजीरा अर्थात् यह बड़ा मकान। हजीरा समझते हो? लोटिया वोरा को गाड़े, उसे हजीरा कहते हैं। जामनगर में हजीरा है। जामनगर है न? नदी के किनारे हजीरा है। लोटिया वोरा होते हैं न। लोटिया वोर नहीं समझते? वह

टोपी रखे। उसे जब गाड़े, उस स्थान को हजीरा कहते हैं। जामनगर में बड़ा हजीरा है नदी के किनारे। इसी प्रकार इसका पाँच-पच्चीस लाख का हजीरा बड़ा हो। इस सेठ को छह लाख का हजीरा (बँगला) है, यह रहते हैं वह। छोटे सेठ को बड़ा बहुत लाखों का मकान। वहाँ हम उतरे थे। अभी चार दिन गये थे न। वहाँ घूमते थे तो कितनी दवायें, कितनी ... सेठ! भाई जहाँ सोते थे न, वहाँ हम आहार करके घूमते न, वहाँ जरा गये थे। डिब्बीयाँ और फलाना और ढींकणा कुछ पड़ा हुआ। दवा-बवा अलग-अलग प्रकार की लेते होंगे न। आहाहा! अरेरे! ऐसे करोड़ों-अरबों के मकानों में रहनेवाला जीव, परन्तु वह तो धूल के ढ़ेर हैं। आहाहा! उसमें आत्मा क्या है, उसकी जिसे खबर नहीं, वे सब हजीरा में पड़े हैं।

जिसे—सम्यग्दर्शन बिना के जीव को भगवान त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं कि वे चलते मुर्दे हैं। आहाहा! जिनकी जीवन चीज़ अपना टिकना कौन है ? कितना है ? कहाँ है ? ऐसी जीवन की ज्योति की जिसे श्रद्धा और ज्ञान नहीं, वे सब जीवित मुर्दे हैं। आहाहा! ऐसा पाठ में शव (शब्द) है, चलते शव। आहाहा! यह मर जाये, तब अर्थी उठाकर ले जाते हैं ऐसे। यह बेचारे स्वयं चलते हैं, परन्तु मरे हुए मुर्दे हैं, कहते हैं। जीवन की ज्योति को, पुण्य से धर्म हुआ, पुण्य वह मेरा, शरीर वह मेरा, यह स्त्री-पुत्र मेरे, मार डाला आत्मा को, उसके जीवन का खून किया इसने। क्योंकि वह आत्मा ज्ञाता-दृष्ट के स्वभाव से, जीवन से भरपूर तत्त्व है। उसे जीवित, ऐसा नहीं माना और उसे यह सब स्त्री मेरी, पुत्र मेरे, बहू मेरी... आहाहा!

दो पैरवाला मनुष्य, वहाँ तक मनुष्य कहलाता है। स्त्री से विवाह करे, तब चार पैर होते हैं उसे, इसलिए ढोर हुआ। ढोर को चार पैर होते हैं। उसमें और पुत्र हो तो छह पैर होते हैं, वह भँवरा हुआ। भँवरे को छह पैर होते हैं। और पुत्र को जब स्त्री हो तो आठ पैर हुए, वह मकड़ी हुआ। मकड़ी को आठ पैर होते हैं। ऐई! यह सब ठगों की टोली है। आहाहा! नियमसार में पाठ है। अपनी आजीविका के लिये ठगों की टोली तुझे मिली है, ठग हैं सब। स्त्री, पुत्र, लड़के, लड़कियाँ सब ठग हैं। ठगों की टोली तुझे मिली और उन्हें तू मेरा मानता है। अरे! तेरी मूर्खता का पार नहीं, कहते हैं। आहाहा!

गजब बातें, भाई! उसमें जरा स्त्री ठीक हो, अच्छे घर से आयी हो पैसे लेकर। कुछ क्या कहा जाता है? करियावर / दहेज। वहाँ आहाहा!

एक, दो बहुएँ थी, उन्हें हुआ विवाद। उसमें एक बहू पुरती आयी पैसे बिना और एक बहू पैसे लेकर आयी हुई। पैसे लेकर अर्थात्? पैसे दिये हुए, ऐसा। देना पड़े और बहू आयी हुई। उसमें दोनों बहुओं को विवाद हुआ। विवाद करते... करते... करते... जो पैसे बिना मुफ्त की आयी, वह उसको जरा बोलती है उस बहू को। तब वह बहू कि तू तो मुफ्त में आयी है और मेरे बाप ने तो पैसे लिये हैं। तू तो यहाँ मुफ्त में आयी है बिना पैसे। देखो, यह ... कुकर्म न! ऐई! सेठ! अभी बहुएँ विवाद करे तो सब ऐसा करे। करते-करते बोले किसी को खबर नहीं। लो! कुकडा बिना सुबह का होना नहीं हो, तेरे बिना नहीं चलता होगा, ऐसा बोले। वह मुर्गा बोले न सवेरे। मुर्गा बोले न मुर्गा। ऐसे बोलता है। ओहोहो! मुर्गा बिना सुबह का होना नहीं हो उसको? सुबह का होना मुर्गा बिना, उसी प्रकार तेरे बिना चलेगा हमारे, ऐसा बोले। ऐसी बातें! अरे प्रभु! क्या करता है तू यह? किसे तू दुश्मन मानता है और किसे तू शत्रु मानता है? वह तो सब चीज़ पर है। तुझमें नहीं, तेरी नहीं, उसमें तू नहीं। आहाहा! अरेरे! इसे तत्त्व की खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं कि वह विकल्प भी मेरा नहीं, तो विकल्प के निमित्त परपदार्थ स्त्री, पुत्र तो मेरे तीन काल में नहीं। मैं हूँ वह तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप से भरपूर पदार्थ हूँ। आहाहा! ज्ञायकस्वभाव से भरपूर पदार्थ, तू तो जगत के पदार्थ का ज्ञाता व्यवहार से है। आहाहा! ऐसे समकिती जीव को, दूसरे समकिती, जिसे दर्शनमोह का क्षय, क्षयोपशम हुआ है, उस जीव का अभिप्राय ऐसे ही समकिती जीव को अन्तरंग हेतु कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा बोले अभी (कि) तुम हाथ पकड़कर कैसे लाये? सब करना पड़ेगा? ढींकणा करना पड़ेगा....

एक तो बड़ा राजा था तीन करोड़ की आमदनीवाला और उसकी रानी थी। राजा कुछ बोलने गया। रानी कहे कि देखो दरबार! हम भी जमींदार की पुत्री हैं, हों! ध्यान रखकर बोलना। हाय... हाय... नामठाम नहीं देते परन्तु खबर है। आहाहा! दरबार को

तीन करोड़ की आमदनी थी और स्त्री ऐसी फटी हुई, अच्छे राज से आयी हुई। ध्यान रखकर बोलना, हम भी जमींदारनी हैं। हम कोई साधारण व्यक्ति नहीं। वह चिल्लाहट मचा गया। हाय... हाय... अब यह कहना किसे ? यह सब संसार ऐसा है, हों ! आहाहा !

यहाँ कहते हैं, जिसे सम्यग्दर्शन आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी सम्यक् धर्म की शुरुआत जिसे हुई है, धर्म की जिसे दशा प्रगट हुई है, उसके अभिप्राय को इस समकिती को अन्तरंग हेतु कहा जाता है। आहाहा ! पंचास्तिकाय में आता है न, १४८ गाथा में। योग को बाह्य कहते हैं और कषाय को अन्तर (अन्तरंग) कहते हैं। इन दोनों में कुछ... आहाहा ! यह बात व्यवहार की हुई। अब निश्चय किसे कहना ? सच्चा किसे कहना ? यह व्यवहार की है अर्थात् असत्यदर्शन, ज्ञान और चारित्र की बात असत्य की की। व्यवहार की कहो या असत्य की कहो। आहाहा ! अब सत्य दर्शन-ज्ञान-चारित्र कैसे होते हैं ? निश्चय कैसा होता है ? इसकी अब व्याख्या करते हैं। आहाहा !

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को,... भेद जहाँ नहीं और जहाँ उपचार नहीं। एक रत्नत्रयपरिणतिवाला, जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग अन्तर से प्रगट हुआ है। ऐसी परिणतिवाला, उसकी परिणति में वीतरागता परिणमी है। आहाहा ! वीतरागी सम्यग्दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र की रमणता। आहाहा ! वह नग्न मुनि को होती है। व्यवहारवाला ऐसा होता है, उसे ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! जिसकी बाह्यदशा नग्न हुई है, जिसके बाह्य में जिसे पंच महाव्रत के विकल्प बाह्य, वह आस्रव है व्यवहार, उसे अन्तर में... आहाहा ! पूर्णानन्द का नाथ खोजकर, शोधकर निकाला है अन्दर से। समझ में आया ? ऐसा उपदेश कैसा ? ऐसा उपदेश धर्मकथा इतने सब लोगों में ? कुछ उसे समझ में आये व्रत करो, अपवास करो, रात्रिभोजन नहीं करो, कन्दमूल नहीं खाना। अरे भगवान ! सुन, बापू ! यह सब तो तो राग की मन्दता के शुभ की क्रिया की बात है, वह धर्म नहीं। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आवे न ? ऐसा होगा ? लहसुन खाते-खाते। वह ढोकला में नहीं, वह ढोकला। ढोकला बनाती हैं न महिलायें, फिर ऊपर लहसुन का मसाला बिछाती है ऐसे। टुकड़े करके फिर घी में या तेल में यहाँ गले तक गाढ़ा हो, फिर उसे कस्तूरी की

डकार आती होगी ? लहसुन की डकार आवे सांद्रित। इसी प्रकार जिसे अकेली व्यवहार की क्रिया दया, दान, व्रत के परिणाम किये हैं... आहाहा! उसे तो राग की डकार आवे, विकार की डकार आवे। आहाहा! ओडकार समझते हो ? डकार नहीं कहते ? आहाहा! ओहो! मार्ग क्या है, इसकी खबर भी नहीं होती। अरे! उसका क्या होगा ? कहाँ जायेगा ? यहाँ उसके बँगले और पैसे सब पड़े रहेंगे। शरीर का टुकड़ा-टुकड़ा यहाँ पड़ा रहेगा। हाय... हाय... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा वहाँ था कब तुम्हारे वहाँ गाँव में। यह तो स्त्री मिली तब कहे, ओहोहो! अच्छी जमींदारनी मिली न, आहाहा! स्वयं भले साधारण हो, परन्तु प्रसन्न। जमीन इसके घर में है। रोटियाँ अच्छी मिलेंगी। आहाहा! अरे भगवान! बापू! वह तेरी चीज़ नहीं, रोटियाँ वह दूसरी चीज़ है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं कि **अभेद**—सच्चा उपचार बिना का रत्नत्रय। सच्चा सम्यग्दर्शन, सच्चा ज्ञान और सच्चा चारित्र, ऐसे **जीव को, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** भगवान आत्मा का स्वभाव। आहाहा! ज्ञायक जिसका स्वभाव है। टाँकी से खोदकर अदबदनाथ ऐसे निकाला हो न पत्थर में, उसी प्रकार यहाँ बिना टाँकी के खोदे अन्दर अदबदनाथ प्रभु है। अकेला ज्ञान का सागर है। आहाहा! अरेरे! कहाँ देखना ? जहाँ है, वहाँ नजर नहीं होती और (जहाँ) नहीं, वहाँ नजर करे। आहाहा! समझ में आया ? कहते हैं, **अभेद-अनुपचार...** वास्तविक रत्नत्रय की पर्याय की परिणतिवाले जीवों को **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** ओहोहो! अकेला जानन... जानन... जानन... जानन... ज्ञाता... ज्ञाता... ज्ञाता... जिसमें अल्पज्ञता नहीं और जिसमें राग का विकल्प दया, दान का जिसमें नहीं। आहाहा!

ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है... देखो, यह पारिणामिकभाव की बात है अकेली। जिसे क्षयोपशम और क्षायिक पर्याय भी नहीं। आहाहा! टंकोत्कीर्ण, मानो बिना खोदे अन्दर पड़ा है प्रभु! ध्रुवस्वरूप ध्रुव नित्य प्रभु है। एक वर्तमान दशा—अवस्था उसे छोड़कर वह तत्त्व पूरा पूर्णानन्द से भरपूर तत्त्व है। कठिन बातें, भाई! आहाहा! बीड़ी

बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, दो बीड़ियाँ-सिगरेट पीवे, तब भाईसाहेब को पाखाने में दस्त उतरे। अब ऐसे को कहे कि ऐसा आत्मा। कहाँ बैठे उसे! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहा न, अज्ञानी को भटकने की आदत पड़ गयी है। यह कुटेव है। आहाहा!

प्रभु! तू ऐसा है, हों, सुन, भाई! आहाहा! अकेला ज्ञान के रस का सागरस्वरूप तेरा है। उसमें अल्पज्ञता भी नहीं और उसमें पुण्य-पाप के, दया, दान के विकल्प भी उसमें नहीं। आहाहा! देव, गुरु और शास्त्र भी उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो ज्ञायकस्वभाव भगवान आत्मा, वह विपरीत विकार के भाववाला नहीं, वह कर्मवाला नहीं। वह स्त्री-पुत्रवाला वह आत्मा नहीं। आहाहा! उसे यहाँ भगवान आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा,... उसकी श्रद्धा अर्थात् सम्यग्दर्शन है। वह सच्चा सम्यग्दर्शन। समझ में आया? ज्ञायकस्वभाव से भरपूर सागर समुद्र उछलता है, जिसमें ज्ञान और आनन्द की हिलोरें पड़ी हैं अन्दर, आहाहा! ऐसा जो ज्ञायक एक स्वभाव। पर्याय के अनेक प्रकार, वे नहीं (-ऐसा) कहते हैं। आहाहा! उसके सन्मुख होकर, उसका आश्रय लेकर जो समकित हो, वह सच्चा समकित है। ऐसे जीव को उस व्यवहारसमकित की बात की पहले। ऐसे जीव को, हों! आहाहा! चावल में बारदान होता है न, वह यह व्यवहाररत्नत्रय, वह बारदान है और निश्चय है, वह चावल है— वस्तु / माल है। परन्तु तौले तब गुण में ऐसा कहा जाता है कि चार मण और ढाई सेर। परन्तु ढाई सेर तो बारदान है। वह कहीं चावल घटे तो कहीं बारदान पकाया नहीं जाता। आहाहा! उसी प्रकार आत्मा का दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह तो माल है और व्यवहाररत्नत्रय की जो बात की, वह तो बारदान है। समझ में आया? आहाहा!

क्या कहा? कि **जिसका (ज्ञायक) एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व...** ऐसा निज परमतत्त्व। ज्ञायक जिसका एकरूप जानने-देखने का एकरूप स्वभाव है।

त्रिकाल ज्ञायकभाव से भरपूर स्वभाव है। ऐसा जो एक स्वभाव। आहाहा! ऐसा जो निजपरमतत्त्व, ऐसा जो निजपरमतत्त्व, उसकी श्रद्धा द्वारा समकित कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? उस द्वारा सिद्धपर्याय पाता है, ऐसा कहना है। यह अभेद और निश्चय और... हमारे मूलचन्दजी को एक पूछा था मगनभाई ने। वह मगन मोदी। नवरंगभाई के पिता। वहाँ आ गये थे। बहुत वर्ष की बात है। उसने पूछा कि महाराज! यह द्रव्यकर्म और भावकर्म किसे कहना? यह जैन में ऐसा द्रव्य और भाव है नहीं। वे जैन के बेरिस्टर कहलाते थे। आहाहा! ऐई! गये थे या नहीं तुम? (संवत्) १९९८ में गुजर गये। आहाहा! अरेरे! अभी उसे द्रव्यकर्म, भावकर्म दो प्रकार है, इसकी खबर नहीं होती और हम साधु हैं। आहाहा! ऐसा स्पष्टीकरण स्पष्ट नहीं। बाकी तो अनुयोग द्वार में है। चार निक्षेप ... सबमें उतारना। उसमें से निकालते थे हम, उसमें से निकालते थे। आहाहा! चार निक्षेप है न? प्रत्येक पदार्थ में चार उतारना। तब कर्म भी पदार्थ है और चार उतारना। नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव।

... उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। धर्म की पहली सीढ़ी, पहला सोपान। निसरणी पर चढ़ते हुए पहला सोपान आवे न, फिर दूसरा, तीसरा, चौथा; उसी प्रकार यह पहला सोपान। ज्ञायकभाव पूर्णानन्द का नाथ पूर्णस्वरूप, वह एक स्वभाव से है। भेद नहीं, अनेकता नहीं, विविधता नहीं, ऐसा जो मेरा एक स्वभाव। आहाहा!

ऐसा जो निजपरमतत्त्व, ऐसा जो अपना निजपरमतत्त्व त्रिकाली की श्रद्धा द्वारा सिद्धि को पाता है। समझ में आया? अन्त में लेंगे, अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है। उसमें नहीं लिया था व्यवहार में कि इससे होती है? वह तो व्यवहार बतलाया था। और उससे तो मुक्ति होती है। समझ में आया? आहाहा! उस **निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा,...** मुक्ति होती है। सिद्ध की अभूतपूर्व, पूर्व में पर्याय प्रगटी नहीं सिद्ध की, वह ऐसे समकित द्वारा सिद्धपर्याय प्राप्त होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

और **तद्ज्ञानमात्र ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा...** आहाहा! **(उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप)...** अन्तर्मुख वस्तु का परमबोध; शास्त्र ज्ञानादि बोध बाह्य है। उस **अन्तर्मुख परमबोध द्वारा और उसरूप से (अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से)...** ज्ञान होना

वह मुक्ति का उपाय है। वह व्यवहार बतलाया, परन्तु वह मुक्ति का कारण है, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? आहाहा! यह व्यवहार और निश्चय और यह सब भांजगढ़ कितनी? मुश्किल से निवृत्त (होकर) एक घण्टे आवे, ऊपर जो पाट पर जो बैठे, वह जय नारायण। जी हाँ... जी हाँ... किया करे, लो! ऐई! जयन्तीभाई!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन तो सही, बापू! तेरे समकितदर्शन के लक्षण क्या और सम्यग्ज्ञान के लक्षण क्या, वह वस्तु तो देख। आहाहा! वह वस्तु जो है ज्ञायकभाव से भरपूर पदार्थ, उसका ज्ञान। आहाहा! उसका तद्ज्ञान है न? **तद्ज्ञानमात्र ऐसे अन्तर्मुखपरमबोध द्वारा और उसरूप से...** सम्यग्ज्ञान है, उस ज्ञान से मुक्ति होती है। तीसरा बोल कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ३, सोमवार, दिनांक ०८-०९-१९७५
गाथा-५१ से ५५, कलश-७५, प्रवचन - २९

निश्चय की बात फिर से लेते हैं। देखो, अन्तिम पेराग्राफ है न! **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को,...** अर्थात्? जिसे अभेद और उपचार नहीं अर्थात् निश्चय, ऐसा जिसे रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र (प्रगट हुए हैं), ऐसे परिणति-अवस्थावाले जीव को **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा,...** ज्ञायकस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, सामान्य चैतन्यस्वभाव ऐसा जिसका स्वभाव है। देखा! ऐसा जिसका स्वभाव है। ऐसा निजपरमतत्त्व। ऐसा स्वभाववान, ऐसा। आहाहा! जिसका त्रिकाल ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव... ध्रुवभाव, ऐसा स्वभाव जिसका है, ऐसा निजपरमतत्त्व। अपना परमतत्त्व आत्मा। आहाहा! उसकी—तत्त्व की श्रद्धा द्वारा, वह समकित। यह निश्चयसमकित, सच्चा समकित, यथार्थ समकित, धर्म का पहला पाया, मोक्षमार्ग में तीन प्रकार का पहला यह एक अवयव। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञायकस्वभाव जिसका ज्ञान त्रिकाल स्वभाव ऐसा जो निजपरमतत्त्व। आहाहा! उसकी श्रद्धा द्वारा अभूतपूर्व सिद्धपद होता है। पहले व्यवहार से क्या होता है, यह बात नहीं की। व्यवहार होता है, इतना बतलाया। यहाँ कहते हैं कि मुक्ति-सिद्धि कैसे होती है? मोक्ष कैसे होता है जीव को? कि वह परमज्ञायकभाव जो जीवस्वभाव, ऐसा निजपरमतत्त्व, उसकी श्रद्धा, आहाहा! वह सम्यग्दर्शन। उस निर्विकल्प आत्मा की प्रतीति। आहाहा! उस श्रद्धा द्वारा सिद्धपद की प्राप्ति होती है। उसके द्वारा सिद्धि अर्थात् मुक्ति होती है। पहले व्यवहाररत्नत्रय कहा सही, वह होता है, ऐसा बतलाया।

तद्ज्ञानमात्र... तद्ज्ञानमात्र। आहाहा! वह ज्ञानमात्रस्वरूप ऐसे। निजपरमतत्त्व का ज्ञानमात्रस्वरूप जानना-जानना, ऐसा जो स्वरूप। **ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा...** अन्तर्मुख। ज्ञान की पर्याय अन्तर्मुख तत्त्व को जाने। आहाहा! उसका नाम सम्यग्ज्ञान

और वह सम्यग्ज्ञान मुक्ति का उपाय। आहाहा! **ऐसे अन्तर्मुख...** है न? **तद्ज्ञानमात्र ऐसे अन्तर्मुख परमबोध...** ज्ञानमात्र अकेला आत्मस्वभाव, उसका जो परमबोध अन्तर्मुख होकर (हुआ)। आहाहा! उसरूप से। उस परमबोध द्वारा। क्या परमबोध द्वारा? सिद्धि को पाता है। मुक्ति को उसके कारण से पाता है। आहाहा! **और उसरूप से (अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से) अविचलरूप से स्थित...** चलित नहीं, इस प्रकार से आनन्द के कन्द में प्रभु स्थिर होता है। आहाहा! चलितपना जहाँ नहीं, ऐसा स्थित होनेरूप सहजचारित्र। यह चारित्र। पंचमहाव्रतादि के विकल्प को तो व्यवहारचारित्र कहा। निश्चय हो, उसे भी व्यवहार होता है, उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। समझ में आया? फिर से विस्तार आयेगा इसमें।

जहाँ निजपरमतत्त्व ज्ञायकभाव की श्रद्धा और निजपरमतत्त्व अन्तर्मुख का परम वस्तु का ज्ञानमात्र का बोध, स्वभाव ज्ञानमात्र, उसका बोध। दो (बातें)। और तीसरा, जो स्वरूप में अविचलरूप से स्थिरता न हो, परन्तु तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव की स्थिरता हो और उसके साथ व्यवहार का विकल्प हो तो उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और स्थिरता के अंश बिना जो कुछ व्यवहार पंच महाव्रत के विकल्प, उन्हें तो व्यवहारचारित्र भी नहीं कहते। आहाहा!

मुमुक्षु : व्रत, तप करे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं। क्या करे? संसार है न। भटकने का संसार है। आहाहा!

यहाँ तो निश्चय बात अब ली है। यह कहेंगे कि **अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र...** स्वाभाविक चारित्र। वीतराग परिणति निर्मल निर्विकल्प शान्ति का प्रपात बहे अन्दर। आहाहा! शान्तरस का परिणमन जिसका अन्दर। विकल्प और राग का जहाँ अवकाश नहीं, ऐसे चारित्र द्वारा। अर्थात् तीन हुए। दर्शन, ज्ञान और चारित्र। **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** आहाहा! **पहले कभी न हुआ हो।** पर्याय को ऐसा कहा है न? **सिद्धपर्याय होती है।** आहाहा! कहो, समझ में आया? इसमें घर में वाँचने का समय मिलता है तुमको? कहाँ मिले? जहाँ हो वहाँ भटका-भटक करना, उसमें समय कहाँ

से मिले ? सागर में समय मिलता है या नहीं ? नहीं ? उसमें यहाँ थोड़े दिन रहे, उसमें क्या भला हुआ ? बहुत समय तो वहाँ रहने का है। आहाहा!

ऐसा सम्यग्दर्शन, जैसा ज्ञायकभाव पूर्णस्वरूप है, उसका सम्यक् अर्थात् सत्यदर्शन निर्विकल्प। जैसा वह परमस्वरूप ज्ञायक है, उसका बोध। आहाहा! समझ में आया ? उसका बोध, शास्त्र का बोध या पर का बोध नहीं। आहाहा! वह अन्तर्मुख ज्ञायकभाव है, उसका बोध। आहाहा! और अविचल स्वरूप में स्थिरता। इन तीन द्वारा **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** आहाहा! अनन्त काल में कभी सिद्धदशा हुई नहीं, ऐसी सिद्धदशा इन तीन द्वारा होती है। आहाहा! **जो परमजिनयोगीश्वर...** अब छठवें गुणस्थानवाले व्यवहार विकल्प में वर्ते, उनकी बात लेते हैं। जो परमजिनयोगीश्वर तो कहा। अर्थात् ? सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव का चारित्र तो है। समझ में आया ? **जो परमजिनयोगीश्वर...** आहाहा! **पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** छठवें गुणस्थान में सावद्ययोग के परिणामरहित, अशुभ परिणामरहित शुभभाव में रहते हैं, उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं और उस साधु को व्यवहारसाधु कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया ? अकेले व्यवहार सम्यग्दर्शन, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार चारित्र, उसे व्यवहार नहीं कहते। आहाहा! परन्तु जिसे भगवान आत्मा ज्ञायक समुद्र प्रभु, अकेला ज्ञायकभाव का छलाछल भरपूर स्वभाव उसके अन्तर सन्मुख होकर, राग के अवलम्बन बिना स्व के आश्रय से जो प्रतीति अनुभव होता है और उसके अन्तर्मुख ज्ञायकस्वरूप जो ज्ञानमूर्ति है, उसका ज्ञान होता है। आहाहा! और उसमें अविचल स्थिरता होती है, वे तीन होकर सिद्धपद की पर्याय प्राप्त होती है। आहाहा!

जो परमजिनयोगीश्वर... आहाहा! समझ में आया ? **परमजिनयोगीश्वर...** जिसने आत्मा में परम जिन अर्थात् वीतरागभाव में जुड़ान किया है। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तीन कषाय के अभावरूप चारित्र है। वह **पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** वह छठवें गुणस्थान का जो विकल्प है, वह अशुभ से निवृत्तिरूप व्यवहार पंच महाव्रतादि के विकल्प को व्यवहारचारित्र कहते हैं और उस साधु को ही व्यवहार। यह तो अपने आ गया है नहीं प्रवचन में ? व्यवहारनय का

वह साधु है। ओहोहो! अकेला जिसे अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं, सम्यग्ज्ञान क्या, उसकी खबर नहीं, वह पंच महाव्रतादि बराबर चुस्त पालन करे तो वह व्यवहार नहीं, वह व्यवहार से भी साधु नहीं। आहाहा!

यह तो सवेरे बहुत आया था वह। आहाहा! वस्त्र-पात्र रखे, वह तो मिथ्यादृष्टि व्यवहार से भी मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार से अर्थात्? व्यवहार से वह गृहीतमिथ्यात्व है, ऐसा कहना है। आहाहा! अर्थात् वह व्यवहार से गृहीतमिथ्यादृष्टि है। वह व्यवहार से (भी) साधु नहीं। व्यवहार से समकिती नहीं। आहाहा! व्यवहार से सच्चे ज्ञानवाला भी नहीं। आहाहा! कठिन काम। लोगों को अभी यह... वहाँ सब कमेटी इकट्ठी हुई थी, उसमें शाहूजी बोले थे, वर्तमान व्रतियों का स्वागत करना। बापू! व्रती किसे कहना? भाई! समझ में आया? जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन निश्चय से स्वरूप के सन्मुख होकर अनुभव आनन्द के वेदन में यह आत्मा है, ऐसी जो प्रतीति हो, उसे तो अभी सम्यग्दर्शन पहला कहने में आता है। आहाहा! ऐसा जहाँ नहीं और मात्र पंच महाव्रतादि (पाले), यद्यपि पंच महाव्रत भी अभी तो व्यवहार के भी चुस्त नहीं। क्योंकि चौका बनाकर आहार ले और चौका बनाकर... चौकावाले साथ में फिरें। यह सेठ जैसे न फिरें, परन्तु दूसरे कितने ही आहार-पानी लेने और चौका उसमें क्या कहलाता है? पत्रों में लिखे कि चौकावाले साथ में फिरते हैं। ऐसा पम्पलेट में आता है। भाई कहते हैं।

मुमुक्षु : साथ में गाड़ी में आम की पेटियाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो आम की पेटियाँ साथ में, कोयला की बोरियाँ साथ में। यह तो सब हमने देखे हैं न यहाँ। राजकोट में नहीं? अरे भगवान! क्या प्रभु यह? यह व्यक्ति के लिये (बात) नहीं, मार्ग यह नहीं। आहाहा! ऐसा कहना है, भाई! पहिचानने के लिये। आहाहा! वह तो व्यवहार से गृहीतमिथ्यादृष्टि है। जहाँ निश्चय नहीं और जहाँ व्यवहार भी सच्चा नहीं और उसे साधुपना मानना, गृहीतमिथ्यात्व है।

यहाँ जो कहा है, वह दूसरी बात है कि जिसे सम्यग्दर्शन-स्वरूप का भान और अनुभव हुआ है, ऐसे परमजिनयोगीश्वर कहे हैं न? स्वरूप में जुड़ान हुआ है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र का स्थिरता का भी अंश प्रगट हुआ है। ऐसा **परमजिनयोगीश्वर**

पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,... आहाहा! यह छठवें गुणस्थान की भूमि अर्थात् बहुत जगह ऐसा लिया है न, व्यवहार पहला निश्चय बाद में। वह व्यवहार यह। वह व्यवहार राग की मन्दता का व्यवहार बाद में यह, यह बात नहीं। छठवें गुणस्थान का व्यवहार। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात ऐसी है कि दूसरे को दुःख लगे, उसकी दशा नहीं और मानता है, उसे तो यहाँ कहते हैं कि तू व्यवहार से भी समकिती नहीं, व्यवहार से ज्ञान भी सच्चा नहीं और व्यवहार से तेरी प्रवृत्ति सच्ची नहीं। आहाहा! छोटाभाई! क्या करना परन्तु इसमें? समाज में रहना...

मुमुक्षु : आत्मा के समाज में रहना....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटाभाई कहते थे पहले। २५ वर्ष पहले कि हम ... निमित्त से होता है यह ... कहते इसलिए फिर यह ... कहा था न भाई! २५ वर्ष पहले। खबर है न! वरना तो ऐसा लगता कि निमित्त से कहे, परन्तु सब कहे निमित्त से होता है, निमित्त से होता है। भाई कहते थे पहले। आहाहा! अरे बापू! यहाँ तो व्यवहार के दया, दान, व्रतादि हो समकित बिना के, उसे व्यवहार नहीं कहते। आहाहा! मात्र यहाँ परमात्मा जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि में यह आया, भाई! तेरे मोक्ष का उपाय अन्तर में स्वरूप की दृष्टि-अनुभव है, ज्ञाता-दृष्टा मैं हूँ, दूसरी कोई चीज़ नहीं। यह ज्ञाता-दृष्टा का ज्ञान है। उसका ज्ञान, हों! और यह ज्ञाता-दृष्टा में तीन प्रकार के कषायों रहित चारित्र भी है, परन्तु शुद्ध उपयोग में नहीं। आहाहा! शुभराग की भूमिका में वह वर्तता है। सवेरे यह आया था न! शुभयोग का भाव हो वह वन्दन, नमस्कार आदि करे। शुभभाव आवे सही, होता है। ओहोहो!

परमजिनयोगीश्वर... परम-जिन-योगी और ईश्वर। इतने तो शब्द प्रयोग किये हैं। अर्थात् मुनिपना तो लिया है छठवें गुणस्थान का। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! परन्तु वह विकल्प टूटकर शुद्ध उपयोग में गयो नहीं, इसलिए उसे पाप से निवृत्तिरूप व्यवहारचारित्र कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? पहला क्या सत्य है, उसे इसे जानना तो चाहिए या नहीं? दूसरे कैसे हैं और कैसे नहीं... वह तो स्वयं अपनी श्रद्धा के लिये दूसरे को जानना है, कहीं दूसरे के लिये नहीं। जिसकी श्रद्धा ही खोटी है,

जिसके आचरण खोटे हैं, उसे अपने मानने में दिक्कत है, इसलिए उसे पहिचान करनी पड़ेगी। समझ में आया? आहाहा!

जो परमजिनयोगीश्वर... आहाहा! क्या परन्तु दिगम्बर आचार्यों की शैली! यह पद्मप्रभमलधारिदेव का कथन है और वह है अमृतचन्द्राचार्य का प्रवचनसार में। वहाँ भी यह ही कहा था कि जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का अंश स्थिरता है छठवें की, परन्तु वह जहाँ शुभयोग में है तो वह व्यवहारनय का साधु है। आहाहा! वह शैली यह ली है। भाई ने। किसी भी सन्त की, दिगम्बर सन्त भले मुनि हो या आचार्य हो, उनके कथन पूर्वापर विरोधरहित है। आहाहा! ऐसी शैली इस सम्प्रदाय के अतिरिक्त कहीं है नहीं। पहले उसे सम्यग्दर्शन यथार्थ क्या है और पश्चात् व्यवहार क्या है, उसका निर्णय करना पड़ेगा या नहीं? समझ में आया? पूनमचन्दजी! आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव उस ओर, यहाँ अमृतचन्द्राचार्य, बीच में कुन्दकुन्दाचार्य हैं। कुन्दकुन्दाचार्य का समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय की टीका इन्होंने (अमृतचन्द्राचार्य ने) की है, नियमसार की टीका इन्होंने (पद्मप्रभमलधारिदेव ने) की है। यह उनकी टीका है। आहाहा! थोड़ा भी सत्य हो ऐसा इसे जानना चाहिए। आहाहा!

कहते हैं **परमजिनयोगीश्वर...** आहाहा! ऐसा तो लिया छठवें गुणस्थानवाला, भाई! इतना तो समाहित कर दिया है। मिथ्यादृष्टि है या अज्ञानी है और उसका व्यवहार है, यह बात है नहीं। आहाहा! दिगम्बर मुनियों की शैली अलौकिक शैली! आहाहा! एक न्याय से तो देखो, एक ऐसे बैठ जाये उसे अन्दर में, ऐसी बातें हैं। ओहोहो! कहते हैं कि हम व्यवहारचारित्र किसे कहते हैं? कि जो कोई परमजिनयोगीश्वर है। स्वरूप में जुड़ान तो है दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता का। आत्मा के साथ इतना योग जोड़ा है। उसका भी ईश्वर है। आहाहा! छठवें गुणस्थान की अपेक्षा से। यह पहले अर्थात् कि आगे गया नहीं अभी सातवें में शुद्ध उपयोग में, इसलिए पहले यह छठे में, **पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** आहाहा! अशुभयोग से निवृत्ति, सावद्ययोग से निवृत्ति। प्रत्याख्यान है न? सावद्ययोग के परिणाम अशुभ से निवृत्ति, परन्तु शुभ के योग की प्रवृत्ति, शुभराग की है अभी। देव-गुरु-शास्त्र का विनय करना, भक्ति करना, धर्म

उपदेश देना, जिनोपदेश देना, वीतराग की पूजा का उपदेश देना, ऐसा सब शुभराग होता है। तो वह **व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** आहाहा! देखो तो!

उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है। उसे व्यवहारनयगम्य साधुपना होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! साधु कहो या तपस्या कहो। तपकल्याणक आता है न? वह साधु, वह तपकल्याणक है। ऐसा कहते हैं कि स्वरूप की दृष्टि हुई है अनुभव की। अकेला ज्ञाता-दृष्टा वह मेरी चीज़ है। और उस ज्ञाता-दृष्टा का ज्ञान हुआ है। आहाहा! और उस ज्ञाता-दृष्टा में परमजिनयोगीश्वर वह अन्दर जुड़ान में हुआ है, गया है। आहाहा! परन्तु जहाँ अभी शुद्ध उपयोग में नहीं आया... बात तो यह है कि पहले सातवाँ गुणस्थान आता है, परन्तु यहाँ छठवेंवाले को व्यवहार गिनकर, फिर सातवें में जाये यह शैली की है। समझ में आया? वरना सम्यग्दृष्टि जब ध्यान में पहले व्यवहार पंच महाव्रत के विकल्प ले, परन्तु फिर ध्यान में जाये, तब उसे सातवाँ ही पहले आता है। परन्तु वह तो निश्चय का सातवाँ आया, उसका काल थोड़ा और छठवें का काल अधिक—दोगुना है, इसलिए उसे व्यवहारचारित्र का कहकर पहला यह है, ऐसा कहा। पहला यह है अर्थात्? सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र नहीं और उसे पहला यह है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्या शैली! केवली का पेट (अभिप्राय) खोलकर रखा है। आहाहा! अब इनकी टीका मान्य नहीं कितनों को, यह रतनचन्दजी और वे। अरे बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! तू वह कौन आजकल का? बापू! यह तो महासन्त जिन्होंने केवली का पेट खोल दिया है। ये तो परमेष्ठी हैं। परम-आगम मुख से झरता है, ऐसा है अन्दर। बापू! महाव्रतधारी है, सत्य बोलनेवाले हैं, उन्हें तू ऐसा कहे? आहाहा!

यहाँ तो सत्यग्दर्शन सत्य, सत्यदर्शन—जैसा स्वरूप है, वैसी उसकी प्रतीति, जैसा स्वरूप है, वैसा उसे ज्ञान और उस स्वरूप में स्थिरता चारित्र की, तीन कषाय के अभाव की वर्तती है। ऐसी भूमिकावाला अशुभभाव से निवृत्त होकर शुभभाव में वर्तता है, उसे व्यवहारनय का चारित्र और व्यवहारनय का साधु कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग। आहाहा! पहले का अर्थ यह कि शुद्ध उपयोग में गया नहीं, इसलिए उसके पहले छठवें गुणस्थान में वर्तता है। पहले अर्थात् व्यवहारक्रिया पहली

है और बाद में निश्चयचारित्र होता है, यह वह नहीं। निश्चयचारित्र तो है, परन्तु जो निश्चय शुद्ध उपयोगवाला चाहिए, वह निश्चय नहीं। समझ में आया? इसलिए पहले कहा। आहाहा! जिसे अन्तर तीन कषाय के अभाव की दशा तो हो गयी है, छठवें गुणस्थान में है, भावलिंगी है, आहाहा! बाहर में नग्नदशा है, अन्दर में पंच महाव्रत के परिणाम आ गया है, इसलिए उसे व्यवहारचारित्र कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर... मुनिपना अर्थात् **तपश्चरण होता है।** आहाहा! व्यवहार से उसे मुनि कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार से उसे तपस्वी कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! जैसे परमसत्य है, वैसे उसे आना चाहिए। घर की कोई भी बात कम, अधिक, विपरीत डालकर अर्थ करे, वह नहीं चलता। आहाहा! परमेश्वर की सभा में जो बात कही गयी है, सन्तों ने जो बात झेली है, उसे तोड़-मरोड़कर दूसरी कर डालना, बापू! यह मार्ग नहीं, भाई! समझ में आया? आहाहा! और ऐसा कहा जाता है न कि साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व, कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व, ऐसी भाषा आती है। पच्चीस (प्रकार के मिथ्यात्व में) श्वेताम्बर-स्थानकवासी में। परन्तु अपने यहाँ दस आते हैं, दस प्रकार। साधु सच्चे हों, उन्हें कुसाधु माने, तब तो मिथ्यात्व है। कुसाधु है, उसे साधु माने तो भी मिथ्यादृष्टि जीव है। ऐई! सेठ!

मुमुक्षु : सच्चे साधु की कसौटी कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी कसौटी? भान हो उसे खबर पड़े। खबर नहीं पड़ती हीरा-माणेक की? जिसे वीतरागी ज्ञान और वीतरागी दृष्टि हुई है, वह बराबर पहिचान सकता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह न हो वहाँ तक का सत्कार करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु था कब साधु? ऐसे सेठियों ने ऐसे के ऐसे सब गोला मारे हैं अभी तक। ऐई! सेठ! यह उलहाना है दोनों सेठियों को। सवेरे आहार-पानी करे, गर्म पानी करे, मौसम्बी करे और फिर कहे कि तिष्ठ... तिष्ठ... तिष्ठ... यह तो दृष्टान्त है। आहार शुद्ध, मन शुद्ध, वचन शुद्ध। बापू! यह मार्ग वीतराग का नहीं, भाई!

यह तो ठगाई है। यह तो वस्तु की स्थिति है, भाई! तीन लोक के नाथ की जिनेन्द्रदेव की जो पद्धति है मार्ग की उसमें जरा भी फेरफार नहीं होता। आहाहा!

यहाँ तो दिगम्बर साधु, श्वेताम्बर और अन्यमति के साधु तो व्यवहार से भी साधु नहीं, परन्तु व्यवहार से गृहीतमिथ्यादृष्टि हैं। और दिगम्बर में भी, सातवें अध्ययन में यह लिया है न? साधु नग्न हो, दिगम्बर हो, पंच महाव्रत अच्छे पालन करे और व्यवहारिक श्रद्धा आगम प्रमाण हो तो भी वह साधु नहीं। आहाहा! जिसे अन्तर निश्चय स्वभाव नहीं तो वह व्यवहार से भी साधु नहीं। आहाहा! जिसे अन्तर आत्मा भगवान त्रिलोकनाथ ज्ञानस्वरूप ज्ञायकभाव अकेला ज्ञानरस का कन्द प्रभु है, आहाहा! जिसमें विकार तो नहीं, परन्तु जिसमें अल्पज्ञता नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान ज्ञायकस्वभाव भगवान ने देखा है। ऐसा वह देखे अन्दर में दृष्टि से। आहाहा! समझ में आया? तब उसे सम्यक् सत्यदर्शन कहा जाता है। सत्य का सत्यदर्शन हुआ, सत्य जैसा है वैसी प्रतीति हुई। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अर्थात् सत्यदर्शन, सत्य की श्रद्धा। आहाहा! समझ में आया? यह बात दिगम्बर सन्तों की शैली के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं, भाई! लोगों को दुःख हो, ऐसा हो। २५०० वर्ष भगवान के वर्तते हैं। उसमें किसी के प्रति विरोध की बात नहीं, विरोध नहीं, वैर नहीं, द्वेष नहीं। वह आत्मा है। परन्तु वस्तु की स्थिति तो ऐसी है। समझ में आया? वहाँ लोकलज्जा काम नहीं आती। सत्य में लोकलज्जा काम नहीं आती। आहाहा!

अन्यमत के संन्यासी बाबा तो गृहीतमिथ्यादृष्टि है। श्वेताम्बर के साधु गृहीतमिथ्यादृष्टि है, तो उन अन्य की बात तो कहाँ करना! बात तो ऐसी है। अब तो दिगम्बर में भी जिसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं, उसके पंच महाव्रत और नग्नपना, उसे भी व्यवहार नहीं कहते। आहाहा! परन्तु यहाँ परमात्मा उसे व्यवहार कहते हैं, सन्त कहते हैं, वह परमात्मा कहते हैं, दोनों एक ही बात है। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान और छठवें गुणस्थान की जो दशा चारित्र की, वह तो है। परम जिनयोगीश्वर है। आहाहा! परन्तु उस शुभयोग में, पाप की निवृत्ति में शुभपरिणाम में वर्तता है। भगवान की भक्ति, पंच महाव्रत के परिणाम, उपदेश देने का विकल्प (आता है)। आहाहा!

सच्चे सन्त हों धर्मात्मा, वे आवे तो आदर करना, जाये तो पीछे-पीछे जाना, ऐसा सत्कार्य, वह सब शुभभाव है। आहाहा! उस शुभभाव में ऐसा जीव जो है, वह वर्तता है, इसलिए उसे पहले व्यवहारचारित्र है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! इसलिए व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, ऐसा जो कहते हैं, वह तो व्यवहार पहले की खबर भी नहीं उसे। समझ में आया? बहुत जगह यह आता है, व्यवहार पहले साधक है और निश्चय बाद में। परन्तु वह यह व्यवहार छठवें गुणस्थान का। वरना किसी प्रकार से मिलान नहीं खाये कहीं शास्त्र का। आहाहा! समझ में आया? यह तो परम सन्तों की वाणी है और वह भी भगवान ने कही हुई, उसके अनुसार कहते हैं। उसमें घर की कुछ बात नहीं। आहाहा!

ऐसे **परमजिनयोगीश्वर...** आहाहा! **पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है।** व्यवहारनयगम्य तपस्या और मुनिपना होता है। आहाहा! समझ में आया? **सहजनिश्चयात्मक परम-स्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है;...** अब निश्चय कहते हैं। आहाहा! सहजनिश्चयस्वरूप भगवान आत्मा का परमस्वभावस्वरूप ऐसा परमात्मा, स्वयं परमात्मा का प्रतपन। उसका प्र-विशेष तपना अर्थात् उग्ररूप से शान्ति की प्रगट दशा होना, वीतरागी पर्याय प्रगट होना, आहाहा! यह प्रतपन, वह तप है। वीतरागी पर्याय शुद्ध उपयोग की प्रगट होना, वह तप है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उपवास तप नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लंघन है। क्या छोटाभाई! यह अपवास करे, वह तप नहीं? यह अपवास करते हैं न? लंघन है, बापू! वह तप नहीं, वह निर्जरा नहीं, वह धर्म नहीं। आहाहा! पहले यह कहा था न? व्यवहारनय का तप है, ऐसा कहा था। छठवें गुणस्थान में सम्यग्दर्शन और चारित्र की दशा तीन कषाय के अभाव की है, परन्तु शुभ में वर्तते हैं, इसलिए उसे व्यवहारतपस्या और व्यवहारमुनि (कहते हैं)। मुनि, वह तपस्या का अर्थ। तपकल्याणक अर्थात् मुनि दीक्षाकल्याणक। भगवान के तपकल्याणक मनाते हैं या नहीं? जन्मकल्याणक, तपकल्याणक, केवल(ज्ञान)कल्याणक, निर्वाण

कल्याणक और गर्भकल्याणक। यह पाँच है न? वह तपकल्याणक अर्थात् दीक्षा की चारित्रदशा, उसे तपकल्याणक कहा जाता है। इसलिए यहाँ कहते हैं कि **सहज-निश्चयात्मक परमस्वभावस्वरूप...** ऐसा परमस्वभावस्वरूप, ऐसा परमस्वभावस्वरूप परमात्मा स्वयं उसमें प्रतपन। जैसे सोना को गेरु लगाकर सोना ओपता है, ओप-ओप। गेरु है गेरु? गेरु तो समझते हो न? ओपत है। उसी प्रकार भगवान आत्मा निर्मल निर्विकारी शुद्ध उपयोग से तपा है अन्दर, उज्ज्वल हुआ है अन्दर। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात! मार्ग तो यह है, बापू! 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' उसमें दूसरा हो नहीं सकता। आहाहा!

स्वाभाविक निश्चयस्वरूप अपना। परमस्वभावस्वरूप ऐसा परमात्मा स्वयं। परमात्मा। आहाहा! उसमें प्रतपन। चारित्र की तीन कषाय के अभाव की दशा तो है। तदुपरान्त शुद्ध उपयोग से तपा है अब। आत्मा को ओप दिया उसने। आहाहा! निर्विकल्प में ध्यान देकर निर्विकल्प आनन्द में शुद्ध उपयोग में आता है, उसे निश्चयचारित्र और निश्चयतप और निश्चय मुनिपना कहा जाता है। ऐई सेठ! ऐसा कभी सुना नहीं होगा किसी दिन वहाँ। वहाँ कहाँ है वहाँ? सागर। सागर में मान बहुत, हों! यह सेठिया दोनों सेठियों की छाप बहुत। पन्द्रह हजार लोग, लो! सभा में बहुत लोग। यह तो अब यहाँ आना सरोवर के पानी पीने। सरोवर घर में आता होगा बारम्बार? एक नल रखे तो आवे। तो भी नल के पास में तो जाना पड़े या नहीं? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! ओहोहो! गजब बात है! वस्तु की स्थिति की स्पष्टीकरण की दशा भगवान मुनि कैसा कहते हैं! आहाहा! भाई! जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन अनुभव का समकित है, जिसे बोधतत्त्व का ज्ञान है, वह स्वयं ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान है और उस ज्ञानस्वरूप में तीन कषाय के अभावरूप का चारित्र-स्थिरता है, उसे शुभयोग में वर्तनेवाला कहकर शुभ मुनिपना अर्थात् व्यवहारमुनिपना और व्यवहारतप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! और जो शुभयोग का भाव छोड़कर शुद्ध उपयोग से जहाँ आत्मा को ओपा और उग्र आनन्द की दशा प्रगट हुई, उसे निश्चय मुनिपना, निश्चयदीक्षा और निश्चयतप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहाँ ले गये हैं बात, देखो न! ओहोहो!

उसे—साधु को साधुपना कैसा है, ऐसा जानना तो पड़ेगा या नहीं ? इसके बिना श्रद्धा में गड़बड़ उठेगी। समझ में आया ? यह व्यक्ति के लिये नहीं, पर के लिये नहीं, परन्तु वस्तु कैसी है ? ऐसी यथार्थ उसे जानना हो, श्रद्धा में लेना हो तो उसे जानना तो पड़े बराबर। आहाहा ! निश्चयनयस्वरूप परमस्वभावस्वरूप, ओहोहो ! परमात्मा में प्रतपन, उसमें शुद्ध उपयोग हो गया अब, सातवाँ गुणस्थान। राग भले अबुद्धिपूर्वक थोड़ा हो, उसकी यहाँ गिनती नहीं, परन्तु उन तीन की एकता हो गयी अब। दर्शन, ज्ञान और शुद्ध उपयोगरूपी चारित्र, तीन की एकता हुई वहाँ मोक्षमार्ग कहा जाता है। आहाहा ! **प्रतपन वह तप है...** भाषा देखो, आनन्द का नाथ स्वयं आनन्द से शोभ जाये अन्दर में। विकल्प की थाह छूटकर अकेले अतीन्द्रिय आनन्द से शोभे, उसे निश्चयसाधु, उसे निश्चयदीक्षा, उसे निश्चयतपसी-तप कहा जाता है। आहाहा !

मुमुक्षु : .... तप वापस कराना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, करे बेचारे, परन्तु किसे कहना तप, उसे भी खबर नहीं होती। शिक्षा बहुत आवे, कहते हैं। यहाँ सम्यग्दर्शन की बात है और ज्ञानी... यहाँ साधुपने की बात नहीं ? परन्तु तुमने माना हुआ वह साधुपना नहीं। आहाहा ! यहाँ तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव ने जिसे साधुपना कहा, वह तो यह है। आहाहा !

निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप... देखा ! शुद्ध उपयोग में जम गया है न अन्दर में। भगवान आत्मा को पकड़कर स्थिर हो गया है अन्दर। निर्विकल्प उपयोग में स्थिर हो गया है। आहाहा ! **स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है।** ऐसी दशा से निश्चयचारित्र होता है। समझ में आया ? ओहोहो ! क्या टीका ! सत्य को शोधकर, सत्य के लिये रखना कि ऐसा सत्य है। आहाहा ! उसकी श्रद्धा की खबर नहीं होती, ज्ञान की खबर नहीं होती और उसे समकित हो जाये ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : परमगुरु के प्रसाद से होता है और आप कहो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब निमित्त का कथन है। प्रसाद हो आत्मा का। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, हमारे गुरु ने हमारे ऊपर मेहरबानी करके शुद्ध तत्त्व का उपदेश—

प्रसाद हमको दिया। निमित्त का ज्ञान करना हो तो ऐसे होता है न। परन्तु स्वयं भगवान जागकर स्थिर हो, तब उसे सच्चा चारित्र कहा जाता है। आहाहा! क्या कहा यह?

निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप... आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप भगवान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो उसका है, परन्तु अविचल स्थिति। चलित नहीं, ऐसी रमणता अन्दर आनन्द में। आहाहा! ऐसा **सहजनिश्चयचारित्र...** स्वाभाविक निश्चयचारित्र। यह वर्तमान पर्याय की बात है, हों! त्रिकाल की नहीं। स्वाभाविक निश्चयचारित्र वह तप से होता है। ऐसे तप से निश्चयचारित्र होता है। आहाहा! शुद्ध उपयोगरूपी रमणतावाले को निश्चयचारित्र ऐसे जीव को होता है। आहाहा! तपसा निर्जरा आता है सही न! तत्त्वार्थसूत्र में आता है। तपस्या, वह निर्जरा। लगे सब, तपस्या निर्जरा अर्थात् अपवास करो, वह निर्जरा। यह (संवत्) २०१५ के वर्ष में यहाँ अपने हुआ था। २०१० के वर्ष, १० नहीं? मानस्तम्भ। २००९ के वर्ष। पूरी वह आयी थी न एक स्पेशल... उसमें यह सेठिया थे। भाई कैसे बड़े? तुलाराम। तुलाराम और सब थे। पूरी स्पेशल आयी थी। वह अन्दर चर्चा हुई होगी किसी जवान के साथ। इसलिए जवान कुछ यहाँ की बात जानता था, इसलिए उस सेठिया से कहा होगा कि देखो तपसा निर्जरा कही है न। सेठ! पूछो महाराज को। तब की बात है। २००९ के वर्ष। बहुत वर्ष हो गये। ३१। २२ वर्ष हुए। सेठ ने पूछा तुलाराम बेचारे भोले व्यक्ति। गजराज उनमें होशियार था, परन्तु उसे यह मिला नहीं, वह बेचारा बाहर में समाज में जुड़ जाये और समाज के साथ काम करे। समाज के जूड़े में जुड़ना पड़े सेठियों को फिर।

मुमुक्षु : साधु कहे ऐसा तो हम करते हैं। ऐसे साधु....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। नहीं उसे मानना या नहीं? हंस न हो तो कहीं कौवे को हंस माना जाये? समझ में आया? यह दृष्टान्त दिया है मोक्षमार्गप्रकाशक में। मोक्षमार्गप्रकाशक में दृष्टान्त है। सब शास्त्रों में शब्द पड़े हैं। ओहोहो! भाई! न हो, उसकी दिक्कत नहीं, परन्तु नहीं (हो), उसे मानना, वह महामिथ्यात्व है।

इस तप से होता है। किस तप से? यह शुद्ध उपयोगरूपी रमणता जो है अन्दर, ऐसे तप से निश्चयचारित्र होता है, ऐसे मुनिपने से निश्चयचारित्र होता है। आहाहा! **इसी**

प्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दि पंचविंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नाम के अधिकार में १४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —

दर्शनं निश्चयः पुन्सि बोधस्तद्बोध इष्यते।
स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः॥

श्लोकार्थः—आत्मा का निश्चय, वह दर्शन है,... बहुत संक्षिप्त। पूर्णानन्द का नाथ ज्ञायकभाव से भरपूर ऐसा जो आत्मा, उसका निश्चय अन्तर में होना, अनुभव होकर निर्णय होना, उसका नाम दर्शन है। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! लो, यह पद्मनन्दि का दृष्टान्त दिया। कोई भी मुनि हो दिगम्बर के, उनकी वाणी एक ही प्रकार की अविरोधी सबकी वाणी है। आहाहा! भले कहीं व्यवहारनय के कथन से व्यवहार कहा हो, परन्तु उसे हेय बतलाकर कहा हो उन्होंने। आहाहा! **आत्मा का निश्चय...** आत्मा अर्थात् ज्ञायकभाव और पूर्णानन्द का कन्द प्रभु, ऐसा जिसका निश्चयपरमात्मस्वरूप, उसका निश्चय-निर्णय। उसे ज्ञान में जानकर और निर्णय, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

आत्मा का बोध, वह ज्ञान है,... कहा था न वह तद्ज्ञान। वह ज्ञानस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप, उसका ज्ञान। उसे ज्ञेय बनाकर जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान सच्चा। बाकी अकेले शास्त्र के पठन से ज्ञान माने, वह ज्ञान सच्चा नहीं। आहाहा! गजब मार्ग, बापू! आहाहा! वीतराग जिनेन्द्रदेव परमेश्वर जिन्हें सौ इन्द्र पूजे। बापू! उसके मार्ग बहुत अलग। आहाहा! अभी तो बहुत फेरफार, बहुत फेरफार हो गया। सत्य को असत्य मनाया, असत्य को सत्य मनाया। आहाहा! अरे! इसके कहाँ जाकर खड़े रहना? भाई! चौरासी के अवतार का यह मेहमान है। आहाहा! जिसे अभी सच्ची श्रद्धा का ठिकाना नहीं। देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं और उन्होंने कहा, वह तत्त्व कैसा होता है? आहाहा! यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र यह कहते हैं कि तेरा आत्मा पूर्ण परमात्मस्वरूप, उसके सन्मुख स्वाश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन हो, उसे हम दर्शन कहते हैं। ऐसे देव-गुरु-शास्त्र को मानना, नौ तत्त्व को मानना, वह यहाँ बात नहीं। आहाहा!

आत्मा का बोध... आत्मज्ञान। आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वरूपी प्रभु का ज्ञान। आहाहा! उसके सन्मुख हुए बिना उसका ज्ञान कहाँ से हो? आहाहा! और **आत्मा में ही**

स्थिति... यह आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें रमण-स्थिति, **वह चारित्र है,...** आहाहा! **ऐसा योग (अर्थात् इन तीनों की एकता) शिवपद का कारण है।** तीन की एकता, वह मोक्ष का कारण है। शिवपद अर्थात् निरुपद्रव मोक्षमार्ग, कल्याणरूपी मोक्षमार्ग। शिव-कल्याणरूपी निरुपद्रवरूपी मोक्षमार्ग, मोक्ष, उसका यह कारण है। आहाहा! बहुत पद्मनन्दि आचार्य ने जंगल में... यह तो हजार वर्ष, नौ सौ वर्ष पहले हुए हैं।

★ ★ ★

कलश - ७५

और (इस शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) —

(मालिनी)

जयति सहज-बोधस्तादृशी दृष्टिरेषा,
चरणमपि विशुद्धं तद्विधं चैव नित्यम्।
अघकुलमलपङ्कानीकनिर्मुक्तमूर्तिः,
सहजपरमतत्त्वे सन्स्थिता चेतना च॥१७५॥

(हरिगीतिका)

यह सहज ज्ञान तथा सहज दृष्टि सदा जयवन्त है।
इस तरह सहज विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है॥
जो पापपुञ्ज विहीन कर्दम पंक्ति से नित रहित है।
संस्थित सहज निज तत्त्व में वह चेतना जयवन्त है॥७५॥

श्लोकार्थः —सहजज्ञान सदा जयवन्त है, वैसी (सहज) यह दृष्टि सदा जयवन्त है, वैसा ही (सहज) विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है; पापसमूहरूपी मल की अथवा कीचड़ को पंक्ति से रहित जिसका स्वरूप है ऐसी सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना भी सदा जयवन्त है॥७५।

इस प्रकार सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य के समान है और पाँच

इन्द्रियों के विस्तारहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था—ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य -देवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) शुद्धभाव अधिकार नाम का तीसरा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।

कलश - ७५ पर प्रवचन

और (इस शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं) —

(मालिनी)

जयति सहज-बोधस्तादृशी दृष्टिरेषा,
चरणमपि विशुद्धं तद्विधं चैव नित्यम्।
अघकुलमलपङ्कानीकनिर्मुक्तमूर्तिः,
सहजपरमतत्त्वे सन्स्थिता चेतना च॥१७५॥

आहाहा! शुद्धभाव अधिकार है न, इसलिए शुद्धभाव के प्रकार लिये सब। आहाहा!

श्लोकार्थः—सहजज्ञान सदा जयवन्त है,... सहजज्ञान यह ध्रुव, हों! त्रिकाल ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा जयवन्त है। क्योंकि हमारी दृष्टि में वह आया है तो वह जयवन्त वर्तता है, यह हमको खबर पड़ी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ओहोहो! **सहज...** स्वाभाविक त्रिकाली ज्ञान की बात है यह, हों! पर्याय की नहीं। ज्ञान स्वाभाविक त्रिकाल जयवन्त वर्तता है, यह मान्यता पर्याय की है। समझ में आया? स्वाभाविकज्ञानस्वरूप आत्मा वह ध्रुव, जयवन्त वर्तता है, वह पर्याय, उसे जानकर यह जयवन्त यह वस्तु है, यह त्रिकाल ऐसी की ऐसी चीज़ है, उसे जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! क्या कहा यह? जयवन्त वर्तता है, वह पर्याय से ख्याल आया है। शुद्धभाव, सहजज्ञानभाव अकेले ज्ञान के प्रकाश का नूर, उसका तेज अकेला जो चैतन्य, जयवन्त वर्तता है। ऐसा पर्याय में दिखाई दिया-ज्ञात हुआ, वह पर्याय ऐसा कहती है कि यह वस्तु जयवन्त वर्तती है। समझ में आया? आहाहा!

वैसी (सहज) यह दृष्टि सदा जयवन्त है,... त्रिकाल। यह त्रिकाल की दृष्टि जो है, उस त्रिकाल में दृष्टि हों त्रिकाल की, जयवन्त वह पर्याय कहती है, यह त्रिकाल दृष्टि जो है त्रिकाल, वह जयवन्त वर्तती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन जो त्रिकाल है स्वरूप में, श्रद्धागुण त्रिकाल है अन्दर निश्चयदृष्टि, वह उपयोग में आ गया है, त्रिकाल वस्तु की अन्तरदृष्टि, वह त्रिकाल दृष्टि जो है, वह पर्याय में, मुनिराज कहते हैं, वह जयवन्त वर्तता है। त्रिकाल दृष्टि जयवन्त है। आहाहा! किस प्रकार से डाला, देखा!

वैसा ही (सहज) विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है;... अन्दर चारित्र अर्थात् कि वीतरागभाव आत्मा में है... आहाहा! वह भी सदा जयवन्त है। त्रिकाल वीतरागभाव भरा है अन्दर। आहाहा! ऐसे पर्याय में वीतरागता प्रगटी है, वह वीतराग पर्याय कहती है कि यह वीतरागभाव जयवन्त वर्तता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात। कितना जोर है दृष्टि का। ध्रुव को दृष्टि में लिया है, ध्रुव का ज्ञान किया है और ध्रुव में रमता है, उसे कहते हैं कि यह आत्मा त्रिकाल है, वह हमारे लिये जयवन्त वर्तता है। आहाहा! और उसकी त्रिकाल दृष्टि है, वह हमारे लिये जयवन्त वर्तती है। आहाहा! जिसका हमने आश्रय लिया है, वह जयवन्त वस्तु है अन्दर। आहाहा! ऐसे विशुद्ध त्रिकाल सहज, हों!

सहज त्रिकाल विशुद्ध चारित्र, देखो! विशुद्ध के कितने अर्थ? एक शुभभाव को विशुद्ध कहे, एक प्रगट पर्याय को विशुद्ध कहे, यह त्रिकाल चारित्र को विशुद्ध कहे। आहाहा! प्रगट हुई पर्याय, उसके साथ दर्शन, ज्ञान जो है, वह यह ध्रुव चारित्र अन्दर वीतरागभाव जयवन्त वर्तता है। आहाहा! हमारा वीतरागभाव त्रिकाली ध्रुव जयवन्त वर्तता है। आहाहा! देखो एक मांगलिक। पाँच गाथा का पूरा करके गाथा महामांगलिक (कहा) है। आहाहा!

पापसमूहरूपी मल की अथवा कीचड़ को पंक्ति से रहित जिसका स्वरूप है ऐसी सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना... त्रिकाल। आहाहा! **सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना...** चेतना त्रिकाल। आहाहा! चेतना ज्ञान तो पर्याय में प्रगटी है, वह ज्ञानपर्याय ऐसा कहती है कि यह शुद्धज्ञानचेतना त्रिकाल जयवन्त वर्तती है। आहाहा! अरे! यह

शैली की शैली कहाँ है? आहाहा! **सहजपरमतत्त्व में संस्थित (रही हुई) चेतना...** त्रिकाल। चेतना त्रिकाल ऐसी थी दो प्रकार अपने। शुद्ध चेतना और शुद्ध चेतना का फल, वह सब त्रिकाल वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? वह **भी सदा जयवन्त है।** ऐसा कहकर मांगलिक किया। आहाहा! जिसे मांगलिक दशा प्रगट हुई है, वह ऐसा कहता है कि वह सब जयवन्त वर्तता है न ध्रुव। आहाहा! ज्ञान ध्रुव, दृष्टि ध्रुव, चारित्र ध्रुव। आहाहा! ऐसा करके पूर्णानन्द के नाथ को याद करके शुद्धभाव का अधिकार पूर्ण करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

महापुरुष भाग-१

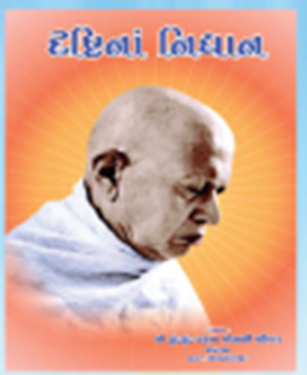
दृष्टिनां निधान

गुरु कडान - दृष्टि मडान

કલ્યાન દેશના

पांडव पुराण
अर्थात्
जैन महाभारत

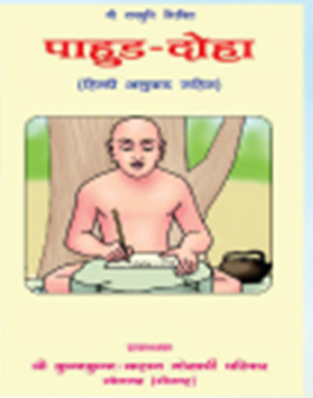
पाहुड-दोहा

महावीर पुरुष

परम-पारिणामिकभाव

जोधि-समाधि-निधान

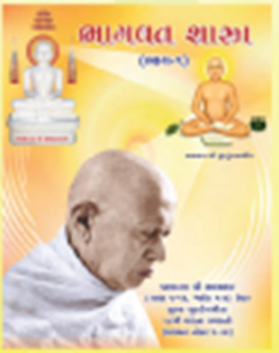
भावलत शास्त्र